श्री मद्भागवत में श्री कृष्ण लीला की

डा. मधु खण्डेलवाल

शुभाशीर्वाद

श्रीमद्भागवत रसस्वरूप श्रीकृष्ण का वाङ्मय विग्रह है "श्रीमद्भागवत में श्रीकृष्ण लीला की प्रबन्ध योजना एक अध्ययन" शोध प्रबन्ध परिश्रम एवं लगन की अनुपम कृति है। शोध प्रबन्ध की लेखिका श्रीमती डॉ० मधु खण्डेलवाल की सफलता हेतु मेरा शुभ आशीर्वाद !

'कल्याण', 'श्रीकृष्ण सन्देश' के सम्पादक,
अनेकानेक उच्च कृतियों के लेखक,
श्रीकृष्ण के परम भक्त :
श्री सुदर्शनसिंह जी 'चक्र' महाराज

× × ×

श्रीमती मधु आर. खण्डेलवाल ने श्रीमद्भागवत को अपना आलोच्य विषय बनाकर श्रीकृष्ण लीला की मीमांसा करके स्तुत्य कार्य किया है। मैं आशीर्वाद देता हूँ कि ये भक्ति काव्यों के अध्ययन में प्रवृत्त हों तथा भागवत भाव में मज्जन करें।

विद्यानिवास मिश्र
कुलपति
काशी विद्यापीठ, वाराणसी

श्रीमद्भागवत में श्रीकृष्णलीला
की
प्रबन्ध योजना : एक अध्ययन

[आगरा विश्वविद्यालय की पी-एच० डी० उपाधि हेतु]
[स्वीकृत शोध-प्रबन्ध]

Shri KESHABJI ...
Mathura (U.P.)

डा० मधु आर० खण्डेलवाल
एम० ए०, पी-एच० डी०
साहित्याचार्या

प्रकाशक :

सेठ बद्रीप्रसाद-राजेन्द्र खण्डेलवाल
बी० खण्डेलवाल मेटल कारपोरेशन
७३, कीका स्ट्रीट, बम्बई--४०००४

प्रकाशक :

सेठ बद्री प्रसाद राजेन्द्र खण्डेलवाल

बी० खण्डेलवाल मैटल कारपोरेशन

७३, कीका स्ट्रीट, बम्बई-४०० ००४

★

रचनाकार :

डा० मधु आर० खण्डेलवाल 'साहित्याचार्य'

रामकृष्ण खण्डेलवाल भवन

७३, कीका स्ट्रीट (गुलालवाड़ी) बम्बई-४०० ००४

★

प्रथम आवृति सन् १९८९ —१००१ प्रतियाँ

★

सर्वाधिकम्

★

मूल्य : २०१/-

★

अपरं च प्राप्ति स्थानम् :

श्री केशवजी गौड़ीय मठ
तिलक द्वार, मथुरा (उ० प्र०)

●

मुरारी लाल बुकसेलर
नया बाजार, मथुरा (उ० प्र०)

★

मुद्रक :

व्यास प्रिंटिंग प्रेस
गजा पायसा, मथुरा (उ० प्र०)

शुभ सम्मति एवं शुभाशीष

●

श्रीकृष्णलीन परम ऋषि
श्री श्री १०८ श्री लक्ष्मन प्रसाद शास्त्रीजी का
शुभाशीर्वाद

●

असारे संसारे विषयविषभंगकुलमति,
हरे हरिं शास्त्रं 'मधु' सुकलितं भाव बहुलम्
मुदाधीतेयोऽसौ मधुरमधुरं कीर कथितं
मुकुन्दस्याभोष्टं ब्रजति सदनं न परिजनैः ॥

अहो रम्यं शास्त्रं शुकवदननिर्यातमतुलं
समृष्टं वैशधं मधुरं मधुरं वास्तवमिदम् ।
पठेयुर्वेमर्त्याः प्रणतिपुरतोवस्तु विदितं ब्रजेयुः
बैकुण्ठं स्वजन सहितै वींश शिरसा ।

शुकप्रोक्तं शास्त्रं कलिमलहरं कृष्णनिलयं तदीय
पीयूषं मधुर मधुरं वैष्णव मुखात् ।
पिबेयुर्भक्तायें 'मधु' सुकलितं कर्ण चषकै लंभेयुः
सायुज्यं युवति कुसुभावता हि मनुजाः ॥

प्रखर विद्वर, अनेकानेक ग्रन्थों के भाष्यकार

प्रसिद्ध वक्ता डा० खण्डेलवाल के

दो-शब्द

श्रीमती डा० मधु खण्डेलवाल ने "श्रीमद्भागवत में श्रीकृष्ण-लीला की प्रबंध योजना : एक अध्ययन" विषय पर जो शोध प्रस्तुत किया, उसके प्रकाशन का समाचार सभी वैष्णवों के लिए आह्लादकारी है। श्रीमद्-भागवत की महिमा अपार है, इसका महात्म्य अद्भुत है। इस वैष्णव शास्त्र पर डा. मधु ने जो अध्ययन एवं स्वाध्याय किया और उन्हें जो बड़े-बड़े वैष्णव सन्तों का शुभाशीर्वाद प्राप्त हुआ, उसका प्रतिफलन प्रस्तुत ग्रन्थ में हुआ है। सच्चिदानंद स्वरूप जगद्गुरु भगवान श्रीकृष्ण की लीलाएँ जिस पवित्र वैष्णव ग्रन्थ में निहित हैं, वह श्रीमद्भागवत साक्षात् भगवान का स्वरूप है। इसी से वैष्णवजन, भागवतगण भगवद् भावना से श्रद्धापूर्वक इसकी पूजा-आराधना किया करते हैं। भगवान् श्रीकृष्ण की लीला-रस का मधुरतम प्रेम-रसका छलकता हुआ सागर है—श्रीमद्भागवत। इसीसे भावुक-भक्तगण सश्रद्ध सदैव इसमें अवगाहन करते हैं। श्रीकृष्ण की लीलाओं की प्रबन्ध-योजना एक कठिन कार्य था, किन्तु 'मधु' ने अपने सहज वैष्णव वातावरण से इस कार्य को करने की प्रेरणा प्राप्त की और अपने शोध कार्य में सफलता प्राप्त की। इस शोध के द्वारा श्रीकृष्ण-लीला का प्रकाश व्यक्त और अव्यक्त दोनों रूपमें प्रत्यक्ष हुआ है।

मुझे पूर्ण विश्वास है कि यह ग्रन्थ वैष्णवजनों की संस्तुति प्राप्त करेगा और इस क्षेत्र में महत्वपूर्ण योगदान सिद्ध होगा। श्रीमती मधु इस महान् कार्य के लिए बधाई की पात्र हैं।

अनेक शुभाशीर्वाद

डा० जयकिशन प्रसाद खण्डेलवाल

अध्यक्ष

संस्कृत विभाग

राजा बलवन्तसिंह कालेज, आगरा

फाल्गुन शुक्ल पक्ष

फुलेरा दूज सं० २०४५

श्री श्री १०८ श्रीत्रिदण्डिस्वामि श्रीभक्तिवेदान्त श्रीनारायण प्रभुपादजी को सश्रद्धा समर्पित

श्रीकृष्ण लीला कथने सुदक्षं, औदार्य माधुर्य गुणैश्च युक्तम् ।
वरं वरेण्यं पुरुषं महान्तं, नारायणं तं शिरसा नमामि ॥

व्रज के प्रसिद्ध गौड़ीय सन्त शिरोमणि
भागवत के मर्मज्ञ विद्वान
श्री श्री १०८ भक्ति वेदान्त नारायणजी महाराज द्वारा
दो-शब्द

श्रीमद्भागवत सम्पूर्ण संस्कृत वाङ्मयका सर्वोत्कृष्ट असमोर्द्ध ग्रन्थ रत्न है। यह स्वयं-भगवान् व्रजेन्द्रनन्दन श्रीकृष्ण-स्वरूप होने के कारण हेयांशवर्जित केवल अप्राकृत रस-स्वरूप है। प्राणिमात्र के कल्याणार्थ प्रोज्झितकैतब परम धर्म—परम सत्यको यथार्थ रूपमें प्रकाशित करने के लिये ही भूतल पर इनका आविर्भाव हुआ है।

श्रीमद्भागवत भगवान की भाँति नित्य सनातन है। नित्यसिद्ध पूर्ण-चिन्मय एवं स्वप्रकाश हैं। स्वेच्छा से जगद्वन्द्य श्रीब्रह्मा-नारद-वेदव्यास-शुक जैसे परम रसिक महाभागवतों के प्रेमाभक्ति द्वारा विशुद्ध हृदयोंमें क्रमशः स्वयं प्रादुर्भूत हुए हैं। इसीलिये इन्हें समाधि-ग्रन्थ भी कहते हैं।

इस ग्रन्थरत्न में प्राणिमात्रके सार्वकालिक, सार्वदेशिक सार्वत्रिक निखिल समस्याओंका अत्य विस्मयकारी अमोध समाधान निहित हैं। "मुह्यन्ति यत् सूरयः", "जानन्तु एव जानन्तु" आदि भागवतीय वाक्योंके अनुसार बड़े-बड़े मनीषियों, धुरन्धर कूट तार्किकोंकी तो बात ही क्या, त्रिकालज्ञ श्री ब्रह्मा-नारद जैसे मुक्त महापुरुषोंको भी इसके अन्तर्निहित परम गुह्यतम विषयोंमें मोह उपस्थित हो जाता है। ऐसे दुरूह, केवल विशुद्ध भक्तिमात्रैकवेद्य, अप्राकृत ग्रन्थ-प्रतिपादित स्वयं व्रजेन्द्रनन्दनकी अप्राकृत लीलाओंकी प्रबन्ध-योजनाके विषयमें लेखनी उठाना एक विषम दुःस्साहसका कार्य है। पूर्वकालमें श्रीधरस्वामी, श्रीलक्ष्मीधर, चित्सुखाचार्य, वोपदेव, श्रीवीरराघव, सुदर्शनसूरि वंशीधर, श्रीबल्लभाचार्य, श्रीसनातन गोस्वामी, श्री विश्वनाथ चक्रवर्ती प्रमुख परम भागवताचार्योंने अपनी भक्तिके तारतम्यसे अपनी-अपनी टीकाओंके माध्यमसे श्री मद्भागवतके से निगुढ़ लीला-रहस्योंके उद्घाटनका प्रयास किया है, परन्तु इन टीकाओंको समझना भी सरल नहीं, अपितु नितान्त दुरुह कार्य है इसीलिए अर्वाचीन गवेषक एवं अनुसन्धान कर्त्ताओंने श्रीमद्भागवतके लेखक, काल, उसमें वर्णित खगोल-भूगोलका वर्णन, उसकी शैली, प्रतिपाद्य विषय स्वकीया-

परकीया भावादि दुरतिगम्य सिद्धान्तोंके विषयमें नाना प्रकारके आक्षेप-विक्षेप, शंकायें प्रकट की हैं ।

आजसे लगभग ४५० (चार सौ पचास) वर्ष पूर्व विद्वद्वरेण्य, भागवतकूलभूषण, दार्शनिक शिरोमणि, अप्राकृत रसिकाचार्य श्रीजीव गोस्वामीने अपने सुप्रसिद्ध षट्सन्दर्भ ग्रन्थमें श्रीमद्भागवतके निगूढ़ लीला-रहस्योंका क्रमबद्ध रहस्योद्घाटन किया है तथा तत्कालीन अथवा भविष्यमें उसके सम्बन्धमें उठनेवाली विप्रत्तिपत्तियों, कुतर्कों तथा सब प्रकारकी शंकाओंका अकाट्य युक्तियों और प्रबल शास्त्रीय प्रमाणों द्वारा आश्चर्य रूपसे निराकरण किया है ।

किन्तु उपरोक्त सभी ग्रन्थ संस्कृतमें हैं । हिन्दी साहित्यमें ऐसे ग्रन्थका सर्वथा अभाव था । यद्यपि श्रीमद्भागवत पर बहुतसे शोध-प्रबन्ध लिखे गये हैं, परन्तु अधिकांश शोध-प्रबन्धों में श्रीमद्भागवतके किसी एक-देशीय पक्ष पर ही विचार सीमित है । उनमें सार्वदेशिक विचारोंका तथा विप्रत्तिपत्तियोके निराकरण का सर्वथा अभाव परिलक्षित होता है ।

परन्तु आज कल्यानीया बेटी श्रीमती मधुका "श्रीकृष्ण-लीलाकी प्रबन्ध योजना (एक अध्ययन)" – नामक शोध-प्रबन्धको देखकर हृदय उल्लसित हो उठा । इसमें भागवतीय लीला-रहस्योंके ऊपर क्रमबद्ध रूपमें प्रौढ़ एवं सुसिद्धांत पूर्ण विवृत्तियों को लक्ष्यकर पद-पद पर आश्चर्यचकित होना पड़ता है । ऐसा प्रतीत होता है, इस शोध प्रबंधमें शोधकर्तृने वेदव्यासके हृदगत निगूढ़ तात्पर्य-प्रतिपाद्य विषयका निरपेक्ष रूपमें निर्भीक होकर प्रतिपादन किया है । जो सर्वथा अभिनव एवं स्तुत्य है । श्रीमद्भागवतका महत्व परमभागवतोंकी अहैतुकी कृपासे ही यत्किंचित अनुभव किया जा सकता है । इस शोध को देखकर ऐसा प्रतीत होता है कि कल्यानीया बेटी मधुने निश्चय ही श्रीमद्भागवतके मर्मज्ञ तत्त्ववित, निष्किचन रसिक परमभागवतोंका कृपाशीर्वाद प्राप्त किया है । इस शोध प्रबंधमें श्रीमद्-भागवत सम्बंधीय कोई भी आवश्यक विषय अछूता नहीं रह गया है । जिसके लिए किसी प्रकारकी भूमिका अथवा प्राक्कथन आदि की आवश्कता हो । इसमें ऐसे निरपेक्ष परमोपयोगी तथ्य प्रस्तुत करने का प्रयास किया गया है कि निरपेक्ष विचारकों को अनुसंधानके लिए यथार्थरक नयी दिशा प्राप्त हो सके तथा अप्राकृत रस-पिपासु रागानुगीय भक्तिसाधकोंको भी कुछ प्राप्त हो सके । सहृदय पाठक पाठिका, अनुसन्धित्सुवर्ग इसका अध्ययन

कर स्वयं अनुभव कर सकेंगे कि यह शोध प्रबंध अपने उद्देश्य में कितना सफल हुआ है, कितना उपयोगी हुआ है ।

अंतमें सपरिकर करुणावरुणालय श्रीराधा:गोविन्दके श्रीचरणकमलोंमें ऐकान्तिक प्रार्थना है कि वे बेटी मधु पर अहैतुकी कृपा करे, जिससे यह अपने शोध प्रबंधमें वर्णित, सुसिद्धांतों, लीला रहस्यों तथा उसके प्रतिपाद्य व्रजप्रेम को विज्ञानके रूपमें अनुभव कर सके ।

आशा करता हूं कल्यानीय बेटी मधु भविष्यमें भी ऐसा ही जगत हितकर कार्यमें रत रहेगी ।

अलमतिविस्तरेण ।

दीनहीन अकिंचन
श्रीभागवत-भगवत-कृपालेश प्रार्थी
श्रीभक्तिवेदान्त नारायण

शुभ सम्मति

श्रीमद्भागवत पुराण भागवत धर्म का अक्षय स्तोत्र है। इस महा-पुराण में जगदात्मा योग योगेश्वर श्रीकृष्ण की दिव्य माधुर्ययुक्त लीलाओंका महामनोहारी वर्णन हुआ है। साधारणतः भगवान श्रीकृष्ण की लीलाएं समझना सरल कार्य नहीं है। अनादि योगेश्वर स्वरूप के सृष्टि, पालन, संहार शक्ति के साथ-साथ उसके निग्रह एवं अनुग्रह रूप को समझना साधारण बात नहीं हैं। सम्भवतः इसीलिए यह कथन प्रसिद्ध हो गया है--'विद्यावतां भागवते परीक्षा'।

मुझे हार्दिक प्रसन्नता है कि-विदुषी डा. मधु खण्डेलवाल ने भगवान श्रीकृष्ण की विविध लीलाओं का, धार्मिक भाव का परिपालन करते हुए इस ग्रन्थ में शोधपूर्ण अध्ययन प्रस्तुत कर सराहनीय कार्य किया है। मुझे आशा है--यह ग्रन्थ शोधकर्त्ताओं के लिए जहाँ उपयोगी सिद्ध होगा, वहीं भावुक वैष्णव भक्तगणों के लिए भी मधुर प्रेमयुक्त भक्ति-रस का पान करायेगा।

--साहित्याचार्य डा० त्रिलोकीनाथ व्रजबाल

आचार्य-किशोरी रमण शि. प्र. महाविद्यालय, मथुरा।

शुभ सम्मति

"पिबतभागवतं रसमालयम्"

भारतीय संस्कृति के निर्देशक पुराण साहित्य में श्रीमद्भागवत का अन्यतम स्थान है। पुराणकारों ने श्रीमद्भागवत को--

"साक्षातु श्री कृष्ण एवहि" कहा है वस्तुतः यह ग्रन्थरत्न भगवान नन्दनन्दन की रसमयी **ज्ञानमयी** सिद्धांतमयी लीलाओं से ओतःप्रोत है, भारतवर्ष के प्रमुख धर्माचार्यों एवं विशिष्ट विद्वानों की टीकायें इसकी मान्यता का निदर्शन है। फिर भी श्रीकृष्णलीला की प्रबन्ध सम्बद्धता, सूक्ष्मदृष्टा विद्वज्जनों के लिये ही ज्ञेय है इसी परिप्रेक्ष्य में श्रीमती डा. मधुगुप्ता साहित्याचार्या ने योग्यतम निर्देशक महोदय के निर्देशन में एवं श्रीमदभागवत के अनेक अधिकारी विशिष्ट विद्वानों के सत्परामर्श से इस शोध ग्रन्थ को पूर्ण किया है।

इस ग्रन्थ के प्रकाशन से भागवत प्रेमीजनों को अवश्य ही प्रसन्नता होगी। श्रीद्वारकाधीशप्रभु से प्रार्थना है कि इसी प्रकार के साहित्य सृजन में अभिरुचि एवं सफलता प्रदान करते रहें।

आचार्य श्यामसुन्दर चतुर्वेदी

व्याकरण, साहित्य, पुराण, दर्शन, वेदान्ताचार्य

पूर्व प्राचार्य—श्री द्वारकेश संस्कृत महाविद्यालय, मथुरा

प्राक्कथन

मैंने अपने बाल्यकाल में ही एक विद्वान के मुख से एक पद्यांश श्रवण किया था 'विद्यावतां भागवते परीक्षा' अर्थात् विद्वानों की परीक्षा भागवत में होती है, यद्यपि पूर्ण श्लोक तो बहुत बाद में सुनने को मिला, किंतु इस अंश से ही प्रभावित तो हो गया था। मेरा विचार था नव्य-व्याकरण सबसे कठिन है, लेकिन मैंने नव्य-व्याकरणाचार्य परीक्षा प्रथम श्रेणी में उत्तीर्ण कर ली, परन्तु भागवत की गहनता समझ में नहीं आई थी। जबसे कुछ सुनने की शक्ति मिली पूज्य पितृचरण स्व. पं. श्रीवरजी शास्त्रीजी महाराज के मुखारविन्द से भागवत कथा ही सुनी, बिना पढ़े-पढ़ाये चूर्णिका टीका हाथ में रख दी गई तथा नित्य-प्रतिदिन भागवत कथा वाचने का अवसर मिल गया और ख्याति मिल गई, धनोपार्जन होने लगा तो भागवत में भी कुछ कठिनता है, पता ही नहीं लगा। कथा में कथा-मात्र की अधिकता रहती, स्तुति-पक्ष नाम मात्र।

भारतवर्ष के प्रौढ़ विद्वान श्री देवनायकाचार्यजी ने भागवत सुनने के लिए मेरे पिताजी को ही पकड़ा था, वे मथुरा रहकर गूढांशों का विचार-पूर्वक अध्ययन करते थे।

वाराणसी में काशी विद्वत्परिषद के सभा संचालक मूर्धन्य विद्वान शास्त्रार्थ महारथी श्रीराजनारायण शुक्ल ने मेरे पिताजी का अभिनंदन किया था, काशी में पश्चिमोत्तर प्रदेश के किसी विद्वान का यह प्रथम सम्मान था, तब विद्वानों के आग्रह पर 'ब्रह्मेति परमात्मेति भगवानिति शब्द्यते इस भागवत के श्लोक का कई घण्टे तक प्रवचन मेरे पिताश्री द्वारा हुआ और फिर शास्त्रार्थ तथा आचार्यजी द्वारा संपुष्टि और अभिनंदन। विद्वान् जब प्रायः पधार गये तो दोनों महारथी परस्पर में एक-दूसरे की प्रशंसा कर रहे थे और आचार्यजी ने कहा कि "१२ वर्ष की मीमांसा पढ़ने के बाद अब हमसे भागवत लगने लगा है" पूज्य पिताजी ने कहा कि मैंने न्याय का अध्यापन किया और अब मुझसे भी भागवत का अर्थ खुलने लगा है, तब तो समझते थे हम सब जानते हैं पर आनंद तो अब आया जब २५ वर्ष भागवत पढ़ाया।

मैंने समझ लिया कि भागवत क्या है, अब कभी नहीं कहूँगा कि भागवत का मैं भी एक ज्ञाता हूं, मैंने बाल्यावस्था की वह सूक्ति अब समझी क्यों भागवत विद्वानों की कसौटी है। वयोवृद्ध इन विद्वानों की परस्पर मित्रता की चर्चा ने आँख खोल दीं।

एम. ए. के पश्चात् शोध में यही विषय लिया तब और भी गहनता से अध्ययन का अवसर मिला। कई बार पूज्य ब्रह्मलीन १०८ श्रीकरपात्री जी महाराज ने अस्पष्ट न्यास-प्रकरण के उत्तर के लिये भागवत टीका वासुदेव-कृता देखकर बतलाने को कहा था। अस्तु, ऐसे महनीय ग्रन्थ पर कार्य करना बड़ा ही कठिन है। भागवत के टीकाकार, वंशीधरी टीका, आदि अनेक विध शोध हुए हैं इनमें भागवत पर ही ५ कार्य मेरे और शिष्यों के हैं।

गौड़ीय वैष्णवाचार्यों ने श्रीमद्‌भागवत के विविध अंशों एवं अंगों को लेकर जो साहित्य-रचना की वह अनुपम एवं मननीय है, आचार्य वल्लभ एवं उनके अनुयायी आचार्य एवं शिष्यों ने श्रीमद्‌भागवत का गूढ़ार्थ विवेचन किया है, वह अद्वितीय है, लीला पर लिखने के लिये इन दोनों के साहित्य का अध्ययन नितान्त अपेक्षित है और यह लिखते हुए परम हर्ष का अनुभव हो रहा है कि श्रीमती मधु खण्डेलवाल ने 'प्रबंध योजना' पर जो महनीय कार्य प्रस्तुत किया है वह भागवत जिज्ञासुओं को नितान्त उपादेय है। विकीर्ण सामग्री को एकत्र व्यवस्थित ढंग से प्रस्तुतीकरण का अपना एक अनोखा ही आस्वाद होता है और वह आस्वाद इस कृति में पाठकों को सुलभ करा दिया है।

विद्वज्जनों की रुचि ऊहापोह, नवीन तथ्य एवं गवेषणा की ओर अधिक रहती है और सामान्य जन उससे दूर रहना चाहते हैं क्योंकि वह खण्डन-मण्डन या सिद्धांत-स्थापन सबके वश का भी नहीं, वे सर्वसाधारण के लाभ की दृष्टि अपनाते हैं और उससे एक बड़ा पाठकवर्ग प्रभावित हो जाता है। शोधार्थिनी ने शास्त्रीय प्रमाणों की कहीं अवहेलना नहीं की तथा व्यर्थ के शुष्क-कर्कश-विचार-सराण के प्रति एकमात्र उद्देश्य नहीं बनाया, सरस शैली में लीलाओं का रसास्वादन इस कृति से होगा साथ ही अनेक गूढ़ रहस्यों का उद्‌घाटन स्वतः हो जायेगा जैसे पंचम-स्कंध की खगोल-भूगोल लीला कहाँ और क्यों है, सृष्टि भी लीला है तथा वंशावली भी–प्रलय भी लीला है, ये सहज ही सबकी बुद्धि में समाविष्ट कैसे हो।

इसका पूरा ध्यान उन्होंने रखा है और प्रामाणिक ग्रन्थों के उद्धरण प्रस्तुत कर अपना श्रम विद्वज्जनों के समक्ष प्रस्तुत किया है।

मैं तो भागवत नाममात्र से प्रभावित हो जाता हूं उसमें भी ऐसा महनीय कार्य जो बड़े श्रमपूर्वक प्रस्तुत किया गया है देखकर अत्यन्त प्रसन्नतापूर्वक पाठकों को इसे पढ़ने के लिए आह्वान करता हूं तथा श्रीमती मधु खण्डेलवाल को मथुरा में जन्म ग्रहण कर मथुरानाथ की लीलाओं का निरूपण करने के लिए शुभाशीष प्रदान करता हूं और प्रभु से प्रार्थना करता हूँ कि वे इस ओर अपना चिन्तन बनाये रखें और प्रभु की अक्षरमयी सेवा में संलग्न रहे अधिक क्या लिखें—विद्वानेव जानाति विद्वज्जन परिश्रमम्' उक्ति के आधार पर आप ही इसके निर्णायक सिद्ध होंगे—

पिवत भागवतं रसभालयं ।
मुहुरहो रसिका भुविभावुकाः ॥

डा० वासुदेव कृष्ण चतुर्वेदी 'सप्ताचार्य'
एम० ए०, पी० एच० डी०, डी-लिट्
प्रवाचक-अध्यक्ष : प्राच्य दर्शन महाविद्यालय
वृन्दावन

आत्मिकी

★

वन्दनीय श्री गणपति की कृपा, आशुतोष नटराज भगवान शिवकी अनुकम्पा प्रस्तुत शोध के रूप में फलीभूत हुई है। जगदीश्वर श्री कृष्ण की लीलाएँ इतनी मधुर और चित्ताकर्षक हैं कि महर्षि वेद व्यास से लेकर अब तक न जाने कितने विद्वज्जन की लेखनी और वाणी कृतार्थ हो गयी। शिशुवस्था में मुझे श्री मद्भागवत श्रवण का सौभाग्य मिला, उसी का प्रतिफल है कि मेरे मन में श्रीमद्भागवत एवं भगवान् श्री कृष्ण की लीलाओं का चिन्तन और मन्थन करने का बीजारोपण हुआ। माँ सरस्वती की कृपा, गुरुजनों के शुभाषीष से वह अंकुरित बीज आज प्रस्तुत शोध-वृक्ष के रूप में साकार हो उठा।

स्तुत्य डा० श्री विद्या निवास मिश्र द्वारा विषय निर्धारित हुआ। यह निर्धारण स्वयं में आशीर्वादात्मक था क्योंकि जिस अप्रतिहत गति से शोध कार्य पूर्ण हुआ है, वह अतुलनीय है। भागवत की पृष्ठ भूमि पर चिन्तन के प्रदत्त अनुसन्धात्मक आयाम इस प्रबन्ध सूत्र के विविध प्रसून ही तो हैं। कोटिशः प्रणाम। परम विद्वत्वर संस्कृत निष्ठ श्री लक्ष्मनदत्त शास्त्री ऋषि की सानिधि में मैंने मूल भागवत का स्वाध्याय किया। शोध के टंकण के समय यह दिव्य ज्योति पंचभूतों में विलीन हो गई। आपके श्री चरणों में मेरा शाश्वत प्रणाम है।

प्रातः स्मरणीय, देवीय गुण सम्पन्न परम आत्मन भक्ति वेदान्त श्री श्रीनारायण प्रभुपाद जी महाराज मेरी भागवतीय विवृत्ति की मूल प्रेरणा हैं। उनका मेरे प्रति जो सहज वात्सल्य है उस वात्सल्य प्रेम से मेरा जीवन धन्य हो गया। शोध कार्य में आपने भागवत में निहित भक्ति

और रस विषयक अनेक निगूढ़ रहस्यों को प्रकट किया, लीलाओं की ग्रन्थियों को सुलझाया। आपके गाम्भीर्य पाण्डित्य की प्रशंसा अकथनीय है। आपकी मेरे प्रति जो प्रीति है। उसकी ऋणी रहकर ही सन्तुष्ट हूं।

जगद्गुरु अनन्त श्री अखण्डानंदजी सरस्वती महाराज ने भागवत की दार्शनिक पद्धति और वेदार्थ कला का परिचय देकर कितनी ही बार अनुग्रहीत किया। उन अन्तर्लीन परम विभूति का जो मुझे स्नेह प्राप्त हुआ, उसे पुनः पुनः स्मरण कर उन्हें भावभीनी प्रणति अंजलि निवेदित करती हूं। भागवत जगत के जाजवल्य मान नक्षत्र दिवंगत रास बिहारी गोस्वामी ने स्वकीया रस का निरास करके परकीया रस का निरूपण किया। कितने शोधपूर्ण विचार थे। जिज्ञासा रूप में मुझे भावपूर्ण विचार मिले उन्हें स्मरण कर मैं गद्गद् होकर नत मस्तक हूँ। डा० गोवर्धन नाथ शुक्ल का मंगल स्मरण करती हूँ जिन्होंने मुझे शोध सम्बन्धित पुस्तकों का दिग्दर्शन किया। आपकी वात्सल्य प्रीति से उऋण नहीं हो सकती।

सुप्रसिद्ध कृष्णनिष्ठ कृष्ण प्रिय महात्मा श्री सुदर्शन सिंह चक्र ने इस शोध के स्थलों को स्वयं दिग्दर्शित किया है। प्रस्तुतीकरण की त्रुटियों से भी अवगत कराते रहे। आपके अतुलनीय सहयोग के प्रति मैं कृतज्ञ हूं। महान सन्त श्री रामचन्द्रजी डोंगरे महाराज ने मुझे भागवत का रहस्य श्री कृष्ण भक्ति ही बतलाया और प्रस्तुत शोध को इसी पृष्ठ भूमि पर प्रस्तुत करने का परामर्श दिया। जो आशीर्वादात्मक था। परम विद्ववर आचार्य श्री श्याम सुन्दर जी चतुर्वेदी का मैं श्रद्धा से मंगल स्मरण करती हूँ जिन्होंने शोध काल में मेरा मार्गदर्शन किया तथा अप्रतिम सुझाव दिया।

श्रील शुभानन्द ब्रह्मचारी (भावगत भूषण) का सहृदय श्रद्धा से गद्गद् होकर कृतज्ञता प्रकट करती हूं जो इस कार्य में हृदय से सहायक हुए। भागवत रस अवगहित गोस्वामी श्री अतुल कृष्ण जी ने भागवत में अभिव्यक्त श्री कृष्ण के अनेकों रूपों पर प्रकाश डाला उन्हें मैं श्रद्धा सुमन अर्पित करती हूं। डा० नरेशचन्द्र बन्सल की भागवतीय विचार संयोजना से मैं बहुत प्रभावित हूं। मेरी उनके प्रति अपार श्रद्धा है। परम वैष्णव श्रद्धेश्वर डा० रमनदास जी पंड्या का मंगल स्मरण करती हूं, उनके भागवत विषयक बिचारों के प्रति।

अपने शोध निदेशक महा विद् डा० श्री जयकिशन प्रसाद खण्डेलवाल के प्रति मैं कृतज्ञता कैसे ज्ञापित करूँ। समय-समय पर उत्साहवर्द्धन

सत्परामर्श, शोध निर्देश, प्रस्तुतीकरण शैली को सुचारू रूप से अन्वितीकरण कराना आप जैसे सारगर्भित विद्वान और वत्सल शिक्षक का ही कार्य है। उनकी उदार-शमता-अनाविल प्रीति वर्षा से मेरा मस्तक सदैव नमन रहेगा।

विद्ववर सांस्कृतिक मंच 'रस भारती' द्वारा मेरे शोध पर चर्चा करने हेतु सम्मान आमंत्रित किया जिससे मेरा उत्साहवर्धन हुआ इसके लिए मैं श्री राधेश्याम जी अग्रवाल को धन्यवाद देती हूं।

अपने दादाजी श्रद्धास्पद स्व० डा० मोतीलाल गुप्त की समुत्साहित प्रेरणा; श्रीमदनमोहन मन्दिर के गुसाईं श्री माधवराय जी के प्रेरणादायक वचन श्री द्वारकाधीश मन्दिर के गुसाईं श्री ब्रजेश गोस्वामी कांकरौली वालों के शुभाषीष स्व० डा० चन्द्रभानजी गुप्ता का चिरस्मरणीय अपनत्व सहाध्यायी साहित्याचार्य डा० केशवाचार्य जी का मैत्रीपूर्ण सहयोग पितृभगिनी श्रीमती पुष्पलता, एम० ए० (संस्कृत) के सन्निर्देश, प्रसिद्ध व्यवसायी ज्येष्ठद्वय श्री रमेश वी० खण्डेलवाल एव श्री भानु वी० खण्डेलवाल का सान्द्र स्नेह व शोध-काल में उत्साहवर्धन मेरी नन्हीं बेटी चि० चारु की मधुर स्मित एवं प्रश्नात्मक कटाक्ष को कैसे विस्मृत किया जा सकता है। मेरे भातृद्वय अजय एवं संजय पीतलिया अथच मेरी प्रिय अनुजा नीता के महत्वपूर्ण सहयोग के लिये हृदय से आभारी हूं।

मेरे श्वसुर सुविख्यात, समाजसेवी श्री बद्रीप्रसाद खण्डेलवाल एवं श्रीमती शान्ती देवी के गौरवपूर्ण वात्सल्य के प्रति आभार भाव से श्री चरणों में सादर सुमन समर्पित करती हूं। आर्यपुत्र श्री राजेन्द्र खण्डेलवाल का प्रदत्त निस्तर सहाय्य इस शोध की सफलता की मंजूषा है।

ममतामयी मेरी माँ सुश्री सुशीला देवी एवं पिता सुप्रसिद्ध समाज मैत्री, विद्वत् प्रेमी श्री पुरुषोत्तम दास पीतलिया के वात्साल्यातिवात्सल्य की कैसे अभिव्यंजना करूँ आपके अपरिमित अगाध वात्सल्य से ही यह शोध प्रस्तुत की जा सकी है।

मैं अपने शोध परीक्षक डा० प्रभाकर शास्त्री जयपुर एवं प्रो० डा० एस० पी० सिंह अलीगढ़ के महत्वपूर्ण जांच निरीक्षण के लिए आभारी हूं। आपके महत्वपूर्ण सुझाव प्रकाशन की सफलता के लिए अनिवार्य हैं। मौखिक परीक्षा के समय डा० एस० पी० सिंह का भागवत के प्रति दिव्य एवं अगाध प्रेम अविस्मरणीय है।

शोध सामग्री के लिए जिन पुस्तकालयों का सदुपयोग किया उनमें श्री कृष्ण शोध-पीठ श्री कृष्ण जन्म स्थान मथुरा के लिए पूज्य चाचाजी पितृतुल्य श्री वासुदेव चतुर्वेदी एवं श्री लवानिया, भारतीय अनुसंधान भवन के लिए पूज्य श्री राधेश्याम ज्योतिषी, श्री द्वारकेश संस्कृत पुस्तकालय के लिए श्री दाऊ कृष्ण चतुर्वेदी एवं श्री रमेश चन्द्र शर्मा, श्री बजरंग पुस्तकालय के लिए श्री निरंजन देव शर्मा, फर्म मै० मुरारीलाल बुकसेलर्स, श्री केशव गौड़ीय मठ पुस्तकालय, गीता-प्रेस गोरखपुर के लिए भू० पू० व्यवस्थापक स्व श्री दुर्गा प्रसाद गुप्त, सोमानी पुस्तकालय, बम्बई के लिए डा० के० के० वेंकटाचारी, भारतीय विद्या भवन, माधव पुस्तकालय, बम्बई के प्रति अत्यन्त कृतज्ञ हूं।

अन्तत: ग्रन्थकार श्री व्यास मुनि को मैं पुन: पुन: प्रणाम करती हूं। सर्वोपरि श्री युगल माधुरी को मेरा सर्वस्व न्यौछावर है जिसने मुझे अपना कृपा कटाक्ष भाजन बनाया।

प्रस्तावना

श्रीमद्भागवत धार्मिक आध्यात्मिक वाङ्मयका सर्वश्रेष्ठ, सर्वशिरोमणि, समुज्ज्वल ग्रन्थ-रत्न है। इसे भक्ति-ज्ञान, वैराग्यकी आनन्ददायिनी, पवित्रतमा त्रिबेणी कहा जाता है :—

ज्ञानं यदा प्रतिनिवृत्तगुणोर्मिचक्रमात्मप्रसाद उत यत्र गुणेष्वसंगः।
कैवल्यसम्मतपथस्त्वथ भक्तियोगः को निर्वृतो हरिकथासु रतिं न कुर्यात् ॥[1]

आस्तिकजनोंके हृदयोंमें न केवल सर्वश्रेष्ठ पुराणके रूपमें प्रत्युत श्रीभगवद्विग्रहके रूपमें इसकी आस्था विद्यमान है। सभी वैष्णवाचार्योंने इसमें अपने-अपने मतकी पुष्टिके लिए सारगर्भित और वैदुष्यपूर्ण व्याख्या की है। वामदेव प्रभृति मनीषियोंने इसके रसास्वादनके लिए रसिकोंके हृदयोंको आप्लावयित करने के लिए अनेकों सरस कृत्य किये हैं।

वेदरूप कल्पवृक्षका परमानन्दप्रद रसमय मधुरफल यह श्रीमद्भागवत जीवोंके कल्याणके लिए, अमलात्मना तत्व ज्ञानियोंके लिए परम

---

१. भागवत २।३।१२

परमहंस श्रीमतः श्रीशुकमुनिके मुखाम्भोजसे निकलकर पृथ्वी पर आया। भक्तिप्रकर्णोत्पादक श्रीमद्भागवत भगवान की मधुरमयी लीलाओंसे रुचिर चरित्रोंसे ओत-प्रोत महापुराण है। सरस भगवद्-भक्ति रसाप्लुत होनेसे इसकी उपादेयता सर्वप्रसिद्ध ही है। ज्ञानियों, कर्मियों, मुमुक्षुषां विषयी और भक्तोंने परमप्रिय इस पुराणके पारायणकी परम्परा त्रिविध तापपाप-दुःखदारिद्रय आदिकी निवृत्तिके लिए, सर्वाभीष्ट प्राप्ति इत्यादिके लिए चिरकालसे समस्त भारत में प्रचलित दिखायी देती है।

श्रीमद्भागवतमें उपक्रमसे उपसंहार तक निर्णय पर लेने पर ज्ञात होता है कि परम सत्य भगवत्-तत्वके प्रकाशनके लिए ही श्रीमद्भागवतका आविर्भाव हुआ है। ज्ञातव्य है कि ब्रह्मादि-देवताओंसे अभ्यर्थित भगवान् नारायणने द्वापरमें पराशरसे सत्यवतीमें अवतीर्ण होकर वेदको चार भागोमें विभाजित करके, कलियुगमें ज्ञानशक्ति विहीन मन्दमति अल्पायु मनुष्योंके ज्ञादवर्त्मप्रदर्शन द्वारा भगवतत्वानुसन्धानपूर्वक ब्रह्मसूत्र, योगसूत्रभाष्य, महाभारत सत्रह पुराणादि विरचित करने पर भी शान्ति अलमभान होकर देवर्षि नारदके उपदेशसे श्रीकृष्ण-भक्ति-रस प्रधान वेदान्तसूत्र व्याख्या रूप असलात्मा मुनियोंको भी मनोमुग्धकारी श्रीमद्भागवतकी रचना थी। श्रीमदभागवतका साहित्यिक-अवतार श्रीमदभागवत, वेद-पुराण-धर्मशास्त्र, काव्यात्मक रूपमें भी प्रभु, मित्र, प्रियवर्गानुसार सर्व साधती है।

बस्तुतः सिंहावलोकनात्मक ग्रन्थ भागवत् की समग्र कृति का केन्द्रीय दृष्टिकोण विचार करने पर कहा जा सकता है कि भागवत की प्रबन्ध योजना एक ऐसी नायिका है जो अन्तर्तभ रूप से श्री कृष्णगामी होती हुई भी अनेक अवसरों पर विविध रंग-रूप-भाव प्रदर्शन करती है, कभी विषय को और मनोरम बनाने के लिए अपने को परिवर्तित कर लेती है और सभी पदार्थ-तत्व-वस्तु स्थावर-जंगम को आकर्षित करती हुई, अनुगामित होती हुई, झूम-झूम कर अपने नुपूरों की आवाज से 'कृष्ण' 'कृष्ण' गाती हुई, आराधित होती हुई, आराधना करती हुई अपने नायक के समीप पहुंच जाती है और उन्हें आलाङ्गित सी करती हुई उन्हीं में समा जाती है।

श्रीमद्भागवतमें अद्यतन हुए शोध-प्रबन्धोंका समीक्षात्मक परिचय

अनुसन्धानकर्ताओं द्वारा श्रीमद्भागवतमें पहले भी बहुत कार्य हो चुका है परन्तु कोई भी शोध-प्रबन्धकी सुगठित व्याख्या और श्रीकृष्ण-

लीलाके सुचारू संगठनको प्रस्तुत नहीं कर सका फिर इस सम्बन्धमें विप्रतिपत्तियोंका निराकरण करनेका तो प्रश्न ही नहीं उठता। अधिकांश शोध-प्रबन्धोंमें भागवतके एक पक्ष पर ही विचार होता रहा। प्रधान तत्व 'संगठना' पर तो किसीका ध्यान ही नहीं गया किसी शोध-प्रबन्धमें भागवतका केवल सांस्कृतिक अध्ययन, तो किसीमें काव्य शास्त्रीय अध्ययन किया गया, किसीमें दार्शनिक पक्षमें अध्ययन किया गया और किसीमें धर्म शास्त्रीय। भागवतके टीकाकारों और टीकाओंके विचारके साथ-साथ भागवतके परवर्ती प्रभाव पर भी प्रकाश डाला गया। परन्तु भागवतको सुगठित स्वरूपमें प्रस्तुत न कर सकनेसे सभी शोध-प्रबन्ध अपूर्ण ही रहे। भागवतके लीलाप्रबन्धपर प्रौढ़ एवं सुसिद्धान्तपूर्ण विवृत्तिका होना नितान्त आवश्यक था जिसमें केवल मात्र अनुस्वार, विसर्ग, अध्याय, श्लोकोंको गिनतीके पाण्डित्यकी प्रदर्शनी या प्राकृत सहजिया लोगोंकी प्रावृत उच्छृंखल भावनाओं की नुमाइश मात्र न हो। प्रस्तुत शोध-प्रबन्धमें ऐसी सामग्री प्रस्तुत करनेका प्रयास किया गया है जिससे अप्राकृत रसलिपासुओं एवं रागानुगीय साधक भक्तोंको कुछ लाभ मिल सके और निरपेक्ष विचारकोंको अनुसंधानके नये आयाम मिल सकें।

प्रस्तुत शोधकी सीमा

यह निश्चित है कि एक भावुक भक्त ही भागवतके रहस्यपूर्ण भीतरी स्तरोंमें प्रवेश कर सकता है। प्रस्तुत शोधके कार्यकालमें भाव और ऊहापोह हृत्में उत्थित होते थे परन्तु वे सब इस शोधसे हटकर ही प्रतीत किये गये, अतः प्रस्तुत नहीं किये जा सके। आचार्य वंशीधर तो मंगलाचरण श्लोकके ही १०८ अर्थ करते हैं, इस प्रकार भागवतमें कितने भाव निहित हैं, शोध दृष्टि से तो वे भाव और उजागर होते हैं परन्तु शोधकी सीमायें होती हैं भ्रमरगीत प्रसंगके उपालम्भ, 'राधा' विषयक चर्चा दशम स्कन्धीय, लीलाओंके अनेकों प्रतीकार्थ, खगोल-भूगोलका वर्णन, क्रिया योग, सांख्ययोग आदिका वर्णन, सप्रसंग आये राजा बलि, ध्रुव आदिकी कथा, श्रीराम आदि अनेकों अवतारोंकी चरित्र कथायें इत्यादि अति सूत्र रूपमें प्रस्तुत की जा सकीं। श्रीकृष्ण-चरित्र लीलाओंके वर्णनमें अति कार्पण्य व्यवहृत हुआ। विषय-विस्तारके भयसे शोधपरक चिन्तनों, प्रमाणों और भावोंको सीमित ही रखा गया। भक्तोंका वर्णन भी अति मर्यादित रूपसे प्रस्तुत किया गया। प्रस्तुतीकरणमें तालिकाओं का प्रयोग किया गया

जिससे सन्दर्भ जहाँ सूत्र रूपमें प्रस्तुत किये जा सकें वहाँ वे अधिक स्पष्ट भी हो सकेंगे ।

प्रस्तुत शोधका वैशिष्ट्य :

भागवतमें वर्णित मूलतत्व श्रीकृष्णकी लीलाओंके प्रबन्धकी योजनाबद्ध सुस्पष्ट व्याख्या प्रस्तुत शोध-प्रबन्धका वैशिष्ट्य है। इस वैशिष्ट्यके प्रतिपादनके लिये इस शोध-प्रबन्धको सात स्तवकोंमें विभाजित किया गया है—

प्रथम स्तवक 'विषय प्रवेश' के वैशिष्ट्य हैं भागवतका परिचय भागवत और श्रीकृष्णकी एकरूपता, भागवतका स्रोत, आविर्भाव, प्राकट्य और पारम्पर्य, प्रमुख वक्ता श्रीशुकजीका भागवत अध्ययन और प्रमुख श्रोता, परीक्षितकी सभामें भागवतका कीर्तन। इसके पश्चात् भागवतके प्रमुख प्रतिपाद्योंका अनुसन्धान हुआ है, इस आधार पर भागवतीय लीलाओंके श्रवण से परमानन्दकी प्राप्ति होती है तथा कलियुगमें स्वयं भगवान श्रीकृष्ण ही भजनीय एवं सेवनीय हैं ।

द्वितीय स्तवक 'लीलादर्शन' में 'लीला' तत्व पर विभिन्न दृष्टियोंसे निखिल चिन्तनपरक विचार प्ररतुत किये गये हैं। प्रमुख हैं – काव्य शास्त्रीय दृष्टि, दार्शनिक और स्वयं भागवतकी लीला-सम्बन्धिनी दृष्टि। लीलाके व्युत्पतिपरक अर्थभी प्रस्तुत किये गये हैं। अथ लीला और श्रीकृष्ण-लीलामें अनुसन्धानपरक सूक्ष्म पार्थक्य किया गया है। भागवतमें वर्णित दशों लीलाओंमें प्रतिपाद्य वर्ण्य-बिन्दुओं पर प्रकाश डालनेके बाद निश्चय पूर्वक निर्देशित किया है कि श्रीकृष्ण ही सकल लीलाओंके सर्वाधार और सर्व-कारण हैं। इसके पश्चात् श्रीकृष्णकी अवतार लीलाओं पर विहंगम दृष्टि डालते हुए उन-उन लीलाओंके रहस्य और वैशिष्ट्य भी प्रकाशित किये गये हैं। प्रकट और अप्रकट लीलाके क्रममें लीलाओंके काल-क्रमकी सुस्थापना भी इस स्तबकका वैशिष्ट्य है ।

तृतीय स्तवक 'कथा न्यास' में भागवतकी कथाका सुप्रबन्धात्मक स्वरूप प्रस्तुत किया गया है। भागवत ग्रन्थका तात्पर्य निर्णय विवेचित हुआ है। कथाका प्रवाह काव्यकी विधाओंके आधार पर प्रवाहित किया है। भागवतके बारहों स्कन्धोंकी आवश्यक अनुसन्धेय दृष्टियोंसे लीला-परक विनियोगकी सुव्यवस्था की गयी है, महापुराणीय लक्षणोंके आधार

पर भागवतकी कथाका संगठन किया गया है। भागवतमें प्रश्न-उत्तरोंके क्रममें भागवतकारका प्रयोजन है श्रीकृष्ण-लीला-विषयक-चर्चा, इस वैशिष्ट्यका भी संकेत किया गया है।

चतुर्थ स्तवकके वैशिष्ट्य है 'लीलानायक श्रीकृष्ण' का अद्वय-ज्ञान परतत्वत्व, परब्रह्मत्व और कृष्णस्तु भगवान् स्वयं। परब्रह्म नराकृति रूपमें भगवान् श्रीकृष्ण हैं, ये श्रीकृष्ण ब्रह्मके सम्यक् और समन्वयात्मक रूप है। श्रीकृष्णके नाना अवतारोंको अवतरित करनेके बाद निर्णय किया गया है कि श्रीकृष्ण सर्वावतारोंके मूल हैं। श्रीकृष्णकी विभूति और वैभव विलासको विलासित किया गया है। इन निरूपणोंके पश्चात् श्रीकृष्णके आध्यात्मिक, आधिदैविक एवं आधिभौतिक स्वरूपोंका दिग्दर्शन हुआ है जिसमें उनके चरित्र, रूप, गुण, धाम, परिकर आदि आ जाते हैं।

पंचम स्तवक 'प्रबन्ध-योजना स्वरूप' में भागवतके संवादात्मक शिल्प-विधान, अधिवेशन और भागवत सभायें, भावपरक गान, वेणु गीत आदि भावगीतियाँ एवं प्रणय-प्रसंगोके मूलमंत्र 'क्लीं' पर अनुसन्धानपूर्वक चिन्तना हुई है। बारहों स्कन्धोंमें जितने भी श्रीकृष्णके लीला-स्थल हैं और श्रीकृष्णके अंशरूपमें जो भी लीलायें हैं उनका एकीकरण किया है। इतिहासके आधार पर श्रीकृष्णका क्रमिक विकास प्रस्तुत किया गया है। दशम स्कन्ध पर विशेष गवेषणात्मक चिन्तनके साथ ही असंगत प्रतीत होने वाले श्लोकांशोंकी शोधपरक संगति भी इस स्तवकका वैशिष्ट्य है।

षष्ठ स्तवक 'भक्ति-प्रीति-आसक्ति' में अभिव्यंजित किया गया है कि भागवतमें सभी लीलाओंका वर्णन भक्तिकी पीठिका पर स्थापित है। भक्तिके स्वरूप और भेदों पर प्रकाश डाला गया है। निर्णय हुआ है 'भक्त्या तुष्यति माधव।' 'प्रीति' के स्वरूप लक्षण और तटस्थ लक्षणोंको प्रकट करनेके पश्चात् प्रीतिका आविर्भाव आविर्भावित करनेके बाद परमतम पुरुषार्थ-'व्रजका कान्ता प्रेम' का विवेचन हुआ है। 'प्रेम' तत्व एवं 'प्रेमी' तत्वपर प्रकाश डालनेके उपरान्त आसक्तिके प्रकारोंका निदर्शन इस स्तवकका वैशिष्ट्य है।

सप्तम स्तवक 'लीला रस और आनन्द' में प्रायोपवेशी परीक्षितको सप्ताहमें जो आनन्द प्राप्ति हुई उसके विचारके साथ-साथ नायक श्रीकृष्णकी सर्वाधारा गोपियोंके 'भाव' की शोधपूर्ण व्याख्या हुई है। 'रस' पर विरचा

किया है। रसका स्वरूप और सामग्री एवं रसकी प्रकाश लीला प्रकाशित हुई है। तथ्य है रसाब्धि श्रीकृष्ण सम्पूर्णरसोंके आलम्बन है। श्रीकृष्ण सम्बन्धित रस मधुर हैं और सामान्य रसोंसे परे हैं। इस रसको परकीया रस भी कहा जाता है। श्रीकृष्ण विग्रह-स्वरूप भागवतसे जिस रस और आनन्दकी उपलब्धि होती है, उस वैशिष्ट्यको भी इंगित किया गया है।

प्रस्तुत शोधका उपसंहार एवं निष्कर्ष प्रस्तुत करनेके उपरान्त लीला सर्वोपरि 'चीरहरण' एवं लीला मुकुटमणि श्रीकृष्ण मनोमुग्धकारी 'महारास' को सम्पूर्ण रूपसे आलोकित करने के पश्चात् वर्तमान सन्दर्भमें श्रीकृष्णकी आह्लान-विषयक चर्चा प्रस्तुत शोधको अखिल पूर्णता प्रदान करती है। अन्तमें सहायक ग्रन्थ तालिकाके साथ प्रस्तुत शोध-ग्रन्थ पूर्ण हुआ है।

वस्तुतः प्रस्तुत अनुसन्धान द्वारा श्रीमद्भागवतकी लीलाओंके सुनियोजित सुप्रबन्धका उचित मूल्यांकन हो सकेगा। भागवतके विशिष्ट लीलापूर्ण रहस्य प्रकाशमें आ सकेंगे और उसकी जो स्वयंकी अद्भुत शैलीमें हृदयहारी रससिक्त-प्रबन्ध-योजना है, उसकी गरिमाका भी आभास हो सकेगा। भागवत और श्रीकृष्णकी एकरूपता, दोनोंकी आराधनाका समकक्ष महत्व और फल, श्रीकृष्णके सम्बन्धमें भागवतकी दार्शनिक-चिन्तन-पद्धति, उनकी लीलाओंकी चारु भावभिव्यक्ति, रससिक्त वाणी और भक्तिके परम प्रभावका दिग्दर्शन किया जा सकेगा और अन्य पुराणोंकी तुलनामें भागवतमें श्रीवेदव्यास के सुगठित-सुव्यवस्थित-सुनियोजित-सुप्रबन्धात्मक योगदानकी सम्यक् प्रतीति हो सकेगी। इस शोध-प्रबन्धमें भागवतका एक व्यवस्थित, सारगर्भित एवं सर्वांगीण स्वरूप प्रस्तुत करनेकी चेष्टा की गयी है जिससे कि विद्वतवर्ग और अनुसन्धाता चिन्तनके नये आयामोंमें प्रविष्ट हो सकेंगे।

अन्तमें, सभी सदाशायी महानुभावोंकी लेखिका ऋणी हैं, जिन्होंने लेखन तथा शोध-कार्यको अधिकृत बनानेमें समुद्यत किया। यदि यह कृति किसी भी रूपमें भावाश्रित हुई तो लेखिका अपने कठिन श्रमका परिहार मानेगी।

डा० मधु आर० खण्डेलवाल
एम० ए० (संस्कृत)
साहित्याचार्य

उपवन-पुष्प-विहार-क्रमांकन

★

I. प्राक्कथन

II. शुभाशीर्वाद एवं संस्तुतियाँ

III. आत्मिकी

प्रथम स्तवक : विषय प्रवेश १ से २३

श्रीमद्भागवत का परिचय (३) भागवत स्वयं श्रीकृष्ण स्वरूप (५) साम्य भाव (६) भागवत का स्रोत, आविर्भाव और प्राकट्य (८) भागवत की परम्परा (१०) प्रथम परम्परा (११) द्वितीय परम्परा (१२) तृतीय परम्परा (१२) शुकदेवजी का भागवत अध्ययन (१२) परीक्षित-सभा में भागवत-कीर्तन (१४) प्रमुख प्रतिपाद्य (१५) लीला-श्रवण से परमानन्द-प्राप्ति (१५) कलियुग और कृष्ण-उपासना (२०)।

द्वितीय स्तवक : लीला-दर्शन २६ से १३५

लीला : अर्थ विमर्श (३०) काव्य शास्त्रात्मक अर्थ (३०) दार्शनिक अर्थ (३१) व्युत्पत्यात्मक विविध अर्थ (३४) भागवत का लीलात्मक दर्शन (३६) अनादिरादिगोविन्दः सर्वकारणकारणम् (३९) श्रीकृष्ण की मायिकी लीला (४२) भागवत में खगोल-भूगोल आदि लीलाओं का श्रीकृष्ण-लीला प्रतिपादन में उपयोग (७६) श्रीकृष्ण का लीला-वैशिष्ट्य (७८) श्रीकृष्ण-जन्म से मथुरा आगमन पर्यन्त लीलाओं का वैशिष्ट्य एवं रहस्य (८३) प्रकट और अप्रकट लीला (११५) स्वारसिकी और मन्त्रोपासना मयी लीला : स्वारसिकी (११९) मन्त्रोपासनामयी (१२०) लीलाओं की कालक्रम संगति (१२२) लीलाओं के आद्यावसान पर एक दृष्टि (१२७) लीलाओं की क्रमबद्ध अनुक्रमणिका : एक गवेषणा (१२९) लीला-निष्कर्ष (१३३)।

तृतीय स्तवक-कथा-न्यास १३७ से २०२

कथा-न्यास (१३७) श्रवणौ कथायाम् (१३९) लाक्षणिक आधार (१४०) वाद कथा (१४१) पूर्वापर विचार (१४१) अज्ञातार्थज्ञापकत्व (१४२) तात्पर्य निर्णय (१४२) काव्य-सम्बन्धी दृष्टि (१४२) ग्रन्थ तात्पर्य निर्णय (१४३) उपक्रमोपसंहार (१४५) अभ्यास (१४६) अपूर्णता (१४७) फल (१४८) अर्थवाद (१३९) उपपत्ति (१४९) प्रबन्ध-काव्यकी दृष्टि से कथा-प्रवाह (१५०) प्रबंध विधान (१५१) कथा-वस्तु-योजना (१५१) आधिकारिक कथावस्तु (१५१) प्रासंगिक कथा वस्तु (१५१) पताका (१५२) प्रकरी (१५२) पताका स्थानक (१५२) कथावस्तु का फल (१५३) फल की दृष्टि से कथावस्तु का

विभाजन (१५३) अर्थप्रकृतियाँ-बीज (१५३) विन्दु (१५३) पताका (१५४) प्रकरी (१५४) कार्य (१५४) कार्यावस्थायें आरम्भ (१५४) प्रयत्न, प्राप्त्याशा, नियताप्ति, फलागम (१५५) संधि (१५५) संधि भेद-मुख, प्रतिमुख, गर्भ, विमर्श निर्वहण (१५६-१५७) महाकाव्यीय अन्य तत्वोंका निर्देश: वर्णन-कौशल (१५७) सन्ध्या, सूर्य, चन्द्रमा (१५८) रात्रि, अन्धकार, प्रातःकाल पर्वत : (१५६) ऋतु, वन, समुद्र (१६०) नगर, यज्ञ (१६१) विवाह, युद्ध-वर्णन-विजय (१६२) महापुराणीय लक्षणों का संगठन (१६३) सर्ग (१६४) विसर्ग (१६६) स्थान (१६६) पोषण (१६७) ऊति (१६७) मन्वन्तर (१६७) ईशानुकथा (१६८) निरोध (१६८) आश्रय (१६६) कथानायक श्रीकृष्ण की कथा का प्रकटन और विस्तार (१७१) शौनकादियों के प्रश्न : श्रीकृष्ण कथा औत्कण्ठोदय (१७१) जीवों का श्रेय साधन सम्बन्धी प्रश्न (१७१) श्रोतव्य-सार सम्बन्धी प्रश्न (१७२) वासुदेव-चरित सम्बन्धी प्रश्न (१७२) अवतार-लीला सम्बन्धी प्रश्न (१७२) श्रीकृष्ण लीला-यश सम्बन्धी प्रश्न (१७३) धर्म-शरण-सम्बन्धी प्रश्न (१७३) सूतजी के उत्तर : श्रीकृष्ण भक्ति ही श्रेय (१७३) परम सार - अद्वय ज्ञान तत्व (१७४) अवतार प्रयोजन : भूभार हरण (१७४) अवतार वर्णन (१७५) श्रीकृष्ण-लीला रति वर्णन (१७५) धर्म की शरण श्रीमद्भागवत (१७६) धर्म की शरण श्रीमद्भागवत (१७६) श्रीकृष्ण-कथा-औत्कण्ठोदय (१७६) कथा-क्रम-वैशिष्ट्य, (१७८) सम्बन्ध तत्त्व (१७६) कथा-केन्द्र : श्रीकृष्ण : (१८०) प्रश्न-उत्तर की परम्परा (१८१) मूल चतुःश्लोकी (१८१) कल्प-भेद (१८२) इतिहास (१८२) भक्ति का प्राधान्य (१८३) नाटकीय विधान (१८३) स्तर क्रम (१८४) रस-भाव-मूलक (१८४) कथा-क्रम-प्रयोजन (१८५) कथा-क्रम-वैष्शिटय एवं उसका प्रारूप (१८६) स्कन्धों का लीलापरक विनियोग (१८७) पुराणार्क कार्य-करण-सम्बन्ध (१८७) अंगाभिभाव (१८८) अधिकारी-लीला : प्रथम स्कन्ध श्रोता-वक्ता (१८८) साधन-लीला : द्वितीय स्कन्ध (१८६) सर्ग लीला तृतीय स्कन्ध (१६०) विसर्ग लीला-चतुर्थ स्कन्ध (१६१) स्थान-लीला-पंचम स्कन्ध (१६३) पुष्टि-लीला-षष्ठ स्कन्ध (१६४) ऊति-लीला-सप्तम स्कन्ध (१६५) मन्वन्तर-लीला : अष्टम स्कन्ध (१६५) ईशानुकथा लीला-नवम स्कन्ध (१६६) निरोध लीला : दशम स्कन्ध (१६७) मुक्ति-लीला : एकादश स्कन्ध (१६७) कथावस्तु का निष्कर्षात्मक अध्ययन (१६८) १—घटनात्मक (१६६) २-उपदेशात्मक (१६६) ३-स्तुत्यात्मक (२००) ४—गीतात्मक (२०१)

चतुर्थ स्तबक : लीलानायक श्रीकृष्ण **२०३ से २५१**

लीलानायक श्रीकृष्ण (२०३) अद्वय ज्ञान परतत्व (२०४) ब्रह्म का सम्यक् और समन्वयात्मक रूप (२०७) ब्रह्म, परमात्मा और भगवान्

(२१०) ब्रह्म (२१०) परमात्मा (२११) भगवान् (२१२) परब्रह्म नराकृति (२१२) परब्रह्म श्रीकृष्ण का नराकार रूप भागवतीय प्रमाणों से (२१४) कृष्णस्तु भगवान् स्वयं (२१५) सर्वावतारी श्रीकृष्ण (२१६) ऐश्वर्य प्रकाशक, धर्म प्रकाशक, कीर्ति, प्रदर्शक, श्री प्रदर्शक (२१८) ज्ञान-प्रदर्शक-वैराग्य प्रदर्शक (२१६) लीलावतार, पुरुषावतार, गुणावतार शक्त्यावेशावतार, मन्वन्तरावतार, युगावतार (२१६) विलास, स्वांश (२२०) पुरुषावतार, प्रथम पुरुष (२२०) द्वितीय पुरुष, तृतीय पुरुष (२२१) लीलावतार, भागवत-में लीलावतार प्रवन्ध (२२१) गुणावतार, शक्त्यावेशावतार (२२३) मन्वन्त-रावतार, भागवत में मन्वन्तरावतार प्रबन्ध (२२४) भविष्य में होने वाले मन्वन्तरावतार (२२४) युगावतार (२२५) श्रीकृष्ण की विभूति (२२५) स्वयं रूप स्वयं प्रकाश (२२६) वैभव विलास (२२७) नित्य रूप (२२७) सर्वशक्तिमान् श्रीकृष्ण (२२८) चित् शक्ति, जीव शक्ति (२२६) माया शक्ति (२३०) माया की वृत्तियाँ (२३०) गुण माया (२३०) जीव-माया : आवरणात्मिका, विक्षेपात्मिका (२३१) वृत्तित्रय के प्रकाश (२३१) श्रीकृष्ण की पराशक्ति : श्री राधा (२३२) रूप और स्वरूप (२३३) श्रीकृष्ण का रूप वैशिष्टय (२३४) श्रीकृष्ण का गुण वैशिष्टय (२३५) श्रीकृष्ण का दर्शन : रसिकत्व और करुणत्व (२३७) रसिकत्व (२३७) करुणत्व (२३८) श्रीकृष्ण का माधुर्य (२३६) लीला-माधुरी प्रेम-माधुरी, वेणु माधुरी, रूप-माधुरी (२४०) श्रीकृष्ण चरित्र के अन्य सूक्ष्म संकेत (२४१) वीर, समदर्शिता, सेवा, आदर्श कर्म-योगी, राजनीतिज्ञ (२४१) वीर, समदर्शित सेवा, आदर्श कर्मयोगी, राज-नीतिक (२४१) रणनीतिज्ञ, अन्य सूक्ष्म संकेत, श्रीकृष्णके उपदेश एव आचरणीयगत शिक्षाएँ (२४२) श्रीकृष्ण-चरित्रका सार-सर्वस्व-स्तवनात्मक आधार (२४४) श्रीकृष्ण के परिकर और लीला-धाम (२४५) श्रीकृष्ण के परिकर : लीला विधायक तत्त्व (२४६) गोपी (२४६) महिषियां, यशोदा, अन्य परिकर (२४७) लीलाधाम और उनका तारतम्य : लीलाधाम (२४८) धामोंका तारतम्य (२४६) कृष्णलोक, परव्योम (२४६) सिद्धलोक, कारणार्णव, प्रकाशभेद और नित्यत्व (२५०)

पंचम स्तवक : प्रबन्ध-योजना का स्वरूप **२५२ से**

प्रबन्ध-योजना में संवादों का महत्त्व (२५२) श्रीमद्भागवत की संवाद शैली (२५३) अधिवेशन और सभा (२५५) प्रबन्ध-योजना में गान (२५६) जगौ कलं वामदृशां मनोहरम (२५८) वेणुगीत (२६०) युगल गीत (२६२) भ्रमर गीत (२६२) गोपिका गीत (२६४) निर्वेद गीत (२६५) गीतों और संवादोंका तारतम्य (२६५) लीला-प्रबन्ध में श्रीष्कृण (२६५) लीला-प्रबंध में व्यूह का रूप (२६८) वेद परकादि स्तुतियों में श्रीष्कृण और उनके विभिन्न अवतारों का स्मरण (२६८) श्रीकृष्ण परक ही सकल उपाख्यान्

(२७०) भागवतीय श्रीकृष्ण-लीला का अन्य पुराणों से वैशिष्टय (२७३) इतिहास की कसौटी पर श्रीकृष्ण क्रम विकासकी दृष्टि से : भागवतीय दृष्टि (२७६) द्वादश स्कन्ध और श्रीकृष्ण-लीला : प्रथम स्कन्ध (२७८) द्वितीय स्कन्ध तृतीय स्कन्ध चतुर्थ स्कन्ध पंचम स्कन्ध (२७९) षष्ठ स्कन्ध, सप्तम स्कन्ध, अष्टम स्कन्ध, नवम स्कन्ध, (२८०) दशम स्कन्ध, एकादश स्कन्ध, द्वादश स्कन्ध (२८१) दशम स्कन्ध : एक चिन्तन (२८१) लीला प्रबन्ध का उद्देश्य (२८३) प्रबन्ध योजना में पूर्वा पर विचार (२८३) प्रबन्ध में भाषा संगति (२८८) समाधि भाषा (२८८) परकीया भाषा (२८९)

षष्ठ स्तवक : भक्ति-प्रीति-आसक्ति **२९१ से ३२६**

श्रीकृष्ण लीला की परम परिणति भक्ति सिद्धान्त की पीठिका (२९१) भक्तिका स्वरूप और भेद (२९३) निर्गुण भक्ति (२९५) त्रिविधा सगुणभक्ति (२९६) पंचविधाभक्ति, षड्विधा भक्ति (२९६) नवधा भक्ति (२९७) साधन भक्ति वैध और रागानुगा (२९७) सम्बन्धरूपा (३००) सम्भोगेच्छामयी (३०१) तद्भावेच्छामयी : कर्म, ज्ञान और योगकी भक्तिपर निर्भरता (३०२) भक्तया तुष्यति माधव (३०४) श्रीकृष्ण-लीला-प्रीति (३०७) प्रीति : तटस्थ लक्षण, स्वरूप लक्षण (३०८) प्रीति का आविर्भाव (३०९) प्रीति के विभिन्न स्तर (३०९) प्रेम और नाम (३१२) प्रेम ऋणी और रसास्वादक श्रीकृष्ण (३१४) ब्रज में केवल प्रेम ही (३१५) प्रेम-विवर्त-विलास (३१६) पुरुषार्थ : धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष (३१८) परम-पुरुषार्थ : प्रेम (३१९) परमतम पुरुषार्थ : ब्रज का कान्ता प्रेम (३२०) आसक्ति (३२१) आसक्ति के विभिन्न रूप (३२२)

सप्तम स्तवक : लीला रस और आनन्द **३२७ से ३५६**

रस विचार (३२८) रस का स्वरूप और सामग्री (३३९) विभाव : आलम्बन : उद्दीपन : अनुभाव: उद्भास्वर: सात्त्विक: व्यभिचारी भाव: स्थायीभाव: (३३१) रसाब्धि श्रीकृष्ण सम्पूर्ण रसों के आलम्बन (३३४) भागवत में कृष्ण और रस (३३५) सामान्य रस और मधुर रस (३३६) शान्त भक्ति रस (३३६) दास्य : सम्भ्रम गौरव, प्रेमोभक्तिरस, वत्सल भक्ति रस,मधुर भक्तिरस (३३६) मधुर रस के भेद (३४१) गौण भक्ति रस (३४१) रस-वैचित्र्य (३४२) रस की प्रकाश लीला (३४४) परकीया रस और जार भाव (३४५) रस और भाव (३४६) लीला-रस की उत्कृष्टता—परकीया रस (३४६) भाव की उत्कृष्टता : जार भाव (३४९) पूर्णानन्द (३५३) ह्लादिनी की आनन्दधारा (३५४)

उपसंहार : **३५७ से ३६७**

परिशिष्ट : चीरहरण (३६८) महारास (३६९) वर्तमान परिस्थितियों में श्रीकृष्ण का आह्वान (३७४)

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची : **३७७ से ३८४**

प्रथम स्तवक

विषय-प्रवेश

विषय प्रवेश

आदितोन्तपर्यन्त प्राधान्येन भगवान् श्रीकृष्ण की रुचिर लीला-वर्णन करने वाली भागवत का परिचय अति आवश्यक है; इसके परिप्रेक्ष्य में प्रबन्ध योजना का स्वरूप पुष्ट होता है।

श्रीमद्भागवत का परिचय

सर्वशास्त्र मस्तकोपरि कल्पतरू रूप भागवत नित्य ही अपने गौरव के साथ प्रतिष्ठित है। द्वादश स्कन्धात्मक श्रीमद्भागवत में द्वादश रसाधार, द्वादश वनात्मक श्रीवृन्दावन के अद्वितीय बिषयालम्बन अखिल रसामृतमूर्ति साथ ही आश्रयालम्बन शिरोमणि श्रीकृष्ण ही प्रतिपाद्य हैं। भागवत अपने निर्माणकाल से ही लोकोत्तर, लोकवल्लीला-कैवल्यमाधुरी, दिव्यातिदिव्य क्रीड़ा कौतुक[1] ऐश्वर्य और माधुर्य-वैदग्धी एवं अनिर्वाच्य ब्रह्मानन्द, अनिर्वाच्यतर भजनानन्द, अनिर्वाच्यतम प्रेमानन्द और महा-अनिर्वाच्यतम[2] विप्रलम्भ रस वैचित्री प्रकट कर विभिन्न अप्राकृत रसिकों के विशुद्ध सत्वको अतिमत्त रस समुद्र में निमज्जित कर रही है।

श्री मद्भागवत संस्कृत वाङ्मय की सर्वोत्कृष्ट परिणति है। उसके लक्ष्य, साधन और शैली महान् तथा विलक्षण है एवं उसका स्वरूप भी अत्यंत गम्भीर, मधुर तथा प्रसादपूर्ण है। उसका अध्यात्म, उसका काव्य और उसकी समाज-संघटना प्रणाली संसार के लिए गौरव की वस्तु है।[3]

श्रीजीवगोस्वामी के अनुसार भागवत ब्रह्म-सूत्र का रहस्य स्फोट करती है, गायत्री की भाष्यरूपा है, वेदार्थपरिवृंहिता तथा द्वादश स्कन्ध संयुक्त है—

अर्थोऽयं ब्रह्मसूत्राणां भारतार्थविनिर्णयः।
गायत्री भाष्यरूपोऽसौ वेदार्थपरिवृंहितः॥

---

१. (क) श्रीनाटक चन्द्रिका सं. ७
(ख) श्रीजीवपाद कृत संकल्प-कल्प-द्रुमः फलनिष्पत्ति संख्या ५

२. श्रीवृहत्भागवतामृत टीका १।७।१२५-१२६

३. भागवत दर्शन : अखण्डानन्द सरस्वती भूमिका पृष्ठ १
सत्साहित्य प्रकाशन ट्रस्ट, बम्बई

पुराणानां सामरूप: साक्षात् भगवतोदित: ।
द्वादशस्कन्धसंयुक्त: शतविच्छेदसंयुत: ।।
ग्रन्थोऽष्टादशसाहस्त्र: श्रीमद्भागवताभिध ।।[1]

मत्स्य-पुराण में–संसार से मुक्त होने के लिए भागवत की रचना हुई–

अम्बरीष शुक प्रोक्तं नित्यं भागवतं शृणु ।
पठस्व स्वमुखेनापि यदीच्छसि भवक्षयम् ।।[2]

आचार्य विजयध्वज कहते है कि ब्रह्म-सूत्रों के अध्ययन का अधिकार सर्वसाधारण को सुलभ नहीं था, अत: भागवत-पुराण की रचना हुई — अथकलिमलाप नुत्नये— विभक्तवेदस्तदर्थनिर्णयेच्छु विरचित ब्रह्मसूत्रस्तदधिकारि जनापवर्गायप्रकाशिता पुराणसंहिता ।[3]

श्रीधरस्वामी तो श्रीमद्भागवत की गरिमा और अपनी अल्पज्ञता को इस प्रकार प्रदर्शित करते हैं—

क्वाहं मन्दमति: क्वेदं मथनं क्षीरवारिधे: ।
किं तत्र परमाणुर्वै यत्र मज्जति मन्दर: ।।[4]

भागवत वाक्य ज्ञान विज्ञान से युक्त भक्ति एवं इसके अंगभूत साधन-चतुष्टय को प्रकाशित करता है और माया मर्दनकारी है ।[5] मन्त्रात्मक भागवत पुराण में समस्त पुरातन आध्यात्मिक भारतीय वाड्मय का अद्भुत समन्वय प्राप्त होता है । ज्ञान-पक्ष के लिए तो "मुह्यन्ति यत्सूरय :"[6] की उक्ति सर्वथा चरितार्थ होती है । भागवत महापुराण-समूह में सर्वोत्तम अमल-पुराण, सात्वत-तन्त्रों में सर्वश्रेष्ठ सात्वती संहिता,[7] स्वत: सिद्ध गायत्री-भाष्य

---

१. 'तत्वसंदर्भ' जीवगोस्वामी द्वारा उद्धृत गरूड़-पुराण का वचन पृष्ठ १७
२. मत्स्यपुराण ५३.२४-गुरुमण्डल ग्रन्थमाला-नन्दलाल मोर-५ क्लाइव रो, कलकत्ता सन् १९५४
३. पदरत्नावली १।१।१
४. भूमिका–भावार्थ दीपिनी
५. (क) स्कन्द पुराण २।४।५१
(ख) भागवत १२।१३।१८
६. भागवत १।१
७. अविद्या तत्कार्य निवृत्युपलक्षित परमानन्द रूपां विशेषात् । एवं सति पारमहंसोसंहितेति समाख्योपपद्यते परमहंसानां वेदान्तवाक्यार्थ निदिध्यासन रूपत्वात् अत्रत्योपाख्यानानां तत्तात्पर्यकत्वात् ।।
— १।१।१ मधुसूदन सरस्वती

है ।[1] समस्त उपनिषदों का सार है, अद्वितीय सद्वस्तु—सारो वै श्रीकृष्णः—यही भागवत का प्रतिपाद्य विषय है ।[2] भागवत कल्पतरु का अंकुर प्रणव है, इसका आविर्भाव-क्षेत्र साक्षात् श्रीभगवान् का मुखकमल और श्रीब्रह्मा-नारद व्यास-सूत-शुक प्रमुख महानुभावों का हृदय-सरोरुह है। इस कल्पतरु के द्वादश स्कन्ध हैं, तीन सौ पैंतीस शाखा (अध्याय) हैं, अष्टादश सहस्त्र श्लोकमय पत्ते हैं और भक्तिजलाधार से इसकी पुष्टि है। अपनी अचिन्त्य शक्ति के प्रभाव से श्रीमद्भागवत एक ही साथ कल्पतरु, रसमय फल और मालाकार तीनों ही है। पंचम वेद तो इसे कहा ही गया है ।[3]

डा० हजारी प्रसाद द्विवेदी लिखते हैं— 'प्रेम और करुणा के भाव, प्रेमिकों की रसमयी क्रीड़ायें, उनका घात-प्रतिघात इस ग्रन्थ में अतिशय जीवित रूप से प्रस्फुटित हुआ है।— ग्राम-वधूटियों की शृंगार चेष्टायें—विभिन्न ऋतुओं का भावोत्तेजन आदि बातें इतनी जीवित, इतनी सरस और इतकी हृदयस्पर्शी हैं कि पाठक बरबस इस सरस काव्य की ओर आकृष्ट हो जाता है, जहाँ वह एक अभिनव जगत् में प्रवेश करता है, जहाँ आध्यात्मिकता का झमेला नहीं है, कुश और वैदिका का नाम नहीं सुनाई देता, स्वर्ग और अपवर्ग की परवाह नहीं की जाती, इतिहास और पुराण की दुहाई नहीं दी जाती —।[4] ऐसा भी है भागवत का स्वरूप ।

भगवान् श्रीकृष्ण के स्वरूप, गुण और लीला का 'सपरिकर ज्ञान-विज्ञान' ही श्रीमद्भागवत है, जो ग्रन्थ-रूप में हमारे सामने विद्यमान है।

भागवत स्वयं श्रीकृष्ण-स्वरूप

'पुराणं हरेः स्वरूपम्'[5] भागवत पुराण स्वयं लीलावपु श्रीकृष्ण का दिव्य-विग्रह स्वरूप है— श्री मद्भागवताख्यो यं प्रत्यक्षः कृष्ण एव हि ।[6]

---

१. हरिभक्तिविलास १०।३९४
२. भागवत १२।१३।१२
३. (क) बृहदारण्यक २।४।१०
   (ख) छान्दोग्योपनिषत् ७।१।२
४. भागवत, दर्शन; डा० हरवंशलाल शर्मा, पृष्ठ २०६ से उद्धृत
५. भागवतार्थ प्रकरणम : वल्लभाचार्य : प्रकाश टीका पृष्ठ ५ मोटा मन्दिर, सूरत
६. पद्मपुराण ६।१९४।।३०

कलिकाल को निकट आया जानकार उद्धव भक्तों के हितार्थ श्रीकृष्ण से विचार करने के लिए प्रार्थना करने लगे तब भगवान् ने अपनी सारी शक्ति भागवत में स्थापित कर दी, स्वयं अन्तर्धान होकर इस भागवत समुद्र में प्रवेश कर गये। अतः यह भागवत श्रीकृष्ण का ही द्वितीय विग्रह और अचिन्त्य परमचमत्कारमयी शब्दार्चा (शब्द–विग्रह) शब्द-ब्रह्म के रूप में विद्यमान है। स्वयंरूप तत्व श्रीकृष्णवत् ग्रन्थावतार भागवत स्वयं रूप शास्त्र है, श्रीकृष्ण स्वयं भागवत रूप में विराजते हैं।[1] भागवत के बारह स्कन्ध और भगवान् श्रीकृष्ण के बारह अंगों में साम्य इस प्रकार है[2]—

पादौ यदीयौ प्रथम द्वितीयौ तृतीयतुर्यौ कथितौ यदूरु ।
नाभिस्तथा पंचम एव षष्ठो भुजान्तरं दोर्युगलं तथान्यौ ।।

कण्ठस्तु राजन् नवमो यदीयो मुखारविन्दं दशमं प्रफुल्लम् ।
एकादशो यश्च ललाटपट्टं शिरोऽपि यद् द्वादश एव भाति ।।

नमामि देवं करुणानिधानं तमालवर्णं सुहितावतारम् ।
अपारसंसारसमुद्रसेतुं भजामहे भागवतस्वरूपम् ।।

साम्य भाव

भगवान् श्रीकृष्ण के द्वादशावयव	**श्रीमद्भागवत के द्वादश स्कन्ध**
चरण युगल	प्रथम और द्वितीय
उरु युगल	तृतीय और चतुर्थ
नाभि	पंचम
वक्षः स्थल	षष्ठ
बाहु युगल	सप्तम और अष्टम
कण्ठ	नवम्
मुखारविन्द	दशम
ललाट	एकादश
मूर्धा	द्वादश

---

१. (क) तिरोधाय प्रविष्टो यं श्री मद्भागवतार्णवम् ।
तेनेयं वाङ्मयी मूर्तिः प्रत्यक्षा वर्तते हरे ।।-पद्मपुराण उत्तरखण्ड ३।६१
(ख) भागवत १।३।४४ कृष्णे स्वधामोपगते–पुराणार्कोधुनोदितः
(ग) श्रीमद्भागवतस्याथ श्रीमद्भागवतः सदा ।
स्वरूपमेवास्ति सच्चिदानन्दलक्षणम् ।। स्कन्दपुराण २।४।३
(घ) ब्रह्मात्मकस्य भुविभागवताभिधस्य । पद्मपुराण उत्तरखण्ड ३।७४

२. (क) पद्मपुराण - मनसुखराय मोर, ५, क्लाइव रो, कलकत्ता १९५०
(ख) गौरीतंत्र भा० प० २ श्लोक २५ से २८ द्रष्टव्य

इस प्रकार द्वादशांग रूप और अर्थतः श्रीमद्भागवत को धारण करने से स्वयं श्रीकृष्ण धृत हो जाते हैं और उनकी भक्ति प्राप्त हो जाती है।[१] भगवान् श्रीकृष्ण के साथ श्रीमद्भागवत ग्रन्थ का प्रतिपादक–प्रतिपाद्यभाव सम्बन्ध है। भागवत के प्रत्येक पद के प्रतिपाद्य परब्रह्म परमात्मा भगवान् श्रीकृष्ण ही हैं।[२] भागवत में सभी गोपनीय और रहस्यमयी लीलाओं का वर्णन है। प्रेमावतार हैं श्रीकृष्ण और प्रेममय ग्रन्थ है भागवत। लीलावपु हैं श्रीकृष्ण और लीलामय है श्रीभागवत—

ग्रन्थरूपे भागवत कृष्ण अवतार ।।
प्रेममय भागवत श्रीकृष्णेर अंग ।
ताहाते कहेन जत गोप्य कृष्ण रंग ।।[३]

श्रीकृष्ण ही भागवत के आराध्य देवता, उसके वाच्य-वाचक रूप में कारण है— सहि चतुर्धा प्रतीयते-मन्त्रस्य 'भागवतस्ये कारणत्वेन' वर्णसमुदायरूपत्वेन अधिष्ठात्री देवतारूपत्वेन, आराध्यरूपत्वेन च।'[४] अनिवर्चनीय महिमामय श्रीकृष्णवत् भागवत की भी महिमा अनिवर्चनीय है। 'गौरवेणइदं महत्' – अनिवर्चनीय महिमा सर्वातीत होती है। वक्ता, वचन और वाच्य का भेद उसमें नहीं हुआ करता। श्रीकृष्ण भागवत में भागवतान्तर्यामी, भागवतातीत और भागवत रूप हैं। भगवान् श्रीकृष्ण के इसी त्रिविध रूप का साक्षात्कार पद अक्षर-अक्षर में होता है पद के वाच्यार्थ का ठीक-ठीक ज्ञान होने पर, लक्ष्यार्थ का इंगित समझ लेने पर भागवत के घट, पट, मठ आदि शब्दों के अर्थ रूप में भी भगवान् श्रीकृष्ण की ही उपलब्धि होती है। भागवत में कहीं भी किसी हेयांश का प्रकरण नहीं मिलता। अमुक प्रकरण में ही भगवान् श्रीकृष्ण की लीला है, यह कहते नहीं बनता। भागवत

---

१. (क) **एतद्धारणमात्रेण कृष्णो भवति वै धृतः ।**
अर्थतस्तु परिज्ञाते ज्ञातो भक्तिं प्रयच्छति ।।
भागवतार्थ प्रकरण कारिका १।१०।११

(ख) **'द्वादशो वै पुरुष' इति श्रुतेः प्रकाश टीका, पृष्ठ ५**

२. (क) **कल्याण : भागवतांक पृष्ठ ८५ गीताप्रेस, गोरखपुर**

(ख) **तत्व सन्दर्भ और उस पर बलदेव विद्याभूषण का भाष्य पृष्ठ १९**

३. **चैतन्य भागवत २।२।१४, ३।५।५१६**

४. **ब्रह्म संहिता जीव-टीका ५।३।४**

का सब कुछ श्रीकृष्ण की ही लीला है, उसका प्रकाश कहीं व्यक्त रूप से है और कहीं अव्यक्त रूप से। जो अव्यक्त रूप से है वहाँ भी श्रीकृष्ण लीला के संकेत विद्यमान हैं— 'इतीदं द्वादशस्कन्ध' पुराणं हरिरेव सः।'[1] निगूढ़ तात्पर्य प्रकाशिका भागवत और भगवान् का आश्रित-आश्रय भाव सम्बन्ध है।

भागवत का स्रोत, आविर्भाव और प्राकट्य

जिस समय यह विश्व कार्य-रूप रहित होकर महाप्रलय को प्राप्त कर सूक्ष्म-कारण रूप में कारणार्णवशायी महाविष्णु के रोम-कूप में निहित था, एकदा भगवान् विष्णु ने जीवों के कर्मों को उद्बोधन करने के लिए अथवा विश्व को कार्य रूप में प्रकाशित करने के लिए अपने अवतारों को प्रकट कर स्व लीला-चरित्र के सौजन्य से स्वपादपद्म की स्वामृतसुधा का पान कराने के लिए स्वनाभिकमल से श्री ब्रह्मा को प्रकट किया। कमलासीन ब्रह्मा ने चतुर्दिक् देखा, किन्तु उन्हें जल के अतिरिक्त कुछ भी दिखायी नहीं दिया। प्रलयकारी झंझावात और जल की उद्वेलित तरंगों से भयभीत ब्रह्माजी विचार करने लगे—

क एष योऽसावहमब्जपृष्ठ एतत्कुतो वाब्जमनन्यदप्सु।
अस्ति ह्यधस्तादिह किंचनैतदधिष्ठितं यत्र सता नु भाव्यम्॥[2]

अर्थात् मैं कौन हूँ, जिस कमल के ऊपर आसीन हूँ, उसका कोई आश्रय निश्चित ही होगा— तदनन्तर मनस्वी ब्रह्मा सूक्ष्म रूप से कमलनाल में प्रवेश कर शता वर्षपर्यन्त अनुसन्धान करते रहे, परन्तु कुछ भी निश्चिय न हो सका। विफल मनोरथ ब्रह्मा समाधिस्थ हो गये। तब अन्तःकरण में पुरुषोत्तम भगवान् को अपने धाम-परिकरके साथ प्रकाशित होते देखा।[2] अनन्तर ब्रह्माजी ने परमानन्द-प्लुत होकर प्रणाम पुरःसर स्तवनादि किया, सन्तुष्ट हुए भगवान् ने उन्हें सम्पूर्णतत्व-साररूप चतुःश्लोकी भागवत का उपदेश दिया।[3] यही चतुश्लोकी भागवत ही भागवत का स्रोत है।

आविर्भाव का कारण है— श्रीकृष्णद्वैपायन वेदव्यास की उद्विग्नता।[4] नारदजी ने ब्रह्माजी के मुख से पाद्मकल्प के आदि में जो तत्व सुना, उसी

---

१. भागवतार्थप्रकरणम् १।६
२. भागवत ३।८।१८
३. भागवत ३।८।१० से ३३
४. भागवत ३।९

को वर्तमान वैवस्वत मन्वन्तर के अष्टाविंशतीय चतुर्युग के द्वापर में वादरायणि को शम्याप्रास आश्रम में उपदिष्ट कर दिया। प्रस्तावना इस प्रकार बाँधी गयी—

भवतानुदित प्रायं यशोभगवतोऽमलम् ।
येनैवासो न तुष्येत मन्ये तद्दर्शनं खिलम् ।।

यथा धर्मादयश्चार्था मुनिवर्यानुकीर्तिताः ।
न तथा वासुदेवस्य महिमा ह्यनुवर्णितः ।।

न यद्वचश्चित्रपदं हरेर्यशो जगत्पवित्रं प्रगृणीत कर्हिचित् ।
तद्वायसं तीर्थमुशन्ति मानसा न यत्र हंसा निरमन्त्युशिक्षयाः ।।[1]

अर्थात् व्यास ने सत्रह पुराणों और महाभारत में भगवान् श्रीकृष्ण के विमल यश और महिमा का गान नहीं किया, ऐसी वाणी वायस योग्य होती है, परमहंस भक्त यहाँ रमण नहीं करते। अतः 'हरिचर्यानुवर्णनम्।'[2] यह सुनकर भक्तियोग समन्वित हो व्यासदेव भगवान् श्रीकृष्ण की लीला का ध्यान करने लगे। फलतः उनकी लीलाओं का दर्शन कर— चक्रे सात्वतसंहिताम्।[3] इसका पूर्ण और सम्यक् रूप से प्राकट्य हुआ है श्रीशुकदेव द्वारा। यहाँ एक बार फिर राजर्षि परीक्षित अशान्त थे। भागवत के प्राकट्य की तिथि और संवत् पर अनुसन्धान किया जाय तो पद्मपुराण में एक स्थान पर लिखा है— 'नवमीतो नभस्ये च, कथारम्भ शुकोऽकरोत्'[4] अर्थात् नवमी को श्रीशुक ने कथारम्भ की और इतिहास की संगति से भगवान् कृष्ण के गोलोक प्रस्थान के ३० वर्ष पश्चात् भाद्रपद पूर्णिमा को इसका समापन किया गया।

मोक्षधर्म नारायणीय में श्रीव्यास के प्रति जनमेजय की उक्ति है— 'यह एक लाख श्लोक विस्तृत भारत-आख्यान से बुद्धिरूपी मन्थनी से श्रेष्ठ ज्ञानरूपी समुद्र को मन्थन कर जैसे दही से मक्खन, मलय से चन्दन, सब

---

१ भागवत १।५।८ से १०

२. भागवत १।६।३५

३. भागवत १।७।२ से ६

४. पद्मपुराण. उत्तरखण्ड ६।९४

वेदों से आरण्यक, औषधियों से अमृत उद्धृत हुआ, उसी प्रकार हे तपोनिधे ! नारायण-कथा भागवत को आपने प्रकट किया है।'[1]

इस प्रकार ब्रह्मसूत्रों का यह स्वाभाविक भाष्य है। पूर्व में सूक्ष्म रूप से मन में आविर्भूत हुआ, पुनः संक्षिप्त सूत्र रूप में प्रकट हुआ। अनन्तर विस्तार सहित श्रीमद्भागवत है।[2]

भागवतकी परम्परा

'सम्प्रदाय' शब्द का अर्थ है गुरु-परम्परागत सदुपदेश। भरत के मत में शिष्य परम्परावतीर्णोपदेशः सम्प्रदायः। 'आम्नायः सम्प्रदायः' अमरकोष में लिखा है। यह आम्नाय वाक्य अथवा शिष्य-परम्परावतीर्ण उपदेश का लाभ एकमात्र सत् सम्प्रदाय से ही है। मुण्डकोपनिषद्[3] में गुरु-परम्परागत उपदेश अथवा सत् सम्प्रदाय स्वीकरण की प्रयोजनीयता लिखित है।

भागवत सम्प्रदाय के प्रवर्तक हैं 'श्रीब्रह्मा'। आराध्य हैं स्वयं-भगवान् श्रीगोविन्द। तदीय आविर्भाव विशेष ही जिस सम्प्रदाय के प्राणसर्वस्व स्वसम्प्रदाय सहस्राधिदेव हैं, अनादिदेव कल्पतरु से जिसका आविर्भाव है, श्रीशुकनारदादिपरमहंसगण जिस सम्प्रदाय के प्रवर्तक हैं, ब्रह्मा, शिव, ध्रुव, प्रह्लादादि जिसके पथप्रदर्शक हैं, उस सम्प्रदाय का उत्कर्ष स्वतः सिद्ध है।[4]

श्रीमद्भागवत में ही ग्रन्थ की दो परम्परायें उपलब्ध होती हैं।[5] वेदकल्पतरु का सुपरिपक्व फल भागवत स्वयं ही माली होकर स्वाश्रितजनों

---

१. इदं शतसहस्त्राद्धि भारताख्यानं - विस्तरात्। आमथ्यमतिमन्थेन ज्ञानोदधिमनुत्तमम्। नवनीतं यथा दध्नो मलयाच्चन्दनं यथा। आरण्यं सर्ववेदेभ्यः ओषधीभ्योऽमृतं यथा। समुद्धृतमिदं ब्रह्मन्! कथामृतमिदं तथा। तपोनिधे। त्वयोक्तं हि नारायण-कथा श्रयम्।
मोक्षधर्म नारायणीय धृत तत्वसन्दर्भः अनुच्छेद २१

२. (क) क्रमसन्दर्भ १।५।३ अनुयायी तात्पर्य
(ख) भागवत १।४।२६
(ग) सर्वसम्वादिनी पृष्ठ १४

३. मुण्डक १।१।१, १।२।१३

४. भागवत ३।८।५-७

५. संशब्दोऽत्र सम्यगर्थः 'प्र' प्रकृष्ठार्थ एव च। दायः सम्पर्क इत्युक्तः सम्प्रदाय विचक्षणः इति। स्वकीयात्वनिरास विचार परकीयात्व निरूपणः श्रीविश्वनाथ पृष्ठ ५२

(भक्तों) को वांछित फल (श्रीकृष्ण लीला-कथा) प्रदान करता है। परमोर्द्धवचूड श्रीनारायण से ब्रह्मशाखा में, वहाँ से अधस्तन नारद शाखा में और उससे व्यास शाखा में, वहाँ से शुक-मुखको प्राप्त होकर अतीव अमृत स्वरूप होकर, मधुरातिमधुर होकर सूतादि शाखा में गिरता हुआ शौनकादि ऋषियों को प्राप्त होता है। यह रही प्रथम परम्परा।[1]

भागवत में प्राप्त द्वितीय परम्परानुसार संकर्षण अपने सहस्त्रमुख से भगवान की लीला-कथा का निरन्तर कीर्तन करते हैं, उन्होंने निवृत्तिधर्मपरायण सनत्कुमार को, सनत्कुमार ने परमव्रतशील सांख्यायन् मुनि को (सांख्यायन् मुनि परमहंस धर्म में स्थित रहते हुए भी श्रीकृष्ण की लीला-कथा को वर्णन करने के लिए उत्सुक हुए थे), सांख्यायन ने अपने अनुगत शिष्य पराशर और वृहस्पति को, पुलस्त्य ऋषि कर्तृक प्रार्थित हो पराशर ने मैत्रेय को और मैत्रेय ऋषि ने विदुर को यह भागवत्-लीला-कथा श्रवणक रायी है।[2]

स्कन्द पुराण के द्वितीय वैष्णव खण्ड के भागवत माहात्म्य में एक परम्परा और दी है। तदनुसार आदिपुरुष श्रीकृष्ण ने ब्रह्मा, विष्णु और रुद्र को भी श्रीमद्भागवतका उपदेश दिया है।[3]

कहना न होगा, परम्परा के क्रम से जहाँ भागवत प्रकट हुई है, वहाँ भगवान् और भगवत्ता भी प्रकट हुई है।

प्रथम परम्परा

नारायण
|
ब्रह्मा
|
नारद
|
व्यास
|
शुकदेव
|
सूत

टिप्पणियाँ अगले पृष्ठ पर देखें !

द्वितीय परम्परा

संकर्षण
|
सनत्कुमार
|
सांख्यायन
|
पराशर-वृहस्पति
|
मैत्रेय
|
सूत

तृतीय परम्परा

आदि-पुरुष श्रीकृष्ण
|
ब्रह्मा — विष्णु — रुद्र

शुकदेवजीका भागवत अध्ययन

प्राणो ह्येष यः सर्वं भूतैर्विभाति
विजानन् विद्वान् भवते नातिवादी
आत्मक्रीड़ आत्म-रतिः क्रिया
वानेष ब्रह्मविदां वरिष्ठः ॥४

---

१. (क) द्वेधा हि भागवत सम्प्रदाय प्रवृत्तिः एकतः संक्षेपतः श्रीनारायणाद् ब्रह्मनारदादि द्वारेण, अन्यस्तु विस्तरतः शेषात् सनत्कुमार सांख्यायनादि द्वारेण।

—भावार्थदीपिनीः श्रीधरस्वामी तृतीयसर्ग की भूमिका

(ख) भागवत २।६।४२-४३

२. भागवत ३ ८।७–६

३. स्कन्दपुराण - भागवत महात्म्य ३।२५

४. मुण्डकोपनिषद् ३।१।४

चिन्मय भगवान् की लीला भी चिन्मयी होती है। सच्चिदानन्द रसमय साम्राज्यके जिस परमोन्नत स्तरमें यह लीला हुआ करती है, उसकी ऐसी विलक्षणता है कि कई बार तो ज्ञान विज्ञान रूप विशुद्ध चेतन परमब्रह्म-में भी उसका प्राकट्य नहीं होता और इसीलिए ब्रह्म-साक्षात्कारको प्राप्त महात्मा लोग भी उस लीला रसका समास्वादन नहीं कर पाते।[1] शुकदेवजी भी इसी प्रकार के महात्मा थे।

यह शुकदेव बारह वर्ष तक गर्भस्थ ही रहे, पिता-प्रार्थित होकर भी बाहर नहीं निकले, कृष्ण-लीला-कथा लिप्सु शुक श्रीकृष्ण की ही आज्ञा से बाहर निकले, प्रापंचिक माया से सर्वथातीत शुक जन्म के साथ ही प्रवज्या (परमहंसावस्था) में ही चल पड़े। पिता द्वैपायन शुकके पीछे भागे, सोचने लगे मुझे ऐसा भक्त, ऐसा पुत्र,ऐसा उतराधिकारी कहाँ मिलेगा? भागवत रूप अमृत रस, जो मैंने अब तक सन्निहित कर रखा है, इसका आस्वादान किसे कराऊँगा? इधर शुक अचेतन वृक्षों में स्वयं प्रवेश कर चेतनवत् उत्तर देने लगे-'का कस्य पति पुत्रदा, मोह एव हि कारणम्' और इस प्रकार व्यासको प्रबोध कराने लगे। अन्ततः व्यासजी बहेलियों को श्रीकृष्ण के रूप-माधुर्य सूचक[2] और गुण-माधुर्य-सूचक[3] श्लोक अभ्यस्त करा कर शुकरूप पक्षी को पकड़ने के लिए वन-वन भेजने लगे। श्रीकृष्ण के इस प्रकार रूप माधुर्य को सुनकर शुक हरेर्गुणाक्षिप्तमति और हरि गुणोंसे आकृष्ट होकर कृष्ण द्वैपायन के पास आये और श्रीकृष्ण - लीला प्रतिपादित श्रीमद्भागवत का अध्ययन किया—'शुकमध्यापयामास निवृत्तिनिरतं मुनिः।'[4]

---

१. कल्याण : भागवतांक पृष्ठ ९६

२. बर्हापीडं नटवरवपुः कर्णयोः कर्णिकारं बिभ्रद्वासः कनककपिशं वैजयन्तीं च मालाम्। रन्ध्रान् वेणोरधरसुधया पूरयन् गोपवृन्दैर्वृन्दा-रण्यं स्वपदरमणं प्राविशद् गीतकीर्तिः॥

—भागवत १०।२१।५

३. अहो बकी यं स्तनकालकूटं जिघांसयापाययदप्यसाध्वी।
लेभे गतिं धात्र्युचितां ततोऽन्यं कं वा दयालुं शरणं व्रजेम्॥

भागवत ३।२।२३

४. भागवत १।७।११

अधिकारी स्तरपर यह आख्यान प्रस्तुत किया गया है। कृष्ण-भक्ति रस में आप्लावित हुए, कृष्ण-लीला में प्रवेश करने के साथ ही शुकदेव ने मृत्यु सन्निकटस्थ परीक्षित के लिए श्रीमद्भागवत शास्त्र के माध्यम से श्रीकृष्ण-लीलाख्यानों को एक सुन्दर प्रबन्ध काव्य के रूप में मुखारविन्द से निःसृत किया।

परीक्षित सभामें भागवत कीर्तन

जब परीक्षित उत्तराके गर्भ में स्थित थे, तभी उनको नष्ट करने की इच्छा से अश्वत्थामा द्वारा ब्रह्मास्त्र चलाया गया, सुदर्शन चक्र से[1] तभी श्रीकृष्ण ने परीक्षित की रक्षा की। एकदा यही परीक्षित शिकार-श्रम से तृष्णार्त्त समाधिस्थ शमीक ऋषि के आश्रम में जा पहुँचे, बाह्य-संवेदना से रहित ऋषि राजन् का आगमन न जान सके। अपने को अपमानित समझ राजा ने मृत सर्प ऋषि के गले में डाल दिया—'स तु ब्रह्मऋषेरंसे गतासुमुरगं रुषा, विनिर्गच्छन् धनुष्कोट्या निधाय पुरमागमत्।'[2] राजधानी लौटने पर ही राजा को कृत-कार्य की अनुशोचना हुई। उधर ऋषि-पुत्र उस पितृ-अपमान को सहन न कर सके, शाप दे बैठे—'इति लङ्घितमर्यादं तक्षकः सप्तमेऽहनि। दंऽक्ष्यति स्म कुलाङ्गारं चोदितो मे ततद्रुहम्॥'[3] अर्थात् कुलांगार परीक्षित ने मेरे पिता का अपमान करके मर्यादा का उल्लंधन किया है, इसलिये मेरी प्रेरणा से आज से सातवें दिन तक्षक सर्प उसे डस लेगा। ब्रह्मशाप अव्यर्थ होता है। ऋषि कथित यही वागस्त्र श्रीमद्भागवत शास्त्र का कारण है। कृष्ण-रक्षित परीक्षित् कृष्ण-लीलाओं के - लिए और भी जिज्ञासु हो उठे, भागीरथी तीर के लिए चल पड़े और वहाँ प्रायोपवेशन किया।[4] उस समय वहाँ पर अत्रि, वसिष्ठ, च्यवन, शरद्वान्, अरिष्टनेमि भृगु, अंगिरा, पराशर, विश्वामित्र, परशुराम, उतथ्य, इन्द्रप्रमाद, इध्मवाह, मेधातिथि, देवल, आर्ष्टिषेण, भारद्वाज, गौतम, पिप्पलाद, मैत्रेय, और्व, कवष, अगस्त्य, भगवान् व्यास, नारद आदि देवर्षि, ब्रह्मर्षि तथा अरुणादि राजर्षि राजा परीक्षित की सभा में उपस्थित थे। अभिशाप वरदान रूप में फलित हुआ, शुकदेव स्वेच्छा

---

१. भागवत १।८।१३
२. भागवत १।१८।२४ से ३०
३. भागवत १।१८।३२ से ३७
४. भागवत १।१९।७

से विचरण करते हुए वहाँ उपस्थित हुए। राजर्षि परीक्षित् ने परमसिद्धि के स्वरूप और साधन के सम्बन्ध में शुकदेव के समक्ष प्रश्न रख दिये[1]—

१. जीव को सदा-सर्वदा क्या करना चाहिये ?

२. जो थोड़े ही समय में मरने वाले हैं, उनका क्या कर्तव्य है ?

इन्हीं दो प्रश्नों के उत्तर में द्वितीय स्कन्ध से लेकर द्वादश-पर्यन्त श्रीमद्भागवत हैं।[2]

वर्णन कर ही रहे थे कि उस सभाके बीचों-बीच प्रह्लाद, बलि, उद्धव और अर्जुन आदि पार्षदों के सहित साक्षात् श्रीहरि प्रकट हो गये। सब लोग उनके सामने संकीर्तन करने लगे। पार्वतीजी सहित महादेव और ब्रह्माजी भी आये। प्रहलादजी करताल से, उद्धव झांझ से, नारद वीणा से, अर्जुन राग अलाप से, इन्द्र मृदंग बजाकर कीर्तन करने लगे। सनकादि बीच-बीच जयघोष करने लगे। शुकदेव तरह-तरह की अंगभंगी करके भाव बताने लगे। भक्ति ज्ञान और वैराग्य नटों के समान नाचने लगे। भगवान से वर मांगा गया।[3] सभी के अपने-अपने स्थानों पर चले जाने पर शुकदेवजी ने भक्ति को उसके पुत्रों सहित अपने शास्त्र में स्थापित कर लिया।

प्रमुख प्रतिपाद्य

प्रायः सभी स्कन्धों में लीला-श्रवण का महत्व प्रतिपादित किया गया है, प्रत्येक पात्र श्रीहरि के प्रति जिज्ञासु है, उसकी जिज्ञासा भागवत वक्ता द्वारा शान्त की जाती है और जिज्ञासु श्रोता उदाहृत जतुवत् श्रीकृष्ण के प्रति एकाकार हो परमानन्द को प्राप्त होता है। शौनकादि ऋषियों के प्रश्नों के उत्तरों का प्रकाशक सम्पूर्ण भागवत है, उनके प्रश्न ही कलयुग में दु;खी जीवों के उद्धार के लिए किये गये है, अत; विचार अपेक्षित है।

लीला-श्रवणसे परमानन्द-प्राप्ति

श्रवण साधनात्मक है परमानन्द का और फलात्मक है प्राप्ति के रूप का। आनन्द का मूल उद्गम स्थान है 'चित्त।' चित्त की सारी वृत्तियाँ भगवदुन्मुख होकर वहीं रमण करने लगती हैं और फिर अन्यत्र कहीं भी नहीं

---

१. भागवत १।१६। ८-११

२. भागवत १।१९।३७-३८

३. भागवत-माहात्म्य ६।८।६

जा पातीं, वही स्थिति 'आनन्द' शब्दसे अभिहित है। आनन्दकी चरमोत्कर्षता 'परमानन्द' है।

परमानन्द के अवस्थान चित्त के स्वभाव पर विचार अपेक्षित है। परमानन्द-प्राप्ति के लिए चित्त का द्रवीभूत होना स्वभाव सापेक्ष है। क्योंकि चित्त नाम का द्रव्य स्वभाव से ही जतुवत् (लाक्षा की तरह ठोस) है। किन्तु तापक विषयों का संयोग होने पर वह द्रव अवस्था को प्राप्त होता है।[१] जिस विषय में चित्त का उद्रेक अधिक होता है उस विषय में ही चित्त द्रवीभूत होता है किन्तु उस उद्रेक के शान्त हो जाने और कामादि के समाप्त हो जाने पर फिर वह ठोस (पूर्ववत्) हो जाता है। भगवदाकारता को प्राप्त हुआ चित्त सदा द्रवित रहता है क्योंकि भगवदाकारता समाप्त होती ही नहीं।[२]

द्रुते चित्ते विनिक्षप्तस्वाकारो यस्तु वस्तुना।
संस्कार-वासना-भाव भावनाशब्दभागसौ ॥[३]

द्रुत चित्त में स्थित वस्तु को स्थायिभाव शब्द कहा जाता है और फिर वही परमानन्द रूप से व्यक्त होकर रसत्व को प्राप्त होता है।[४] 'परमानन्द' साक्षात्कार रूप से रसता को प्राप्त होता है, ऐसा रसवेत्ताओं ने माना है।

भगवान् परमानन्दस्वरूपः स्वयमेव हि।
मनोगतस्तदाकारो रसतामेति पुष्कलाम् ॥[५]

अर्थात् परमानन्द स्वरूप भगवान् स्वयं ही द्रवावस्था को प्राप्त हुए मन में स्थित होकर स्थायिभाव से पूर्ण रसता को प्राप्त होते हैं। भगवदाकार वृत्ति रति नामक स्थायिभाव से पुष्ट होती है। स्वयं श्रीभगवान् कहते हैं, जिस प्रकार गंगा का प्रवाह अखण्ड रूप से समुद्र की ओर बहता रहता है, उसी प्रकार मेरे गुणों के श्रवणमात्र से मन की गति तैलधारावत् अविच्छिन्न

---

१. भक्ति रसायन प्रथम उल्लास कारिका ४, मधुसूदन सरस्वती
२. भक्ति रसायन प्रथम उल्लास कारिका ५, मधुसूदन सरस्वती
३. भक्ति रसायन प्रथम उल्लास-कारिका ६ अर्थात् द्रुत हुये चित्त में वस्तु द्वारा ढाला गया जो उसका अपना स्वरूप है, वही संस्कार, वासना, भाव अथवा वासना शब्द से कहा जाता है,
४. भक्ति रसायन प्रथम उल्लास-कारिका ९, मधुसूदन सरस्वती
५. भक्ति रसायन प्रथम उल्लास-कारिका १०, मधुसूदन सरस्वती

रूप से मुझ सर्वान्तर्यामी के प्रति हो जाती है और मुझ पुरुषोत्तम में निष्काम और अनन्य प्रेम को प्राप्त कर लेती है।[1]

इस प्रकार परमानन्द रूप भगवान में प्रेम पराकाष्ठा को प्राप्त हो जाता है।

त्वत्कथामृतपाथो विहरन्तो महामुदः।
कुर्वन्ति कृतिनः केचिच्चतुर्वर्गं तृणोपमम् ॥[2]

अर्थात् हरिकथा स्वयं ऐसा अमृत है जो स्वर्गामृत और मोक्षामृत से भी श्रेष्ठ है। भक्तगण इस परमामृत समुद्र में महानन्दपूर्वक निरवच्छिन्न रूप से विहार करते हुए धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष इन चारों पदार्थों को तृणवत् समझ कर उनका तिरस्कार कर देते हैं। श्रीप्रह्लादजी[3] की भगवान् श्रीकृष्ण के अवतार स्वरूप नृसिंह के प्रति वचन है, 'आपकी लीलाकथा अमृत को भी तिरस्कृत करने वाली परमात्मस्वरूप है। 'महाराज पृथु तो कहते हैं, 'मेरी तो यही प्रार्थना है कि आप मुझे दस हजार कान दे दीजिये, जिनसे मैं आपके लीला-गुणों को ही सुनता रहूं।[4] क्रमशः परमानन्द को प्राप्त होते हुए राजा परीक्षित कहते हैं कि 'अन्न की तो बात ही क्या, मैंने जल का भी परित्याग कर दिया है। फिर भी वह असह्य भूख-प्यास (जिसके कारण मैंने मुनि के गले में मृत सर्प डालने का अन्याय किया था) मुझे तनिक भी नहीं सता रही है, क्योंकि मैं आपके मुखकमल से झरती हुई भगवान की सुधामयी लीला-कथा का पान कर रहा हूं।[5]

---

१. भागवत ३।२९।११-१२
मद्गुण श्रुतिमात्रेण मयिसर्वगुहाशये। मनोगतिरविच्छिन्नायथा गंगाम्भसो म्बुधौ। लक्षणं भक्तियोगस्य निर्गुणस्य ह्युदाहृतम्। अहेतुम्यव्यवहिता या भक्ति पुरुषोत्तमे ॥

२. भक्तिरसामृत सिन्धु १।१।४०

३. भागवत ७।९।४३

४ न कामये नाथ तदप्यहं क्वचिन्न यत्र युष्मच्चरणाम्बुजासवः।
महत्तमान्तर्हृदयान्मुखच्युतो विधत्स्वकर्णायुतमेष मे वरः ॥
भागवत ४।२०।२४

५. भागवत १०।१।१३

सत्य तो यह है कि जीवमात्र आनन्द के लिए चेष्टा करता है।[१] प्रीति ही जीव का मुख्य प्रयोजन है। प्रीतिका पर्याय है 'कृष्ण-लीला में प्रेम।' परमानन्देच्छुओं के लिए श्रीमद्भागवत में आनन्द रूप श्रीकृष्ण की लीला दस प्रकार से वर्णित की गयी है।[२] जिस समय भी सुकृती पुरुष इसके 'शुश्रूषुभिस्तत्क्षणात्' श्रवण की इच्छा करते हैं भगवान् उसी समय अविलम्ब 'हृद्यवरुध्यते' उनके हृदय में आकर बन्दी हो जाते हैं।[३] श्रीजीवगोस्वामी इसी अभिप्राय से कहते हैं कि श्रीमद्भागवत श्रीकृष्णाकर्षिणी विद्या है।[४] श्रीविश्वनाथचक्रवर्तीपाद ने इसी श्लोक के 'तत्क्षणात्' शब्द की व्याख्या करते हुए भागवत की यह विशेषता बतलाई है कि इसके श्रवण से श्रद्धा के पूर्व ही प्रेमोदय हो जाता है— 'श्रद्धातः पूर्वमेव श्रवणं प्रेमाभवेत्।'[५]

चित्त द्रुति में क्रोध, द्वेषादि से भी परमानन्द की प्राप्ति होती है। ईर्ष्या से होने वाला चित्त का दाह क्रोध कहलाता है। उस क्रोध से होने वाली चित्त की द्रुति में जो रति होती है, वह द्वेष शब्द से कही जाती है।[६] भागवत में कथन है, शिशुपाल को कृष्ण-परक क्रोध होने से परमानन्द की प्राप्ति हुई।[७]

जन्मत्रयानुगुणितवैरसंरब्धया धिया ।
ध्यायंस्तन्मयतां यातो भावो हि भवकारणम् ॥[८]

---

१. न व अरे सर्वस्य कामाय सर्वं प्रियं।
भवत्यात्मनस्तु कामाय सर्वं प्रियं भवति ॥
बृहदारण्यक २।४।५, ४।५।६

२. 'आनन्दस्य हरेर्लीला शास्त्रार्थो दशधा हि सा।' आनन्दस्य इति आनन्दरूपस्य लीला अपि आनन्दरूपा। हरेः च लीला सर्वदुःख हर्त्री, अतो दुःखाभावसुखरूपत्वात् स्वतः पुरुषार्थ रूपा लीला इति
भागवतार्थ प्रकरण कारिका १।३ और उसकी प्रकाश-टीका

३. भागवत १।१।२

४. भागवत—क्रमसन्दर्भ

५. भागवत—सारार्थदर्शिनी

६. भक्तिरसायन २।५

७. (क) भागवत ३।१६।२८
(ख) भागवत ११।५।४८

८. भागवत १०।७४।४६

द्वेषपरक शिशुपाल-दन्तवक्र आदि राजाओं को परमानन्द की प्राप्ति हुई थी।[1] गोपियों को भगवान से मिलने के तीव्र काम से परमानन्द की प्राप्ति हुई थी। इसी से श्रीशुकदेव कहते हैं—

तस्माद् भारत सर्वात्मा भगवानीश्वरो हरिः ।
श्रोतव्यः कीर्तितव्यश्च स्मर्तव्यश्चेच्छताभयम् ॥[2]

अर्थात् अभय पद की इच्छा रखने वालों को श्रीकृष्ण की ही लीलाओं का श्रवण, कीर्तन और स्मरण करना चाहिये।

भागवत में वर्णित श्रीकृष्ण की लीला-कथायें विरक्त परन्तु कृष्ण-लीलानुरागी वक्ता शुकदेव के मुख से निःसृत किंवा संपृक्त होने के कारण स्वयं ही परमानन्द रूप हो गयी हैं— 'शुकमुखादमृतद्रवसंयुतम्।'[3] इनके श्रवण से स्वयमेव परमानन्द की प्राप्ति हो जाती है। प्रमुख श्रोता राजर्षि परीक्षित को यही परमानन्द प्राप्त हुआ था इस जन्म में भी, मृत्योपरान्त भी, सदैव के लिए भी।[4] पद्मपुराण की सम्मति है कि श्रीशुकदेवजी ने प्रेमरस के प्रवाह में स्थित होकर इस कथा को कहा था, अतः परमानन्द प्राप्त करना है तो द्वादश-स्कन्ध रस का पान करें।[5] रचयिता व्यास को भी भागवत-रचना के बाद परम-आनन्द प्राप्त हुआ था।

---

१. भागवत ७।१।३०
२. भागवत २।१।५
३. (क) भागवत १।१।३ श्लोकांश
   (ख) अमृतं परमानन्दः। स एव द्रवो रसः। 'रसो वै सः।' रसं ह्येवायं लब्ध्वानन्दी भवति। वही पर 'भावार्थ दीपिनी'
   (ग) तमेवं नित्यं शृणुयादभीक्ष्णं कृष्णेऽमलांभक्तिमभीप्समानः॥ इति। ततः सामान्यतो रसत्वमुक्त्वा विशेषतोऽप्याह अमृतेति। अमृतं तल्लीलारसः हरिलीलाकथाव्रातामृतानन्दित सत्सुरम् इति द्वादशे श्रीभागवत विशेषणात्। लीलाकथारसनिषेवणामिति तस्य व रसत्वनिर्देशाच्च। सत्सुरामेति। सतोऽत्रात्मारामाः इत्थ सतां ब्रह्मसुखानुभूत्येत्यादिवत् त एव सुरा अमृतमात्र-स्वामित्वात्। अत्रामृतस्वपदेन लीलारसस्य सारं एवोच्यते।
   —वही पर भावार्थ दीपिका प्रकाश वंशीधर कृत
४. पद्मपुराण भागवत माहात्म्य ५।६४।६६
५. पद्मपुराण भागवत-माहात्म्य ६।१०२

मनोवैज्ञानिक पक्ष से जिस परमानन्द की अनुभूति अथवा लीला-रस का आस्वाद होता है, वह उदात्तीकरण है, परन्तु यथार्थ में इसको उदात्तीकरण नहीं कहा जा सकता, दिव्य अर्थ में किंवा भागवतानुसार भगवत-लीला कथा स्वयं भगवत्स्वरूप परमानन्द की मूर्त-विग्रह हैं, लीला-कथा श्रवण से भगवान् स्वयं श्रोता के हृदय में प्रवेशकर उसके हृदय के मल को धौत कर परमानन्द की अनुभूति करा देते हैं। श्रुतियाँ कहती हैं[1]—

दुरवगमात्मतत्वनिगमाय तवात्ततनोश्चरितमहामृताब्धिपरिवर्त्तपरिश्रमणाः ।
न परिलषन्ति केचिदपवर्गमपीश्वर ते चरणसरोजहंसकुलसंग विसृष्टगृहाः ।।

अर्थात् भगवान के विविध अवतारों की लीला-कथाएँ बड़ी मधुर, मादक और कर्णप्रिय होती हैं। उनका सेवन करने से भगवान के प्रेमी परमहंस परमानन्द में मग्न हो जाते हैं और अपवर्ग की भी अभिलाषा नहीं करते।

कलियुग और कृष्ण उपासना

कृते यद् ध्यायतो विष्णुं त्रेतायां यजतो मखैः ।
द्वापरे परिचर्यायां कलौ तद्धरिकीर्तनात् ।।[2]

अर्थात् सत्ययुग में भगवान् का ध्यान करने से, त्रेता में यज्ञों द्वारा उनका आराधना करने से और द्वापर में उनकी पूजा-सेवा से जो कुछ प्राप्त होता है, वह कलियुग में केवल श्रीकृष्ण-नाम संकीर्तन से ही प्राप्त हो जाता है।

एकादश स्कन्ध में करभाजन ऋषि राजा निमि को इस प्रकार कहते हैं— 'नानातन्त्र विधानेन कलावपि यथा ऋणु।'[3] अर्थात् कलियुग में कृष्ण उपासना की विधि सुनो— 'कलियुग में भगवान् का श्रीविग्रह होता है 'कृष्ण-वर्ण' काले रंग का। जैसे नीलमर्मणि से उज्ज्वल कान्तिधारा निकलती रहती है, वैसे ही उनके अंग की छटा भी उज्ज्वल होती है। वे हृदय आदि अंग, कौस्तुभ आदि उपांग, सुदर्शन आदि अस्त्र और सुनन्द प्रभृति पार्षदों से

१. भागवत १०।७।२१
२. (क) भागवत १२।३।५२
(ख) तुलनीय-ध्यायन् कृते यजन् यज्ञैस्त्रेतायां द्वापरेऽर्चयन् ।
यदाप्नोति तदाप्नोति कलौ संकीर्त्य केशवम् ।।
पाद्मोत्तर खण्ड अध्याय ४१
३. भागवत ११।५।३१ श्लोकार्द्ध

संयुक्त रहते हैं। कलियुग में श्रेष्ठ बुद्धि सम्पन्न पुरुष ऐसे यज्ञों के द्वारा उनकी आराधना करते हैं, जिनमें नाम, गुण, लीला आदि के कीर्तन की प्रधानता रहती है। अथवा श्रीगौड़ीयाचार्यों के अनुसार कलियुग में श्रेष्ठ बुद्धि सम्पन्न पुरुष, जिनके मुख में सदा-सर्वदा 'कृष्ण' ये दो वर्ण नृत्य करते रहते हैं अर्थात् जो सदा-सर्वदा भावविभोर होकर कृष्ण-नाम का कीर्तन करते रहते हैं, जिनका वर्ण अर्थात् अंग की प्रभा अकृष्ण अर्थात् उज्ज्वल नीलमणि जैसी पीत वर्ण की है, जो श्रीनित्यानन्द प्रभुरूप अंग, श्रीअद्वैताचार्य रूप उपाङ्ग, कृष्णनाम कीर्तन रूप अस्त्र तथा श्रीगदाधर-श्रीनिवास आदि भक्तरूप पार्षदों से युक्त रहते हैं, उन श्रीकृष्ण चैतन्य महाप्रभुरूप महापुरुष की संकीर्तन प्राय यज्ञ के द्वारा आराधना करते हैं।[1]

भागवत कथा के प्रारम्भ में ही शौककादि ऋषि निवेदन करते हैं— 'कलिमागतमाज्ञाय क्षेत्रेऽस्मिन् वैष्णवे वयम्[2] कलिं सत्वहरं–अर्थात् कलियुग को आया जानकर हम वैष्णव क्षेत्र में बैठे हैं, अन्य कोटि दोषों के साथ कलि अन्तःकरण की पवित्रता और शक्ति का नाश करने वाला है और फिर सूतजी से इसका उपाय पूछते हैं उत्तर में सूतजी कृष्ण उपासना का विधान करते हैं। अभी जो करभाजन द्वारा दिया उपदेश वर्णन किया है वह स्वयं में भागवत का सारांश है तथा कलियुग और अन्तः कृष्ण बहगौरांगकी उपासना की गम्भीरतम व्याख्या है। भागवत में यही कृष्ण प्रतिपादित हैं और उन्हीं की लीला-गान का उपदेश है, जिससे कलि के सम्पूर्ण दोष दूर हो जाते हैं। द्वादश-स्कन्ध के द्वितीय और तृतीय अध्याय में कलियुग के सम्पूर्ण दोष विस्तार पूर्वक शुक मुनि द्वारा कथित है। अधुना वह सब प्रत्यक्ष ही है, इस हृदयंगम प्रसंग पर परिशिष्ट में विचार किया जायेगा।

कलियुग में केवल संकीर्तन से ही सारे स्वार्थ और परमार्थ बन जाते हैं। इसलिये इस युग का गुण जानने वाले सारग्राही श्रेष्ठ-पुरुष कलियुग की

---

१. कृष्णवर्णं त्विषाकृष्णं सांगोपांगास्त्रपार्षदम् ।
यज्ञैः संकीर्तनप्रायैर्यजन्ति हि सुमेधसः ॥ –भागवत ११।५।३२

२. (क) पाखण्डप्रचुरे धर्मे दस्युप्रायेषु राजसु ।
चौर्यानृतवृथा हिंसानानावृत्तिषु वै नृषु ॥ – भागवत १२।२।१३

(ख) वासोऽन्नपानशयनव्यवायस्नानभूषणैः ।
हीना पिशाचसंदर्शा भविष्यन्ति कलौ प्रजाः

– भागवत १२।३।४०

बड़ी प्रशंसा करते हैं, इससे बड़ा प्रेम करते हैं।[1] उपास्य-वर्ग के मध्य में उत्कर्ष-बाहुल्यवश श्रीकृष्ण की मुख्यता है। उत्कर्ष-बाहुल्य का तात्पर्य शक्ति, गुण, विभूति, रस एवं लीलाहेतुक श्रेष्ठता है। कलियुगी जीव उत्कर्ष-बाहुल्य का ही आराधक है। 'नामकरण संस्कार' के अवसर पर गर्गाचार्य कहते हैं— और यह जो सांवला-सांवला है, यह प्रत्येक युग में शरीर ग्रहण करता है। पिछले युगों में इसने क्रमशः श्वेत, रक्त और पीत–ये तीन विभिन्न रंग (वर्ण) स्वीकार किये थे। अब की यह कृष्ण-वर्ण हुआ है— 'शुक्लो रक्तस्तथा पीत इदानीं कृष्णतां गतः।'[2] अतः पर परम पुरुषार्थ प्रदाता भगवान् युग के अनुरूप प्रकट होते और मानव द्वारा पूजित होते हैं। तमालश्यामल कान्ति वाले, यशोदादुग्धपायी परब्रह्म 'कृष्ण' शब्द का रुढ़ित्व है।[3]

स्वयं सर्वव्यापक सर्वशक्तिमान् भगवान् ही शुद्ध सत्वमय विग्रह श्रीकृष्ण के रूप में प्रकट हुये थे। वे जिस समय अपनी लीला संवरण करके परमधाम को पधार गये, उसी समय कलियुग ने संसार में प्रवेश किया। उसी के कारण मनुष्यों की मति-गति पाप की ओर ढुलक गयी। जब तक लक्ष्मीपति भगवान् श्रीकृष्ण अपने चरण-कमलों से पृथ्वी का स्पर्श करते रहे, तब तक कलियुग पृथ्वी पर अपना पैर न जमा सका।[4] पुरातत्ववेत्ता ऐतिहासिक विद्वानों का कहना है कि जिस दिन भगवान् श्रीकृष्ण ने अपने परमधाम को प्रयाण किया, उसी दिन, उसी समय कलियुग का प्रारम्भ हो गया।[5] ये हैं कलियुग के कुछ प्रमाण।

सत्ययुग, त्रेता, द्वापर और कलियुग– ये ही चार युग हैं, ये पूर्वोक्त क्रम के अनुसार अपने-अपने समय में पृथ्वी के प्राणियों पर अपना प्रभाव

---

१. भागवत ११।५।३६

२. भागवत १०।८।१३

३. (क) कृष्णवर्णं त्विषाकृष्णं–लघु भागवतामृत १।२

(ख) कृष्ण शब्दस्य तमालश्यामलत्विषि यशोदास्तन्धय परब्रह्मणि रुढ़िः
— नामकोमुदीकार

४. भागवत १२।२।२९-३०

५. भागवत १२।२।३३

दिखाते रहते हैं ।[1] कलियुग-धर्म का निरूपण करने के बाद अन्त में श्रीशुकदेव परीक्षित से कहते हैं—

कलेर्दोषनिधे राजन्नस्ति ह्येको महान् गुण: ।
कीर्तनादेव कृष्णस्य मुक्तसंग: परं व्रजेत् ।।[2]

अर्थात् यों तो कलियुग दोषों का कोष है तथापि इसमें एक बड़ा गुण भी है कि इस युग में कृष्ण-संकीर्तन से ही सारी आसक्तियाँ दूर हो जाती हैं और परमात्मा की प्राप्ति हो जाती है । निष्कर्षत: कलियुग में कृष्ण नाम संकीर्तन ही एक मात्र साध्य-साधन है ।

अस्तु, उपर्युक्त वर्णन के आधार पर भागवतीय-लीला-प्रबन्ध की योजना का स्वरूप इस प्रकार से निर्धारित किया जा सकता है– 'भा' अर्थात् 'भावना'; ईश्वर के प्रति भावना का होना नितान्त आवश्यक है, इसे आत्यान्तिकी श्रद्धा भी कहा जा सकता है । 'ग' अर्थात् 'गुणानुवाद ।' श्रद्धा का स्रोत प्रवाहित होने पर गुणानुवाद (यह सभी स्कन्धों में है) रूपी निर्मल सलिल में अवगाहन करने की मानसिक इच्छा स्वयमेव जाग्रत होगी । वक्ता के समक्ष श्रोता के मुख से यही नि:सृत होगा 'अथ' 'केन प्रकारेण' (किंवा 'और-और') आदि । 'व' अर्थात् 'व्याकुलता' हृदयानुरंजक गुणानुवाद श्रवण करने पर एकत्र समस्त मानसिक विकारों की परिशुद्धि होगी तथा श्रीकृष्ण-मिलन के लिए अत्युग्र विकलता अभिवर्द्धित होगी, वास्तविक आनन्द प्राप्ति तक । 'त' अर्थात् 'तत्व-ज्ञान ।' अथ इष्ट विषयक ज्ञान होने पर इसकी प्राप्ति होगी । इस प्रकार भागवत के प्रत्येक अक्षर की व्याख्या 'विषय-प्रवेश' नामक इस स्तवक का 'सार-स्वरूप' है । लीलाओं पर विमर्श अगले अध्याय में किया जायेगा ।

---

१. भागवत १२।२।३६

२. (क) भागवत १२।३।५१

(ख) तुलनीय–पुंसां कलिकृतान् दोषान् द्रव्यादेशात्मसम्भवान् ।
सर्वान् हरति चित्तस्थो भगवान् पुरुषोत्तम: ।।

वही १२।३।४५

द्वितीय स्तवक

लीला-दर्शन

लीला-दर्शन

जब अप्राकृत, अवेद्य, अनिन्द्यस्वरूप 'वह' स्वयंको लीला-प्रांगणमें प्रकट करता है, तब उसके प्राकट्यको 'स्वयंप्रकाशता' कहते है। परमतत्व भगवान् श्रीकृष्ण अघटघटनापटीयसी अपनी लीलाशक्तिके साथ भागवत-शास्त्र-प्रांगणमें प्रकट हुए हैं। लीलास्रोत श्रीकृष्णकी यह लीलाशक्ति स्वयं में अचिन्त्यप्रभावा है। वास्तवमें तो यह अपने आश्रय लीलापुरुष पूर्णपुरुषोत्तम श्रीकृष्ण के समानाधिकरण्य ही दुर्विज्ञेय है। 'शक्ति' अपनी अभिव्यक्तियोंसे ही ज्ञेय और अनुमेय होती है। लीलात्मक भागवत प्रबन्ध में लीलाशक्तिकी अभिव्यक्ति और विवृत्ति हुई है।

तदनुसार लीलाशक्ति द्वारा अभिव्यक्त यह सृष्टि-रचना और उसकी प्रक्रिया तथा उसके बाहर-भीतर व्याप्त समस्त क्रिया-कलाप ही भगवल्लीला है। यह लीला निरपेक्ष श्वासोच्छवास के समान स्वाभाविक रूपसे होती रहती है। इसकी प्रवृत्ति भी सहज स्वाभाविक, प्रयोजन-निरपेक्ष एवं याद्दच्छिकी है। भगवानकी क्रीड़ा-विहारकी प्रकृति ही लीला है, किंवा 'स्वरुपानन्द का उद्रेक' ही लीला है।

एक और भी महत्वपूर्ण पक्ष भागवत लीला-शिल्प-विधानसे स्फुरित होता है, यहाँ भगवत्-प्रेमकी प्रपंच लीला है। सर्वजगदाधार, सर्वान्तिर्यामी, लीलाविलासी भागवतीय श्रीकृष्ण जो सम्पूर्ण भगवत्ताके अखिल सार हैं, अपने लीलारसके माधुर्यसे जीवोंको आकृष्ट कर परमानन्द किंवा प्रेम विलास माधुर्यका आस्वादन कराते हैं। उनकी लीलाके वर्णन एवं श्रवण के द्वारा शनैः शनैः शुद्ध सत्व जीवोंको श्रीकृष्णके चरणोंमें श्रद्धा (भक्ति बीज) रति-प्रेमा-भक्ति पल्लवित होती चली जाती है।[1]

भागवतमें विकीरित लीलाओंका इस स्तबकमें समन्वयपूर्ण प्रबन्ध प्रस्तुत किया जायेगा।

लीला और श्रीकृष्ण-लीला

जब कृष्णकी लीलाका वर्णन किया जाता है, तब उन्हें गिरधर,

---

१. भागवत ३।२५।२५

बंशीधर और गोपाल, गोविन्द भी कहते हैं श्रीमद्भागवतमें।[1] 'गोपाल-लीला', 'माखन-चोरी लीला' आदि इन लीलाओंसे न्यूनता नहीं, उत्कर्षता बढ़ जाती है, इससे बढ़कर ऐसी विशिष्टताओंसे सर्गादि सहज लीलाओंसे श्रीकृष्णकी लीलाका पार्थक्य हो जाता है, भक्तोंको आनन्दित करनेके कर्तृपनके सन्दर्भमें। कथित है, वह सर्वकारण-कारण है तो विषय-पुरुष है 'स्वांश।' अर्थात् यह लीला स्वांशपुरुष द्वारा होती है। स्वांशपुरुष स्वयंरूप से अभिन्न होकर विलासकी अपेक्षा अल्प-परिमित शक्ति प्रकाशक होता है।[2] यथा अपने-अपने धाममें संकर्षणादि पुरुषावतार एवं मत्स्यादि लीलावतारगण हैं, उनकी अंशांशिभावसे जो लीला है वह श्रीकृष्णलीलेत्तर है। 'प्रकाशादिवत् नैवं परः'[3], स्मरन्ति च[4], इत्यादि अधिकरणोंमें तद्भाव अर्थात् अंशांशिभाव का कथन है। इस प्रकार स्वांशरुप लीलाको स्वयं श्रीकृष्णकी लीला नहीं कहा जा सकता। यह श्रीकृष्णलीलान्तर है अथवा लीला विशेष हेतु स्वयं प्रभुका जो अन्य प्रकारसे स्वरूप प्रतिभात होता है जो शक्ति प्रकाशमें भी 'प्रायतः' समान है, इसे 'विलासरूप' कहते है। विलासरूप-कृत लीला लीला अवश्य है, पर माधुर्यभाव रहनेसे यह श्रीकृष्णलीला विशिष्ट नहीं। श्रीगोविन्द के विलास परव्योमाधिपति श्रीनारायण हैं और परव्योमाधिपति श्रीनारायणके आदि-व्यूह वासुदेव हैं। यों तो समस्त भगवद्रूप पूर्ण है, इसलिये इनके कार्य अथवा इच्छाको क्रिया नहीं, लीला ही कहा जाता है किन्तु—

लीला प्रेरणा प्रियाधिक्यं माधुर्ये वेणुरूपयोः।
इत्यसाधारणं प्रोक्तं गोविन्दस्य चतुष्टयम्॥[5]

अर्थात् लीलाधिक्य (लीला-माधुर्य), प्रियाधिक्य (परिकर माधुर्य), वेणु-माधुर्य एवं रूप-माधुर्य, ये असाधारण गुण-चतुष्टय गोविन्द स्वरूपमें विद्यमान हैं, नारायण-स्वरूपमें नहीं हैं। यद्यपि नारायण-वासुदेव दोनोंके

---

१. भागवत—अभ्यषिचत दाशार्हं गोविन्द इति चाभ्यधात्।
१०।२८।२३ श्लोकार्द्ध

२. तादृशो न्यूनशक्तिं यो व्यनक्ति स्वांश ईरितः।
संकर्षणादिर्मत्स्यादिर्यथा तत्तत्स्वधामसु॥ लघुभागवतामृत १।१६

× × × × ×

३. ब्रह्मसूत्र २।३।४४

४. ब्रह्मसूत्र २।३।४५

५. भक्तिरसामृत सिन्धु २।१।४३

चतुर्भुजत्वके कारण तथा श्यामताके कारण आकारमें ऐक्य प्रतीत होता है तथापि श्रीराम-भरतकी भांति सेव्य-सेवक भावसे प्रागल्भ्य संकोच हेतुक वैलक्षणत्व है।[1]

इस प्रकार दशम स्कन्ध और अन्य स्कन्धोंमें वर्णनके अध्ययनसे स्पष्ट होता है कि परब्रह्मके रूपमें लीला सदैव चलती रहती है; किन्तु कृष्ण-चरित्र में वैशिष्ट्य-वैचित्र्य-माधुर्यके होनेसे लीला यथार्थमें ही अत्युत्कर्ष रूप धारण कर लेती है; क्योंकि इस चरित्रमें वह यशोदास्तनध्यत्व स्वभाव आदिका त्याग नहीं कर पाते, यही नहीं इस रूपमें उनका यह स्वभाव नित्य ही विधमान है। शंका उठती है कि लीला और श्रीकृष्ण-लीला दोनों ही नित्य किस प्रकार होती हैं। समाधान है - लीला तो क्रिया विशिष्ट है, क्रियाकी सिद्धि प्रत्यंशमें आरम्भ एवं पूर्तिके द्वारा होती है (अचिन्त्यशक्तिके कारण श्रीकृष्णकी द्विरूपताका सन्दर्भ)। आरम्भ एवं पूर्तिके अभावमें उसका स्वरूप बनता ही नहीं। परेश हरिमें 'एकोऽपि सन् बहुधा यो विभाति-एकानेक स्वरूपाय'[2] इत्यादि प्रमाणसे एक ही समयमें अनन्त आकार प्रतिष्ठित है। 'स एकधा भवति द्विधा'[3] से पार्षदोंका आनन्त्य 'परमं पदमवभाति भूरि,'[4], इत्यादिसे स्थानोंका आनन्त्य सूचित होता है। अतएव दोनों ही रूपोंमें लीला नित्य है। तत्तदाकादिगत आरम्भ पूर्तिकी उपस्थितिमें भी एकस्थलमें वह लीलांश जब तक समाप्त अथवा असमाप्त नहीं होता जब तक अन्यत्र वही लीलांश आरम्भित हो जाता है, इस प्रकार अविच्छेदके कारण नित्यत्व सिद्ध है।[5] इस प्रकार श्रीमद्भागवत में वर्णित इतर लीला और श्रीकृष्ण-लीला (विशिष्टमय) दोनोंका ही नित्यत्व है।

---

१. ज्ञान शक्त्यादिक कला यत्राविष्टो जनार्दनः।
त आवेशा निगद्यन्ते जीवा एव महत्तमाः॥
वैकुठेऽपि यथा शेषो नारदः सनकादयः।
अक्रूर दृष्टास्ते चामी दशमे परिकीर्तिता॥ —लघुभागवतामृत १।१७

२. गोपालपूर्वतापनी १।५

३. छान्दोग्योपनिषत् ७।२६-२

४ गोपालपूर्वतापनी १।१७

५ तत्तदाकारादिगतयोस्तत्तदारम्भपूर्त्योः सत्वेऽप्येकमेकत्र तत्तल्लीलांशायावत् समाप्यन्ते न वा तावदेवान्यत्रारब्धास्ते भवेयुरित्येवमविच्छेदात् सिद्धं नित्यत्वम्। — लघुभागवतामृत पृष्ठ १५२

लीला-प्रपंच विरक्त श्रीकृष्ण भक्तोंके विनोदार्थ विभिन्न क्रिया करते हैं और स्वयं ही रस निर्यासका आस्वादन करते हुये लीला-चरित्रको लीला-प्रपंचमें प्रकट करते हैं। भागवतके सभी श्रोता मंत्रमुग्ध होकर श्रीकृष्ण-लीलायें सुनते हैं। श्रीकृष्णेतर लीलामें तो शुकदेव, व्यास, नारद, उद्धव किसीका भी मन नहीं रमता।

जिस समय कृष्ण-अवतार-चरित्र पृथ्वी पर अवतीर्ण हुआ, जगतका भार हरण-काल भी उसीके साथ उपस्थित हुआ। भागवतसे विदित है कि स्थितिकर्ता विष्णु पृथ्वीके भारहरणार्थ भार-प्राप्तकर्ता हैं। भूभार-हरण श्रीकृष्ण का कार्य नहीं है। उनके अवतरणके समय भार-हरण-काल उपस्थित होने पर स्वयं भगवान् कृष्णमें नारायण, वासुदेव-संकर्षण-प्रद्युम्न-अनिरुद्ध, मत्स्यादि अंशावतार समूह, युगावतार और मन्वन्तरादि सभी प्रवेशकर अवतीर्ण हुए थे। स्वयं भगवान् कृष्ण अखिलावतारोंके आश्रय हैं ही। अपनेमें प्रविष्ट विष्णुके द्वारा ही कृष्ण असुरोंका संहार कराते हैं[1] और श्रीमद्भागवतमें जहाँ कहीं भी श्रीकृष्णको विष्णुका अवतार कहा गया है वह इसी दृष्टिकोणको ध्यानमें रख कर ही। असुरमारण लीला अंशस्वरूप कृष्णमें प्रविष्ट विष्णुकी है किंवा यह कृष्णका आनुषंगिक कार्य है। कृष्ण-लीलाका तात्पर्य जगतमें राग-भक्तिका प्रचार कर प्रेमरस-निर्य्यासका आस्वादन करना है। यही कृष्णकी नित्यवृति है।

स्थायिभावोंके मध्य परमोत्कृष्ट मधुर रतिके सामग्री योगसे जो सर्वश्रेष्ठ रस प्रकाशित होता है, उसी रसका आस्वादन भगवान् श्रीकृष्ण अपने भक्तोंके साथ करते हैं, कृष्णेतर लीलामें स्वयंरूपकी यह चमत्कारिता सम्भव नहीं है। मत्स्य–कूर्म–वराहादि लीलाओंके बाद रामादिकी लीला भी जगतमें प्रकाशित हुई पर इन लीलाओंमें जो रसचमत्कारित्व प्रकट नहीं हुआ, वह कृष्ण-लीलामें आलोकित हुआ।

श्रीकृष्णका माधुर्य स्वतःसिद्ध है, यह लीला–वैशिष्ट्य नित्यसिद्ध है। विश्व-प्रपंचादि कृष्णेतर-लीलामें पारमैश्वर्य प्रकटित है; परन्तु कृष्ण-लीलामें तो ऐश्वर्यका आच्छादन और माधुर्यका प्रकटन है। बध, संहारदि सभी बहिरंग लीला एश्वर्यको ज्ञापित करती है, जबकि चीर-हरणदि अन्तरंग लीला माधुर्यको विज्ञापित करते हुये स्वयं-श्रीकृष्णकी है।

---

१. भागवत २।४।१२

लीला : अर्थ विमर्श

सभी भागवत आचार्योंने लीलाका सामान्य अर्थ 'क्रीड़ा' अथवा 'खेल' प्रतिपादित किया है। 'लोकवत्तु लीला केवल्यम्'[1] प्रसिद्ध ही है। अनेक परिभाषाओंसे 'लीला'को परिभाषित किया गया है, जिनके द्वारा 'लीला, के फल-निरपेक्ष प्रवृत्ति', 'रहस्यपूर्णव्यापार', 'शृंगारभाव-चेष्टा' आदि अर्थ-प्राप्त होते हैं। श्रीकृष्णलीलाके ये सभी अर्थ श्रीमद्भागवतमें सुघटित होते है। जहाँ प्रथम स्कन्धसे नवम स्कन्ध तक श्रीकृष्णलीलाके 'फलनिरपेक्ष' और 'रहस्यपूर्ण व्यापार' आदि अर्थ सम्बद्ध है, वहीं दशम स्कन्धमें 'लीला' के शृंगारपरक अर्थका आभास होता है। भागवतका सम्पूर्ण वर्णन श्रीकृष्णकी लीला है, भागवतके इस निष्कर्ष-सारमें लीलाके सभी अर्थ स्वयमेव समाविष्ट हैं।

काव्यशास्त्रात्मक अर्थ

प्रमुख रूपसे काव्यशास्त्रीय अर्थ रति-प्रसंग लीलाओं से सम्बद्ध हैं। यथा रतिचक्र प्रवृते तु नैव शास्त्रं न चक्रमः।[2] अर्थात जिससमय नायक और नायिका दोनोंमें उद्भट भाव उत्पन्न होता है उस समय किसी शास्त्रकी और न ही कोई क्रम-मर्यादा रहती है, तब तो सर्वत्रलीला होती है। भागवतमें वर्णित चीरहरणलीला और प्रमुख रूपसे रासलीला इसी अर्थसे सम्बन्धित है।

यौवनावस्थामें रमणियोंके कान्तके प्रति सर्व प्रकारसे अभिनिवेशके कारण उक्त कान्त सम्बन्धी चेष्टाओंसे समुद्भुत भाव द्वारा आक्रान्त चित्तमें विभिन्न अलंकार प्रकाशित होते हैं।[3] लीलादिमें इनमें-सेभाव, हाव तथा हेला अंगज, शोभा, कान्ति, दीप्ति, माधुर्य, प्रगल्भता, औदार्य, तथा धैर्य अयत्नज

---

१. ब्रह्मसूत्र २।१।३३

२. सर्व तत्वार्थ पदार्थ लक्षण संग्रह : भिक्षु गौरीशंकर भार्गव भूषण मुद्रणालय, बनारस, सम्वत् २००६ पृष्ठ १७५

३. (क) भावो हावश्च हेला च प्रोक्तास्तत्र त्रयोऽङ्गजा।
शोभा .... ॥
.... सप्तैव स्युरयत्नजाः।
लीलाविलासो .... ॥
.... ।
.... दश तासां स्वभावजाः ॥

—उज्ज्वल नीलमणि अनुभाव प्रकरण २-५ श्लोक

(ख) हेला लीलयेतपि भाव क्रिया शृंगार भावजाः। अमरकोश

लीला विलास, विच्छित्ति, विभ्रम, किलकिंचित, मोट्टायित, कुट्टमित् विव्वोक, ललित तथा विकृत स्वभावज है। भागवतके राग प्रसंगोंमें ये सभी सत्वगुण अनुभावित होते हैं। शुद्ध सत्वका अविक्रियमाण स्वभाव होता है।[1]

श्रीरूपगोस्वामीके अनुसार 'प्रियानुकरणं लीलारम्यैवेषक्रियादिभिः'[2] अर्थात मनोहर वेश क्रियादिसे प्रियका अनुकरण लीला है। प्रियानुकरण भी शृंगारभाव है जो चेष्टा अथवा कृतिसाध्य होनेसे शृंगार-भाव-चेष्टा कहा गया है।[3] प्रिय समागमको न प्राप्तकर सकनेपर प्रिया अपने मनको बहलानेके लिए प्रियके वेश, गति, दृष्टि, हँसी और भाषण द्वारा जिस प्रकारसे प्रियका अनुकरण करती है, काव्यपक्षमें यह लीला है। श्रीकृष्णके विरहमें गोपियोंकी दशा-लीला इसी अर्थसे सम्बन्धित है।[4]

दार्शनिक अर्थ

द्वितीय स्तवकके प्रारम्भमें जो कृष्णेतर लीलाका वर्णन किया है, वह लीलाके दर्शनपरक अर्थसे सम्बन्धित है। जीवनका अर्थ है 'तत्वजिज्ञासा'। सृष्टिके आरम्भसे ही प्राणि–मात्रकी जिज्ञासा सृष्टि और उसके स्रोतके प्रति कायम रही है। सृष्टिकर्ताने इस प्रलयोन्मुख सृष्टिकी रचना ही क्यों की है? भागवतप्रकाशक व्यास भी जब इस जटिल प्रश्नका समाधान नहीं करसके, तब नारदने व्यासको अवगत कराया 'यही तो लीला है, अथ व्यासने स्वयंरूप श्रीकृष्ण-लीला और सर्गादि विश्वात्मक कृष्णेतर लीला जो उनके अंशाशि-भावसमूह द्वारा सम्पन्न होती है, का श्रीमद्भागवत रूपमें निबद्ध किया।[5]

दर्शनपरक अर्थोंमें-से एक पक्षके अनुसार यह सृष्टि 'क्रीड़ार्थ' है।[6] वल्लभाचार्य तो इसके लिए 'लीला' शब्दका ही प्रयोग करते हैं। उनके

१. देहात्मकं भवेत्सत्वं सत्वात् भावः समुत्थितः।
वागंगमुखरागैश्च सत्वेनाभिनयेन च ॥
कवेरन्तर्गतं भावं भावयन् भाव उच्यते ॥
उज्ज्वल नीलमणि पृष्ठ ३२५-३२६ में भरतमुनि वचन उद्धृत

२. उज्ज्वल नीलमणि कारिका ११/१६ अनुभाव प्रकारण

३ भागवत १०।३०।१४ से २३

४. भागवत २।४।७

५. भागवत २।६।४५

६. माण्डूक्य कारिका ९, गीताप्रेस, गोरखपुर २०१३

अनुसार सृष्टि रचना परेशका स्वभाव है ।[१] जो आप्तकाम, अकाम और पूर्णकाम है, उसके इच्छा ही क्या हो सकती है।[२] श्रीरामानुज भी अपने श्रीभाष्यमें यही मत व्यक्त करते हैं ।[३] निम्बार्क भी यही मानते हुए लीलाका अर्थ 'प्रयोजन निरपेक्ष प्रवृति' ग्रहण करते है[४] परमेश्वर 'क्रीड़ान्निव' (क्रीड़ा करता हुआ सा) असंख्य बार सृष्टि और संहार करता है ।[५]

ब्रह्मसूत्र 'लोकवत्तु लीला कैवल्यम्' के शांकर-भाष्य पर दृष्टिपात किया जाय तो वहाँ भी 'लीला' के उपर्युक्त अर्थका पक्ष किया गया है । तदनुसार बिना किसी अतिरिक्त प्रयोजनके 'क्रीड़ा विहारकी प्रबृति' ही लीला है अथवा बिना किसी बाह्य प्रयोजनके निरपेक्ष श्वासोच्छवासके समान 'स्वाभाविक प्रवृत्ति' ही लीला है ।[६]

पुष्टिमार्गका निश्चय है कि भगवानकी 'विरुद्धधर्माश्रियता' ही सभी लीलाओंकी मूलभूत मौलिक लीला है [७]प्रियाविरह तथा तद्-उद्भूत कष्टादि भगवानके पूर्णत्वमें बाधक नहीं है, ऐसी विरुद्धधर्माश्रयताको गोपीनाथ कविराज 'लीला' मानते हैं ।[८] श्रीवल्लभने 'लीला' को विलासेच्छा कहा है ।

श्री चैतन्यप्रभूका मत है कि 'लीला' ईश्वरकी अचिन्त्य शक्तिका विलास है ।[९] शक्तिपरिणामवादी श्रीचैतन्य सम्प्रदायके आचार्य 'स्वरूपानन्दके उद्रेक' को लीला मानते हैं ।

इस प्रकार लीलाके फल-निरपेक्ष-प्रवृति अर्थ रूपमें उपर्युक्त वर्णनके आधारपर कहा जा सकता है कि लीला यादृच्छिकी प्रवृति है किंवा लीला 'लीलाके लिये' है ।

---

१. ब्रह्मसूत्र २।१।३३ अणुभाष्य
२. माण्डूक्य कारिका आत्म प्रकरण कारिका ९
३. ब्रह्मसूत्र २।१।३३ श्रीभाष्य
४ ब्रह्मसूत्र, वेदान्त-पारिजात सौरभ
५. मनुस्मृति १।८०
६. ब्रह्मसूत्र २।१।३३ शांकर भाष्य
७. विद्वन्मण्डनम् (निष्कर्ष सहित) विट्ठल स्वामि निर्णय सागर प्रेस, १९२६ ई०, पृष्ठ १६२
८. भारतीय संस्कृति और साधना, दूसरा भाग, बिहार राष्ट्रभाषा परिषद्, पटना, ई० १९६४, पृष्ठ २५८
९. चैतन्य चरितामृत 'आदि लीला' पद संख्या १०२

दर्शनपरक अर्थमें दूसरा पक्ष लीलाका अर्थ रहस्यपूर्ण व्यापार प्रतिपादित करता है। रहस्यपूर्ण व्यापार अर्थमें लीला अघटित-घटनका पर्याय है। अघटित-घटन कृतिको प्रकृष्ट कृति होनेके कारण प्रकृति कहा जाता है।[1] सर्वाश्चर्यकारी और उत्तम कृति ही लीला है। लीला कर्त्ताका यह स्वकीया भाव है। प्रकृति शब्दके दो अर्थ होते हैं—रूढ़ और यौगिक। रूढ़ अर्थ स्वभाव है और यौगिक अर्थ है, प्रकृष्टा कृति। प्रकृतिकरणाकरणान्यथाकरण अर्थात् अद्भुत कर्मत्व। श्रीकृष्ण साक्षात् परब्रह्म हैं इसलिए दोनों ही अर्थ श्रीकृष्णसे समन्वित है। समस्त वस्तुओंके प्राकृतत्वका लय करके श्रीकृष्ण अपने लीला-स्वरुप और नाम तथा स्वभावके द्वारा अपने आनन्दस्वरूपको भक्तोंमें प्रवेश कराके भक्तोंको आनन्दकी अनुभूति करा देते है।[2]

डा० जगदीश भारद्वाज लिखते है कि रहस्यपूर्ण व्यापार और इस व्यापार के असाधारण कारण अथवा करण इन दोनों अर्थोमें भी 'लिंगोपहित लैंगिक भान' न्यायसे लीला शब्दका व्यवहार होता है।[3]

भगवानके दिव्यजन्म और कर्मके लिए भी 'लीला' शब्दका व्यवहार होता है।[4] परम व्यापक परब्रह्मका देवकीके उदरमें व्याप्त होना, यशोदाके क्रोड़में क्रीड़ा करना, विभिन्न रूपों एवं स्थितियोंमें प्रकट होते हुए भी वस्तुत: उसका अविभक्त, अविकृत और अव्याप्त रहना, ऐसी अद्भुत विलक्षणताओंके लिए भी लीला शब्दका प्रयोग होता है। विरुद्धधर्माश्रयता लीला-से इन कृष्णके व्यापारोंकी रहस्य, मयता, अलौकिकता और लीलामयता स्पष्ट ही है।

---

१. प्रकृष्टा सर्वोत्तमा सर्वाश्चर्यं करोति यावत या कृतिः करणं लीलेति यावत् सा प्रकृति—कल्याण 'कृष्णांक' गीताप्रेस, गोरखपुर पृष्ठ ६६

२. वही

३. कृष्ण काव्यमें लीला वर्णनः निर्मल कीर्ति प्रकाशन, दिल्ली-१६, पृष्ठ ६

४. कल्याण 'कृष्णांक' लेखः 'भगवद्-विग्रहः' : गोपीनाथ कविराज पृष्ठ ४२

भागवतमें रहस्यपूर्ण व्यापार अर्थमें लीला शब्दके कई पर्याय परिलक्षित होते है यथा-विचेष्टित[१], अद्भुत व्यापार[२], केलि[३], आचरित[४], मायात्व[५], विक्रीड़ित[६], चेष्टा[७], नाट्य[८], नृलोकका अनुशीलन[९] मनुष्य पदवी का अनुवर्द्धन[१०], चरित[११] और विनोद आदि।

अस्तु, रहस्यपूर्ण व्यापार अर्थमें नानात्वमें अद्वितीयत्व और अद्विती-यत्वमें बहुत्वकी अनिवर्चनीया स्थिति लीला है। स्वयं प्रकाशके प्रकाशसे जो कुछ भी प्रकाशित है वह उस अद्वितीय सत्ताका ही सत्य है और इस सत्य की केलि उस सत्यकी लीला है जो रहस्यपूर्ण तो है ही।

व्युत्पत्यात्मक विविध अर्थ :

भागवतके आचार्य जैसे-जैसे दुर्विज्ञेय 'लीला' का अर्थ समझते गये, लीलाको परिभाषित करते चले गये। शब्द अपने अर्थका बोधक होता है, अत: लीला शब्दसे ही लीलापरक कई अर्थ हुए। 'लीला' शब्दकी व्युत्पत्ति है—लयनमेव ली (क्विप् प्रत्यय होनेके पश्चात् ली धातुसे ली शब्द निष्पन्न होता है) लियं-लयनम् लाति इति लीला: अर्थात् 'ली' ही लय है। 'ली' शब्दसे आदानार्थक अथवा सम्पादनार्थक 'ला' धातुके लाति या प्रेरणार्थक क्रियारूप लाप्यतिके 'ला' अंशको लेकर 'लीला' शब्द निष्पन्न होता है।[१२]

'ली' शब्दके विभिन्न अर्थ है[१३] जैसे 'संश्लेष'। संश्लेषका अर्थ है 'मिलाना' अर्थात् चित्तको वृत्तिको ध्येयमें (इष्ट में) तन्मय कर लेना। तल्लीनताका सम्पादन करने वाली यह स्थिति अथवा क्रिया 'लीला' है। दूसरा अर्थ है 'प्रकृतिका विरुद्ध परिणाम'। इसको कार्यका कारण में समावेश भी कह सकते है। ये दोनों ही अर्थ प्रलयार्थक है। 'प्रलय' का विस्तार इसी स्तबकमें किया जायेगा।

---

१. १०।११।१२   २. १०।६।४४   ३. १०।१२।४०
४. १०।१३।११   ५. १०।१३।२३   ६. १०।१३।६१
७. १०।१४।१८   ८. १०।२३।३६   १०।५२।७
१०. १०।५८।७   ११. १०।७०।४४
१२. शब्द कल्पद्रुमः चतुर्थ भाग पृष्ठ २२४
१३. सर्वतत्वार्थ पदार्थ लक्षण संग्रह पृष्ठ १७४

एक अर्थके अनुसार 'ली' शब्दका अर्थ है भाव अर्थात् निर्विकार चितकी प्रथम विकृतिके मध्य स्थित काम। इनको प्रकट करनेवाली श्रृंगार-भाव चेष्टायें और अनुभाव आदि भी लीला है। इसी प्रकार तौर्यत्रिक (गीत, वाद्य और नृत्य) का साम्य अर्थात् गीत-वाद्य और हस्त-पाद आदि के संचालनमें क्रिया और कालकी परस्पर समताका सम्पादन करनेवाली स्थिति भी 'लीला' शब्दसे अभिहित है। लय[1] के द्विपदी, लतिका आदि चालीस प्रकार है। भगवान् श्रीकृष्ण इन लयोंके वशवर्त्ती है। 'रासलीला' में इस लयकी स्थिति विशेषतया रहती है।

अन्य अर्थके अनुसार सत्व, रज और तम—इन तीन गुणोंकी परस्पर आवरणात्मकता या इनका एक-दूसरेको अभिभूत कर लेनेकी सम्पादिका क्रिया 'लीला' है। इसी प्रकार निर्विकल्प समाधिमें अखण्ड तत्व ब्रह्मके अव लम्बन करनेमें असमर्थ चित्तवृत्तिकी निद्राका सम्पादन करने वाली स्थिति या क्रिया भी 'लीला' कही जाती है।

निग्रह और अनुग्रहके गौण मुख्य भावके लयको सम्पादित करने वाली समरसता भी लीला है। आत्मविलासकारके विचारसे यह चरम अनुभूति वर्णनका विषय नहीं हो सकती।[2]

लीलाका एक सुपरचित अर्थ है 'निरोध'। इस पक्षमें लीलाकी व्युत्पत्ति होती है 'लियं लाति इति लीला'। जीवों के हृदयमें आनन्द तिरोहित अवस्थामें रहता है। तिरोहितानन्दस्य लयं लाति इति लीला, अर्थात् तिरोहित आनन्दके तिरोभावका लय प्रस्तुत करने वाली भक्त-हृदय-प्रवेशकी विशिष्ट स्थिति या क्रिया ही लीला है। जब तक इस तिरोहित आनन्दांशका आविर्भाव नहीं होता तब तक जीवका बद्धत्व बना ही रहता है। जब इसका आविर्भाव हो जाता है तब जीव और ब्रह्म का साम्य (जीवके लिये ब्रह्मका परिकरत्व) सुलभ हो जाता है।

---

१. शब्द कल्पद्रुमः चतुर्थ भाग पृष्ठ २०७—लीयन्ते श्लिष्यन्ते तेन इति, लयन्ति व्रजन्ति साम्यं गीतादयोऽत्रेति वा लयः।

२. आत्मविलास पृष्ठ ८३

लीलाकी उपर्युक्त परिभाषाओंके रूपमें जो अर्थ सम्पत्ति प्राप्त हुई, उसके वर्णनके बाद भागवतका लीलाके सम्बन्धमें अपना क्या दृष्टि कोण है, इसपर विचार किया जाता है।

भागवतका लीलात्मक दर्शन :

भागवतके उत्तरलित हृदय-सागरकी सुमधुरिम भाव लहरियाँ है लीलाएँ।

भागवतके प्रथम-स्कन्धमें प्रभास-लीला (यह आनुषंगिक लीला है) का वर्णन किया गया। पश्चात् विभिन्न स्कन्धोंमें लीलाओंकी चर्चा करते हुये प्रधान निरोध स्कन्धमें रसधारा श्रीकृष्णावतार लीलाका विवेचन मुक्त भावसे किया। 'रसौ वै सः' श्रीकृष्णकी अखिल लीलाएँ स्वाभाविक रूपसे भाव-प्रधान और रसमयी है,साथ ही नित्य भी। यही लीलार्थत्व, रसत्व और भावत्व भागवतके लीलात्मक दर्शनमें सन्निहित है।

सच्चिदानन्द भगवत् स्वरूप अभिव्यंग्य है और लीलाएँ इस स्वरूपकी अभिव्यक्ति है' सच्चिदानन्द रूपमें ही। अभिव्यंग्य और अभिव्यक्तिकी अन्योऽन्य अन्यूनताका सुन्दरतम उदाहरण श्रीकृष्ण लीलाएँ हैं। श्रीकृष्ण के अन्यान्यावतारोकी भागवत वर्णित लीलाएँ इस प्रबन्धका प्रतिपाद्य नहीं है। पूर्ण अवतार हैं श्रीकृष्ण और भगवद्गुणों की मधुरतम अभिव्यक्ति भी कृष्ण लीलाओं द्वारा होती है।[१]

भागवतका भाव-वैशिष्ट्य प्रीतिरूप है। भावसमूह अभिसम्पन्न होकर रस-रूपताको प्राप्त होता है। रसास्वादनकी स्थिति लीलार्थ-वैशिष्ट्य है। भावकी पराकाष्ठा है, अनुराग और उसका मूल भी अनुराग है। जिस प्रकार भगवत्-शब्दकी श्रीकृष्णमें पराकाष्ठा है, उसी प्रकार भाव अथवा महाभाव भी स्वयं भगवत् शब्दवत् है।[२] अनुरागकी परम इयत्ता है

---

१. कृष्ण काव्य में लीला वर्णन पृष्ठ ३७८

२. भागवत १२।४।४०, १०।८७।२१

३. अनुरागः स्वसंवेद्यदशां प्राप्य प्रकाशितः।
यावदाश्रय वृत्तिश्चेद्भाव इत्यभिधीयते॥ — उज्ज्वल नीलमणि पृष्ठ ५०६

कृष्ण प्रीति-वांछा (कृष्णको सुखी करने कीप्रवृति)। यह भाव है व्रजदेवियों में। भावकी अनिर्वचनीय अवस्था 'औपपत्य भाव' है इन ग्वालिनोंमें। पट्टमहिषियोंमें इसकी सम्भावना नहीं है। पट्टमहिषियोंका श्रीकृष्णसे वैवाहिक सम्बन्ध है और विवाह सम्बन्धमें जो वैध और मर्यादित प्रीति है, उसे माधुर्य (सर्वोत्तम) लीला नहीं कहा जा सकता है।

प्रेम प्रधान भागवतके प्रतिपाद्य श्रीकृष्णका चरित्र भी प्रेम-प्रधान है। उनकी वल्लभाओंका प्रेम चन्द्रमाकी भांति त्रिलोकको आह्लादित तथा प्रलय-कालीन सूर्यकी भांति सन्तापित कर तद्वत विराजमान रहता है।[1] मुकुन्द-महिषियोंको भी यह संवेद्य नहीं है और उनमें यह प्रीति सर्व-प्रकार से दुर्लभ है। इनमें समंजसा रति विद्यमान है। संभोगकी इच्छा रहने पर प्रेम उत्कर्ष सीमाको प्राप्त नहीं होता।[2] ये महिषियाँ श्रीकृष्णके हृदयमें प्रतिष्ठित नहीं है, लीला वपुके हृदयमें व्रजवालायें अधिष्ठित है। क्योंकि श्रीकृष्णके हृदय को उनकी ही महिषियाँ अपने रूप-गुण-सौन्दर्य-हाव-भाव से विकृत नहीं कर पातीं, जबकि व्रजगोपियोंसे नेत्र मिलते ही उनके हृदयमें विकृति चमत्कारित्व उदित हो जाता है, वे कृष्णकी प्राण-स्वरूपा बन जाती हैं। भागवतके प्रारम्भमें ही कहा गया है—

उद्दामभावपिशुनामलवल्गुहासव्रीडावलोकनिहतोमदनोऽपि यासाम्।
सम्मुह्य चापमजहात्प्रमदोत्तमास्ता यस्येन्द्रियं विमथितुं कुहकैर्न शेकुः॥[3]

अर्थात् राजमहिषियोंकी निर्मल और मधुर हँसी उनके हृदयके निगूढ़ भावको सूचित करने वाली थी, जिनकी लजीली चितवनकी चोट-से बेसुध होकर विश्वविजयी कामदेवने भी अपने धनुषका परित्याग कर दिया था, वे कमनीय कामिनियाँ अपने काम-विलासोंसे श्रीकृष्णके मनमें तनिक भी क्षोभ नहीं पैदा कर सकीं।

---

१. आह्लादयन्नमृतरश्मिरिव त्रिलोकी सन्तापयन् प्रलय सूर्य्य इवावभाति।
— उज्ज्वल नीलमणि पृष्ठ ५०६ में उद्धृत प्रेमसम्पुटकारका वचन

२. मुकुन्दमहिषीवृन्दैप्यसावति दुर्लभः।
व्रजदेव्येकसंवेद्योमहाभावरव्ययोच्यते॥—उज्ज्वल नीलमणि पृष्ठ ५११

३. भागवत १।११।३६

निस्संदेह श्रीकृष्णके सम्पूर्ण प्रयास-चेष्टा-हाव-भाव-श्रृंगार करताड़न पादचालन सर्वस्व लीलामें सन्निहित है, किन्तु भागवत तो भाव-लीलार्थ प्रधान ग्रन्थ है और जब रमणी-रत्नोंके भाव रसिक शेखरको विचलित नहीं कर पा रहे है, तब इन भावोंको लीला-सहायक किंवा लीला तो नहीं कहा जा सकता। दशम स्कन्धमें शुकदेव पुनः परीक्षितसे कहते है–

स्मायावलोकलवदर्शितभावहारिभ्रूमण्डलप्रहित सौरतमन्त्रशौण्डैः ।
पत्न्यस्तु षोडशसहस्रमनंगबाणैर्यस्येन्द्रियं विमथितुं करणैर्न शेकुः ॥[1]

अर्थात् वे पट्टमहिषियाँ सोलह हजारसे अधिक थीं। अपनी मन्द-मन्द मुस्कान और तिरछी चितवनसे युक्त मनोहर भौंहोके इशारेसे ऐसे प्रेमके बाण चलाती थीं, जो काम-कलाके भावों से परिपूर्ण होते थे। परन्तु किसी भी प्रकारसे. किन्हीं साधनोंके द्वारा, वे भगवानके मन एवं इन्द्रियोंमें चाञ्चलय उत्पन्न नहीं कर सकीं।

इस प्रकार अपने विभ्रमोंसे वनितायें श्रीकृष्णमें चंचलता उत्पन्न नहीं कर पा रही है। भव्य प्रासादोंमें श्रृंगारिक-वातावरण होते हुये भी सोलह सहस्त्र रानियोंके मध्य एक राजाका रहना तो निश्चयेन लीला है, लीलाके रहस्यपूर्ण व्यापार अर्थ से यह प्रसंग सम्बद्ध है, अविचलन भी श्रीकृष्ण का लीला-वैचित्र्य है, परन्तु भागवत प्रतिपाद्य भावमयी लीलार्थमें लीला न होनेके कारण लीला रहते हुये भी यहां लीला-अभाव है। एकादश स्कन्धमें देव-स्तवमें पुनः यही बात कही गयी है, उसी ही रूपमें–

"स्मायावलोक... ।
.... विमथितुं करणैर्न विभ्व्यः ॥[2]

भावसे रसकी निष्पत्ति होती है। रसकी धारा हृदय (दशम स्कन्ध) में प्रवाहित होती है। माँ यशोदा रज्जुसे श्रीकृष्णको बांधनेमें किसी प्रकार समर्थ हो जाती है 'दामोदर लीलामें'। किन्तु यहाँ भी उदरका बन्धन है, हृदयका बन्धन तो ब्रजगोपियोंके साथ है। रसत्व और भावत्व ऐश्वर्य-गोपन, माधुर्य-प्रकटन ही भागवतकी लीला सम्बन्धिनी दृष्टि है।

---

१. भागवत १०।६१।४
२. वही ११।६।१८

अनादिरादिगोविन्दः सर्वकारणकारणम् :

पंच लक्षणयुक्त पुराणोंसे दश लक्षण विशिष्ट श्रीमद्भागवतका वैशिष्ट्य सर्वोत्तम है। इनमें दश लक्षण यथा–सर्ग, विसर्ग, स्थान और मन्वन्तरादिके अन्तिम आश्रय रूप लक्षण भगवान श्रीकृष्ण ही हैं। श्रीमद्-भागवत-प्रतिपाद्य तत्व श्रीकृष्ण स्वयंरूप, अनादि एवं सर्व विष्णु-वैष्णव-तत्त्व के आदि और सर्वाखिल कारणोंके परम कारण हैं।[1] भागवतका सम्पूर्ण प्रबन्ध श्रीकृष्णकी ही लीला है निःसन्देह भागवतमें कई स्थलों पर ब्रह्माको सृष्टिकर्त्ता, विष्णुको स्थितिकर्त्ता और शिवको संहारकर्त्ता बताया गया है, तथापि इन सबके मूल कारण श्रीकृष्ण ही हैं; क्योंकि ब्रह्मा स्वयं श्रीकृष्णके अंशांश-कला श्रीगर्भोदशायी विष्णु (द्वितीय पुरुष)[2] के नाभिकमलसे उत्पन्न गुणावतार हैं: इनमें श्रीकृष्णअपनी शक्तिका प्रवेश कराकर-ब्रह्माण्डकी सृष्टि कराते हैं। श्रीकृष्ण देवताओंके परम देवता, प्रजापतियोंके परम प्रजापति और विष्णु, शिव आदि ईश्वर रूप रहनेपर भी ये ईश्वर-समूहमें परमेश्वर है।[3] अखिलैश्वर्य, अखिल वीर्य, अखिल यश, अखिल श्री, अखिल ज्ञान और अखिल वैराग्य श्रीकृष्णमें ही विद्यमान है।[4] यह परमतत्व परमानन्दमय है, पूर्ण-ब्रह्म है, सम्पूर्ण भूतोंका हेतुभूत है और अवतार धाम परिकर लीला व सकल जगत्-सम्पत्तिका परमाश्रय है।[5]

---

१. (क) भागवत. १।८।१८, ४।११।१६

(ख) ईश्वरः परमः कृष्णः सच्चिदानन्दविग्रहः।

अनादिरादिर्गोविन्दः सर्वकारणकारणम्॥ – ब्रह्मसंहिता ५।१

२. ब्रह्मसंहिता ५।४६

३. तमीश्वराणां परममहेश्वरं तं देवतानां परमं दैवतम्।

पति पतीनां परमपरस्ताद् विदामः ते भुवनेशेशम्॥

- श्वेताश्वर उपनिषत् ६।२

४. विष्णुपुराण ६।५।४७

५. दशमे दशमं लक्ष्यमाश्रिताश्रय विग्रहम्।

श्रीकृष्णाख्यं परं धाम जगद्धाम नमामि तत्॥

– भागवत १०. १. १ भावार्थ दीपिनी

सच्चिदानंद स्वयं भगवान श्रीकृष्णकी निर्विशेष चिन्मात्रसत्ताको श्रुतिमें 'ब्रह्म' संज्ञासे अभिहित किया गया है। वही परम पुरुष श्रीकृष्ण अपने अंश 'मायानियन्ता कारणार्णवशायी पुरुष' से दृष्टि-शक्तिके द्वारा ब्रह्माण्डकी सृष्टि करवाते है और इस ब्रह्माण्डमें अपने अंशावतार समूह 'मत्स्य, कूर्म, वराह' आदि अवतारों और अपने लीलावतारोंको प्रकटित करकें विचित्र चमत्कारमय हैं लीला प्रकट करते हैं।[1] अपनी लीलाशक्ति द्वारा लीलाविलास करते हुये स्वयं परमानन्द स्वरूप होकर भी आनन्दका अनुभव करते हैं और अपने भजनेवालोंको आनन्दित करते है।[2]

जो श्रुतियोंका प्रतिपाद्य है वही श्रुतिसार भागवत का प्रतिपाद्य है। ऋग्वेदमें उक्ति है—

अपश्यं गोपामनिपद्यमानमा च परा च पथिभिश्चरन्तम्।
स सध्रीचीः स विषूचिर्व सा न आवरीवर्त्तिभुवनेष्वन्तः॥[3]

---

१. (क) तत्वसन्दर्भ श्लोक ८

(ख) भागवत १०।२।३४

(ग) वासुदेवः संकर्षणः प्रद्युम्नोऽनिरुद्धोऽहं मत्स्यः कूर्मो वराहः।
नृसिंहो वामनो रामो रामः कृष्णो बुद्धः कल्किरहमिति॥
नैवेते जायन्ते नैवेते म्रियन्ते नैषाम् बन्धो न मुक्तिः।
सर्व एव हुयेते पूर्णा अजरा अमृताः परमानन्दा इति॥

— चतुर्वेद शिखा

३. श्वेताश्वतरोपनिषत् ६।८

— ऋग्वेद १ मण्डल, २२ अनुवाक् १६४ सूक्त, ३१ ऋक् - अर्थात् हम देखते है कि गोपालका कभी निपात नहीं है। कभी निकट, कभी दूर, इस प्रकार अनेक पथोंसे विचरण करते है। कभी बहुवस्त्रावृत, तो कभी पृथक् पृथक् वस्त्रोंसे आच्छादित है, ऐसे श्रीकृष्ण विश्वमें पुनः पुनः प्रकटाप्रकटलीलाको विस्तृत कर रहे है।

श्रीमद्भगवत गीताके सिद्धान्तोंका दृष्टान्त है। गीतामें श्रीकृष्ण कहते हैं– 'मैं ही सभी यज्ञोंका भोक्ता और प्रभु हूँ, जो मुझे छोड़कर अन्यान्य देव-देवियोंकी आराधना करते हैं, वे प्रतीकोपासक है, मुझे न जानकर ही अवज्ञा करते हैं और तत्वज्ञानशून्य होकर ही अतात्त्विक देवताओंकी आराधना कर तत्त्व वस्तुसे पतित होते हैं।'[1] इसीको श्रीमद्भागवतमें इस प्रकार कहा गया है – 'जिनके पादपद्मसे निःसृत गंगा ब्रह्माजी द्वारा अर्घ्य रूपमें द्रदत्त होकर महादेव 'शंकर' जीके साथ समस्त जगतको पवित्र कर रही है, ऐसे इस जगतमें अन्यतम मुकुन्द भिन्न और कौन भगवत् शब्द वाच्य हो सकते हैं ?'[2]

भागवतके अनुसार श्रीकृष्णकी देह प्राकृत नहीं है और न ही उनकी इन्द्रियाँ प्राकृत हैं। प्राकृतत्व-रहित होकर अप्राकृत स्वरूपमें नित्य विराजमान हैं। श्रीकृष्ण अविचिन्त्य पराशक्तिके आधार है। पराशक्ति एक होकर भी ज्ञान-बल-क्रिया या सत्-चित्-आनन्द रूपमें अवस्थित है। परात्पर वस्तुका नाम है श्रीकृष्ण।[3]

निष्कर्ष स्वरूप कहा जा सकता है कि सम्पूर्ण भागवतीय लीलाओंके मूल कारण श्रीकृष्ण ही हैं। अनादिरादि होनेपर भी श्रीकृष्ण स्वयं रस भावनाके द्वारा भजनीय और प्रेमसे उपास्य हैं। एक होने पर भी सब इनके वशीभूत हैं।'........तस्मात् कृष्ण एव परो देव, तं रसेत्, तं यजेत्, तं भजेत्' एको वशी सर्वज्ञः कृष्ण ईद्य एकोऽपि सन् यो बहुधा विभाति।[4]

---

१. अहं हि सर्वयज्ञानां भोक्ता च प्रभुरेव च।
न तु मामभिजानन्ति तत्वेनातश्च्यवन्ति ते ॥ - श्रीमद्भगवद्गीता ९।२४

२. भागवत १।८।२१

३. (क) यस्यांशांशभागेन विश्वोत्पत्तिलयोदयाः।
भवन्ति किं विश्वात्मंस्तं त्वाद्याहं गतिं गता ॥ - भागवत १०।८५।३१

(ख) तुलनीय – ब्रह्म संहिता ५।५४

(ग) तुलनीय – भागवत २२।१३।१

४. गोपालतापनी उपनिषद् पूर्व भाग २।८

श्रीकृष्णकी मायिकी-लीला :

श्रीमद्भागवत द्वारा सिद्ध ही है कि पूर्णब्रह्म परम पुरुषोत्तम, परब्रह्म स्वयं-भगवान् श्रीकृष्णके आविर्भाव-अवतारके समयका नाम भी वही है और गुप्ततया स्थिति (अनाविर्भाव या अनवतार) के समयका नाम भी वही है। वस्तुत: दोनों ही एक है।[1] परब्रह्म भी मूलरूपमें श्रीकृष्ण ही है। वह एक है, अद्वितीय है। उसके अतिरिक्त जो कुछ भी है वह सब उसीका प्रकाश है, उसकी माया है। परब्रह्मकी विलासकी इच्छा ही लीला शब्दसे अभिधित है।[2] 'लीला विशिष्टमेव शुद्धं परमं ब्रह्म'—परब्रह्म लीलामय है, इसलिये परब्रह्म है। अपनी माया शक्तिके द्वारा वह सब है एवं स्वयंमें मग्न है। सम्पूर्ण जगत् उसकी ललित लीलाओंका विलासमात्र है। स्वगत, सजातीय और विजातीय भेद रहित उस अद्वय तत्त्वका (एक होनेपर भी) बुद्धि-सौकर्यकी सिद्धिके लिए तीन रूपोंमें वर्णन किया जाता है—कारण, कार्य और स्वरूप।[3] कारण है 'अक्षरब्रह्म'। सकल ब्रह्माण्ड अक्षर स्वरूपमें स्थित है। अक्षर ब्रह्म पाँच रूपों काल, कर्म, स्वभाव, प्रकृति और पुरुषमें प्रकट होकर सृष्ट्यादि कार्य करते हैं। यह अक्षर-ब्रह्म आनन्दमय, रसमय, पुरुषोत्तमका पुच्छभाग-ब्रह्म पुच्छं प्रतिष्ठा-तथा आधाररूप है।[4] कार्यरूप है जगत्। स्वरूप कोटिमें तीन भेद हैं—क्रियारूप, ज्ञानरूप एवं क्रिया और ज्ञान उभय-रूप।[5] क्रियारूप है यज्ञविष्णु, ज्ञान-रूप है वेदान्त प्रतिपादित ब्रह्म और क्रिया और ज्ञान उभय-शक्तियोंसे युक्त है भागवत प्रतिपादित श्रीकृष्ण।

---

१. कल्याण-कृष्णांक, पृष्ठ ७१-स एव परमकाष्ठापन्नः कदाचिज्जमद्द्वारार्थमखण्डः पूर्ण एव प्रादुर्भूतः कृष्णं इत्युच्यते।

२, लीला विलासेच्छा…… । सुबोधिनी तृतीय स्कन्ध, प्रारम्भमें-से

३. बुद्धिसौकर्यसिद्ध्यर्थं त्रिरूपेणोपवर्ण्यते।
कारणेन च कार्येण स्वरूपेण विशेषतः॥—

—श्रीमद्वल्लभः व्यक्तित्व, सिद्धान्त और साहित्य पृष्ठ १४५

४. आनन्द आत्मा-तैत्तिरीयोपनिषत् २।५

५. सर्वनिर्णयप्रकरण (तत्त्वार्थ दीप निबन्ध) श्लोक ११९ तथा उसकी प्रकाश व्याख्या

ग्रन्थमें जहां आन्तरिक जगतमें भगवान् श्रीकृष्णके नित्य विहारका वर्णन आता है, वहाँ शुकदेवजीने स्पष्ट करनेके लिए इंगित किया है कि वहाँ भी वाह्य जगतके नियमों (ऋत्+सत्य) का प्रयोग सम्भव है। वेदमें सृष्टि आरम्भके लिए "ऋतं च सत्यं च—यथापूर्वमकल्पयत्" कहा है, यही बात भागवतमें इस प्रकार कही गयी है कि सृष्टि क्रम लय-उदय-लयके अनुसार अनादिकालसे चल रहा है और आगे भी चलेगा।[1] यही नियम अंतर्जगतके लिए भी है–

न चान्तर्न बहिर्यस्य न पूर्वं नापि चापरम्।
पूर्वापरं बहिश्चान्तर्जगतो यो जगच्च यः॥[2]

अर्थात् वाह्य जगतकी लीला जिस प्रकार भगवदिच्छापर आश्रित है, उसी प्रकार अन्तर्जगतकी लीला भी उनकी इच्छापर अवलम्बित है। इससे उनके नित्य विहारमें कोई बाधा नहीं पड़ती। अतः पारमार्थिकी लीलाका सम्पादन भी मूल रूप से श्रीकृष्ण–द्वारा ही होता है।

प्रबन्ध-प्रतिपाद्यकी दृष्टिसे श्रीकृष्णकी मायिकी-लीलाको दो भागोंमें बांटा जा सकता है–

१. स्वयं–रूप श्रीकृष्णकी मायिकी लीला,

२. श्रीकृष्णके अंश समूह द्वारा श्रीकृष्णकी मायिकी लीला।

स्वयंरूप श्रीकृष्णकी मायिकी लीला :

इस लीलाका विलास दो दृष्टि से है—

१. द्वारका लीला—इसके अन्तर्गत हैं–सर्वान्तिम मौषल लीला,
महिषीहरण लीला।

२. ब्रज लीला—ब्रह्मा—मोह लीला।

सर्वान्तिम मौषल लीला :

इस अन्तिम लीलाकी सूचना प्रथम स्कन्धमें ही दी गयी है। पुनः एकादश स्कन्धमें विस्तृत रूपमें है– श्रीकृष्णके आदेशसे यादवोंने पिण्डारक

---

१. भागवत १०।३।२५

२. भागवत १०।९।१३

नामके तीर्थमें एकदा यज्ञानुष्ठान किया। विश्वामित्र, असित, कण्व आदि मुनिगण जब यज्ञभूमिसे अपने आश्रमोंको लौट रहे थे, उस समय यदुवंशमें उत्पन्न हुये उद्दण्ड बालक जाम्बवतीपुत्र साम्बको स्त्रीवेशसे सजाकर मुनियोंके समक्ष ले गये और उनसे पूछने लगे–हे, ऋषियों ! यह कजरारी आँखों वाली गर्भवती सुन्दरी आपके सामने खड़ी हैआसन्न प्रसवा है, बताइये, इसको कन्या होगी या पुत्र ?[1] ऋषियोंने उनका कपट व्यवहार जानकर भगवान् श्रीकृष्णकी प्रेरणासे क्रोधित होकर शाप दिया–यह कुलनाशी मुसलको जनन करेगी'– 'जनयिष्यति मुसलं कुलनाशनम्।[2] बालकोंने साम्बका वस्त्र अनावृत किया तो सच ही एक मुसल देखा। डरते हुये वे राजा उग्रसेनके पास जाकर वृतान्त-सर्व कहने लगे। राजाने'.......समुद्रसलिले प्रास्यल्लोहं चास्यावशेषितम्।'[3] अर्थात् उस लोह मुसलको चूर्ण-चूर्ण करके उस चूर्ण तथा लोहेके बचे हुये छोटे टुकड़ेको समुद्रमें फेंकवा दिया। एक मत्स्यने उसे भक्ष्य लिया और अवशेष उदकगत चूर्णसमूह पुलिनपर आकर एरका घास बन गया। इधर मत्स्यघ्नने अन्योंके साथ उस मत्स्यको भी पकड़ लिया, उसके उदरगत लोहेके टुकड़ेको जरा नामक व्याधने अपने बाणकी नोंकमें लगा लिया।[4] कालरूपधारी प्रभुने ब्राह्मणोंके शापका ही अनुमोदन किया–

भगवाञ्ज्ञातसर्वार्थ ईश्वरोऽपि तदन्यथा।
कर्तुं नैच्छद् विप्रशापं कालरुप्यन्वमोदत॥[5]

द्वारकामें-अपशकुन होनेपर सर्वत्र श्रीकृष्ण अपनी प्रापंचिक लीलाको लोकचक्षुसे संगोपन करनेके लिए द्वारकावासियोंको दान-ध्यान करानेके लिए प्रभासक्षेत्रमें ले गये।[6] वहां यादव दैववश मैरेयक मधु-पान कर प्रमत्त होकर श्रीकृष्णकी मायासे मुग्ध परस्पर संघर्ष करने लगे। विभिन्न प्रकारके अस्त्रोंसे

१. भागवत ११।१।१४–१५
२. वही ११।१।१६
३. वही ११।१।२१
४. भागवत ११।१।२३
५. वही ११।१।२४
६. वही ११।३०।४ से १०

महायुद्ध करते हुये महा-महा यादव योद्धागण मायाविमूढ़ित हो एरका घास उखाड़-उखाड़कर मारने लगे[1] और स्पर्द्धामूलक क्रोधसे ध्वस्त हो गये। यादवोंके निधनके बाद श्रीबलरामजीने नृलोकका त्याग किया। अनन्तर श्रीकृष्णने 'चतुर्भुजे रूपमें' अश्वत्थ वृक्षके नीचे उपवेशन किया। दूर होनेके कारण उनके कोमल रक्त-चरणोंको लक्ष्यकर मृगके भ्रमसे जरा व्याधने मुसलावशेष लोह-खण्डकी गांसी निक्षेप किया। श्रीकृष्ण सशरीर अपने धामको चले गये।[2]

श्रीशुकदेव परीक्षितसे कहते हैं—जैसे नट अनेकों प्रकारके स्वांग बनाता है, परन्तु रहता है उन सबसे निर्लेप, वैसे ही भगवानकी, यादव-कुलमें आविर्भाव और सिरोभावकी लीलाएँ भी उनकी मायाका विलासमात्र है—अभिनय मात्र है। वे स्वयं ही इस जगतकी सृष्टि करके इसमें अन्तर्यामी रूपमें प्रवेश करके विहार करते हैं और पुनः प्रलयकालमें संहार-लीला करके अपनी अनन्त महिमाके बलसे शान्तभावसे ही अवस्थान करते हैं।[3] अगतिकी गति प्रभु आज भी स्वयं रूपमें लीला कर रहे हैं। यह अपने प्राकट्यके पूर्व भी है, तिरोभावके पश्चात् भी है। यह ऐन्द्रजालिक लीला ब्राह्मणोंकी शाप-मर्यादा रक्षा हेतु ही 'गो ब्राह्मण हितैषी' श्रीकृष्ण द्वारा की गयी है।

मौषल-लीलाके अन्तमें श्रीकृष्णका दारुकके प्रति वचन है—

'त्वं तु मद्धर्ममास्थाय ज्ञाननिष्ठ उपेक्षकः।
मन्मायारचनामेतां विज्ञायोपशमं व्रज ॥[4]

अर्थात् तुम मेरे द्वारा उपदिष्ट भागवत धर्मका आश्रय लो और ज्ञान-निष्ठ होकर सबकी उपेक्षा कर दो तथा इस दृश्यको मेरी मायाकी रचना समझकर शान्त हो जाओ।

---

१. वही, एरकामुष्टि चरन्तां घ्नन्युयुधि ११।३०।१२
२. वही ११।३१।६
३. भागवत - राजन् परस्य तनुभृज्जननाप्ययेहा मायाविडम्बनमवेहि यथा नटस्य।
सृष्ट्वाऽऽत्मनेदमनुविश्य विहृत्य चान्ते संहृत्य चात्ममहिमोपरतः स आस्ते ॥ ११।३१।११
४. भागवत ११।३०।४६

श्रीकृष्णका भू-त्याग ही देह-त्याग है, उनके स्वरूपका कभी त्याग नहीं है। योगधारणके द्वारा बिना शरीर दग्ध किये सशरीर स्वधाम गमनका उल्लेख है भागवतमें। जिस प्रकार वह प्रकटके समय मायामय और रहस्य-पूर्ण है; उसी प्रकार अप्रकटावस्थामें भी मायामय और रहस्यपूर्ण है। द्वारकामें सपरिकर श्रीकृष्णकी चिरावस्थिति किंवा नित्य स्थिति सुनिश्चित है.... ....नित्यं संनिहितस्तत्र भगवान् मधुसूदनः।'[1]

महिषी हरण लीला :

यह लीला भी संक्षिप्त रूपसे प्रथम स्कन्धमें सूचित कर दी गयी है। श्रीकृष्णके विरहसे व्यथित अर्जुन युधिष्ठिरसे कह रहे हैं—

'सोऽहं नृपेन्द्र रहितः पुरुषोत्तमेन सख्या प्रियेण सुहृदा हृदयेन शून्यः।
अध्वन्युरुक्रमपरिग्रहमंग रक्षन् गोपैरसद्भिरबलेन विनिर्जितोऽस्मि॥'[2]

अर्थात् हे नृपेन्द्र! जो मेरे सखा, प्रिय मित्र—नहीं, नहीं, मेरे हृदय ही थे, उन्हीं पुरुषोत्तम भगवान्से मैं रहित हो गया हूँ। भगवानकी पत्नियोंको द्वारकासे अपने साथ ला रहा था, परन्तु मार्गमें दुष्ट गोपोंने मुझे एक अबलाकी भांति हरा दिया और मैं उनकी रक्षा नहीं कर सका।

उस मायिकी लीलाका भाव भी अति मायावी है। सहज शंका है कि जो गोप चिरकालपर्यन्त श्रीकृष्णका संग प्राप्त करते रहे, उनके द्वारा महिषियोंका अपहरण कैसे सम्भव है?

श्रीविश्वनाथ चक्रवर्त्तीपाद कहते हैं कि सामान्य जीव-असत् आभीरों द्वारा षोडशसहस्त्र महिषियोंका अपहरण सम्भव नहीं। स्वयं श्रीकृष्णने गोपवेश धारण कर उनको अप्रकट प्रकाशमें प्रवेश कराया है। गोप-स्पर्शसे वे महिषियाँ अन्तर्हित हो गयीं। प्रकाशान्तरेण अर्थात् दूसरे प्रकाशसे श्रीकृष्णको गोपियों के रूपमें प्राप्त हुईं।

इस मायिकी लीलाका कारण श्रीकृष्णका अपनी शक्तियोंको अप्रकट प्रकाशमें प्रवेश कराना है।[3]

---

१. वही ११।२।२४
२. भागवत १।१५।२०
३. भागवत १।१५।२० पर सारार्थदर्शिनी टीका

अन्ततः माया शब्दका प्रयोग शास्त्रमें तथा लोक-व्यवहारमें अनेक अर्थोमें किया जाता है। उनमें-से कुछ अर्थ इस प्रकार है:

१. भगवानकी सर्वभवनसामथ्र्यरूपा योगमाया
२. व्यामोहिका शक्ति रूप महामाया
३. ऐन्द्रजालिक विद्या
४. कपटता, आदि।[1]

अन्य प्रकारसे भी मायाके तीन भेद होते हैं–

१. स्वजनमोहिनी
२. विमुखजनमोहिनी
३. स्वमोहिनी

स्वजनमोहिनी मायाने यशोदाको भगवान् श्रीकृष्णसे मिला दिया। विमुखजनमोहिनीके द्वारा कारागारके पहरेदार सो गये और स्वयंमोहिनी तो श्रीराधाजी ही हैं।

श्रीकृष्णके अंशसमूह द्वारा श्रीकृष्णकी मायिकी लीला :

परब्रह्म रूपमें श्रीकृष्णके अंश द्वारा अथवा अंशांशसमूह द्वारा जो मायिकी लीला अनन्त रूपसे चल रही है, उसपर विचार किया जाता है।

सृष्टि, स्थिति और संहार :

सृष्टि-प्रवाहका कार्य करती है सर्वभवन सामर्थ्यरूप माया[1] माया शब्दसे माया रूप करणके द्वारा सृष्ट भगवदात्मक प्रपंचका द्योतन होता है। मार्कण्डेय कथा प्रसंगमें न कोई प्रलय हुआ, न कोई सृष्टि, न उतना बड़ा काल व्यतीत हुआ, न उतने स्थान बने, न कोई दृश्य बना, न कहीं आना-जाना हुआ, किन्तु जाग्रदावस्थाके क्षणमात्रमें स्वप्नके समान युग-पर-युग बीत

---

१. **माया शब्दः शास्त्रेषु लोके च बहुधा प्रयुक्तः सर्वभवनसामर्थ्यं, व्यामोहिका च शक्तिः ऐन्द्रजालिक विद्या च, कापट्यादि च तत्तद्रूपनिरूपणार्थं प्रयुक्तः शब्दः············।**

भागवत ११।३।३ सुबोधिनी टीका

गये, सृष्टि प्रलय हो गये, अपार विस्तारका दर्शन हुआ—यही मायिकी लीला है। मार्कण्डेयका भ्रमण ही माया है ।[1]

प्रकृतिके तीन गुण हैं—सत्व, रज और तम । इनको स्वीकार करके इस संसारकी स्थिति, उत्पत्ति और प्रलयके लिए एक अद्वितीय परमात्मा ही विष्णु, ब्रह्मा और रुद्र—ये तीन नाम ग्रहण करते हैं ।[2] विश्वका उन्मीलन, स्थिति और विलय हरि-लीलाका प्रमुख अङ्ग है। श्रीवसुदेव कहते हैं—इस संसाररूप वृक्षकी उत्पत्तिके आधार एकमात्र आप ही हैं । आपमें ही इसका प्रलय होता है और आपके ही अनुग्रहसे इसकी रक्षा भी होती है। जिनका चित्त आपकी मायासे आवृत्त हो रहा है, इस सत्यको समझनेकी शक्ति खो बैठे हैं—वे ही ब्रह्मा आदि देवताओंको स्वतन्त्र जगतकर्त्ता आदिके रूपमें दर्शन करते हैं, किन्तु तत्त्वज्ञानी पुरुष केवलमात्र आपको ही सृष्टि आदि कार्योंका मूलकर्त्ता जानते हैं ।[3]

पुरंजनोपाख्यानमें भी मायाको समझानेका प्रयास किया गया है। इसकी सत्यताकी अनुभूतिका कारण अविद्या है। अविद्या अपने आश्रयको अर्थात् जिसमें रहती है, उसको व्यामोहमें डाल देती है, परन्तु माया अपने आश्रयको व्यामोहमें नहीं डालती । वह अपने कार्यमें राग-द्वेष करनेवालेको व्यामुग्ध करती है ।[4]

विरुद्धधर्माश्रयत्व श्रीकृष्ण-लीलाका कारण है। यह मायिकी लीला भगवान्‌की अन्य निरपेक्ष लीला है । सृष्टि, स्थिति और प्रलयके लिए प्रभु ही उपादान कारण है और वही अनेक कार्यावस्था होनेसे कार्य है ।[5] सृष्टिरचना

---

१. भागवत स्कन्ध १२ अध्याय ६

२. भागवत १।२।२३

३. भागवत १०।२।२८

४. भागवत स्कन्ध ४ अध्याय २६

५. (क) अर्थ प्रपंचो न प्राकृतः नापि परमाणुजन्यः नापि विवर्तात्मा, नापि अदृष्ट द्वारा जातः नापि असतः सत्तारूपः किन्तु भगवत्-कार्यः ।

—श्रीमद्वल्लभाचार्यः व्यक्तित्व, सिद्धान्त और साहित्य, पृष्ठ १५५

(ख) परमकाष्ठापन्न वस्तु कृतिसाध्यः । वही पृष्ठ १५८

ऊर्णनाभिन्यायवत् है। प्राकृत जगत्में प्रथम पुरुषावतारके रूपमें श्रीकृष्णकी लीला होती है। जगतकी स्थितिके समय सत्व, उत्पत्तिके समय रज और संहारके समय तम गुणोंको ग्रहण किया जाता है। श्रीकृष्णके अंश-रूप क्रमशः विष्णु, ब्रह्मा और शिव इन कार्योंके स्वामी हैं।[1]

सृष्टि :

इस तत्त्वपर तीन प्रकारके मत हैं : आरम्भवाद, विवर्त्तवाद एवं परिणामवाद। आरम्भवादी हैं नैयायिक और वैशेषिक। उनके अनुसार पार्थिव-जलीय-तैजस-वायवीय परमाणु द्वयणुकादिके क्रमसे ब्रह्माण्ड पर्यन्त जगतका आरम्भ अथवा सृष्टि होती है। इस मतसे, अभावसे भावकी उत्पत्ति होती है। विवर्त्तवादी कहते हैं—स्वप्रकाश परमानन्द ब्रह्म ही स्वमायावलम्बनसे मिथ्या जगदाकारमें कल्पित होते हैं। भागवतमें वर्णित सृष्टि शक्ति परिणाम-वादीय है। इसके भी दो भेद हैं। प्रथम भेदसे सांख्य आदिके मतानुसार अभावसे भावोत्पत्ति नहीं हो सकती। कारण एवं कार्य अभिन्न हैं। सत्व-रजस्तमोगुणात्मक प्रधान अथवा प्रकृति ही महत्, अहंकार इत्यादि क्रमसे जगत रूपमें परिणत होती है। ये आविर्भाव-तिरोभावको मानते हैं। द्वितीयतः वैष्णवाचार्यगण इस मतके अवलम्बनसे शक्ति परिणामवादको स्थापन करते हैं अर्थात् ब्रह्म स्वयं ही शक्तिरूपसे जगदाकारमें परिणत हुये हैं।[2] औपन-षदिक दृष्टि है—'स ऐक्षत्।'[3] अर्थात् उस परमात्माने ईक्षण किया था तथा 'स इमान् लोकान् असृजत्'[4] अर्थात् उस परमात्माने ही अपनी मायाके प्रति ईक्षण कर चराचर जगतकी सृष्टि की है। स्वयं श्रीकृष्ण कहते हैं—'मुझ अधिष्ठाताकी अध्यक्षतामें मेरी मायाशक्ति चराचर विश्वकी सृष्टि करती है।[5] सृष्टि-लीला सर्ग स्कन्धमें वर्णित है। विदुर मैत्रेयसे निवेदन करते हैं—

---

१. सत्वं रजस्तम इति निर्गुणस्य गुणास्त्रयः।
स्थिति सर्ग निरोधेषु गृहीता मायया विभोः॥ - भागवत २।५।१६
सुबोधिनी

२. श्रीचैतन्य-मतः ओ० वी० एल० कपूर पृष्ठ २२८

३. ऐतरीयोपनिषत् १।१।१

४. वही १।१।२

५. श्रीमद्भगवद्गीता—मयाध्यक्षेण प्रकृतिः सूयते सचराचरम्।
हेतुनानेन कौन्तेय जगद्विपरिवर्तते ॥ ६।१०

'स विश्वजन्मस्थिति संयमार्थे कृतावतारः प्रगृहीतशक्तिः।
चकार कर्माण्यतिपूरुषाणि यानीश्वरः कीर्तय तानि मह्यम् ॥'[१]

अर्थात् उन सर्वेश्वर श्रीकृष्णने संसारकी उत्पत्ति, स्थिति और संहार करनेके लिए अपनी माया शक्तिको स्वीकार कर विभिन्न लीलावतारोंके द्वारा जो अनेकों अलौकिक लीलायें की हैं, वे सब मुझे सुनाइये। तब मैत्रेय कहते हैं: द्रष्टृ स्वरूप परमेश्वर की कार्य-कारणरूपा शक्ति ही माया है। इसी मायाशक्तिके द्वारा परमेश्वरने इस परिदृश्यमान विश्वका निर्माण किया है।[२]

अलौकिक सृष्टि :

तृतीय स्कन्धमें अलौकिक सर्गका तेतीस प्रकारसे वर्णन है। इसका रूप इस प्रकार है—

'त्रयस्त्रिंशत्वेव देवा इति। कतमे ते त्रयस्त्रिंशदिति अष्टो वसवः एकादश रुद्राः द्वादशादित्यास्ते एकत्रिंशत् इन्द्रश्चैव प्रजापतिश्च त्रयस्त्रिंशाविति। कतमे वसव इति-अग्निश्च पृथिवी च वायुश्चान्तरिक्षं चादित्यश्च द्यौश्च, चन्द्रमाश्च, नक्षत्राणि चैते वसवः, एतेषु हीदं वसु सर्वंहितमिति तस्माद्वसव इति। कतमे रुद्रा इति दशेमे पुरुषे प्राणा आत्मेकादशस्ते यदास्माच्छरीरान्मर्त्यादुत्क्रामन्त्यथ रोदयन्ति तद्यद्रोदयन्ति तस्मारुद्रा इति। कतम् आदित्या इति द्वादश वै मासाः संवत्सरस्येत आदित्याः, एते हीद सर्वमाददाना यन्ति तस्मादादित्या इति। कतम इन्द्रः कतमः प्रजापतिरिति—स्तनयित्नु रेवेन्द्रो यः प्रजापतिरेति।'[३]

लौकिक सृष्टि :

लौकिक सृष्टिसे अट्ठाईस तत्व चार प्रकारके प्राणियोंके बीज और काल इनकी गणना भी तेतीस होती है। प्राकृत-वैकृत भेदसे यह सृष्टि नौ

---

१. भागवत ३।५।१६

२. भागवत ३।५।२५
सा वा एतस्य संद्रष्टुः शक्तिः सदसदात्मिका।
माया नाम महाभाग ययेदं निर्ममे विभुः ॥

३. (क) बृहदारण्यकोपनिषत् ३।९।२ से ६
(ख) भागवतः स्कन्ध ३, अध्याय १२

प्रकारकी होती है तथा प्राकृत-वैकृत उभयात्मक रूपसे एक दसवीं सृष्टि और भी है। प्रकारात्मक रूप इस प्रकार है।

१. प्राकृत सृष्टि

यह छः प्रकारसे है[1]–

१) पहली सृष्टि महत्तत्वकी है। भगवानकी प्रेरणासे सत्वादि गुणोंमें विषमता होना ही इसका स्वरूप है।

२) दूसरी सृष्टि अहंकारकी है, जिससे पृथ्वी आदि पंचभूत, ज्ञानेन्द्रिय और कर्मन्द्रियोंकी उत्पत्ति है।

३) तीसरी है भूतसर्ग, जिसमें पंचमहाभूतोंको उत्पन्न करने वाला तन्मात्रवर्ग रहता है।

४) चतुर्थ इन्द्रियोंकी है, ये ज्ञान और क्रियाशक्तिसे उत्पन्न होती है।

५) पाँचवीं सात्विक अहंकारसे उत्पन्न हुये इन्द्रियाधिष्ठाता देवताओं की है, मन भी इसी सृष्टिके अन्तर्गत है।

६) छठी अविद्याकी है, इसमें तामिस्र, अन्धतामिस, तम, मोह और महामोह-ये पांच गांठें हैं।

वैकृत सृष्ट

यह तीन प्रकारसे है[2]

१) प्रधान वैकृत सृष्टि-वनस्पति, औषधि, लता, त्वक्सार, वीरुध और द्रुमकी होनेसे स्थावर सृष्टि है।

२) दूसरी सृष्टि तिर्यग्योनियों (पशु-पक्षियों) की है। यह अट्ठाईस प्रकारकी मानी जाती है।

३) यह सृष्टि मनुष्योंकी है एवं एक ही प्रकार की है।

---

१. भागवत ३।१०।१४ से १७

२. वही ३।१०।१९ से २५

प्राकृत–वैकृत सृष्टि :

यह उभयात्मक रूप दसवीं सृष्टि है, वह सनत्कुमार आदि ऋषियों का 'कोमारसर्ग' है।[1]

श्रीशुकके मतानुसार इस सृष्टिको दो भागोंमें विभाजित किया जा सकता है-बाह्य सृष्टि और स्वरूप सृष्टि। बाह्य सृष्टि प्रलयोन्मुखी है और स्वरूप सृष्टि मोक्ष है। इस वर्णनको इस प्रकार भी कहा गया है[2]–

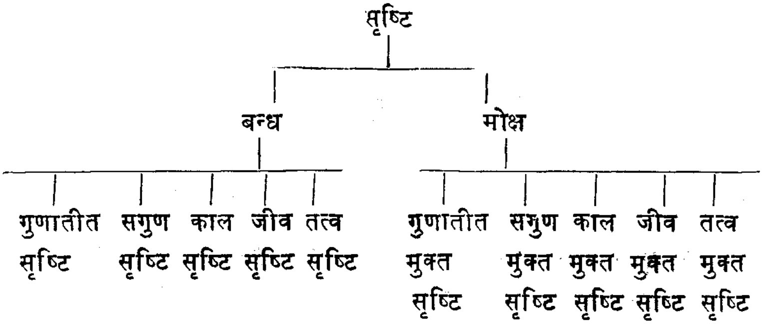

सृष्टिके वैषम्यसे परतत्त्वमें किसी प्रकारकी विषमता नहीं आ सकती, क्योंकि वे किसी अन्यको दूसरे रूपमें नहीं बनाते,स्वयं ही अनेक रूप प्रकट करते हैं। इसको मायिकी लीला कहे या शक्ति, इससे कोई भेद नहीं पड़ता। जिस 'ईक्षण' की बात पूर्वमें कही गयी थी, उसका भी यही अर्थ है अपने आपको ही तेज, अप् और अन्नके रूपमें देखना। त्रिगुणमयी सृष्टि भी यही है। भगवान श्रीकृष्णके पुरुषावतार रूप द्वारा सृष्टिकी उत्पत्ति और विस्तृति होती है।

स्थिति :

सर्वोत्कृष्टत्वमय भगवान् असंख्य ब्रह्माण्डान्तर्गत लोकोंके एकमात्र धारक, मर्यादा-प्रवर्तक और संरक्षक हैं। स्थिति बैकुण्ठ विजय:[3] अर्थात्

१. भागवत ३।१०।२६

२. भागवत स्कन्ध ३, अध्याय १०, चूर्णिका टीका

३. भागवत २।१०।४ श्लोकांश

भगवानकी सर्वश्रेष्ठताका स्थापन ही स्थिति है। द्वादश स्कन्धमें स्थितिका अर्थ वृत्ति अथवा जीविका से है। जीवनका साधन अथवा आधार स्थान ही है। 'स्थान' शब्द करण और अधिकरण अर्थमें है, स्थिति 'भाव' अर्थमें है। स्थान तत्वतः भगवान् ही है। विशेष पुरुष, विशेष कर्म और विशेष स्थानका परस्पर सम्बन्ध भगवान्‌के द्वारा ही नियन्त्रित होता है, यह नियन्त्रण ही वैकुण्ठ अर्थात् भगवान् श्रीकृष्णकी ही विजय है, उनके अंशावतार विष्णु के द्वारा।[1]

....यावदादित्यस्तपति यत्र चासौ ज्योतिषां गणैश्चन्द्रमा वा सह दृश्यते.... ....।[2] अर्थात् जहाँ तक सूर्यका प्रकाश है और जहां तक तारागणके सहित चन्द्रदेव दीख पड़ते हैं........वहां तक भू-मण्डलका विस्तार है। यह जम्बूद्वीप जिसमें हम रहते हैं, कमल-कोशके आभ्यन्तर कोशके समान कमल पत्रके जैसा समवर्त्तुल है। इसका विस्तार एक लाख योजन है।[3]

जम्बूद्वीपमें नव वर्ष हैं। इसको विभक्त करनेवाले आठ मर्यादा गिरि आठों दिशाओंमें है। मध्यमें इलावृत नामका दसवां वर्ष है।[4] इसके केन्द्रमें कुल गिरिराज सुमेरु है। सुमेरु इलावृत या पृथ्वीरूपी कमलकी कर्णिकाके समान है।

आगे श्रीशुकदेव परीक्षितसे कहते हैं—तत्र भगवतः साक्षाद्यज्ञलिंगस्य विष्णोर्विक्रमतो वामपादांगुष्ठ नखनिर्भिन्नोर्ध्वाण्डकराह विवरेणान्तः-प्रविष्टा या बाह्यजलधारा.... ....साक्षाद्भगवत्पदीत्यनुपलक्षितं वचोऽभिधीयमानाति-महता कालेन युगसहस्रोपलक्षणेन दिवो मूर्धन्यवततार यत्तद्विष्णुपदमाहुः।[5] अर्थात् जब राजा बलिकी यज्ञशालामें साक्षात् यज्ञमूर्ति भगवान् विष्णुने त्रिलो-कीको नापनेके लिए अपना पैर फैलाया, तब उनके बाँये पैरके अंगूठेके नखसे ब्रह्माण्डकटाहका ऊपरका भाग फट गया। उस छिद्रमें होकर जो ब्रह्माण्डसे

---

१. (क) भागवत दर्शनः अखण्डानन्द सरस्वती पृष्ठ २७, : प्रथम भाग
   (ख) भागवत १२।७।१३
२. भागवत ५।१६।१
३. वही ५।१६।५
४. वही ५।१६।६–७
५. भागवत ५।१७।१–२

बाहरके जलकी धारा आयी, उसे पहले किसी और नामसे न पुकारकर 'भगवत्पदी' ही कहते थे।[1]

इसका प्रारूप इस प्रकार है–

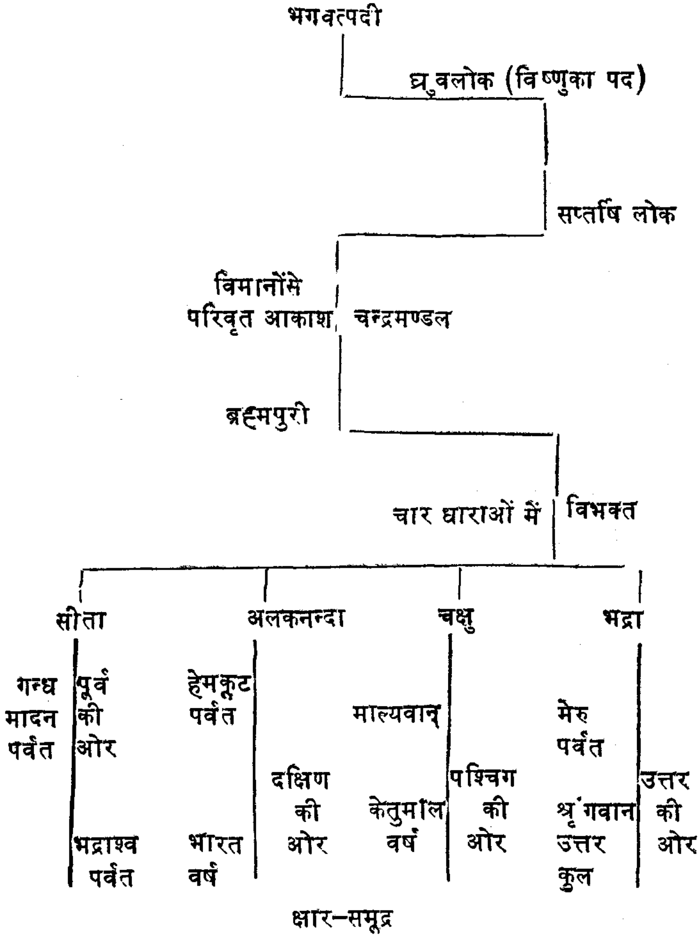

१. वही ५।१७।३ से ६

मायिकी सृष्टिके वर्षोंका वर्णन इस प्रकार है :-

१) इलावृतमें भगवान् भव देवी-भवानी और उनकी सखियोंके साथ रहते हैं। यहाँ भगवान् शेषकी उपासना की जाती है।[1]

२) भद्राश्ववर्षमें धर्मके पुत्र भद्रश्रवा भगवान् हयशीर्षकी उपासना करते हैं।

३) हरिवर्षमें दैत्यराज प्रह्लाद भगवान् नृसिंहकी उपासना करते हैं।

४) केतुमाल वर्षमें भगवान् नारायणकी कामदेव रूपमें उपासना की जाती है।

५) हिरण्यमय वर्षमें पितरोंके अधिपति अर्यमा यहाँके निवासियोंके साथ भगवान् कच्छपकी आराधना करते हैं।

६) उत्तर कुरुवर्षमें भगवती भूदेवी कुरुओंके साथ भगवान् वाराहकी पूजा करती है।[2]

७) किम्पुरुष वर्षमें हनुमानजी मर्यादा पुरुषोत्तम श्रीरामकी अर्चना करते हैं।

८) भारतवर्षमें देवर्षि नारदजी (हिमालयके दिव्य क्षेत्र कलाप ग्रामके) वर्णाश्रम माननेवाले लोगोंके साथ ऋषि रूपमें आकल्प तपोनिरत भगवान् नर-नारायणकी आराधना करते हैं।[3]

सम्पूर्ण ब्रह्माण्डका विभाजन सात द्वीपोंमें माना गया है। इनमें प्रथम जम्बूद्वीपका वर्णन उपर्युक्त हो चुका है। अन्य छः द्वीप हैं-इक्षुरस सागरसे घिरा प्लक्षद्वीप, सुरोदसे घिरा शाल्मली, घृतोद परिवृत कुशद्वीप, क्षीरोदवृत क्रौंच, दधिमण्डोदसे घिरा शाकद्वीप और स्वादूदकावृत पुष्कर द्वीप।[4]

उपद्वीप :

महाराज सगरके पुत्रों द्वारा अश्वके अन्वेषणके समय जो पृथ्वी खोदी गयी, उससे जो द्वीप बन गये उनके नाम हैं-१. स्वर्णप्रस्थ, २. चन्द्रशुक्ल, ३. आवर्तन, ४. रमणक, ५. मन्दरहरिण, ६. पांचजन्य, ७. सिंहल, ८. लंका।

---

१. भागवत ५।१७।१५ से २४
२. वही ५।१८।१ से ३६
३. वही ५।१९।१ से ८
४. भागवत परिचयः सुदर्शनसिंह 'चक्र' (सम्पादक) पृष्ठ ३०६ से ३०८

लोक : पृथवीके ऊपरके लोक :

१. महीतल - भूर्लोक पृथ्वी, २. नभस्तल - भुवर्लोक भूतप्रेतादिका, ३. स्वर्लोक - स्वर्ग देवताओंका, ४. महर्लोक - तपस्वियोंका, ५. जनलोक-सिद्धयोगियों का, ६. तपोलोक - महर्षियोंका, ७. सत्यलोक - ब्रह्मलोक, ८. वैश्वानर लोक - अग्निका, ९. ध्रुवलोक, १०. शिशुमारचक्र - विष्णुलोक, ११. यमलोक।

पृथ्वीके नीचेके लोक :

इनको बिलस्वर्ग भी कहा जाता है। स्वर्गसे भी अधिक वैभवका उल्लेख यहाँपर मिलता है। ये क्रमशः अधिकाधिक भूमिकी गहराईके वर्तुलाकार स्तर है। ये लोक इस प्रकार है—१. अतल - दानवेन्द्र मयके पुत्र विलासी बलका, २. वितल - भगवान् शिवके हाटकेश्वर रूपका, ३. सुतल - अधिपति दैत्यराज बलि, द्वारपाल वामन, ४. तलातल - महादेव रक्षित मयका, ५. महातल - नागमाता कद्रूके पुत्र सर्पोंका, ६. रसातल - देवशत्रु दैत्य, दानव, निवातकवच राक्षसोंका, ७. पाताल - नागलोकाधिपति वासुकिका।[1]

पातालसे भी नीचे सहस्रशीर्ष कमलतन्तु श्वेत भगवानकी स्थिति कही गयी है। पांचरात्र आगमके अनुयायी भक्तजन इनको संकर्षण कहते हैं। यह अनन्त नामसे भी विख्यात है। इन भगवान् अनन्तके एक हजार मस्तक हैं। उनमें-से एकपर रखा हुआ यह सारा भू-मण्डल सरसोंके दानेके समान दिखायी देता है।[2]

स्थितिका अवशेष वर्णन तृतीय स्तवकमें किया जायेगा। स्थितिका विधान ऐसा है कि विश्वमें सहस्रों वस्तुएँ होनेपर भी उनमें-से एक भी वस्तु आवश्यकतासे अधिक नहीं हो पाती। प्रत्येक वस्तुको अपनी स्थितिके लिए किसी न किसी अन्य वस्तुपर अवलम्बित होना पड़ता है। इस प्रकार अन्योन्याश्रय सम्बन्धसे सभी वस्तुएँ परस्पर संग्रथित हैं।

---

१. भागवत परिचयः सं० 'चक्र' पृष्ठ ३०८ – दृष्टव्य
भागवत ५।२४।१६ से ३१

२. भागवत ५।२५।१–२

'Everything in the universe is integrated with every-one part of it.....................[1]।

अस्तु चराचर जगतकी स्थितिके मर्यादक एकमात्र भगवान् हैं।

संहार :

संहारका नाम है 'प्रलय'। प्रलय का समय आनेपर भगवान् अपने बनाये हुए इस विश्वका कालाग्नि-स्वरूप रुद्रका रूप ग्रहण करके अपनेमें वैसे ही लीन कर लेते हैं, जैसे वायु मेघमालाको।[2] ब्रह्मासे लेकर तिनके तक जितने प्राणी या पदार्थ हैं, सभी हर समय पैदा होते और मरते रहते हैं। अर्थात् नित्य रूपसे उत्पत्ति और प्रलय होता ही रहता है। संसारके परि-णामी पदार्थ नदी-प्रवाह और दीप-शिखा आदि क्षण-क्षण बदलते रहते हैं। उनकी बदलती हुई अवस्थाओंको देखकर यह निश्चय होता है कि देह आदि भी कालरूप सोतेके वेगमें बहते-बदलते जा रहे हैं। इसलिये क्षण-क्षणमें उनकी उत्पत्ति और प्रलय हो रहा है। जैसे आकाशमें तारे हर समय चलते ही रहते हैं, परन्तु उनकी गति स्वरूप रूपसे नहीं दिखायी पड़ती, वैसे ही भगवानके स्वरूप-भूत अनादि-अनन्त 'काल' के कारण प्राणियोंकी प्रतिक्षण होनेवाली उत्पत्ति और प्रलयका भी पता नहीं चलता।

प्रलयके दो भेद हैं–

१. कर्मोपरति के निमित्तसे होने वाला लय,

२. ज्ञानोदयके निमित्तसे होनेवाला लय।

प्रथम प्रकारके प्रलयके नित्य प्रलय, नैमेत्तिक प्रलय और प्राकृतिक प्रलय - ये तीन भेद हैं, दूसरे प्रकारका प्रलय आत्यन्तिक प्रलय है।[3]

---

१. भक्तिका विकास : डा० मुंशीराम शर्मा उद्धृत—
Meaning and purpose by Kenneth Walker—P. 100
में से पृष्ठ ६-७ पर

२. भागवत २।१०।४३

३. वेदान्त परिभाषा : प्रलय निरूपण पृष्ठ १३१ से १३५ द्रष्टव्य

१ – नित्य प्रलय :

नित्य प्रलयके दो अर्थ हैं - एक तो जगतमें जो निरन्तर क्षय हो रहा है और दूसरा निद्राके समय जब सारी सृष्टि अज्ञानमें विलय हो जाती है, किसी भी विशेष भावका अनुभव नहीं होता।[१]

२– नैमेत्तिक प्रलय :

यह भी दो प्रकारका है, एक आंशिक और दूसरा पूर्ण। एक मन्वन्तर समाप्त होनेपर अथवा कभी-कभी भगवानकी इच्छासे मन्वन्तरके बीचमें ही जब समस्त पृथ्वी जलमग्न हो जाती है और भुवर्लोक, स्वर्लोक आदि भी विच्छिन्न हो जाते हैं परन्तु महर्लोक आदि ज्यों-के-त्यों रहते हैं, वह आंशिक नैमेत्तिक प्रलय होता है और जब एक कल्पके अन्तमें ब्रह्माका दिन पूरा होनेपर वे अपनी सृष्टिको लेकर घोर निद्रामें सो जाते हैं, तब पूर्ण नैमेत्तिक प्रलय होता है।[२] प्रलयको ही ब्रह्माकी रात्रि भी कहते हैं। ब्रह्माके सोनेके तत्पश्चात् ही शेषशायी भगवान् भी शयन कर लेते हैं।[३]

३—प्राकृतिक लय :

जब ब्रह्माजीकी अपने मानसे सौ वर्षकी और मनुष्योंकी दृष्टिमें दो परार्द्धकी आयु समाप्त हो जाती है तब महत्तत्व, अहंकार और पंचतन्मात्राये सातों प्रकृतियां अपने कारण मूल प्रकृतिमें लीन हो जाती हैं - इसे प्राकृतिक प्रलय कहते हैं।[४] इस प्रलयमें प्रलयका कारण उपस्थित होनेपर पंचभूतोंके मिश्रणसे बना हुआ ब्रह्माण्ड अपना स्थूल रूप छोड़कर कारण रूपमें स्थित हो जाताहै। पुरुष और प्रकृति दोनों की शक्तियाँ कालके प्रभावसे क्षीण हो जाती हैं और विवश होकर अपने मूलस्वरूपमें लीन हो जाती हैं।[५]

---

१. भागवत दर्शन : अखण्डानन्द सरस्वती : प्रथम भाग पृष्ठ ४६
२. वही
३. भागवत १२।४।२ से ४
४. भागवत १२।४।५
५. भागवत - यदैवमेतेन विवेकहेतिना मायामयाहंकरणात्मबन्धनम्।
छित्वाच्युतात्मानुभवोऽवतिष्ठते तमाहुरात्यन्तिकमंग सम्प्लवम्॥
१२।४।३४

आत्यन्तिक प्रलय :

आत्यन्तिक प्रलयका कोई समय नहीं है। साधन-चतुष्टय सम्पन्न होकर श्रवण-मनन-निदिध्यासन रूप अन्तरंग साधन करके जीव जब अपने वास्तविक स्वरूपका ज्ञान प्राप्त करता है, तब आत्यन्तिक प्रलय होता है। जब जीव विवेकके खड्गसे मायामय अहंकारका बन्धन काट देता है, तब यह अपने एकरस आत्मस्वरूपमें स्थित हो जाता है। आत्माकी यह मायामुक्त वास्तविक स्थिति ही आत्यन्तिक प्रलय है। अन्य प्रकारसे आत्यन्तिक दुःख निवृत्तिका नाम आत्यन्तिक प्रलय है।[1]

अनुलोम-प्रतिलोम न्यायसे सृष्टि-प्रलयका वर्णन तृतीय स्कन्धमें किया गया है।

इन सब विविध प्रकारके प्रलयोंके चिन्तनसे जगतके नाना नाम और रूपोंका अभाव ध्यानमें आ जाता है, फिर भाव और अभाव दोनोंके आश्रय-स्वरूप भगवानकी उपलब्धि हो जाती है। परमात्माके अतिरिक्त जो कुछ स्थावर-जंगमात्मक जगत् दीख रहा है, उसकी अन्तिम गति प्रलय है। अवतार ले लेकर भगवान् उसकी विपरीत गतिका निरोध तो करते ही रहते हैं, परन्तु जब तमोगुण अधिक बढ़ जाता है, तब भगवान् नवीन रूपसे सात्विक सृष्टि करनेके लिए इस जगतका प्रलय कर दिया करते हैं। भगवान् अवतार ग्रहण करके दुष्ट दैत्योंका नाश करते हैं, कंस आदिको साक्षात् और कर्ण, जरासन्ध आदिको अपनी शक्ति अर्जुन, भीम आदिके द्वारा नष्ट करते हैं। इसका नाम निरोध है। भागवतमें 'निरोध' और 'संस्था' के नामसे भी प्रलयका वर्णन हुआ है–

निरोधो स्यानुशयनमात्मानः सह शक्तिभिः।[2]

सम्पूर्ण मायिकी लीलाके वर्णनके आधारपर कहा जा सकता है कि सम्पूर्ण जगतकी स्थिति, उत्पत्ति और संहारके निरपेक्ष कारण होते हुये

---

१. भागवत २।१०।६

२. भागवत ११।३१।१३–

तथाप्यशेषस्थितिसम्भवाप्ययेष्वनन्यहेतुर्यदशेषशक्तिधृक्।
नेच्छत प्रणेतुं वपुरत्र शेषितं मर्त्येन किं स्वस्थगतिं प्रदर्शयन्॥

श्रीकृष्णने स्वयं भी अपने शरीरको इस संसारमें बचा रखनेकी इच्छा नहीं की।[1] महिषियोंका अपहरण,–अर्जुनका मोह, पराजय सभी कुछ माया कल्पित है। सकल माया कल्पितका मायिकी सम्पल्व हो जाता है।

जीव और जगत्

भगवान् रमण करनेकी इच्छासे अपने आनन्दको तिरोहित कर[2] जीव रूप ग्रहण कर लेते हैं। और चित् और आनन्द दोनोंको तिरोहित कर जगत्-रूप ग्रहण कर लेते हैं। जगत् उनका क्रीड़ास्थल है और जीव उनकी क्रीड़ाका माध्यम। भगवान् हरि आकाशादि जगतकी सृष्टि कर, जीव और अन्तर्यामी के भेदसे, दो रूपोंमें इस जगतमें प्रविष्ट होकर क्रीड़ा करते हैं।[3] ब्रह्मरूपमें जो वस्तु अभिन्न-सत्ता-स्वरूप है, परमात्मरूपमें वही वस्तु अनन्त जीव व अनन्त जगतकी एकच्छत्र सम्राट है। भगवानके सजातीय तत्वसे जीव और आधिभौतिक रूपसे जगत् अभिप्रेत है।[4]

जीव :

'बहुस्यां प्रजायेयेति वीक्षा तस्य ह्यभूत सती'[5] अर्थात् उस ब्रह्मने सत्य अर्थात् अमोध संकल्प (ईक्षण) किया कि मैं अनेक हो जाऊं और (उच्च-नीचादिके भेदसे) विविध रूपोंमें प्रादुर्भूत होऊं। ब्रह्मका संकल्प या ईक्षण या भावना या वीक्षा अमोध अर्थात् सत् या व्यभिचारी है।[6] उस ब्रह्मकी

---

१. तुलनीय–उत्पत्तिं प्रलयं चैव भूतानामागतिंगतिम्।
वेत्तिविद्यामविद्यां च, स वाच्यो भगवानिति॥
– विष्णुपुराण ६।५।७८

२. अकामरूपत्वादानन्दस्य········। ब्रह्मसूत्र ३।२।५ अणुभाष्य

३. विभेदादि जगत् सृष्ट्वा तदाविश्य द्विरूपतः
जीवान्तर्यामिभेदेन क्रीडतिस्म हरिः क्वचित्॥
– तैत्तिरीयोपनिषत् २।१

४. सजातीया जीवाः···· ····। – शास्त्रार्थ प्रकरण, कारिका ६६

५. छान्दोग्योपनिषत् ६।२।३

६. तदिच्छामात्र तस्तस्माद् ब्रह्मभूतांशचेतनाः –। शास्त्रार्थ प्रकरण कारिका २७

इच्छासे, सृष्टिके आरम्भमें उसके संकल्प मात्रसे ही उस (ब्रह्म) से ही ब्रह्मात्मक, चेतन (अर्थात् चित्प्रधान) और निरानन्द स्वरूप असंख्य अंश (जीव) निःसृत होते हैं। ब्रह्मसे जीव उसी प्रकार व्युच्चरित होते हैं, जिस प्रकार अग्निसे छोटी-छोटी चिनगारियाँ।[1] भागवतोक्ति पंचतन्मात्राओंसे बना हुआ तथा सोलह तत्वोंके रूपमें विकसित त्रिगुणमय संघात लिंग शरीर चेतनाशक्तिसे युक्त होकर जीव कहा जाता हैं।[2] इस आधारपर श्रीपाद शंकराचार्य जीवको ब्रह्मका प्रतिबिम्ब अथवा प्रतिच्छवि मानते हैं।[3] अद्वैत वेदान्तियोंके मतमें ऐसा नहीं है।[4] मण्डन मिश्र भी 'जीव' विषयमें प्रतिबिम्बवाद मानते हैं।[5] वाचस्पति मिश्र जीवको अवच्छेद कहते हैं।[6] सुरेश्वराचार्य जीवमें आभासवाद मानते हैं।[7] श्रीधरस्वामिपाद जीव और ब्रह्ममें भेदाभेद स्वीकार करते हैं।[8] औपचारिक भेदाभेदवादी श्री भास्कराचार्य

---

१. (क) यथाग्नेः क्षुद्रा विस्फुलिंगाः व्युच्चरन्ति–। बृहद्० उपनिषत् २।१।२०

(ख) सृष्ट्यादौ निर्गताः सर्वे निराकारास्तदिच्छया।
विस्फुलिंगा इवाग्नेस्तु संदशेन जडा अपि॥
– शास्त्रार्थ प्रकरण, कारिका २८

(ग) यथा सुदीप्तात्पावकाद्विस्फुलिंगः सहस्रशः प्रभवन्ते सरूपाः।
तथाऽक्षराद् विविधाः सौम्यभावाः प्रजायन्ते तत्र चैवापियन्ति॥
– मुण्डकोपनिषत् २।१।१

(घ) तत्वार्थ दीप निबन्ध - १।२७–३०

(ङ) अणुभाष्य २।३।२०, ४३, ४५, ४८, ५०

२. भागवत ४।२९।७४

३. ब्रह्मसूत्र २।३।३०, ५० शांकरभाष्य

४. गौड़ीय दर्शन ३।१४;वं ग

५. पंचपादिका विवरण पृष्ठ ६५, काशी संस्करण, १८९२ सम्वत्

६. सिद्धान्तलेश संग्रह पृष्ठ १८

७. सुरेश्वराचार्य कृत नैष्कर्मसिद्धि पृष्ठ १०७–८

८. (क) भावार्थ दीपिका ११।२२।१०

(ख) श्रीगीता – श्रीधरस्वामिकृत सुबोधिनी टीका १३।१६

कहते हैं, ब्रह्म ही जीवके रूपमें परिणत हुआ हैं।[१] अभेदवादी श्रीरामानुजके मतसे जीव 'विशेष्य' रूप परमात्माका 'विशेषण' रूप अंश है।[२] परतन्त्र-तत्वमें जीव चेतन स्वरूप है,[३] ब्रह्मसे नित्य भिन्न है - ऐसा मानते हैं श्रीमन्मध्वाचार्य।[४] शैव योगी विशिष्टाद्वैतवादी श्रीकण्ठके अनुसार जीव ब्रह्मका कार्य है।[५] आचार्य श्रीविष्णु स्वामि जीवका ईश्वराश्रयत्वरूपमें अद्वयत्व स्वीकार करते हैं।[६] स्वाभाविक भेदाभेदवादी आचार्य श्रीनिम्बार्क जीव और परमात्मामें अंशांशिभाव स्वाभाविक 'भेदाभेद' सम्बन्ध मानते हैं।[७] श्रीविज्ञानभिक्षुके अनुसार जीव सूर्य और उसकी किरणोंकी तरह ब्रह्मका अंश है। जीव और ईश्वरका अंशांशिभावमें विभाग और अविभाग रूप भेदा-भेद श्रुति प्रसिद्ध है।[८]

गौड़ीय दार्शनिक श्रीबल्देवविद्याभूषणपादकी उक्ति—है जीव-अणु चैतन्य, नित्य, बहु और अनन्त, परमात्माका विभिन्नांश और भगवद्दास है।[९] इसी गौड़ीय सिद्धान्तमें श्रीजीव गोस्वामी, श्रीकृष्णदास कविराज गोस्वामी, श्रीविश्वनाथ चक्रवर्ती आदि आचार्य भी जीवको तटस्थाशक्ति-

---

१. सूत्र भाष्य २।३।१८, १।४।२५, ३।२।१५

२. श्रीभाष्य २।३।४५

३. मध्वभाष्य (ता० नि०) १.७०, विष्णु तत्व विनिर्णय १ प०

४. (क) ब्रह्मसूत्र २।३।५, राघवेन्द्र यतिकृत टीका
 (ख) म० भा० ता० नि० १.६९ तत्वोघोत और माण्डूक्य भाष्य

५. ब्रह्मसूत्र १।१।२ श्रीकण्ठभाष्य पृष्ठ १३५

६. (क) ब्रह्मसूत्र १।७।६ सर्वज्ञ सूक्ति
 (ख) सर्वदर्शन संग्रह २५ तम अनुधृत 'साकार सिद्धि'
 (ग) भावार्थ दीपिका १।७।६ आत्मप्रकाश टीका

७. (क) वेदान्त कामधेनु, पर्थ श्लोक
 (ख) ब्रह्मसूत्र २।३।४२ निम्बार्क भाष्य

८. विज्ञानामृत भाष्य पृष्ठ ६१

९. (क) सिद्धान्तरत्नम् ६।५।४
 (ख) वेदान्तस्यमन्तक इय किरण

जीवशक्ति युक्त भगवान्का विभिन्न अंश तत्व मानते हैं तथा उनके अनुसार भगवान्के साथ जीव और जगत्का अचिन्त्यभेदाभेद सम्बन्ध है।[1]

निरपेक्ष विवेचनसे यह सुस्पष्ट प्रतीत होता है कि आचार्यशंकर एवं उनके अनुगत अद्वैतवादियोंके निराकार-निर्विशेषपर विचार भागवतीय-सिद्धान्तसे बहुत दूर है। वैष्णवाचार्योंके मत भागवतमतके समीप ती हैं किन्तु कुछेक के मत स्पष्ट नहीं हैं। भागवतका जीव-जगत का परमात्मासे केवल भेद या केवल अभेद अभीष्ट नहीं; किन्तु भेद और अभेद दोनोंही एकसाथ अभीष्ट है।[2] ऐसा होने पर भी नित्य भेद ही प्रबल है।[3]

स्पष्ट रूपसे इसका स्वरूप केशके अग्रभागके हजारवें भागसे भी अर्थात् वह अत्यन्त सूक्ष्म चिदंश है।[4] अणु रूप है[5] स्वरूप है चित्समुद्ररूप ब्रह्ममें अनन्त लहरवत्।[6] मायासे मोहित होकर यह जीव तीनों गुणोंसे अतीत होनेपर भी अपनेको त्रिगुणात्मक मान लेता है और इस मान्यताके कारण होनेवाले अनर्थोंको भोगता है। इन अनर्थोंको शान्तिका साक्षात् साधन है—केवल भगवानका भक्तियोग। परन्तु संसारके लोग इस बातको नहीं जानते। यही समझ कर व्यासजीने परमहंसी संहिता श्रीमद्भागवतकी रचना की।[7] जीवोंके लिए संसारमें सबसे बड़ी कल्याण-प्राप्ति यही है कि उसका

---

१. (क) परमात्मसन्दर्भ ३७, ३८ अनुच्छेद
(ख) श्रीचैतन्य चरितामृत २. २० आदिलीला
(ग) ब्रह्मसूत्र २. ३. ४७ गोविन्द भाष्य

२. बृहद्भागवतामृत २।२।१८६

३. प्रमेय रत्नावली ४. ५

४. (क) सूक्ष्मता पराकाष्ठा आप्तो जीवः - परमात्मसन्दर्भ ३
(ख) श्वेताश्वतरोपनिषत् ५।८
(ग) ब्रह्मसूत्र २।३।१८–२२
(घ) भागवत ११।१६।११ - सूक्ष्माणमप्यहं जीवः

५. वे० सु० मध्यभाष्यधृत गौषवन श्रुतिवाक्य २।३।१८

६. यथा समुद्रवहवस्तरंगः स्तथावयं ब्रह्मपि भूरि जीवाः-तत्वमुक्तावली१०

७. भागवत १।७।४–५

चित्त तीव्र भक्तियोगके द्वारा भगवान् श्रीकृष्णमें लगकर स्थिर हो जाय।[१] भगवान् ही एकमात्र वास्तव वस्तु है।[२]

श्रीरामचरित मानस में तुलसीदासकी मान्यता भी यही है–

ईश्वर अंश जीव अविनाशी।
चेतन अमल सहज सुखराशि॥

जगत् :

सत्य स्वरूप ईश्वरकी शक्तिका कार्य-निबन्धन (हेतु) जगत् भी सत्य है। जगतके जन्मादि उसके अनित्यत्वके प्रकाशक हैं। 'सत्यत्व' नित्यानित्य साधारण अर्थात् सत्य वस्तु भी अनित्य हो सकती है। इसलिए जगत् सत्य होनेपर भी असत्य है।[३] असत्यसे अर्थ है अहं और मम् भावात्मक संसार, आत्मविस्मरण। जगत्-प्रक्रियामें ब्रह्मकी इच्छा ही निमित्त है।[४] परमकाष्ठापन्न ब्रह्म मायासाधन निरपेक्ष होकर स्वात्मभूत जगतकी सृष्टि करता है।[५] भागवतके शब्दोंमें भगवान् स्थूल सूक्ष्म कार्यरूपा मायाके सांचेमें अपनेको जगतके रूपमें ढाल देते हैं। माया द्रष्टा और दृश्यका अनुसन्धान करनेवाली है। स व नैव रेमे, तस्मादेकाकी न रमते, स द्वितीयमैच्छत्, स हैतावानास 'अर्थात् वह रममाण नहीं हुआ, एकाकी पुरुष रममाण नहीं होता, उसने दूसरे की इच्छा की, वह इस प्रकार हो गया। ब्रह्मको ही जगतकी योनि (कारण) कहा है,[७]

---

१. भागवत ३।२५।४४
२. भावार्थ दीपिनी १।१।२
३. सिद्धान्तरत्नम् ६।२२।२७
४. (क) सोऽकामयत् - तैत्तिरीयोपनिषत् २. ६
   (ख) तदैक्षत् - छान्दोग्योपनिषत् ६।२।३
५. अयं प्रपंचो न प्राकृतः, नापि परमाणुजन्यः, नापि विवर्तात्मा, नापि अदृष्ट द्वारा जातः, नापि असतः सत्तारूपः किन्तु 'भगवत्कार्यः' परमकाष्ठापन्नवस्तु कृति साध्यः। तादृशोऽपि भगवद्रूपः। - शास्त्रार्थ प्रकरण कारिका २३, प्रकाश टीका
६. बृहत्० उप० १।४।३
७. ब्रह्मसूत्र १।१।३, १।४।२८

ब्रह्म: स्वभावत: एक है पर अपने विलक्षण सामर्थ्य एवं इच्छाके बलपर वह अनेक हो जाता है। उसका एकत्व उसके लिए बन्धनकारी नहीं। वह अकेला ही अपनेको अनेक रूपोंमें अभिव्यक्त कर रहा है।[1] वह स्वयं ही शक्तिरूपसे जगतके रूपमें परिणत होता है।[2] सर्वं खल्विदं ब्रह्म[3]–यह सब कुछ (चराचर जगत्) ब्रह्म ही है। समस्त जगतकी सृष्टि कर उसने स्वयं उसमें प्रवेश किया।[4] वही इन सारे नामों एवं रूपोंको स्वयं धारण करता है।[5] यद्यपि उसमें नानात्व नहीं है।[6] एक परमपुरुषमें यह सम्पूर्ण जगत् परिपूर्ण है।[7] जगतकी रचना उसका 'लीला' विलास है।[8] यह विश्व प्रलयकालमें वनविलीन विहंगवत् परमात्मामें लीन रहता है, ठीक उसी प्रकार जिस प्रकार उपवनमें पक्षीगण लीन रहते हैं।[9] भगवान्‌की बहिरंग शक्ति द्वारा निर्मित यह जगत् भगवानकी तरह है, भगवान् नहीं है। यह समस्त विश्व भगवानमें सूत्र ग्रथित मालाकी तरह ओतप्रोत रूपसे ग्रथित है।

---

1. God is one but he is not bounded by his unity. We see him here as one who is always manifesting as many, not because he cannot help it, but because he so wills and outside manifestation he is अनिर्देश्यम् indefinable and cannot be described as either one or many. - Arrindo The Yoga & its objects —

धृत - श्रीमद्‌वल्लभाचार्य : सिद्धान्त और साहित्य पृष्ठ १५

२. ब्रह्मसूत्र १।४।२६ आत्मकृते: परिणाभात् ।

३. छान्दोग्योपनिषत् ३।१४।१

४. तैत्तिरीयोपनिषत् ६।१

५. छान्दोग्योपनिषत् १।६।१

६. नेह नानास्ति किंचन–बृहत्० उप० ४।४।१९, कठोपनिषत् २।१।११

७. तेनेदं पूर्णं पुरुषेण सर्वम्–श्वेताश्वेतरोपनिषत् ३।९

८. ब्रह्मसूत्र २।१।३३

९. (क) प्रमेयरत्नावली – तृतीय प्रमेय, श्लोक २

(ख) तुलनीय – प्रलयेऽपि जगत्सत्स्याद्वनलीनविहंगवत् ।
वैराग्यार्थमसत्योक्तिरिति प्राहुर्मनीषिण: ।।
– नवरत्न २२

भागवतके प्रारम्भमें जन्माद्यस्य अव्ययका प्रयोग अविकृत और मायासे अप्रभावित भगवानसे ही नाम रूपात्मक जगतकी उत्पत्तिके लिए हुआ है, वही यतः का प्रयोग भगवानका जगतसे अप्रभावित और अविकृत रहनेके लिए किया है।[1]

ब्रह्माण्ड निर्णय

ब्रह्माण्ड कृष्णकी मायिकी शक्ति है। (माया अचित् व्यापार है, मायासे जितना जीव अलग रहता है, उतना ही अधिक वह कृष्णका सान्मुख्य प्राप्त करता है)[2]। ब्रह्माण्डधारी जब ब्रह्माण्डको फोड़कर बाहर निकला तब वह अपने रहनेका स्थान ढूंढ़ने लगा और स्थानकी इच्छासे उस शुद्ध संकल्प पुरुषने अत्यन्त पवित्र जलकी सृष्टि की। विराट् पुरुष रूप 'नर' से उत्पन्न होनेके कारण ही जलका नाम 'नार' पड़ा और अपने उत्पन्न किये हुये 'नार' में वह पुरुष एक हजार वर्षों तक रहा, इसीसे उसका नाम 'नारायण' पड़ा[3], इनसे ही इस ब्रह्माण्डकी सत्ता है। उन्होंने अपनी मायासे अखिल ब्रह्माण्डके बीजस्वरूप अपने सुवर्णमय वीर्यको तीन भागोंमें विभक्त कर दिया अधिदैव, अध्यात्म और अधिभूत (इस पुरुषके हिलने-डुलनेपी उसके शरीरमें रहनेवाले आकाशसे इन्द्रियबल, मनोबल और शरीरबलकर उत्पत्ति हुई, इससे इन सबका राजा प्राण उत्पन्न हुआ। अपने स्थूल रूपमें वह पृथ्वी आदि आठ आवरणोंसे घिरा हुआ है और इससे पूरे भगवानका अत्यन्त सूक्ष्म रूप है।

---

१. (क) सदृशं त्रिषु लिंगेषु सर्वासु च विभक्तिषु।
वचनेषु च सर्वेषु यन्न व्येति तदव्ययम्॥ - प्रणवोपनिषत् १५

(ख) भागवत २।५।१८, २।६।३०

(ग) श्रीमद्भगवद्गीता ९।९

२. जैवधर्मः भक्तिविनोद ठाकुर अनुवादक - श्रीश्रीनारायण प्रभुपाद पृष्ठ ५७–५८

३. (क) आपो नारा इति प्रोक्तां आपो वै नरसूनवः।
अयनं तस्य ताः पूर्वं तेन नारायण स्मृतः॥ - विष्णुपुराण ३।४।६

(ख) नारायण और कृष्णकी अभिन्नता–
एताः कुरुश्रेष्ठ जगद्विधातुर्नारायण स्याखिलसत्वधान्मः।
लीलाकथास्ते कथिताः समासतः कात्स्न्येन नाजोऽप्यमिधातुमीशः
॥ - भागवत १२।४।३९

इस ब्रह्माण्डमें जाग्रत अवस्थारूप सृष्टिकालमें 'विश्व' नामक विभुके रूपमें अनिरुद्ध, स्वप्नावस्थारूप सन्धिकालमें 'तैजस' नामक विभुके रूपमें प्रद्युम्न, सुषुप्तिरूप प्रलयावस्थामें 'प्राज्ञ' नामक विमुके रूपमें 'संकर्षण' तथा तुरियाख्य सृष्किीअनुद्भूति अवस्थामें तुरीय नामके विभुके रूपमें वासुदेव है।[१] पूरा ब्रह्माण्ड श्रीकृष्णके उदरमें है, इसे उन्होंने अम्ब यशोदाको 'मृद्-भक्षण लीला' मे दिखाया था[२] यही उदरस्थ ब्रह्माण्ड कौरवोंकी राजसभामें, युद्धक्षेत्रमें अर्जुनको और द्वारकाके मार्गमें महर्षि उतंकको दिखाया था।

अण्ड फोड़कर निकले हुये विराट् पुरुषमें ही सारा ब्रह्माण्ड निहित है। सातों पाताल, सातों स्वर्ग, पृथ्वी, चारों वर्णके मनुष्य, देवता, वेद. धर्मादि, स्थावर, चराचर, दिवस-यामिनी, चन्द्रमा, मनु, गन्धर्वादि, ध्रुवलोक शिशुमार चक्र आदिका सभीका एकमात्र वही कारण है।[३] सूर्य और उसकी गति सभीके लिए आकर्षणका केन्द्र बनी हुई है।[४]

इस ब्रह्माण्डका विस्तार पचास करोड़ योजन है। यह सम्पूर्ण विश्व जो कुछ भी था, है या होगा, सबको यह घेरे हुए है और उसके अन्दर यह विश्व उस ब्रह्मके केवल दस अंगुलके परिमाण (एकपाद) में ही स्थित है।[५]

काल-कर्म-प्रकृति निर्णय

मायापति भगवानने एकसे बहुत होनेकी इच्छा होनेपर, अपनी मायासे अपने स्वरूपमें अनुस्युत भावसे स्थित जीवोंके अदृष्ट काल, कर्म और प्रवृत्ति (स्वभाव) को स्वीकार कर लिया। भगवानकी शक्तिसे कालने तीनों गुणोंमें क्षोभ उत्पन्न कर दिया, प्रकृतिने उन्हें रूपान्तरित कर दिया और कर्मने महत्वको जन्म दिया।[६]

---

१. भागवत १०।८।३६

२. भागवत २।१०।३२–३४

३. भागवत २।५।३२ से ४२, २।१।२६ से ३६

४. भागवत ५ स्कन्ध, २१ अध्याय

५. (क) भागवत २।६।१५

(ख) ५० करोड़ योजन=५०,००००००×८=४००,००००००० मील विज्ञानिकोंके और पौराणिकोंके मतानुसार पृथ्वी गोल होनेके कारण लम्बाई और चौड़ाईमें समान है।

६. भागवत २।५।२१–२२

काल :

परब्रह्मका अद्भुत प्रभावसम्पन्न तथा जागतिक पदार्थोंके नानाविध वैचित्र्यका हेतुमत स्वरूपविशेष ही 'काल' नामसे विख्यात है। जब वस्तु या पदार्थ एक स्थानसे दूसरे स्थानपर गति करते हैं, तब उसमें जितनी देर लगती है, उसे 'काल' कहते हैं—शास्त्रीय और वैज्ञानिक अर्थमें। गतिका अर्थ है स्थानान्तर और रूपान्तर। कालका ऐसा ही स्वभाव है।[१] प्रकृति और पुरुष इसीके रूप हैं। यह काल कर्मका मूल अदृष्ट, सर्वाश्रय, प्राणियोंको सदा भयभीत करनेवाला, प्राणि-संहारक,[२] ब्रह्मादिका भी प्रभु, वायु, सूर्य, इन्द्र, तारोंका नियामक, औषधि, वनस्पति, नदी और समूहका मर्यादक, अग्निका प्रज्ज्वालक, पृथ्वी और पर्वतका स्वामी, आकाश और महत्वादिका शासक, अविनाशी स्वयं अनादि, दूसरोंका आदिकर्त्ता, अनन्त पर दूसरोंका अन्त करने वाला, पितासे पुत्रकी उत्पत्ति कराता हुआ जगत्का रचयिता,[३] यमराजको भी मारनेवाला, भगवानकी संहार-शक्ति है। वास्तवमें पुरुष रूप भगवान् ही 'काल' कहे जाते हैं।[४]

अनन्त होनेपर भी भागवतमें कालकी गणना की गयी है। चार युग हैं—सत्ययुग, त्रेता, द्वापर और कलि। ये चार युग अपनी सन्ध्या और सन्ध्यांशोंके सहित देवताओंके बारह सहस्र वर्ष तक रहते हैं। युगके आदिमें सन्ध्या होती है और अन्तमें सध्यांश। इनकी वर्ष—गणना सैकड़ोंकी संख्यामें बतलायी गयी है। इनके बीचका जो काल होता है, उसीको कालवेत्ताओंने युग कहा है। चार युग मिलाकर एक दिव्य युग होता है। महर्लोकसे ब्रह्म-लोक पर्यन्त एक सहस्र चतुर्युगीका एक दिन होता है। इतनी ही बड़ी रात्रि होती है जिससे ब्रह्माजो शयन करते हैं। रात्रिका अन्त होनेपर इस लोकका

---

१. दृष्टव्यः भागवत धर्मः हरिभद्र उपाध्याय पृष्ठ १६७

२. (क) वही: कालः पचति भूतानि कालः संहरति प्रजाः कालो हि जगदाधारः।

(ख) कलनात् सर्वभूतानाम्.... ....।

३. कालः प्रजा असृजत्—अथर्ववेद १९।६।५४। यह अनात्मकाम होता हुआ भी काममय बन जाता है। मनसे विश्वरेतभूत (उपादानभूतशुक्र) कामनाका उदय होता है— कामस्तदग्रे समवर्तताधि मनसोरेतः प्रथमं यदासीत्। - ऋग्वेद १०।१२९।४

४. श्रीमद्भागवत ३।२९।३६ से ४५, ३।२६।१५ से १७

कल्प प्रारम्भ होता है। एक कल्पमें चौदह मनु होते हैं। प्रत्येक मनु इकहत्तर चतुर्युगीसे कुछ अधिक काल तक अपना अधिकार भोगते हैं। दिन-रातके हेर-फेरसे ब्रह्माजीकी सौ वर्षकी परमायु भी बीती हुई सी दिखाई देती है।[1]

इस प्रकार ब्रह्माजीका दिन-रात मिलाकर पक्ष—महीना—वत्सर होता है, वत्सरोंमें ब्रह्माजीकी पचास वर्षकी आयुमें एक परार्द्ध काल होता है और द्विपरार्द्ध सौ वर्षकी आयुमें सम्पूर्ण विश्व लीन हो जाता है। सब कुछ सूक्ष्म रूपमें कारण—स्वरूप होकर भगवान्‌में स्थित हो जाता है।

मनुष्योंका एक वर्ष देवताओंका एक दिन होता है। मनुष्योंके एक वर्षमें दो अयन, छः ऋतुयें और बारह मास होते हैं। एक मासमें दो पक्ष होते हैं। चार—चार प्रहरके दिन और रात होते हैं। एक प्रहर छः या सात नाडिका का, पन्द्रह लघुकी एक नाडिका (दण्ड), दो नाडिकाका एक मुहूर्त, एक लघु पन्द्रह काष्ठाका, काष्ठा पांच क्षणकी, तीन निमेषका एक क्षण, निमेष तीन लवका, एक लव तीन वेधका, वेध त्रुटिसे सौ गुना, होता है। दो परमाणु मिलकर एक अणु, तीन अणुओंके मिलनेपर एक त्रसरेणु और तीन त्रसरेणुओं-को पार करनेमें सूर्यको जितना समय लगता है, वह त्रुटि है।[2]

ब्रह्माजीके प्रथम परार्धके अन्तमें जो कल्प हुआ था, उसे पाद्मकल्प कहते है। भागवतमें पाद्मकल्पकी कथाएँ वर्णित हैं। वर्तमान श्वेतवाराह कल्प ब्रह्माजीके द्वितीय परार्धके प्रथम वत्सर (सूर्य, बृहस्पति, सवन, चन्द्रमा और नक्षत्र सम्बन्धी महीनोंके भेदसे 'वर्ष' ही संवत्सर, परिवत्सर, इडावत्सर, अनुवत्सर और वत्सर कहा जाता है)[3] का प्रथम दिवस है, समय है मध्याह्न। इस प्रकार चतुर्दश मन्वन्तरोंमें-से सप्तम वैवस्वत मन्वन्तरकी अट्ठाईसवीं चतुर्युगीका कलिकाल चल रहा है और इस कलिकी प्रथम सन्ध्याका ५०८८-५०८९ वर्ष चल रहा है।

भागवतमें वर्णित घटनाओंके तारतम्यसे स्थूल रूपसे कालका विचार किया जाय तो कालक्रमसे अनेकों असंगतियां प्रतीत होती हैं। परन्तु इसमें विभिन्न कल्पोंकी कथाएँ वर्णित होनेसे ऐसा प्रतीत होता है; विशेषतः उन लीला कथाओंका मूल उद्देश्य जीवोंको उनकी स्वरूपोपलब्धि एवं उन्हें भगवदु-न्मुख कराना है, स्थूल कालगत घटनाओंके क्रमका विचार लक्ष्य नहीं है।

---

१. भागवत ३।११।१८ से ३२

२. वही ३।११।५ से १३

३. वही ३।११।१४

अपितु घटनाएँ भी पौराणिक सत्य हैं। भागवतके प्रारम्भमें लिखा है 'सत्यं परं धीमहि'[1] यह सत्य अनादि है, वह प्राकृत कालके अन्तर्गत नहीं है। तभी तो सत्य रूप भगवान् जो कृष्णाख्य हैं, नारदसे कहते है—अहमेवासमेवाग्रे नान्यद्यत्सदसत्परम्। पश्चादहं यदेतच्च योवशिष्यते सोऽस्म्यहम्।[2] अर्थात् सृष्टिके पूर्व केवल मैं ही मैं था। मेरे अतिरिक्त पृथक्‌रूपमें न स्थूल थान,सूक्ष्म, और न तो दोनोंका कारण प्रधान या प्रकृति ही सृष्टिके पश्चात् भी एक मात्र मैं ही हूँ और प्रलयके पश्चात् भी एकमात्र मैं ही अवशिष्ट रहूँगा।

भागवत प्रबन्धकी घटनाओंमें कालकी महिमाका अवलोकन किया जाय तो प्रमुख श्रोता परीक्षितकी मृत्यु निकटस्थ है, सात दिनके कालमें उनको परम तत्व अवगत होकर इस परम तत्वको प्राप्त करना है; इससे पूर्व एक क्षणके कालमें श्रृंगी ऋषि शाप दे गये, कारण था वह काल जिसमें भूपाल जो क्षुधा-तृषासे पीड़ित थे, को जल भी प्राप्त नहीं था।

कालके व्यत्ययमें ही भागवतके कृष्णने अनेकों अवतार धारण किये और कालके आनेपर अनेकों अवतार धारण करेंगे। काल उपस्थित होनेपर हिरण्याक्ष, रावण, शिशुपाल मृत्युंजयी होनेपर भी कालके गाल में चले गये।

कालसे ही सब मिलते हैं, बिछुड़ जाते हैं। पुर्नमिलन भी कालके ही है। गोपिकाओंको तो श्रीकृष्णके वियोगमें एक 'त्रुटि' भी युगके समान प्रतीत होती है···· 'त्रुटिर्युगायते'।[3]

महाबलवती कालशक्तिकी प्रेरणासे लोग कर्मके अनुसार युद्ध करते हैं उन्हें विजय–पराजय अथवा मृत्यु, यश–अपयश मिलते हैं।[4] इसी कालशक्ति के कारण राजा बलि पराजित हो गये। राजा मुचुकुन्दके पुत्र, रानियाँ, बन्धु-बान्धव और अमात्यमंत्री तथा उनके समयकी सम्पूर्ण प्रजा कालके गालमें चली गयी। यदुकुलका भी संहार हो गया।[5] कंसका काल देवकीका आठवाँ गर्भ था। कालजन्य परिस्थितसे भगवान् कृष्ण स्वयं कारागारमें जन्म लेते है घनघोर वर्षामयी रात्रिमें। महारासका आनन्द एक वर्षके काल तक रहा।

---

१. भागवत १।१।१

२. वही २।९।३२

३. वही १०।३०।५ श्लोकाऽव्यय

४. वही ८।११।७

५. भागवत १०।५१।१८

ब्रह्माका मोह भी एक वर्षके काल तक रहा। यह घटनात्मक रूपसे भागवतमें कालका सुगठित, सुनियोजित, सुनिश्चित और सुचारू प्रबन्ध है, जहाँ भागवत -नायक की उपस्थिति किसीको एक दिवस और किसीको एक मास प्रतीत होती है.......।

इस प्रकार काल स्वरूप भगवान् श्रीकृष्णके जहाँ एकत्र; एक निःश्वास कालमें सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड लीन हो जाता है,[1] अपरत्र उनकी इच्छासे पुनः प्रकट हो जाता है।[2]

कर्म :

प्रपंचमें जीवन धारणपूर्वक शरीर और मनसे जो कुछ किया जाता है उसे 'कर्म' कहते है। वाचन, हस्तकर्म, पादचालन, मनसे संकल्प-विकल्प करना, अहंकारके द्वारा अभिमान करना, सारे कर्म भगवानकी ही अभिव्यक्तियाँ हैं।[3] जीव और ईश्वर बद्ध और मुक्तके भेदसे भिन्न-भिन्न होनेपर भी एक ही शरीरमें नियन्ता और नियन्त्रितके रूपसे स्थित हैं। शरीर एक वृक्ष है, इसमें हृदयका घोंसला बनाकर जीव और ईश्वर नामके दो पक्षी रहते हैं। वे दोनों चेतन होनेके कारण समान है और कभी न बिछुड़नेके कारण सखा हैं। इनके निवास करनेका कारण केवल लीला ही है। इतनी समानता होनेपर भी जीव तो शरीर रूप वृक्षके फल—सुख-दुःख आदि भोगता है। किन्तु ईश्वर अभोग्य भावसे कर्म-फल, सुख-दुःख आदिसे असंग और उनका साक्षीमात्र रहता है।[4]

संसार भी एक वृक्ष है, जो अनादि और प्रवाह रूपसे नित्य है। इसका स्वभाव ही है - कर्मकी परम्परा तथा इस वृक्षकेदो बीज हैं पाप और

---

१. ब्रह्मसंहिता ५.।३८

२. भागवत ३।१०।११–१२

३. एवं गदिः कर्म गतिर्विसर्गो घ्राणो रसो दृक् स्पर्शः श्रुतिश्च संकल्पाविज्ञानमधाभिमानः सूत्रं रजः सत्वतमोविकारः। -
भागवत ११।१२।१६

४. सुपर्णावेतौ सदृशौ सखायो यदृच्छयेतो कृतनीड़ो च वृक्षे।
एकस्तयोः खादति पिप्पलान्नमन्यो निरन्नोऽपि बलेन भूयान् ॥
—भागवत ११।११।६

पुण्य। फल दो प्रकारके हैं सुख और दुःख। भोग और मोक्षका कारण 'कर्म' ही है।[1]

प्रसिद्धोक्ति है–

द्वा सुपर्णा सयुजा सखाया समानं वृक्षं परिषस्व जाते।
तयोरन्ये पिप्पलं स्वाद्वत्येनश्नन्नन्योऽभिचाकशोति ॥[2]

अर्थात् संसाररूपी पीपलके वृक्षपर दो पक्षी बैठे हुये हैं - एक बद्ध जीव, दूसरा उसके सखाके रूपमें ईश्वर। बद्ध जीव रूपी पक्षी संसार-वृक्षके फलोंको चखते हैं और ईश्वर रूप पक्षी उन फलोंको स्वयं उपभोग न कर जीव रूप पक्षीके आस्वादन कार्यको देखते हैं।

कर्म, अकर्म और विकर्म ये तीन प्रकारके कर्म हैं। शास्त्रविहित 'कर्म' से जीवको सुख मिलता है, शुभ कर्म न करनेको अकर्म कहते हैं। अशुभ कर्मको विकर्म या पाप कहते हैं।[3]

कर्मके अन्य रूपसे भी तीन प्रकार हैं - नित्य, नैमित्तिक और काम्य। काम्य कर्म हेय और त्याज्य है। शरीर, मन, समाज और परलोकके लिए कृत मंगलकारी कर्म नित्य हैं। जो किसी निमित्तका आश्रय लेकर किया जाता है वह नैमेत्तिक कर्म है। नित्य कर्म जलकी तरलता जैसा है और नैमेत्तिक कर्म जलकी हिमता जैसा।

ये नित्य, नैमेत्तिक कर्म जगत्में सुचारु रूपसे अनुष्ठित हो सके, इसी विधानके अभिप्रायसे भागवतमें मनुष्यके स्वभाव और स्वाभाविक अधिकारका विचारकर वर्णाश्रम धर्मका निरूपण किया गया है।[4] यद्यपि सभी कर्म मनुष्योंको जन्म–मृत्युरूप संसारके चक्रमें डालने वाले हैं, तथापि जब वे भगवान्को समर्पित कर दिये जाते हैं, तब उनका कर्मपना ही नष्ट हो जाता है। हाँ, वर्ण तथा आश्रमकी व्यवस्था वैध जीवनकी मूल भित्ति है।[5]

भागवतके अनुसार जैसे बालकको मिठाई आदिका प्रलोभन देकर औषधि खिलाकर रोगमुक्त करते हैं उसी प्रकार सभी सकामी अज्ञ जीवोंको

---

१. **य एष संसारतरुः पुराणः कर्मात्मकः पुष्पफले प्रसुते। - भागवत ११।१२।२१ श्लोकार्द्ध**

२. **श्वेताश्वेतरोपनिषत् ४।६, मुण्डकोपनिषत् ३।१।१, ऋग्वेद १।१६४।२१**

३. **भागवत ११।३।४३**

४. **भागवत ११।१७।१०**

५. **श्रीमद्भगवद्गीता ४।१७ कर्मणो ह्यपि बोद्धव्यं……। एवं ३।८**

स्वर्ग आदिका प्रलोभन दिलाकर कर्मोंकी निवृत्तिके लिए ही कर्मका विधान है। कर्म सम्बन्धमें व्यवहृत 'नित्य' और 'नैमित्तिक' शब्दोंका पारमार्थिक भावमें ही तात्पर्य है। कर्मको लक्ष्य करके जो 'नित्य' का प्रयोग होता है, वह औपचारिक भावमें ही होता है। कर्म कभी नित्य नहीं होता। तात्विक दृष्टिसे 'कृष्ण-प्रेम' ही एकमात्र नित्य कर्म है, जिसका यथार्थ नाम 'विशुद्ध चिद् अनुशीलन' है। लक्ष्यके लिए जड़ कार्यका अवलम्बन करना पड़ता है जो नित्य कर्मका सहायक है।[1] भगवान श्रीकृष्णने भी अपने जीवनमें गोपालन, सन्तप्त लोगोंका त्राण आदि कार्य किये हैं, पर नैष्कर्म्य भावसे। भागवतमें कर्मका स्वरूप और उसके त्यागका वर्णन प्रमुख रूपसे एकादश स्कन्धमें है, जिनका वाचन कृष्णने उद्धवके प्रति किया है। कर्मकी पराकाष्ठा 'कृष्ण–भक्ति' करना ही है।

प्रकृति निर्णय :

प्रकृतिका अर्थ है कर्म-जनित संस्कारोंसे निर्मित जीवका स्वभाव। रागानुगा-प्रकृति जीवकी शुद्ध प्रकृति, स्वभावसिद्ध, चिन्मय और जड़मुक्त है। रचे हुये इस जगत्में अज–जीव–समुदाय प्रकृतिके अधीश्वर–परमात्माकी प्रकृति किंवा माया द्वारा बंधा हुआ है।[2]

अजामेकां लोहित-शुक्ल-कृष्णां
बह्वीः प्रजाः सृजमानां सरुपाः।
अजो ह्येको जुषमाणोऽनुशेते
जहात्येनां भुक्त-भोगामजोऽन्यः ॥[3]

अर्थात् लाल सफेद और काले रंगकी किंवा रज-सत्व और तम - इन तीनों गुणोंसे युक्त बहुतसे भूत-समुदायको प्रकाशित करनेवाली 'सरुपा' अर्थात् भगवान्के समान एक अजाको (अजन्मा, अनादि प्रकृतिको) एक श्रेणीके अज (अज्ञानी जीव) भजन करते हैं, परन्तु दूसरे प्रकारके अज (ज्ञानी) पुरुष उस भोगी हुई प्रकृतिका सम्पूर्ण रूपसे त्यागकर देते हैं। यह है भागवत वर्णित प्रकृतिका निर्णय अर्थ।

जो त्रिगुणात्मक, अव्यक्त, नित्य और कार्य-कारण रूप है तथा स्वयं निर्विशेष होकर भी सम्पूर्ण विशेष धर्मोका आश्रय है उस प्रधान नामक तत्व

---

१. जैवधर्म हिन्दी संस्करण अध्याय ३ पृष्ठ ४१
२. श्वेताश्वतर ४।६
३. वही ४।५

को ही प्रकृति कहते हैं।[1] पाँच महाभूत, पाँच तन्मात्रा, चार अन्तःकरण और दस इन्द्रियाँ इन चौबीस तत्वोंके समूहको विद्वान लोग प्रकृतिका कार्य मानते हैं।[2] सत्व, रज और तमकी साम्यावस्था ही प्रकृति है। ये तीनों गुण प्रकृतिके ही हैं। इन्हींके द्वारा जगत्‌की स्थिति, उत्पत्ति और प्रलय हुआ करते हैं।[3] इन्हींसे जगतके जीव सत्वगुणी, रजोगुणी और तमोगुणी होते हैं।[4] भगवान् ही जड़ा प्रकृतिके सभी कार्योंके अध्यक्ष हैं। उनकी कटाक्षसे चालित होकर प्रकृति चराचर जगत्‌को प्रसव करती है, इसीलिये यह जगत् पुनः पुनः प्रकट होता है।[5] यह जड़ प्रकृति उस भगवान्‌की चिच्छक्तिकी छाया या बहिप्रकाश है।[6] इसे बहिरंग शक्ति भी कहते हैं। बहिरंग शक्तिके दो प्रकारों जीवमाया व गुणमायामें-से यह गुणमाया है, जो तमः स्थानीय है, स्वरूप तत्व यथार्थवस्तु है और सूर्य स्थनीय है। सूर्यमें जिस प्रकार अन्धकार नहीं है, वैसे ही भगवान्‌में भी अन्धकार स्थानीय प्रकृतिका संयोग नहीं है।[7] यह माया तो उसकी आँखोंके सामने ठहरती ही नहीं, झेंपकर दूरसे ही भाग जाती है, परन्तु संसारके अज्ञानीजन उसीसे मोहित होकर 'यह मैं हूँ, यह मेरा है' इस प्रकार कहते रहते हैं–

विलज्जमानया यस्य स्थातुमीक्षापथेऽमुया।
विमोहिता विकत्थन्ते ममाहमिति दुर्धियः ॥ भागवत २।५।१३

वस्तुतः जड़ीय आध्यात्मिक लीलाके विस्तारमें उसकी मायिकी (प्राकृतिक) आकर्षण–शक्ति द्वारा जीव भगवानको भूल जाता है, अपना स्वरूप और साध्य-साधन स्वरूप भी भूल जाता है, इसलिये वह अवस्तुको वस्तु, अयथार्थको यथार्थ और अप्रतीतिको प्रतीति मान लेता है।[8]

भगवान् अपनी प्रकृतिको स्वीकार करके ही इस जगतमें प्रकट होते हैं। परमब्रह्मत्वको छिपाये रहनेपर भी मृत्तिका-भक्षण, यमलार्जुन-भंग, सकट-

---

१. भागवत ३।२६।१०
२. वही ३।२६।१३–१४
३. वही ११।२२।१२
४. श्वेताश्वतर ४।५
५. श्रीमद्भगवद्गीता ९।१०
६. श्वेताश्वेतर ६।१६
७. भागवत २।९।३३
८. भजन रहस्य २।२०

भञ्जन प्रभृति लीलाओंमें अगत्या ब्रह्मधर्म और ब्रह्मसामर्थ्य प्रकट हो जाते हैं। भगवानके साथ भगवत्कार्य करनेके लिए भगवदाज्ञासे नन्द-पत्निकी कुक्षिसे भगवन्माया भी प्रकट हुई।[1] इसे वैष्णवीमाया भी कहते हैं। इसीसे किसीको भगवत्स्वरूपसे दृढ़ सम्बन्ध हो जाता है और कोई संसारसे दृढ़-सम्बन्ध स्थापित कर लेता है।[2] इस वैष्णवी मायासे मोहित माता यशोदा, स्तन्य पान कर रहे श्रीकृष्णको अतृप्त छोड़ दूधकी ओर भागीं, इसीके प्रभावके कारण श्रीकृष्णके प्रति ब्रजवासियोंके मुँहसे यदाकदा अज्ञानमूलक जैसे वाक्य निःसृत हुये हैं। इसी प्रकार भागवतमें 'मेरी मायासे मोहित होकर तुम दोनों ने मुझसे मोक्ष नहीं मांगा'[3] ऐसे कथन हैं। मृद्-भक्षण लीलामें माँ यशोदाने जब कृष्णके मुखमें विश्वरूप देखा, तब वे पुत्र, पति एवं गृहके प्रति अपनी ममताको संसार-बंधनका कारण मायाका कार्य मानकर उसे छेदन करनेके लिए भगवानसे प्रार्थना करने लगीं। उस समय कृष्णने माताको वैष्णवी मायासे मोहित कर उनके पुत्र-वात्सल्यको पुनः वढ़ाया।[4] इस प्रकार यह प्रकृति दो प्रकार की कही गयी है—उन्मुख मोहिनी योगमाया और विमुख-मोहिनी महामाया।[5] रासलीलाके 'योगमायामुपाश्रितः' (भा० १०।२९।१) तथा 'वैष्णवीं व्यतनोन्मायां' (भा० १०।८।४३) वाक्योंका तात्पर्य यह है कि स्वरूप शक्ति—योगमाया द्वारा चिद्‌विलासमें बहुत ऐसे कार्य होते हैं, जो अज्ञान जैसे प्रतीत होते हैं; किन्तु वास्तवमें वे कार्य नहीं हैं।[6]

अबुध्ने राजा वरुणो वनस्योर्ध्वं स्तूपं ददते पूत दक्षः।
नीचीनां स्थुरुपरि बुध्नं एषाम् अस्मै अन्तर्निहिताः केतवः स्युः ॥[7]

---

१. कल्याण 'कृष्णांक' पृष्ठ ७०

२. अतः सा पशुग्रहाद्यासक्तिं जनयति, क्वचिद् भगवद्-विस्मृतिं जनयति क्वचिन्मायिक धर्माणां भगवति प्रतीतिः — वाक्यान्यपि अज्ञानमूलानि विशेषमायाकार्य भूतेन तामसत्वेन। अत एतस्य दोषरूपत्वम्। इदं मायाकार्यरूपं तामसत्वं भगवान् क्रमेण लीलाभिर्नाशयति - प्रमेय-रत्नार्णव पुष्टिमार्गीय फल विवेक १६६–१६८

३. भागवत - न वव्राथेऽपवर्गं मे मोहितो मम मायया - १०।३।३६

४. वैष्णवीं व्यतनोन्मायाम् - १०।८।४३ - वही।

५. भागवत १०।१।२५ की विश्वनाथ चक्रवर्तीकी सारार्थदर्शिनी टीका

६. जैवधर्म (हिन्दी संस्करण) पृष्ठ २६३

७. ऋग्वेद १-२४-७

अन्ततः दृश्य, कर्म, काल प्रकृति और जीव वास्तवमें 'भगवान्' से भिन्न होकर भी उनसे स्वतंत्र रूपसे भिन्न नहीं हैं।[1]

भागवतमें खगोल-भूगोल आदि लीलाओंका श्रीकृष्ण-लीला प्रतिपादनमें उपयोग :

सम्पूर्ण भागवत प्रबन्धपर विचार करनेपर एक सहज प्रश्न उठता है, मात्र सात दिनमें परीक्षितकी वाक्-अस्त्रकी कठोर-चुभनको श्रीकृष्णपरक बनानेके लिए शुकदेव द्वारा खगोल-भूगोलादिका वर्णन करनेकी क्या आवश्यकता थी ?

भागवतमें सुमेरु रूप श्रीकृष्णकी लीलाका सांगोपांग वर्णनार्थ उनकी लीलाओंको दश-लीलाओंमें विभाजित कर एक मालामें पिरोया गया है। परीक्षितको अवगत कराया गया है। 'यथा अण्डे तथा ब्रह्माण्डे'। भगवान् पूर्ण हैं, अखण्ड है, आप्त है। भगवानके साथ सर्वश्रेष्ठ और सर्वोच्च भावकी संयोजना अनिवार्य है। अतएव परीक्षितके लिए उस पूर्णकी पूर्णताका प्रतिपादन किया है। इसके अभावमें प्रतिपाद्य तत्व अपूर्ण रह जायेगा, आप्त अनाप्त हो जायेगा, अखण्डता खण्डतामें परिवर्तित हो जायेगी। ज्ञेय अथवा प्रमेयको समझनेके लिए प्रमाण समर्थ हो सकते हैं। भागवतके पद-पदपर यदि श्रीकृष्णका ही वैशिष्ट्य है तो इस ब्रह्माण्डका कण-कण भी उसका वैशिष्ट् है। खगोल भूगोलके वर्णनसे कृष्ण अनावृत, अभिव्यक्त और सघस्थ हो हमारे सम्मुख ही विद्यमान प्रतीत होते हैं।[2] सम्पूर्ण ब्रह्माण्डकी क्रमबद्ध व्यवस्था और आकर्षण शक्तिके द्वारा स्थित सूर्य, नक्षत्र, ग्रह आदिके माध्यमसे वह हमें सतत् अपनी ओर आकर्षित करते हैं। इन्हीं प्रमाणोंसे सर्वोच्च, सम्पूर्ण श्रीकृष्ण ज्ञेय हो जाते हैं और उनके प्रति हृदयोंमें प्रेम-शिखा प्रज्ज्वलित हो जाती है।

खगोल-भूगोल आदि लीलाएँ भगवानके स्थूल रूपकी लीलाएँ हैं, किंवा भगवानके विराट् स्वरूपका वर्णन है। शुकदेवजीकी सहमति है कि बुद्धिके द्वारा मनको सर्वप्रथम भगवान्के स्थूल रूपमें लगाना चाहिये। यह कार्यरूप सम्पूर्ण विश्व जो कुछ कभी था, है या होगा, सब-का-सब जिसमें दीख पड़ता है, वही भगवानका स्थूल-से-स्थूल और विराट् शरीर ही ब्रह्माण्ड

---

१. भागवत २।५।१४

२. सदा च इन्द्रश्च कृषत आ उपो नु स सपर्यन
   न देवो वृतः शूर इन्द्रः।   — सामवेद ३. १. १. ३

शरीरमें जो विराट् पुरुष भगवान् हैं, वे ही धारणाके आश्रय हैं, उन्हींकी धारणा की जाती है।[१] इसीमें मुमुक्षु पुरुष बुद्धि द्वारा मनको स्थित करते हैं, क्योंकि इससे भिन्न और कोई वस्तु है ही नहीं।[२] भूगोल-खगोलसे भगवत्तत्वका निश्चय हो जाता है। इसी कारण दशम स्कन्धसे पूर्व ही राजा परीक्षितकी राज्य, पुत्र, धनादिके प्रति जो दृढ़ ममता थी, वह त्याग दी गयी। पंचम स्कन्ध (स्थान स्कन्ध) में परीक्षितका पहला प्रश्न ही है–

संशयोऽयं महान् ब्रह्मन् दारागारसुतादिषु।
सक्तस्य यत्सिद्धिरभूत कृष्णे च मतिरच्युता॥[३]

अर्थात् इस बातका बड़ा सन्देह है कि महाराज प्रियव्रतने स्त्री, घर और पुत्रादिमें आसक्त रहकर भी किस प्रकार सिद्धि प्राप्त कर ली और क्योंकर उनकी भगवान् श्रीकृष्णमें अविचल भक्ति हुई। तब श्रीशुकदेवने भगवानके स्थूल रूपकी लीलाओंका वर्णन किया।[४] पहले ही स्कन्धमें बताया गया है, भगवान्के विराट् स्वरूपमें मन लगनेके बाद निर्गुण भगवत्स्वरूपमें मन सरलतासे लगता है। जो मन भगवानके इस गुणमय स्थूल विग्रहमें लग सकता है, उसीका उनके वासुदेवसंज्ञक स्वयंप्रकाश निर्गुण ब्रह्मरूप सूक्ष्मतम स्वरूपमें भी लगना सम्भव है।[५] यही कारण है कि पहले खगोल-भूगोलका वर्णन किया गया। भूगोल-खगोल श्रीकृष्णकी लीला-रचना है, केलि अवनि है, क्रीड़ा भूमि है, जहाँ वे कृष्णाख्य होकर खेल खेलते हैं। इस नराकार रूपमें लीला करनेसे भी अप्राकृतता सम्बन्धी शंकायें पहले ही दूर हो जाती हैं और अप्राकृत आनन्द-प्राप्तिकी पुष्टि होती है।

भूगोलका वर्णन देशका विस्तार है, इससे श्रीकृष्णके धाम-तत्त्वकी सूक्ष्मता और विस्तृतामें कोई सन्देह नहीं रह जाता। खगोलका विस्तार-कालका विस्तार है, इससे उनके अवतार और लीला शंकास्पद नहीं रहती। यह पौराणिक वर्णन इसलिये नहीं है कि हम किसी हवाई जहाज या राकेटसे उसे देखने जायें, क्योंकि अधिकांशतः वर्णन सूक्ष्म जगत्का है। यदि हम दृश्य विराटको एक ही आकार में नहीं देखते तो निर्गुण साकार श्रीकृष्णको

---

१. भागवत २।१।२३–२५
२. भागवत २।१।३८
३. भागवत ५।१।४
४. भागवत २।१।२५ - वैराजः पुरुषोयोऽसो भगवान् धारणाश्रयः।
५. भागवत ५।१६।३

मनुष्य बना देंगे। उनमें अनन्त ऐश्वर्य है, यह बात विस्मृत हो जायेगी। भावनाके परिपाकके लिए विराट् स्वरूपका वर्णन है। यह सम्पूर्ण ब्रह्माण्डके परिचयका रूप-स्थूल, सूक्ष्म समस्त भूगोल और दृश्य खगोल भागवतमें अपनाया है। 'सर्वम् खल्विदं ब्रह्म'[1] के निरूपणके बाद श्रीकृष्णकी अप्राकृत लीला आनन्दप्रदा हो गयी है।

भू-मण्डलका वर्णन जहाँ हमारी इस अकिंचन भूमिकी, संस्थानका परिचायक है, वहां इन्द्रियातीत एवं अनुभवैकवेद्य, सूक्ष्म जगतके दिव्य संस्थानका भी द्योतक है।[2] जिज्ञासु परीक्षितको सम्पूर्ण खगोल-भूगोल हस्तामलकवत् हो जाता है और 'कृष्णं वन्दे जगद्गुरुम्' इस शास्त्र-वाक्यकी आत्मानुभूति हो जाती है।[3]

श्रीकृष्णका लीला-वैशिष्ट्य :

श्रीकृष्णकी अनन्त लीलाएँ हैं। श्रीमद्भागवतमें यत्र-तत्र लीला-वर्णनके अतिरिक्त और है भी क्या। लीलाओंका लीलान्वन है कृष्ण द्वारा ही। प्राकृत जगतमें प्रथम पुरुषावतारके रूपमें उनकी लीला होती है। वासुदेव-संकर्षणादि रूपसे वही लीला करते हैं। कभी-कभी कूर्म, मत्स्य आदि अवतारोंमें भी वे लीला करते हैं। तथा ऐसी भी लीला है, जब वे ब्रह्मा, शिव आदि गुणावतार ग्रहण करते हैं। शक्त्यावेशावतार लीलामें वे पृथु आदि रूप धारण करते हैं तथा सर्वभूतहृदयस्थ अन्तर्यामी, युगावतार एवं मन्वन्तरा-वतार आदिके रूपमें भी वे लीला-विलास करते हैं। कुरुक्षेत्र, द्वारका और मथुरामें विभिन्न लीला करते हुए वे अपनी त्रिभंगललित मुद्रामें सर्वालंकार विभूषित विग्रहसे सर्वाकर्षी भ्रू-भंगी द्वारा अपनी माधुर्य-लीलाको वृन्दावन्में-प्रकाशित करते हैं।[4]

श्रीकृष्णकी परब्रह्म रूपमें लीलाका निरूपण किया जा चुका है। भागवतका प्रत्येक स्कन्ध लीलामय है, इसकी उपेक्षा नहीं की जा सकती है।

---

१. छान्दोग्योपनिषत् ६।२।१

२. पुराण दिग्दर्शन : माध्वाचार्य पृष्ठ ७४६

३. भागवत परिचय : सम्पादक 'श्रीचक्र' पृष्ठ २४४ लेख - जगजीवन दास गुप्त सम्वत् २०३८ वि०, श्रीकृष्ण-जन्मस्थान सेवा-संस्थान, मथुरा

४. भागवतार्थ प्रकरण, कारिका १ प्रकाश टीका

अतएव सम्पूर्ण प्रबन्धके आधारपर कहा जाता है 'श्रीकृष्णं परमानन्दं दशलीलायुतं सदा।'[1] अर्थात् परमानन्दरूप श्रीकृष्ण दशलीलाओंसे युक्त हैं। भागवतके प्रथम और द्वितीय स्कन्धको 'अधिकारी' और 'साधन' लीलासे अभिहित किया जाता है। ये लीलाएँ अन्य दशों लीलाओंके लिए उपयोगी हैं। तृतीय स्कन्धसे द्वादश स्कन्ध तक जो सर्गादि लीलायें है[2] उनका निरूपण कृष्ण-चरित्र-लीला-समन्वित करते हुये किया जाता है। समन्वयका आधार है यह श्लोक–

अदीन लीला हसितेक्षणोल्लसद्भ्रूभंग संसूचित भूर्यनुग्रहम्।
ईक्षेत चिन्तामयमेनमीश्वरं यावन्मनो धारणयावतिष्ठते॥[3]

अर्थात् लीलापूर्ण उन्मुक्त हास्य और चितवनसे शोभायमान भौंहोंके द्वारा वे भक्तजनोंपर अनन्त अनुग्रहकी वर्षा कर रहे हैं। जब तक मन इस धारणाके द्वारा स्थिर न हो जाय, तब तक बार-बार इन चिन्तनस्वरूप भगवानको देखते रहनेकी चेष्टा करनी चाहिये। अति अर्थपूर्ण और भावपूर्ण है श्लोक। इस श्लोकसे सर्गादि लीलाकी संगतिका विवेचन किया जाता है।

१. सर्ग लीला :

प्रत्येक पदार्थमें (अव्यक्त रूपसे) कारण रूपसे भगवत्-स्थिति ही सर्ग लीला है।[4] अदीनत्व ही 'सर्ग' है। अशरीरी भगवानका शरीर धारण करना सर्ग है। इससे भक्तोंकी दीनताका नाश हुआ।[5] इस अन्वितिकी उपपत्तिका कृष्ण लीलाके साथ निर्देश इस प्रकार किया है : अदीनत्व लीलामें वासुदेव रूपमें भगवान् संकर्षण, अनिरुद्ध और प्रद्युम्न अंशों सहित अवतरित होते हैं।[6]

---

१. वही, कारिका १
२. वही, कारिका ३ से ६
३. भागवत २।२।१२
४. (क) भागवत सुबोधिनी टीका २।१०।१
(ख) भूतमात्रेन्द्रियधियां जन्म सर्ग उदाहृतः। - ब्रह्मणो गुण वैषम्यात् २।१०।३
५. वही २।७।२५-२६
६. भागवत २।७।२५-२६ सुबोधिनी टीका

२. विसर्ग लीला :

कार्यकी कारणमें अव्यक्त रूपमें पहले ही से अवस्थिति विसर्ग लीला है।[१] इससे पुरुष शरीरधारी विष्णुसे ब्रह्मा आदिकी उत्पत्ति होती है। इसकी 'एकात्मकता' 'लीला' से ही इस लीलामें श्रीकृष्ण द्वारा पूतना-प्राण-हरण, शकट उत्क्षेपण, यमलार्जुन- उन्मूलन आदि लीलायें परिगणित हैं।[२]

३. स्थान लीला

प्रत्येक वस्तुमें वस्तुगत विशिष्टताकी स्थिति अथवा वस्तुगत विशिष्ट मर्यादा ही स्थान लीला है।[३] 'हसित' स्थानका पर्याय ही इसके अन्तर्गत है श्रीकृष्णका विषाक्त जलसे ग्वालों और बछड़ोंको बचाना और कालिय नागको यमुनासे भगाकर जलको विष-रहित करना।[४]

४. पोषण लीला :

सामर्थ्यका भी सामर्थ्य होना 'पोषण' लीला है।[५] भगवान् द्वारा सुरक्षित सृष्टिमें भक्तोंके ऊपर भगवानकी कृपा पोषण है।[६] इसका सामंजस्य है 'ईक्षण' से। इसमें भगवानका दावानलपान तथा गौ, वत्स और ग्वाल संरक्षण परिगणित है।[७]

५. मन्वन्तर लीला :

मन्वन्तरोंके अधिपति द्वारा भगवद्भक्ति और प्रजापालन रूप शुद्ध धर्मका अनुष्ठान मन्वन्तर लीला है।[८] 'भंगो हि सद्धर्मः' अर्थात् भंग ही सद्धर्म है। इस लीलाके अन्तर्गत है– श्रीकृष्णका सात दिन तक एक हाथपर ही गोवर्द्धन उठाये रखना और दूसरे हाथसे वेणुको अधरपर धर स्वामृत पान

---

१. विसर्गः पौरुष स्मृतः भागवत २।१०।३
२. भागवत २।७।२५-२६ सुबोधिनी टीका
३. (क) स्थित वैकुण्ठविजयः २।१०।४
(ख) स्थानं सर्ववस्तुषु वस्तुस्वरूपेण मूलरूपेण च तत्सम्पादिरूपम्
–भागवत सुबोधिनी टीका २।१०।१
४. भागवत सुबोधिनी टीका २।७।२५–२६
५. पुष्टिः कार्यसिद्ध्यर्थं सर्वसमर्थस्य तत्र प्रवेशः। – वही २।१०।१
६. पोषणं तदनुग्रहः - भागवत २।१०।४
७. भागवत सुबोधिनी टीका २।७।२६ से ३६
८. मन्वन्तराणि सद्धर्मः : भागवत २।१०।४

कराते हुये ब्रजवासियोंके भूख प्यासमे सम्भव कष्टको हर लेना।[1] भंगश्च वंश: अर्थात् वेणु ही भंग है।

६. ऊति लीला :

प्रत्येक पदार्थसे होनेवाले कार्योंमें कार्यकी सिद्धि-रूपमें भगवान् की लीला प्रदर्शित कर रहे हैं, ब्रह्म-ज्ञानीको ऐसी प्रतीतिका होना ही ऊति लीला है।[2] यह भूलीला है। जैसे भ्रूवोंमें चांचल्य रहता है, उसी प्रकार अन्त:करण में वासनायें उत्तरलित रहती है। इसके अन्तर्गत है– नन्द बाबाको अजगरसे बचाना, वरुणके पाशसे भी नन्दको मुक्त कराना, व्योमासुर द्वारा गुहामें बन्द कर दिये गये बालकोंको बचाना और गोकुलवासियोंको अपने परमधामका दर्शन कराना।[3]

७. ईशानुकथा लीला

भगवानके विभिन्न अवतारोंके और उनके प्रेमी-भक्तोंकी विविध आख्यानोंसे युक्त गाथायें ईशानुकथा लीला है।[4] वल्लभाचार्यने इसकी 'उल्लास' नामक लीलासे एकात्मकता निर्दिष्ट की है। इस लीलामें यशोदाका कृष्णको बांधनेका प्रयास करना, रस्सीके साथ रस्सी जोड़नेपर भी रस्सीका दो अंगुल छोटा रह जाना और भगवानका जंभाई लेते हुए अपने मुखमें चौदह भुवन दिखाना।[5]

---

१. भागवत सुबोधिनी २।७।२६ से ३६

२. (क) ऊतयः कर्मवासना। –भागवत २।१०।४

(ख) ब्रह्मज्ञानिनः प्रतीत सिद्ध्यर्थं तत्र तादृश लीला प्रदर्शनमति।

–भागवत सुबोधनी २।१०।१

३. भागवत सुबोधिनी २।७।२६ से ३६

४. (क) अवतारानुचरितं हरेश्चास्यानुवर्तिनाम्। सतामीशकथाः प्रोक्ता नानाख्यानोपबृंहिताः –भागवत २।१०।५

(ख) स एव पूर्वभक्ति विषयत्वेन भगवत्सेवैकरूपेण धर्मेण वैदिक व्यतिरिक्त तामापद्यते इतीशानुकथा रूपो भवति।

–भागवत सुबोधिनी २।१०।२

५. (क) निरोधोऽस्यानुशयनमात्मनः सह शक्तिभिः। –भागवत २।१०।६

(ख) स एव पुनर्लौकिक वैदिक भक्तानां स्वरूपेच्छूनां परित्यागरूपेण पूर्वोक्तान्निरूपणद्धि इति निरोधो रूपो भवति।

८. निरोध लीला :

प्रत्येक पदार्थका लौकिक, वैदिक और मर्यादा भक्तिपरक धर्मोंको परित्याग कर लौकिकादि भावोंसे व्यतिरिक्ता प्राप्त कर लेना ही निरोध लीला है। संसूचन लीला निरोध लीलासे सम्बन्धित ही संसूचन लीलाके वैशिष्टय हैं – रासोत्सुक श्रीकृष्णका शरद निशीथमें वंशी बजाना, वेणुसे आकृष्ट होकर गोपियोंका वनमें पहुँचना और रासमें भाग लेना, कुबेरके सेवक शंखचूडका गोपियोंको हर ले जानेका प्रयत्न करना और श्रीकृष्णके द्वारा उसका शिर काट डालना।[1]

९. मुक्ति लीला

अज्ञान कल्पित कर्तृत्व, भोक्तृत्व आदि अनात्म भावको त्यागकर अपने वास्तविक रूपमें स्थित हो जाना ही मुक्ति लीला है।[2] भूरित्व लीला ही मुक्ति लीला है।

१० आश्रय लीला

चराचर जगतकी उत्पत्ति और प्रलय जिस तत्वसे प्रकाशित होते हैं, वह परम ब्रह्म ही आश्रय है, उसकी सर्वाश्रयता ही आश्रय-लीला है।[3] अनुग्रह ही आश्रय लीला है।

भूरि और अनुग्रह लीलाके वैशिष्ट्य हैं : भगवानका प्रलम्बासुर, धेनुकासुर, बकासुर, केशी, अरिष्टासुर आदि दैत्योंका वध करना, चाणूर और मुष्टिक आदि मल्लोंका मर्दन करना, कुवलयापीड़ गजको पछाड़ना, कंसको मारना, भौमासुर, मिथ्या वासुदेव, शाल्व, द्विविदवानर वल्वल, दन्तवक्त्रका अन्त करना, सात उद्धत वृषभोंको अपने अधीन कर लेना, शम्वासुर, और विदूरथ, आदिको तथा काम्वोज, मत्स्य, कुरु, कैकेय, सृंजय आदिके राजाओंको तथा युद्धमें सामने आनेवाले और कृष्ण दर्शन

---

१. भागवत सुबोधिनी २।७।२६ से ३६

२. (क) मुक्तिर्हित्वान्यथा रूपं स्वरूपेण व्यवस्थितिः। भागवत २।१०।६
(ख) तादृशोऽपि सन् आत्मानं परित्याजयित्वापि तानपि तादृशस्वस्मात् परित्याजनरूपो भवति इति मुक्ति रूपो भवति। घटादिषु वा भगवतोऽसंयोदासीनरूपता मुक्तिः।

—भागवत सुबोधिनी २।१०।१

३. भागवत २।१०।७

करते हुये प्राण छोड़नेवाले राजाओंको सुगति प्रदान करना, बलराम, भीमसेन और अर्जुनके माध्यमसे अथवा निमित्तसे वस्तुतः भगवान्‌के द्वारा मारे गये राजाओंको भगवान्‌के ही द्वारा अपने धाम पहुँचाना।[1]

उपर्युक्त लीला-वैशिष्ट्यसे भागवत-शास्त्र सर्वोद्धार और सर्वनिर्वाहक है।[2] सर्ग, विसर्ग, स्थान, पोषण और ऊति लीला अन्वय भावसे सम्बद्ध है, जबकि शेष व्यातिरेक भाव (किसी न किसी प्रकारकी व्यतिरिक्तता) से सम्बद्ध है। गौड़ीय वैष्णव मतसे दो निमित्तसे श्रीकृष्ण-लीला करते हैं।[3]

१. विश्वादि निमित्त लीला - प्रथम लीला 'कारण लीला' कहलाती है।
२. भक्तप्रेम निमित्त लीला - द्वितीय लीला 'कारणातीत लीला' कहलाती है।

इसी मतमें लीलाओंका वैशिष्ट्य नित्य और नैमेत्तिक भेदसे भी है।[4] गोलोक धाममें सर्वकाल ही श्रीकृष्णका नित्यचरित्र और अष्टकालीय लीला नित्य वर्तमान है। भौम जगतमें श्रीकृष्णकी अष्टकालीन लीलाओंमें नैमेत्तिक लीलाओंका भी समावेश ब्रजसे मथुरा गमनागमनादि और असुर-मारणादि लीला नैमित्तिक है। यह नैमित्तिक लीला व्यतिरेक भावसे गोलोकमें है, वहाँ पर केवल भाव-मात्र विद्यमान है। वस्तुतः असुरादिका प्रवेश या स्थान वहाँ नहीं है।[5]

श्रीकृष्णकी प्राकट्य–रूपमें लीलाओंको दो भागोंमें विभाजित किया जाता है।

श्रीकृष्ण-जन्मसे मथुरा आगमन पर्यन्त लीलाओंका वैशिष्ट्य एवं रहस्य:

इसमें श्रीकृष्णकी परम अन्तरंग लीलाएँ सम्मिलित हैं। इन्हें आध्यात्मिक और साध्यपरक लीला भी कहा जाता है। उद्धारक व संहारक लीलाओंको साधनापरक कहते हैं। श्रीचैतन्य-मतसे यहाँकी लीलाओंमें माधुर्य है।

---

१. भागवत सुबोधिनी २।७।२६ से ३६
२. वही २।७।१
३. सार संग्रह अवतणिका पृष्ठ ५६–५७
४. (क) गोविन्द लीलामृत १५, १ से २२-१
   (ख) भजन रहस्य–प्रथम अध्यायसे अष्टम अध्याय
   (ग) चैतन्य शिक्षामृत ६-६
५. श्रीकृष्ण संहिता : अष्टम अध्याय

१. जन्म प्रसंग

नित्य ही यशोदाके पुत्रका देवकी-वासुदेवके पुत्रके रूपमें प्राकट्य हुआ है। देवकी विवाहान्तर अपने पति वसुदेवके साथ शोभा-यात्रा (विदागमन) में जा रही थी, साथ जाते हुये कंसको यह आकाशवाणी श्रवणमाण हुई : 'अस्यास्त्वामष्टमो गर्भो हन्ता यां वहसेऽबुधं'[1]—अर्थात् अरे मूर्ख ! जिसको तू रथमें बैठाकर लिये जा रहा है, उसकी आठवें गर्भकी सन्तान तुझे मार डालेगी इस अशरीरवाक्य आकाशवाणीको सुनकर पापी कंस देवकीको मारनेके लिए उद्यत हुआ। प्रतिकूल आचरण देखकर सामादि नीतिसे वसुदेवने कंसको समझाया, तब भी वह क्रूर दुष्ट प्रवृतिकी ओर उद्यत रहा। अथ वसुदेवने 'पुत्रान् समर्पयिष्येऽस्या'[2] अर्थात् इस देवकीके पुत्रोंको तुम्हें समर्पित कर दूँगा, इस वचनसे कंसको प्रबोध-सा कराते हुये देवकीको बचा लिया। समय आनेपर देवकीके गर्भसे उत्पन्न हुए छः पुत्रोंको कंसने मार डाला। सातवें गर्भमें भगवान्के अंश-स्वरूप संकर्षण, जिन्हें शेषजी और अनन्त भी कहते हैं, पधारे। भगवान्के आदेशसे योगमायाने उस गर्भस्थ सन्तानको आकर्षित कर रोहिणीके गर्भमें स्थापित कर दिया।[3] अष्टम गर्भमें पूर्व पुत्रोंकी भाँति ही कारागारमें पूर्णचन्द्र श्रीकृष्ण प्रकट हुये।

वैशिष्ट्य एवं रहस्य

इस लीलाके दो अंग हैं—

१— भू—भारसे पीड़ित पृथ्वीका गौरूप धारण कर ब्रह्माके पास जाना, ब्रह्मा का उसे एवं अन्य देवताओंको साथ लेकर क्षीरसागरके तटपर जाना,

२— भगवानका आकाशवाणी द्वारा अवतार लेनेकी सूचना और देवकी-वसुदेवके पुत्रके रूपमें अवतरित होना।

दोनों ही बातोंसे श्रीकृष्णकी भगवत्ता सूचित होती है। वसुदेव बिशुद्ध-सत्व हैं।[4] देवकी शुद्धसत्त्व-वृत्ति (भक्ति स्वरूपिणी)।[5] कंस अभिमान है,

---

१. भागवत १०।१।३४

२. भागवत १०।१।५४

३. भागवत १०।२।१४

४. भागवत ४।३।२३ श्लोकार्द्ध

५. देखो वसुदेवस्तद्रूपिण्यां शुद्धसत्त्व-वृत्ति रूपायमित्यर्थः—भागवत १०।३।८ क्रमसन्दर्भ-टीका

जो उनको बन्दी बनाता है।[1] पूर्वोत्पन्न छः पुत्र साधककी छः अवस्था है अर्थात् श्रद्धा, साधुसंग, भजनक्रिया, अनर्थनिवृत्ति, निष्ठा एवं रुचि। संकर्षण देवकीके गर्भमें धामके रूपमें प्रकट होते हैं, जिसमें श्रीकृष्ण प्रकटित होते हैं। कृष्णके आविर्भावके समय प्रकृति अपना शुद्ध रूप प्रकट करती है।[2] कालके अन्तरंग-बहिरंग-अंग-प्रत्यंग सुहावने, गुणयुक्त एवं शान्त हो जाते हैं। निशीथमें श्रीकृष्ण उद्भूत हुये—

तमद्भुतं बालकमम्बुजेक्षणं चतुर्भुजं शंखगदार्यदायुधम्।[3] अर्थात् उस अद्भुत बालकके नेत्र कमलके समान कोमल एवं विशाल थे, चार भुजायें थीं, जिनमें शंख, गदा, चक्र और कमल सुशोभित थे। शंख जलतत्व है, गदा वायुतत्व है, चक्र अग्नि तत्व है और कमल पृथ्वी तत्व है।[4] गलेमें आत्मज्योति विग्रह कौस्तुभमणि है।

बालकको देखकर वात्सल्य उमड़ा। अलौकिक मातृ स्नेहने श्रीकृष्णके अनावृत स्वरूपको आवृत कर दिया। वसुदेवने शिशुभावापन्न श्रीकृष्णको गोद में लिया, विमुखजन मोहिनी मायाने सबको सुला दिया, सारे बन्धन टूट गये, ताले खुल गये, कपाटने मार्ग दिया, द्वारपाल सो गये। भगवान् बालक रूपमें वसुदेवकी गोदमें बैठकर गोकुलके लिये चल पड़े, यमुनाका जल-प्लावन उनके मार्गमें अकिंचित्कर हो गया। गोकुलमें वसुदेवने नन्द-गृहमें यशोदाके पाससे कन्याको उठाया और बालकको सुला दिया, पुनः कारागारमें प्रत्यावर्त्त हो गये। सर्वस्व पूर्ववत् हो गया।[5]

---

१. भागवत दर्शन : द्वितीय भाग : अखण्डानन्द : पृष्ठ ५१-५२

२. (क) अथ सर्वगुणोपेत : भागवत १०।३।१

(ख) जगुः किन्नरगन्धर्वास्तुष्टुवुः सिद्धचारणाः।
विद्याधर्यश्च ननृतुरप्सरोभिः समं तदा॥
मुमुचुर्मुनयो देवाः सुमनांसि मुदान्विताः।
मन्दं मन्दं जलधरा जगर्जुरनुसागरम्॥

— भागवत १०।३।६-७

३. भागवत १०।३।९ पूर्वार्द्ध

४. भागवत : सुबोधिनी टीका १०।३।९

५. भागवत १०।३।४७ से ५३

कंसने नवजात शिशुका रोदन सुना, तब देवकीको झिड़ककर उसकी गोदसे वह कन्या छीन ली और नन्हीं-सी भानजीके पैर पकड़कर एक चट्टान पर दे मारा। स्वार्थने उसके हृदयसे सौहार्दको समूल उखाड़ फेंका था। वह कन्या योगमाया थी। कंसके हाथसे छूटकर त्वरित ही आकाशमें चली गयी और अष्टभुजा रूपसे चारणादि द्वारा स्तवित दिखायी पड़ी और कहा—मूर्ख ! मुझे मारनेसे तुझे क्या मिलेगा ? तेरा शत्रु तुझे मारनेके लिए किसी स्थानपर पैदा हो चुका है और वह अन्तर्धान हो गयी कंसको भययोग देकर।[1]

गोकुलमें बालकका रोदन प्रमोदन हो गया। क्षण-क्षणमें, कण-कणमें, जन-जनमें, मन-मनमें आनन्द मूर्तिमान होकर नृत्य करने लगा।

पूतना उद्धार लीला :

कंस-प्रेरिता बालघ्नी पूतना[2] सुन्दरीका रूप धारणकर गोकुल पहुँची और कृष्णको स्तन-पान द्वारा मारनेकी अभिलाषा की। कृष्णने उसे देखकर नेत्र बन्द कर लिये। पूतनाने अपना स्तन बालकके मुंहमें दे दिया, जिसमें भयंकर विष लगा हुआ था। शिशु दोनों हाथोंसे स्तनोंको जोरसे दबाकर उसके प्राणों के साथ उसका दूध चूसने लगा। श्रीकृष्णके रोषने प्राणोंका पान किया और कृष्णने स्तनका। अब तो पूतनाके प्राणोंके आश्रयभूत सभी मर्मस्थान विदीर्ण होने लगे। स्तनोंमें प्राणघातिनी पीड़ा हुई, वह असली रूपमें प्रकट हो गयी और तब यह राक्षसी बाहर गोष्ठमें आकर गिर पड़ी। गिरनेकी आवाजसे अन्तरिक्ष डगमगा उठा, छः कोस तक वृक्ष कुचल गये।[3]

वैशिष्ट्य एवं रहस्य :

यह पूतना-मोक्ष लीला भगवान् श्रीकृष्णकी अद्भुत बाल-लीला है—'पूतनामोक्षं कृष्णस्यार्भकमद्भुतम्।'[4] पूतना अविद्या है। अविद्या पंचपर्वा है- अविद्या, अस्मिता, राग, द्वेष और अभिनिवेश। ये ही क्रमशः तमस्, मोह, महामोह, तमिस्त्र और अन्ध-तमिस्त्र है। पूतनाका नाश पंचपर्वा अविद्याका नाश है। श्रीकृष्णके नेत्र बन्द करनेपर टीकाकारोंने अनेक रहस्यार्थ प्रकट

---

१. भागवत १०।४।७ से १३

२. पूतना लोकबालघ्नी राक्षसी रुधिराशना। जिघांसयापि हरये स्तनं दत्वाऽऽपसद्गतिम्। - भागवत १०।६।३५

३. भागवत १०।६।२ से १४

४. भागवत १०।६।४४

किये हैं, जैसे निज बालत्व ज्ञापनार्थ,[१] भीरुत्व प्रदर्शनार्थ,[२] कपट पूर्णस्नेहको न देखनेके लिए,[३] ज्ञानके गोपनके लिये आदि आदि। यह राक्षसी स्वयं कृष्णको मारने आयी थी, किन्तु मातृ-वेशरूप सद्वेश ग्रहण हेतु उसे भगवान्ने स्वर्ग नहीं, ब्रह्मलोक नहीं, बैकुण्ठ भी नहीं, गोलोक धाममें धात्री-सारूप्य गति प्रदान की।[४]

शकट-भंजन लीला :

कृष्ण-जन्मके नक्षत्रके समय 'औत्थानिक उत्सव' मनाया जा रहा था। यशोदाजीद्वारा अभिषेक करानेके पश्चात् कृष्णको निद्रा आनेपर शयन करा दिया गया। अथ विश्वभरणकर्त्ता श्रीकृष्ण मांका दूध पीनेके लिए रुदन करने लगे, रोते-रोते जैसे ही पांव उछाला, दुग्धदधिमाण्ड पूरित मृण्मयपात्रोंके साथ विशाल शकट पैर लगते ही पलट गया। शकट गोपगणोंका अधिदेव है। यशोदाने उसे ग्रह आदिका उत्पात माना।[५]

वैशिष्ट्य एवं रहस्य :

शकटमें कंस द्वारा श्रीकृष्णको मारनेके लिए प्रेरित शकटासुर आविष्ट था। छोटा-सा प्रवाल-वत् चरण, जिसको वामन देवकी तरह न प्रसारित करना पड़ा, न ही नृसिंह देव जैसा विदारणकारी भीषण गर्जन करना पड़ा, कोमल परसनसे ही, असुर जैसे अन्तर्हित था उसी प्रकार अन्तर्हित अवस्थामें ही भूमिमें प्रवेश कर पंचत्वको प्राप्त कर गया।[६] शकटासुर जड़ाभिमानी है। भगवच्चरण सम्बन्धसे जड़बुद्धि सम्पन्नजीव विशुद्ध हो गया और परमगतिको प्राप्त हुआ। शकटका उत्क्षेपण प्रापंचिक रतिका विवरण है। 'हेला' से ही कृष्णके स्पर्शका अमोघ फल हुआ है। कैमुतिक न्यायसे कृष्णसे स्वल्पतम सम्बन्धका भी अति महत्व है।[७]

---

१. भागवत १०।६।८ भावार्थ-दीपिनी

२. वही पर सारांश-दर्शिनी

३. वही पर सिद्धान्त-प्रदीप

४. यान्तुथान्यपि सा स्वर्गपवाप जननीगतिम् - भागवत १०।६।३८

५. भागवत १०।७।४ से ११

६. भागवत १०।७।७ सारार्थ-दर्शिनी और वैष्णव-तोषिणी

७. भागवत १०।७।७ सुबोधिनी

तृणावर्त्त उद्धार-लीला :

कंस प्रेरित कंसका सेवक-तृणावर्त्त बवंडरके रूपमें गोकुल आया। माँ यशोदाको गोदमें कृष्ण भारी जान पड़े। उन्होंने कृष्णको पृथ्वीपर बैठा दिया। बवंडर कृष्णको उड़ाकर आकाशमें ले गया। बवंडरके प्रभावसे सारा गोकुल ब्रज-रजसे ढक गया और ढक गया तमसे। सभी उद्विग्न और बेसुध हो गये।

इधर कृष्ण उस चक्रवात रूप तृणावर्तसे भी भारी हो गये। अब तृणावर्तको उनका भार सहन नहीं हुआ, वह उन्हें अश्मसार समझने लगा। कृष्णने उसका गला इतनी जोरसे पकड़ रहा था कि वह निश्चेष्ट हो गया और बालक कृष्णके साथ ही व्रजमें गिर पड़ा। उसके प्राण-पखेरु उड़ गये, उस हिंसक दुष्टको उसके पाप ही खा गये।[१] पाषाणवत् पाषाणपर गिर पाषाण ही हो गया।

वैशिष्ट्य एवं रहस्य :

तृणावर्त्त काम है। इसका नाश कामका नाश है। महासुर-बधरूप ऐश्वर्यको माँ यशोदा और पिता नन्द बाबा कोई भी स्वीकार नहीं कर सका। असुरकी आसुरताका ऐश्वर्य 'चक्रवात' के रूपमें हुआ है। तृणावर्त्तके द्वारा श्रीकृष्णके ऊपर वायव्यास्त्रका प्रयोग हुआ है और श्रीकृष्णके द्वारा अचलास्त्र-का, वह नीलमणि पर्वतके समान गुरु भार हो गये।[२]

जृम्भण लीला :

माँ यशोदा अपने प्यारे शिशु श्रीकृष्णको गोदमें लेकर स्तन-पान करा रही थीं। दूध पी चुकनेपर माँ यशोदा रुचिर मुस्कानसे युक्त उसका मुख चूम ही रहीं थीं कि श्रीकृष्णको जंभाई आ गयी। यशोदाने देखा कि उसके मुखमें आकाश, अन्तरिक्ष, ज्योतिर्मण्डल, दिशायें, सूर्य, चन्द्रमा, अग्नि, वायु, समुद्र, द्वीप, पर्वत, नदियाँ, वन और समस्त चराचर प्राणी स्थित हैं।[३]

वैशिष्ट्य एवं रहस्य :

यह श्रीकृष्ण द्वारा अपनी बाल लीलाका नित्य उदरस्थ प्रथम विश्व-प्रदर्शन है। इस लीलामें श्रीकृष्णकी विरुद्धधर्माश्रयताका परिचय प्राप्त होता

---

१. भागवत १०।७।२० से २५

२. भागवत १०।७।३१ सारार्थ-दर्शिनी टीका

३. भागवत १०।७।३४-३७

है। श्रीविश्वनाथचक्रवर्त्तीपाद कहते हैं कि प्रेम देवी बीच-बीचमें परीक्षा करनेके लिये आती है। यह हरिकी शक्ति है और दासी रूपमें सेवा करती रहती है–

प्रेमदेव्याः परीक्षार्थमागच्छन्त्यन्तरान्तरा।
शक्तिरेषा हरेः किन्तु तया दासी कृता भवेत्॥[1]

ब्रह्मसूत्रके अधिकरण तत्त्वकी प्रतीक रूपसे अभिव्यंजना श्रीकृष्णकी जृम्भण लीला है।[2]

नामकरण संस्कार और बाललीला :

यदुवंशियोंके कुल-पुरोहित श्रीगर्गाचार्य वसुदेवजीकी प्रेरणासे नन्दबाबाके गोकुलमें गये। वहां उन्होंने नन्दजीकी प्रार्थनापर कंस द्वारा भावी भयकी आशंकासे एकान्त गौशालामें केवल स्वस्तिवाचन कराके बालकोंका द्विजाति समुचित नामकरण संस्कार कर दिया।[3]

कुछ ही दिनोंमें दोनों बालक (बल) राम और श्याम 'जानुभ्यां सहपाणिभ्याम्' चल-चलकर गोकुलमें खेलने लगे। कुछ और दिन बीतनेपर किसी बैठे हुये बछड़ेकी पूंछ पकड़ लेते, कहीं पशुओंके पास दौड़ जाते, कहीं धधकती हुई आगसे खेलनेके लिये मचलने लगते। कुछ और समय बाद खड़े होकर गोकुलमें चलने फिरने लगे।[4] और अब तो गोपियाँ उनकी दधि-दुग्धके चौर्यकार्यका उपालम्भ यशोदाको देने लगीं, कृष्ण चोरोंके अधिपति हैं मानो।

वैशिष्ट्य एवं रहस्य :

प्रथम बलरामका नामकरण करते हुये गर्गचार्य कहते हैं यह रोहिणीका पुत्र है, इसलिये इसका नाम 'रोहिणेय', सभीको अपने गुणोंसे आनन्दित करेगा, इसलिये दूसरा नाम होगा 'राम', असीमित बलके कारण एक नाम

---

१. भागवत १०।७।३७ सारार्थ दर्शिनी

२. ब्रह्मसूत्र जन्माद्यधिकरण (१।१।२), अन्ताचर चराधिकरण (१।२।३), वैश्वानराधिकरण (१।२।८), द्युभ्वाद्यायतमाधिकरण (१।३।१) दहराधिकरण (१।३।५)

३. भागवत १०।८।११

४. भागवत १०।८।२१ से २५

'बल' भी है, परस्पर मेल करानेके कारण इसका एक नाम और है 'संकर्षण'[१]।

..........और यह (कृष्ण) प्रत्येक युगमें शरीर ग्रहण करता है, अबकी बार यह कृष्णवर्ण हुआ है; इसलिये इसका नाम 'कृष्ण' होगा। वसुदेवके घर उत्पन्न होनेसे इसका एक नाम 'वासुदेव' भी है। इसके बहुतसे नाम हैं तथा रूप भी अनेक हैं। इसके सहायसे विपत्तियाँ सुगमतासे पार कर ली जायेंगी।[२] अब तो नाम भी कृष्ण, रूप भी कृष्ण 'कृष्णतीति कृष्णः।' नाम प्रमाण है, रूप प्रमेय है। रूपमें प्रकाश्यत्व है और नाममें प्रकाशकत्व।

'चौर्य लीला' रसास्वादनार्थ लीला है। गोपी उनके इसी रूपका चिन्तन करती है। स्वयं भगवान् ही आकर हृदय रूप मक्खनको लूटकर ले जाते हैं। गोपियाँ श्रीकृष्णगतप्राणा, श्रीकृष्णरसभावितमति हैं। प्रेमाधिक्यसे ही गव्य-गोषण लीलामें नाम रखा गया है 'चोर'। गुणका निवास वस्तुमें नहीं प्रेममें हैं 'वसन्ति प्रेम्णि गुणाः न वस्तुनि'। प्रेमका स्वभाव है 'अहेरिव गतिः प्रेम्णः स्वभाव कुटिला भवेत्' अर्थात् सर्प समान वक्र चाल, प्रेम नदि्याकी सदा उल्टी बहै धार। कृष्णको चोर कहना गोपियों द्वारा रहस्य ज्ञानका विस्तार है। 'कल्पितैः स्तैययोगैः'[३] महर्षि पतंजलिने अष्टांग योगका आविर्भाव किया, पर कृष्णने तो अद्भुत स्तेययोगका प्रवर्तन किया है।

मृद्-भक्षण लीला :

एक दिन बलराम आदि ग्वाल-बाल श्रीकृष्णके साथ खेल रहे थे। उन लोगोंने माँ यशोदाके पास आकर कहा—'कृष्णो मृदं भक्षितवान्।' कृष्णने मिट्टी खायी है। यशोदाके पूछनेपर कृष्णने कहा—'नाहं भक्षितावानम्ब सर्वे मिथ्याभिशंसिनः। यदि सत्यगिरस्तर्हि समक्षं पश्य मे मुखम्।' अर्थात् मैया

१. ....अयं हि रोहिणीपुत्रो रमयन् सुहृदो गुणैः। आख्यास्यते राम इति बलाधिक्याद् बलं विदुः। यदूनाम पृथग्भावात् संकर्षमुशन्त्युत॥ - भागवत १०।८।१२

२. ....आसन् वर्णास्त्रयो ह्यस्य गृह्णतोऽनुयुगं तनूः। शुक्लो रक्तस्तथापीत इदानीं कृष्णतां गतः। प्रागयं वसुदेवस्य क्वचिज्जातस्तवात्मजः। वासुदेव इति श्रीमानभिज्ञाः सम्प्रचक्षते।

- भागवत १०।८।१३-१४-१५

३. भागवत १०।८।२९

मैंने मिट्टी नहीं खायी। सब झूठ बोल रहे हैं। यदि सत्य मानती हो तो मेरा मुख तुम्हारे सामने ही है, देख लो। मुख खोलनेपर आज यशोदाने एक बार फिर चर-अचर सम्पूर्ण जगतको देखा।[1]

वैशिष्ट्य एवं रहस्य :

'मृदुभक्षण' की सूचना गोप बालकों द्वारा माँ यशोदाको देना सख्य-रसकी पुष्टि है। आरोग्यार्थ मांका दण्डित करना वात्सल्यकी सम्पूर्ण अभिव्यक्ति, प्रपंचविस्मरणपूर्वक स्नेहमयी श्रीकृष्णाकारवृत्ति और कृष्णमेंप्रगाढ़ प्रीति है।[2] अव्याहतेश्वर्य भगवान् श्रीकृष्ण हतैश्वर्य तो हो जाते हैं, परन्तु व्याहतेश्वर्य नहीं होते। वह वस्तुतः कुछ नहीं खाते।[3] मुख खोलकर ब्रह्माण्ड दिखाना सृष्टिकी आश्रयता है। प्रलय और सृष्टिको पराप्रवृतिरूप सर्व-कारणकारणताका निर्देश इस लीला द्वारा किया गया है।[4]

ऊखल बन्धन लीला :

पुत्रस्नेह स्नुतकुचयुग जातकम्पा यशोदाके पास स्तन्यकाम कृष्ण आये। प्रीतिको बढ़ाते हुये मथानी पकड़ यशोदाके दधिमन्थनको रोक दिया। सुस्मित यशोदा अंकमें आरुढ़ कृष्णको स्तन-पान कराने लगी। इसी क्षण अंगीठीपर रखे दूधमें उफान आ गया। यशोदा कृष्णको अतृप्त छोड़ दूध उतारनेके लिए चल दी। क्रोधसे स्फुरित अरुणाधर कृष्णने पास ही पड़ लोढ़ेसे दधिमन्थनभाजनको फोड़ डाला और एकान्तमें जाकर वासी माखन

---

१. भागवत १०।८।३२ से ४५

२. भागवत दर्शन : द्वितीय भाग : भूमिका : अखण्डानन्दजी पृष्ठ ६५

३. (क) अनश्नन् अन्यो अभिचाकशोति - ऋग्वेद १।१६४।२०

(ख) न तदश्नाति किंचन - बृहदारण्यक ३।८।८

४. (क) जगत्प्रतिष्ठा देवर्षे पृथिव्यप्सु प्रलीयते। तेजस्यापः प्रलीयन्ते तेजो वायौ प्रलीयते। वायुश्च लीयते व्योम्नि तच्चा व्यक्ते प्रलीयते। अव्यक्तं पुरुष ब्रह्मन निष्कले सम्प्रलीयते। - वेदान्त परिभाषा, परिच्छेद ८ प्रलय क्रम निरूपण

(ख) मृद्नाति प्रलये चूर्णतया स्वकारेण लीयते इति मृत्—

— शब्दकल्प द्रुम : तृतीय भागः पृष्ठ ६९

खाने लगे। उल्टे हुये ऊखलपर चढ़कर छींकेपर-से माखन ले लेकर वानरोंको लुटाने लगे। प्रत्यावर्त्ता यशोदा भग्नपात्र देखकर यष्टि हाथमें लेकर कृष्णके पास जा पहुंची, भीतवत् कृष्ण ओखलीसे कूदकर भागे। यशोदा पीछे दौड़ी अनवंचमाना जननीकी चोटीमें गूंथे हुये फूल गिरने लगे, चाल धीमी पड़ गयी। किसी प्रकार पकड़ लिया। भयसे विह्वल कृष्णकी अंजनयुक्त आँखें ऊपर उठ गयीं, मांके हृदयमें वात्सल्य उमड़ आया। यष्टि फेंक दीं। रस्सीसे ऊखलमें कृष्णको बाँधने लगीं। रस्सी दो अंगुल छोटी पड़ गयी, छोटी पड़ती ही गयी बार-बार और रस्सी जोड़नेपर भी। सारी रस्सियाँ जोड़ ली, फिर भी दो अंगुल छोटी रह जानेसे कृष्णको बाँध नहीं सकीं। स्विन्नगात्रा और विस्त्रस्तकबरस्रजा देखकर कृष्णने जननीपर कृपा की और झट स्वयं ही बँध गये।[1]

वैशिष्ट्य एवं रहस्य :

प्रपंचका विस्मरण और भगवानमें तन्मयता इस लीलाका वैशिष्ट्य हैं। भगवानकी लीलाके प्रतीकार्थ निकाले जा सकते हैं; वस्तुतः भगवानकी लीला प्रतीक नहीं होती। भगवानकी लीला भी भगवत्स्वरूप होती है और इसमें तन्मयता भगवत्स्वरूपोपपत्ति ही होती है। यह लीला रस-कल्लोलमें उन्मज्जन-निमज्जन है। उल्लसित रसका ही नाम लीला है।[2] संगीतकी रसमयी धारा है यहाँ और वाणी मूर्च्छित है।

प्रेमके सन्दर्भमें कृष्ण सदैव अतृप्त हैं। उल्टा ऊखल अग्नि-नाभि है। सुपर्णचन्दनमें यज्ञपूरुषके समान भगवान् उसपर बैठ गये। श्रीकृष्ण द्वारा मर्कटोंको हैयंगव देना अतिरिक्त वस्तु अतिरिक्तको देनेसे अतिरिक्तकी शान्ति होना है। सर्वस्वतन्त्रको यशोदा ऊखलमें बांधनेका प्रयास कर रही है।[3]

---

१. भागवत १०।९।१ से १८

२. भागवत दर्शन : द्वितीय भाग : भूमिका पृष्ठ ७५

३. (क) न चान्तर्न बहिर्यस्य न पूर्वं नापि चापरम्।
पूर्वापरं बहिश्चान्तर्जगतो यो जगच्च यः ॥ - भागवत १०।९।१३

(ख) बद्धो मुक्त इति व्याख्या गुणतो मे न वस्तुतः।
गुणस्य माया मूलत्वान्न मे मोक्षो न बन्धनम् ॥
- भागवत ११।११।१

रस्सीमें दो अंगुलका कम रहना भक्तकी साधनमें निष्कपट नैरन्तर्यमयी ऐकान्तिकी चेष्टा एवं भगवत्कृपा इन दोके बिना कृष्ण बाँधे नहीं जा सकते; अन्तमें अचिन्त्य कल्याण गुणाकर श्रीकृष्णकी भृत्यवश्यता प्रकट हुई। वात्सल्य रज्जुसे बँधकर वह दामोदर हो गये।

यमलार्जुन उद्धार लीला :

कुबेर पुत्र नलकूबर-मणिग्रीव धन-मदसे प्रमत्त, प्राणीहिंसा और स्त्री-व्यभिचारमें रत पथमें देवर्षि नारदकी अवज्ञा करनेपर नारद-द्वारा शापित अर्जुन वृक्षोंकी योनिको प्राप्त हुये।[1] दामोदरकृष्ण उलूखलको घसीटते हुये इन वृक्षोंके मध्य प्रवेश कर दूसरी ओर निकल गये। ऊखल बीचमें अटकनेपर कृष्णने ऊखलको जैसेही जोरसे खींचा, पेड़की सारी जड़ उखड़ गयीं। दोनोंका उद्धार हुआ। दोनोंने श्रीकृष्णकी स्तुति की।[2]

वैशिष्ट्य एवं रहस्य :

नारदके शापके दो हेतु थे—एक तो उनके मदका नाश करना और दूसरा अनुग्रह करना—अर्थात् श्रीकृष्ण-प्राप्ति कराना। स्वतः बन्धनरहित कृष्णका वृक्षोंके बीचमें जानेका आशय है भगवान् जिसके अन्तर्देशमें प्रवेश करते हैं, उसके जीवनमें क्लेशका लेश भी नहीं रहता, उद्धार तो हो ही जाता है। सत्कृत कृष्ण स्वयं उलूखलमें बँधे हुये हैं, बन्धन-रहित होकर कुबेर पुत्र उनकी स्तुति कर रहे हैं।[4] भगवान् मुक्तोंके भी मुक्तिदाता अर्थात् प्रेम-भक्ति दाता हैं। श्रीकृष्ण द्वारा साधकोंके धन, रूप, उच्चकुलमें जन्म एवं विद्याके मदसे उत्पन्न प्राणी-हिंसा, स्त्री-संग, मद्य-मांस सेवन आदि दोषोंको दूर करना इस लीलाका उद्देश्य है।

फल विक्रयिणीपर कृपा :

'क्रीणीहि भोः फलान्' फल लो फल—सुनकर अच्युत छोटी-सी अंजुलिमें अनाज लेकर दौड़ पड़े फलविक्रयिणीके पास। शिशुकी अंजुलिसे

१. नेमं विरिंचो न भवो न श्रीरप्यंगसंश्रया।
प्रशादं लेभिरे गोपी यत्तत् प्राप्य विमुक्तिदात् ॥

- भागवत १०।९।२०

२. भागवत १०।९।२२-२३

३. भागवत १०।१०।२ से ३८

४. भागवत १०।१०।२९ से ३८

अनाज गिर पड़ा। पर फल बेचनेवाली उनके दोनों हाथ फलसे भर दिये, अब तो उसकी फलोंकी टोकरी रत्नोंसे पूरित हो गयी स्वतः।[1]

वैशिष्ट्य एवं रहस्य :

ऐच्छिकार्थ जीवके लिये भगवानके हाथसे धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष स्वतः ही गिर जाते हैं। पुण्योंके फलस्वरूप उन्हें वह अपने पास नहीं रखते। भक्त द्वारा दिया प्रेम-फल कभी नहीं नष्ट होता।[2] फलोंकी टोकरीका रत्नोंसे भर जाना भगवानकी भगवत्ता है।

वत्सासुर-उद्धार-लीला :

कंसके उत्पातोंसे डरकर गोकुलवासी वृन्दावन पहुँचे। वृन्दावन ब्रह्मात्मक है।[3] वत्सपाल कृष्ण जब बछड़े चरा रहे थे तभी एक दैत्य वत्स-रूप धारण करके आया। उसपर मुग्धता दिखाते हुये कृष्णने उसके पिछले पैर पकड़कर आकाशमें घुमाया और मर जानेपर कैथके वृक्षपर पटक दिया। वत्सासुरको मुक्ति प्राप्त हुई।[4]

वैशिष्ट्य एवं रहस्य :

साधनामें साधककी वृत्तियोंरूपी गौओं और संस्काररूपी बछड़ोंके दोष-निराकरण और गुणाधान रूपी संस्कारका कार्य भी भगवान् ही करते हैं, संस्कारोंमें रहनेवाले समस्त दोषोंका निराकरण करना ही दोषासुर अथवा वत्सासुरका उद्धार है।[5]

बकासुर-उद्धार-लीला :

एकदा बछड़ोंको चराते हुये कृष्ण सखाओं सहित वत्सोंको पानी पिलाते हुये तड़केही जलाशयके तटपर पहुँचे। वत्सोंको पानी पिलाकर जैसे ही कृष्णने स्वयं पानी पिया तभी इन्द्रके वज्रसे गिरे हुये किसी पहाड़के टुकड़ेके समान एक जीव देखा। यह 'बक' नामक असुर था। इसने सहसा ही कृष्णको निगल लिया। कृष्ण आगके समान होकर उसका तालु जलाने लगे,

---

१. वही १०।११।१० से ११
२. भागवत १०।११।११ सारार्थ-दर्शिनी
३. केनोपनिषत् - 'तद्धि तद् वनं नाम' ४.६
४. भागवत १०।११।४१ से ४४
५. भागवत सुबोधिनी १०।११।४३

व्याकुल असुरने कृष्णको शीघ्र ही उगल दिया। कृष्णने खेल ही खेलमें वीरण पौधेके समान उसको बीचसे चीर डाला। ग्वाल-बाल सहित देवता भी प्रसन्न हुये।[१]

वैशिष्ट्य एवं रहस्य :

बक 'दम्भ' का मूर्तिमान स्वरूपहै । 'दम्भात्मकं बक।' बक का बध कृष्णके चातुर्यपूर्ण वीर्यका परिचायक ही वत्सासुरका उद्धार साधनामें दोषका निराकरण है।

अघासुर-उद्धार-लीला :

एकदिवस कृष्ण सखाओंके साथ वनमें खेल रहे थे। कंस प्रेरित अघासुर अजगरका रूप धारण कर मार्गमें लेट गया। शोभा ऐसी थी, सभी कन्दरा समझकर उसमें प्रवेश कर गये। कृष्णके प्रवेशके साथ ही अघासुरने उन्हें डाढ़ोंसे चबाकर चूर-चूर कर डालना ही चाहा कि कृष्णने फूर्तिसे अपना शरीर बढ़ा लिया। भगवानके अपने शरीरको इतना बड़ा कर लिया कि उसकी साँस ही रुक गयी और अन्तमें उसके प्राण ब्रह्मरन्ध्र फोड़कर निकल गये।[२]

वैशिष्ट्य एवं रहस्य :

सुखक्रीडावीक्षणाक्षम् अघासुर-पूतना, बकादिका भाई जीव-हिंसा और परद्रोहरूपी पापका मूर्तिमान रूप है। मृत्युके समय अघासुरके स्थूल शरीरसे एक अत्यन्त अद्भुत और महान् ज्योति निकली और श्रीकृष्णमें समा गयी।[३] अजगरका चाम सूखकर ब्रजवासियोंके लिये एक खेलकी गुफा बन जाना, उत्पन्न विशेष ज्ञान द्वारा अविद्या और अनर्थमयी प्रवृत्तियोंके मूलका नाश है।[४] मृत अघासुररूपी मृतकामसे ब्रजवासियोंकी उज्ज्वल रसमयी क्रीड़ा है। परवर्ती कुछ विद्वान् यहाँ होली लीला मानते हैं। अहैतुकी करुणावरुणालय कृष्णने अघासुरको सारुप्य मुक्ति प्रदान की।[५]

---

१. भागवत १०।११।४५ से ५२

२. भागवत १०।१२।१३ से ३२

३. भागवत १०।१२।३३

४. भागवत दर्शन : दशम स्कन्ध : अखण्डानन्दजी पृष्ठ ११२

५. भागवत १०।१२।१३ - सारार्थ दर्शिनी

ब्रह्मा-मोह-नाश-लीला :

सखाओंकी परस्पर विनोद वार्ताकी तन्मयतासे ब्रह्माने उनके वत्स चुरा लिये। कृष्ण जब अन्वेषणार्थ चले तो ग्वाल-बालोंको भी ब्रह्माने चुरा लिया, अन्ततः ब्रह्मा जड़-कमलकी सन्तान ही तो ठहरे। अधुना माताओं और स्वयं ब्रह्माको भी आनन्दित करनेके लिए कृष्ण-ग्वाल, वत्स, बांसुरी, सींग, वस्त्र, आभूषण, नाम, गुण, अवस्थादि सब कुछ बन गये। उस समय 'यह सम्पूर्ण जगत् विष्णुरूप है–यह वेदवाणी मानो मूर्तिमती होकर प्रकट हो गयी। एक वर्ष तक कृष्ण उन्हीं रूपोंमें वन और गोष्ठमें क्रीड़ा करते रहे। अपनी इस लीलासे उन्होंने ब्रह्माको भी मोहित कर लिया। वर्षके अन्तमें ब्रह्माजीको भास हुआ है कि सब उस परब्रह्म परमात्मा श्रीकृष्णके ही स्वरूप हैं, जिनके प्रकाशसे यह सारा चराचर जगत् प्रकाशित हो रहा है। अन्ततः भगवानके चरणोंमें गिर उनकी स्तुति करने लगे।[1] एक वर्ष बाद भी ग्वाल बालोंको वही क्षण स्मरण रहा, अग्रिम वाक्य यही कहा-भइया, आओ, इधर आओ, अभी तो हमने तुम्हारे बिना एक कौर भी नहीं खाया है, अब आनन्दसे भोजन करो–'तम्यां तमोवन्नैहारं खद्योतार्चिरिवाहनि। महतीतरमायैश्यं निहन्त्यात्मनि युन्जतः।[2]

वैशिष्ट्य एवं रहस्य :

कर्म-ज्ञानादिकी चर्चासे प्रमत्त होकर भक्तिके प्रति संदेहवाद और ऐश्वर्य-बुद्धि द्वारा माधुर्यकी अवमानना ही ब्रह्म-मोहनका भाव है। ब्रह्म-स्तुति भागवतका एक उत्तम रत्न है। कृष्ण सर्वरूप हो गये हैं। परीक्षितका प्रश्न है, ब्रजवासियोंके लिये कृष्ण अपने पुत्र नहीं फिर भी अपने बालकोंसे भी ज्यादा कृष्णके प्रति इतना प्रेम कैसे हुआ ? शुकदेवजीका उत्तर है-संसारके सभी प्राणी आत्मासे ही सबसे बढ़कर प्रेम करते हैं। पुत्रसे, धनसे या और किसीसे जो प्रेम होता है, वह तो इसलिये कि वे वस्तुयें अपनी आत्माको प्रिय लगती हैं।[3] आनन्दस्वरूप श्रीकृष्ण ही सब आत्माओंके भी आत्मा हैं।[4] अति

---

१. भागवत १०।१३।१२ से ६४
२. वही १०।१३।४५
३. (क) आत्मनस्तु कामाय सर्वं प्रियं भवति - बृहदोपनिषत् ४।५।६
   (ख) सर्वेषामपि भूतानां नृप स्वात्मेव वल्लभः - भागवत १०।१४।५० पूर्वार्द्ध
४. कृष्णमेनमवेहि त्वात्मानमखिलात्मान् - भागवत १०।१४।५४ पूर्वार्द्ध

अद्भुत लीला है यह। इसमें श्रीकृष्णकी विरुद्धधर्माश्रयताका निरूपण और सर्वरूपताका प्रकाशन हुआ है।

धेनुकासुर-उद्धार-लीला :

वृन्दावनकी शोभाका वर्णन करते हुये जब कृष्ण और बलराम ग्वाल-बालों सहित तालवनमें पहुँचे तो वहाँ उन्हें सूचित किया गया कि यहाँ धेनुक नामका एक दैत्य गधेके रूपमें रहता है। उसका वध कर दिया बलरामने। देवताओंने स्तुति की।[1]

वैशिष्ट्य एवं रहस्य :

'यस्यात्मबुद्धिः कुणये त्रिधातुके'[2] अर्थात् जड़ शरीरको ही आत्मा मानना देहाध्यास कहलाता है और इसीका प्रतीक है धेनुक गोखर-'देहाध्यास हि धेनुकाः आध्यात्मिकी अविद्याका प्रथम पर्व है-लिंग देहाध्यास-इसकी निवृत्ति श्रीगुरुदेव-आचार्य बलराम द्वारा की गयी है।[3]

कालिय-कृपा-लीला :

कालिन्दीमें कालियका ह्रद था, जो विषकी आगसे खौलता रहता था। भगवान् विषैले जलमें कूद पड़े। मुहूर्त भरमें कालियको बल-हीन कर नृत्यगान आदि समस्त कलाओंके आदि प्रवर्तक भगवान् श्रीकृष्ण उसके एक सौ एक मणियुक्त मस्तकोंपर नृत्य करते हुये दिखायी दिये। नृत्य करते समय पैरोंकी चोटसे कालिय नागकी जीवन-शक्ति क्षीण हो गयी। पतिको छुड़ानेके लिये नागपत्नियोंने श्रीकृष्णकी स्तुति की। कालियको कृष्णने रमणक द्वीप भेज दिया।[4]

वैशिष्ट्य एवं रहस्य :

कालिय दमन-लीला भगवान् श्रीनन्दनन्दनकी अहैतुकी कृपा एवं भक्त-कृपाकी अनुगामिनी भगवत्कृपाका उत्कृष्ट निदर्शन है। अभिमान, खलता, क्रूरता और दयाशून्यताका दूरीकरण ही कालीय-दमन लीला है। सुबोधिनी के अनुसार कालिय[5] दमन इन्द्रियाध्यास-निवृत्ति है। पुराण-

१. भागवत १०।१५।२७ से ३९
२. भागवत १०।८४।१२
३. भागवत दर्शन : द्वितीय भाग : भूमिका पृष्ठ १०१
४. भागवत १०।१६।४ से ६७
५. कालियम् इन्द्रियाण्याहुः विषयास्तद् विषं स्मृतम् -
१०।१६।४ भागवत-सुबोधिनी

पुरुषका ताण्डव-नृत्य हुआ है। भगवानका एक नाम 'नृत्यरूप' भी है। इसका मन्त्र है–

कालियस्य फणामध्ये दिव्यं नृत्यं करोति तं।
नमामि देवकी पुत्रं नृत्यराजानमच्युतम् ॥[१]

नागपत्नियोंने श्रीकृष्णकी परब्रह्म रूपमें स्तुति की है।

दावानल-परित्राण-लीला :

कालिय-दमनके बाद थकित-क्षुधित-तृषित व्रजवासी यमुना तट पर सो गये। ग्रीष्म ऋतुसे शुष्कारण्यमें अग्नि दहक उठी, भगवान् श्रीकृष्णको परित्राणके लिये पुकारा गया। वह उस भयंकर आगका पान कर गये।[२]

वैशिष्ट्य एवं रहस्य

यह प्राणाध्यास निवृत्ति लीला है।[३] यह कालिय-मर्दनसे सम्बन्धित प्रासंगिक लीला है। कार्यका कारण लय होता है। भगवानके मुखसे अग्नि प्रकट हुआ - मुखाद् अग्निरजायत। इसलिये भगवानने उसे मुखमें ही स्थापित किया।

प्रलम्बासुर-उद्धार-लीला :

एक दिन जब बलराम और श्रीकृष्ण ग्वाल-बालोंके साथ वनमें खेल रहे थे तभी ग्वालके वेषमें प्रलम्ब नामका एक असुर आया। खेल ही खेलमें बलरामने मुष्टिप्रहारसे उसे प्राण-हीन कर दिया।[४]

वैशिष्ट्य एवं रहस्य :

स्त्री-लाम्पटय, लाभ-पुजा-प्रतिष्ठाशा दूरी करण ही प्रलम्बासुर-बध है। यह अन्तःकरणाध्यासकी निवृत्ति भी है। श्रीकृष्णके चतुर्व्यूह रूपमें-से संकर्षणका कार्य असुर-हनन है। प्रलम्बने मृत्यु-पूर्व ही अपना दैत्य रूप दिखाया है। यह मूर्तिमान पाप था। इसकी मृत्युसे देवताओंको परम-सुख प्राप्त हुआ। साधु-साधु कहकर उन्होंने 'बल' पर फूल बरसाये।[५]

---

१. उद्धृत भागवत दर्शन : दशम स्कन्ध पृष्ठ १४८
२. भागवत १०।१७।२० से २५
३. भागवत १०।१७।२५ श्लोक पर सुबोधिनी टीका।
४. भागवत १०।१८।१७ से ३१
५. भागवत १०।१८।३२

दावानल-पान-लीला :

ग्वाल-बालोंकी क्रीड़ा-तन्मयताके कारण गायें मूंजाटकीमें भटक गयीं। श्रीकृष्ण जब उनको नाम ले-लेकर पुकार ही रहे थे, तभी बनवासी जीवोंके कालस्वरूप दावाग्नि लग गयी और वायुकी सहायतासे बढ़ती चली गयी। आज पुनः कृष्णको संरक्षणके लिये पुकारा गया। कृष्णने कहा—'निमीलयत मा मैष्ट लोचनानि' डरो मत, अपनी आँखें बन्द कर लो और आँखें बन्द कर लिये जानेपर उस भयंकर दावाग्निको श्रीकृष्णने पान कर लिया।[1]

वैशिष्ट्य एवं रहस्य :

दावाग्नि-पान स्वरूप विस्मृति-निवृत्ति लीला है।[2] यह श्रीकृष्णकी योगसिद्धि तथा योगमायाका प्रभाव है।[3] नेत्र-निमीलनके बाद दावाग्नि-पान भगवानकी अनन्यशरणागतिके पश्चात् जीवका परामदर्शी न होकर प्रत्यग्दर्शी होना है। नास्तिकों द्वारा धर्म एवं धार्मिकोंके प्रति उपद्रवका दूरीकरण भी इस लीलाका तात्पर्य है।

वेणु-गीत-लीला :

मधुपति श्रीकृष्णने सखाओं सहित वृन्दावनमें बाँसुरीपर अति मधुर तान छोड़ी। श्रीकृष्ण परमानन्दको बांसुरीमें भर-भरकर निकाल रहे हैं। अनुरागिनी गोपियां कृष्णका गुणगान करती हैं।[4]

वैशिष्ट्य एवं रहस्य :

'वेणुगीतं स्मरोदयम्'[5] वेणुधारीका वेणुनाद भगवानके प्रति प्रेमभाव अथवा कामभाव और उनसे मिलनकी आकांक्षाको जगानेवाला है। यह नामात्मक लीला है। वेणुका अर्थ है 'वश्च इश्च ब्रह्मानन्दा विषयानन्दो तां अणु यस्मात्' अर्थात् ब्रह्मानन्द और विषयानन्द दोनों जिसके सामने फीके पड़ जायें, उसका नाम 'वेणु' है।[6]

---

१. भागवत १०।१६।१ से १३
२. भागवत १०।१६।१३ श्लोकपर सुबोधिनी
३. भागवत १०।१६।१४
४. भागवत दशम स्कन्ध इक्कीसवां अध्याय
५. भागवत १०।१२।३ पूर्वार्द्धांश
६. भागवत दर्शन : दशम स्कन्ध : पृष्ठ १६१

शब्द ब्रह्ममयं वेणुं वादयन्तं मुखाम्बुजे ।
विलासिनी गणवृतं स्वैः स्वैरं शैरभिष्टुतम् ॥
अथ वेणुनिनादस्य त्रयी मूर्तिमयी गतिः ।
स्फुरन्ती प्रविवेशाशु मुखाब्जानि स्वयंभुवः ॥[1]

वैशिष्ट्य एवं रहस्य निरुपण करनेके बाद लीला मुख्य होनेसे, भागवतका केन्द्र बिन्दु होनेसे, श्रीकृष्णका परम-वैशिष्ट्य होनेसे एवं गीत-प्रधान होनेसे इसपर पंचम स्तवकमें 'गीत' के रूपमें पुनः विचार किया जायेगा ।

चीरहरण-लीला :

मार्गशीर्षीय हेमन्त ऋतुमें व्रजकुमारियों द्वारा कात्यायनीदेवीकी पूजा और व्रत किये गये । नियम मंत्र था - 'कात्यायनि महामाये महायोगिन्य-धीश्वरि । नन्दगोपसुतं देवि पतिं मे कुरु ते नमः ।' अर्थात् हे ! देवि नन्द-नन्दन श्रीकृष्णको हमारा पति बना दीजिये । एक मास तक इसी प्रकार कात्यायनीकी पूजा की । ये गोपियाँ प्रतिदिन यमुना-जलमें स्नानार्थ जातीं । एक दिवस प्रतिदिनकी भाँति यमुना तट जाकर अपने वस्त्र उतारकर भगवान् श्रीकृष्णके गुणोंका गान करती हुई आनन्दपूर्वक जल-क्रीड़ा करने लगीं । योगेश्वरेश्वर श्रीकृष्णसे उनकी अभिलाषा छिपी न रह सकी, दल-बल सहित आ धमके और गोपियोंके सारे वस्त्र उठाकर त्वरितैव एक कदम्बके वृक्षपर आरोहित हो गये । कहने लगे - 'अत्रागत्याबलाः कामं स्वं स्वं वासः प्रगृह्यताम्' अर्थात् कुमारियों ! तुम यहाँ आकर अपने-अपने वस्त्र ले जाओ । शीतसे काँपती हुई गोपियोंने धर्मकी दुहाई दी । कृष्णने अपने संकल्पका पुनर्वाचन किया । तन-मन पराजिता गोपियाँ सम्मोहिता-सी श्रीकृष्ण कथना-नुसार नग्नावस्थामें ही जलसे बाहर निकलकर जलाधिष्ठातृदेवता वरुण और यमुनाजीके अपराध त्रुटिके मार्जनार्थ समस्त कर्मोंके साक्षी श्रीकृष्णको नमस्कार किया । श्रीकृष्णने अनुमोदन किया-'संकल्पो विदितः…………… मदर्चनम्…………सोऽसो सत्यो भवितुमर्हति' - तुम्हारे संकल्पसे विदित हूँ मेरी अर्चना रूप यह संकल्प सत्य होगा । तुम आनेवाली शरद्-ऋतुकी रात्रियोंमें मेरे साथ विहार करोगी ।…………मयेमा रंस्यथ क्षपाः । कुमारियाँ श्रीकृष्णके पदाम्भोजका ध्यान करती जानेकी इच्छा न रहने पर भी कष्टपूर्वक व्रजमें गयीं ।[2]

---

१. ब्रह्मसंहिता २९-३०
२. भागवत १०।२२।१ से २८

वैशिष्ट्य एवं रहस्य :

अनावरण ही इस लीलाका वैशिष्ट्य है, इसे आवरण भंग भी कहा जाता है।[1] इसमें जीव एवं ईश्वरके बीचका आवरण अनावृत्त, गोपियाँ अनावृत्त, संकल्प अनावृत्त; जल अनावृत्त, वरुण-अपराध अनावृत्त, वस्त्र-हरण अनावृत्त, क्षमा-याचना अनावृत्त, अपराध-मार्जन अनावृत्त, श्रीकृष्णका अनुमोदन अनावृत्त, काल अनावृत्त और परस्पर प्रेम और काम अनावृत। इस लीलाकी फलसे साक्षात् सम्बद्धता है : परमफल है रासमें भगवद्रमण। शुचिस्मित भावके साथ अंजलिको मूर्धासे लगाकरअहं भावका सर्वथा त्याग किया है गोपियोंने। 'लीला' लौकिक दृष्टिकी औचित्यपरता अथवा अनौचित्यपरताकी सीमासे अतीतताका ही नाम है। (शेष परिशिष्ट में)।

यज्ञ-पत्नियोंपर कृपा-लीला :

क्षुधार्त्त ग्वालोंने रामाच्युतसे क्षुधानिवृत्यर्थ कोई उपाय करनेके लिए कहा। अद्य श्रीकृष्णने स्वभक्त ब्राह्मणपत्नियोंपर अनुग्रह करनेका विचार किया। श्रीकृष्णके कथनानुसार ग्वालोंने यज्ञशालामें याज्ञिक विप्रोंके पास ओदनभार्थियोंके लिये भात देनेके किये कहा। ब्राह्मणोंने 'न ते यदोमिति प्रोचुर्न नेति च' अर्थात् उन ब्राह्मणोंने न तो 'हां' कहा और न ही 'ना'। पुनः श्रीकृष्णादेशानुसार ग्वाल-वाल पत्नीशालामें गये। श्रीकृष्णके आनेकी बात सुनकर श्रीकृष्णाक्षिप्तहृदया, चिरोत्कण्ठिता उन द्विजपत्नियोंने अत्यन्त स्वादिष्ट और हितकर भोजन सामग्री लेकर श्रीकृष्णसे मिलनेके लिये धावित हुई। बलराम-कृष्णकी अवज्ञासे याज्ञिक ब्राह्मणोंने प्रायश्चित किया, कंसके भयसे दर्शनार्थ नहीं जा सके।[2]

वैशिष्ट्य एवं रहस्य :

वर्णाश्रमाभिमान द्वारा कृष्णके प्रति उत्पन्न उदासीनता और कर्मजड़ता ही याज्ञिक-विप्ररूप अनर्थ है। कृष्ण-कृपाकर इस अनर्थको दूर कर देते हैं। ग्रीष्म ऋतुमें वृक्षोंकी स्तुतिसे ग्वाल-बालोंके लिये उपदेश देकर इस लीलाकी भूमि निर्मित की गयी थी। इस लीलाका सम्बन्ध तीनसे है–१. गोपसखाओंके साथ, २. यज्ञपतियोंके साथ, ३. यज्ञपत्नियोंके साथ।

---

१. भागवत १०।२२।१ पर सुबोधिनी टीका

२. भागवत १०।२३।१ से ३३

गोपमित्रोंने देहनिर्वाहार्थ स्वतः सम्भव होनेपर भी प्रार्थना की। यज्ञपति भगवदनुग्रहके अधिकारी नहीं हैं। वे श्रीकृष्णकी भगवत्ता और सर्वरूपताको जानते ही नहीं हैं।[1] ये कर्मकाण्डी ब्राह्मण वृक्षोंसे भी अधम है, जो न तो स्वयं हरि भजन करते हैं, न अनुगत जनोंको करने देते हैं। कंसका भय ब्राह्मणोंकी अल्पज्ञता है। द्विजपत्नियाँ धर्मानुष्ठिता है। चीरहरण लीलाके बाद यह लीला यज्ञपत्नियों और गोपियोंके भगवानके प्रति प्रेमका पर्याप्त भेद प्रकट कर देती है। ये मर्यादापुष्टिस्थ है। इनका प्रेम गोपियोंके समान व्यसनात्मक कोटि तक नहीं पहुँचा।

गोवर्द्धन-यज्ञ-प्रवर्त्तन-लीला :

ब्रजवासी इन्द्र-यज्ञकी तैयारी करनेमें लगे थे। अन्तर्यामी और सर्वज्ञ श्रीकृष्ण, फिर भी कह बैठे - 'कथ्यतां मे पितः कोऽयं सम्भ्रमो व उपागतः। किं फलं कस्य चोद्देशः केन वा साध्यते मखः।' अर्थात् पिताजी ! किस फल और उद्देश्यसे यह कौन-सा उत्सव आ पहुँचा है ? पिता नन्दने बताया—इन्द्र पर्जन्यस्वामी है, मेघ उनकी आत्म-मूर्ति है, प्राणियोंके जीवन-पयका वर्षण करते हैं। वैज्ञानिक श्रीकृष्णने इसका खण्डन किया और वनवासी होनेके कारण अद्रि-पूजाका प्रावधान किया। कुल परम्परा टूट गयी। अपनेको त्रिलोकीका ईश्वर माननेवाले अभिमानी इन्द्र अपना यह अपमान सहन न कर सके।[2] प्रलयके मेघोंका बन्धन खोल मूसलाधार वारि-वर्षणसे ब्रजको पीड़ित करने लगे। अत्याचार, शिलावर्षनिपात और अतिवातसे वेपित शीतार्त गोप-गोपियाँ गोविन्दकी शरणमें पहुँचे। खेल-ही-खेलमें श्रीकृष्णने छत्राकके समान गोवर्धनाचलको उखाड़कर हाथमें रख लिया। क्षुत्तृड्व्यथा, सुखापेक्षा भूलाकर एक डग भी बिना हिले सप्त दिवस तक उस गिरिको उठाये रखा। ब्रजवासी विस्मितसे पर निडर होकर उसके नीचे खड़े रहे। अब इन्द्रके विस्मित होनेकी बारी आयी, मेघोंका वारण कर दिया गया। श्रीकृष्णने शैलको पूर्ववत् स्थापित कर दिया।[3] तिरस्कृत इन्द्रने श्रीकृष्णसे अपराधके लिये क्षमायाचना की - उनके स्तवनके रूपमें। इसके बाद कामधेनु द्वारा

---

१. भागवत १०।२३।४७–४८

२. भागवत स्कन्ध १० अध्याय २४

३. भागवत १०।२५।१ से २८

स्तुति हुई है। सुरभिने अपने दूधसे और देव-माताओंकी प्रेरणासे देवराज इन्द्रने ऐरावतकी शुण्ड द्वारा लाये हुये आकाशगंगाके जलसे देवर्षियोंके साथ श्रीकृष्णका अभिषेक किया और उन्हें 'गोविन्द' नामसे सम्बोधित किया।[1]

वैशिष्ट्य एवं रहस्य :

क्रान्तिकारी परिवर्तन किया है श्रीकृष्णने इन्द्र-यज्ञको गोवर्द्धन-यज्ञमें परिवर्तित करके। गुणी गोविन्दके विज्ञानको पिताने स्वीकार किया है। श्रीकृष्णकी परमब्रह्मरूप-माहात्म्य प्रख्यापित करना ही इस लीलाका रहस्य है। प्रत्येक अवस्थामें श्रीकृष्ण ही भजनीय है। भक्तिकी सर्वातिरिक्त सुदृढ़ताके लिये माहात्म्यका ज्ञान आवश्यक है।[2] आज ब्रजवासियोंका श्रीकृष्णसे स्नेह माहात्म्य ज्ञान पूर्वक है। सात वर्षीय शिशुका इन्द्र देवानुचरोंके साथ स्तवन करते हैं सभी ब्रजवासियोंके सान्मुख्यमें। बहु-ईश्वर-बुद्धि और अहंग्रहोपासना दूरीकरण इस लीलाका तात्पर्य है।

वरुणालयसे नन्द-मोचन लीला :

कार्तिक शुक्ल एकादशीका उपवास कर नन्दबाबा द्वादशी लगनेपर आसुरी बेलामें ही यमुना-जलमें प्रवेश कर गये। परिणामस्वरूप असुर उन्हें पकड़कर ले गया। समस्त जगतके अन्तरिन्द्रिय और बहिरिन्द्रियोंके प्रवर्तक भगवान् श्रीकृष्ण वरुणका उपहार स्वीकार कर नन्दबाबाको छुड़ा लाये। नन्द-बाबाने वरुणलोकके इन्द्रियातीत ऐश्वर्य और वहाँपर दृश्यमान श्रीकृष्णके विश्व विमोहन रूपका बर्णन ब्रजवासियोंको सुनाया। उत्सुक गोपोंको भी श्रीकृष्णने मायान्धकारातीत अपना परमधाम दिखाया।[3]

वैशिष्ट्य एवं रहस्य :

भगवानके द्वारा गोपोंको ब्रह्महृदमें प्रवेश करानेके बाद परमधाममें पहुँचानेका जो वर्णन है, वही व्यापिवैकुण्ठ है। इसे अक्षरब्रह्म या विष्णुधाम कहते हैं। यह लोक ब्रह्मानन्दमय है। ब्रह्मानन्द अनुभवानन्तर ही भजना-

---

१. भागवत २।१०।२७।१ से २३

२. माहात्म्यज्ञानपूर्वस्तु सुदृढ़ः सर्वतोऽधिकः।
स्नेहो भक्तिरिति प्रोक्तस्तयामुक्तिर्नचान्यथा॥ - तत्वार्थदीप निबन्ध प्रकरण ४५

३. भागवत १०।२८।१ से १७

नन्दका आनन्द रूप अधिकार अथवा स्थिति प्राप्त होती है। अक्षरब्रह्म अथवा व्यापिवैकुण्ठ ब्रह्मका आध्यात्मिक रूप है। श्रीकृष्ण अक्षर ब्रह्मसे श्रेष्ठ हैं। श्रीकृष्ण निरतिशयानन्द अथवा अगणितानन्द स्वरूप है। अगणितानन्द ही प्राप्त हुआ है व्रजवासियोंको।

रासलीला :

शरद ऋतुमें भगवान् श्रीकृष्ण-कृत-संकल्प और प्रतिज्ञारूप रासलीला प्रारम्भ हुई। सांकेतिक रात्रियाँ पुंजीभूत होकर दिव्य हो गयीं। दिव्य-उज्ज्वल रसकी पूरी सामग्री देखकर कामबीज 'क्लीं' की अस्पष्ट एवं मधुर तान छेड़ी। गोपियाँ गृह, पति, पुत्रादि छोड़कर श्रीकृष्णके पास धावित हुई-जार भावके साथ। श्रीकृष्णने उन्हे धर्मका स्मरण कराते हुये वापिस जानेकी बात कहीं। गोपियोंने प्रणय-कोपके साथ 'तुम्हीं समस्त शरीरधारियोंके आत्मा हो' कृष्णसे कहा। प्रसन्न श्रीकृष्ण कामोत्तेजित क्रियाओं द्वारा परमोज्ज्वल प्रेमभावको प्रदीप्त करते हुये आनन्दित करने लगे। गोपियोंको अपने सुहागका मान हो गया। गर्व शान्त करनेके लिए तथा उनका मान दूर कर प्रसन्न करनेके लिए श्रीकृष्ण अन्तर्धान हो गये।

अग्रिम अध्यायमें श्रीकृष्णके विरहमें गोपियोंकी दशाका वर्णन है। कृष्णभाविता वह पूर्वकृत श्रीकृष्णकी लीलाओंका नाट्य-अनुकरण करने लगीं। श्रीकृष्णके चरण-चिन्होंका अनुसरण करने लगीं। इसके बादके अध्यायमें विरहावेशमें उन्होंने गीत गाया है। प्रलाप करते-करते जब वह फूट-फूटकर रो रही थीं, तभी भगवानने प्रकट होकर गोपियोंको सान्त्वना दी। श्रीकृष्ण गोपियोंके प्रेमसे चिरऋणी हो गये। महारास प्रारम्भ हुआ। इस रासके विलासमें हर गोपीने श्रीकृष्णको अपने पास माना। योगेश्वरेश्वर श्रीकृष्ण दो-दो गोपियोंके बीचमें प्रकट हुये थे।[१]

वैशिष्ट्य एवं रहस्य :

रासलीला पाँच अध्यायोंमें वर्णित है। भाव इसका अति मधुरतम है। यह फलात्मक निरोध रसराजरूपी सुरतरुके प्रत्यंग व्याप्त मधुर-सारकी चरम परिणति है। रसानन्दकी व्याख्या है यह और है भगवद्रमण। अप्राकृत रसमय शरीर द्वारा रसमय भोग है। आनंदशक्तिका परम विस्तार है। रसमय श्रीकृष्ण के रसयिता और रसनीय रूपोंके रसास्वादकी लीला रासलीला है। शृंगार

---

१. भागवत स्कन्ध १०, अध्याय २९,३०,३१,३२,३३

रसकी यह साकार लीला है, श्रृंगार रागात्मक काम है। इसके दोनों पक्ष-संयोग-वियोगका विवरण है, इसीसे श्रृंगारकी पूर्णता है।[1] संयोग रसकी उद्‍बुद्ध अवस्था है और विप्रयोग अत्युद्‍बुद्ध या उद्वेलित अवस्था। यह ललित लीला 'काम-विजय ख्यापन' है। रासलीलाकी रिरंसा ह्लादिनी शक्तिका अनादि विलास है। रासलीलामें शब्दोंकी अभिधा, लक्षणा और व्यंजना सभी शक्तियाँ शरद्‌की कुंजोंकी भांति फलवती हो जाती है। आनन्दातिशयाभिव्यक्ति नृत्यके रूपमें हुई है। 'कामको पराजित करना' बहिरंग रहस्य है रासलीलाका और अन्तरंग रहस्य है आनन्द रसास्वाद। शेष परिशिष्टमें वर्णित किया जायेगा।

सुदर्शन और शंखचूड उद्धार लीला :

शिवरात्रिके अवसरपर अम्बिकावनमें नन्द-सुनन्द आदि गोप जिन्होंने उपवास कर रखा था, सरस्वती नदीके तटपर ही सो गये। देववश एक अजगर इधर आ निकला और सोये हुये नन्दजीको पकड़ लिया। नन्दजी कातर हो चिल्लाये - 'स चुक्रोशाहिना ग्रस्तः कृष्ण कृष्ण महानयम्। सर्पो मां ग्रसते तात प्रपन्नं परिमोचय' – अर्थात् हे कृष्ण ! मुझे बचाओ। श्रीकृष्णने अपने चरणसे उसका स्पर्श कर दिया, स्पर्श करते ही उस अजगरके सारे अशुभ भस्म हो गये और वह अजगरका शरीर छोड़कर विद्याधराचेत सर्वांग सुन्दर बन गया। सुदर्शन रूप-श्री-मदसे अंगिरा गोत्रके ऋषियों द्वारा अजगर योनिको प्राप्त हुआ था।[2]

सायंकालमें श्रीकृष्ण-बलराम के राग-अलापसे मोहित गोपिकों कुबेर-अनुचर शंखचूड नामका यक्ष लेकर भाग चला। तभी काल और मृत्यु के समान यक्षके पास राम और बलराम पहुँचे। उसके सिरपर एक घूसा मारकर चूड़ामणिके साथ उसका सिर भी धड़से अलग कर दिया। मणिको श्रीकृष्णने लाकर सस्नेह बलरामजीको भेंट कर दी।[3]

वैशिष्ट्य एवं रहस्य :

श्रीबल्लभाचार्य इस अजगरको 'इतरभजन' नामक दोषके क्लेशका प्रतीक मानते हैं। भक्तितत्त्वको मायावादसे मुक्त करनेके लिए यह लीला है।

---

१. न बिना विप्रलम्भेन संभोगः पुष्टिमश्नुते - गोपालचम्पू, उत्तरभाग पृष्ठ ५

२. भागवत १०।३४।१ से १८

३. भागवत १०।३४।२० से ३२

शंखचूड बध-लीला द्वारा स्त्रीसंगकी लालसा और मणि-मोचन द्वारा प्रतिष्ठाकी आशाको दूर करते हैं।[1]

अरिष्टासुर उद्धार-लीला :

कंस प्रेरित अरिष्टासुर वृषभका रूप धारण करके अपने भीषण गर्जनसे गोकुल को त्रासमान करने लगा। तभी श्रीकृष्णने उसकेसींग उखाड़कर सींगसे ही उसे मृत्यु प्राप्ति तक पीटा। देवताओंने फूल बरसाकर श्रीकृष्णकी स्तुति की।[2]

वैशिष्ट्य एवं रहस्य :

छल-कपटको ही धर्म माननेवाले अभिमानियों द्वारा भक्तिकी अवहेलना होनेपर श्रीकृष्ण अवहेलना कर्त्ताओंका बध करते हैं।

केशी-उद्धार-लीला :

अद्य कंसने केशी नामक दैत्यको भेजा। यह अश्वका रूप धारण करके आया। इसकी भयानक हिनहिनाहटसे आज फिर गोकुल कम्पित हो गया। अचिन्त्यशक्ति भगवान् श्रीकृष्णने उसके मुँहमें हाथ डालकर उसकी सांसका मार्ग अवरुद्ध कर दिया, उसके प्राण पखेरु हो गये।[3]

वैशिष्ट्य एवं रहस्य :

केशी ह्येषा प्रधान है। यह असुराक्रान्त शास्त्र है। केशी अभिमान, ऐश्वर्यबुद्धि, और जड़ीय अहंकारका प्रतिनिधित्व करता है, भगवान् इसका वध कर इन दोषोंको दूर करते हैं।[4] देवता भी भयरहित हुये हैं।

व्योमासुर-उद्धार-लीला

मायावियोंके आचार्य मयासुरका पुत्र ग्वालका वेष धारण करके आया और लुका-छिपी खेलमें पुन: - पुन: चोर बनकर बालकोंको चुराकर पर्वतकी गुफामें डाल आया। भक्तवत्सल भगवान् श्रीकृष्ण उनकी यह करतूत जान गये, उन्होंने भेड़िये रूपी उस दैत्यको सिंहवत दबोच दिया। बली असुरने

---

१. श्रीकृष्ण संहिता अध्याय ८

२. भागवत १०।३६।१ से १५

३. भागवत १०।३७।१ से ६

४. श्रीचैतन्य शिक्षामृत ६. ६

अपना असली रूप प्रकट किया। भगवानने पशुकी भाँति गला घोंटकर उसको मार डाला। श्रीकृष्णने ग्वाल-बालोंको उस संकटपूर्ण स्थानसे निकाल लिया। देवताओंने स्तुति की।[1]

वैशिष्ट्य एवं रहस्य :

व्योमासुर असुराक्रान्त समाधि है। इसके वधसे चोर और कपटी भक्तोंके संगका त्याग हुआ है।[2]

अथ अक्रूर कंसके आदेशसे व्रजसे श्रीकृष्णको आमन्त्रित करनेके लिए चले गये हैं। गोपियोंको बिलखता हुआ छोड़ श्रीकृष्ण बलरामके साथ मथुरा आये हैं। पथमें अक्रूरको अपना परम पदका दर्शन कराया है।

कंस मारणादिसे द्वारका लीला तकका वैशिष्ट्य एवं रहस्य :

असुर-संहार करके भू-भार हरण करना काल रूप चक्रधारी श्रीकृष्णके लिए बड़ी ही सहज बात है। आचार्य बल्देव कहते हैं असुर-मारण आनुषांगिक लीला होकर ही 'लीला' से संयुक्त है।[3] दूसरोंसे अबध्य दुष्टोंका ही वह प्रकृत्यातीत संहार करते हैं, भक्तोंके पक्षमें शुद्ध भक्तियोगका प्रकाश करते हैं।[4] असुर-मारण और ब्रजसे अन्यत्र गमनागमन दोनों ही तात्कालिकी लीला है। ये लीलायें उस नाटककारका अभिनय है। शत्रु और मित्र दोनोंको ही करुणानिधि श्रीकृष्ण यथायोग्य गति देते हैं। भक्तोंके प्राणरमण कृष्णका यहाँसे अभिनय प्रारम्भ हो जाता है, यथार्थता रह गयी है व्रजमें। अब तो दम्भ, पाप, अविद्या जैसा कुछ भी शेष नहीं रहा है व्रजमें। सब कुछ शुद्ध है— हृदय, बुद्धि, प्रकृति, काल, कर्म, स्थान।

अब श्रीकृष्णको मथुराका भार हरण करना है, जन्मदाताओं को बन्धनसे मुक्त करना है। यहाँके नागरिक कंसके उपद्रवों और अत्याचारोंसे अतिशय पीड़ित हैं। अक्रूरने कंससे श्रीकृष्ण और बलरामके आनेका समाचार निवेदन कर दिया।

श्रीकृष्णने सप्त प्रहर कंचन वर्षिणी, न्यारी नगरी मथुरामें प्रवेशके साथ ही अपने नारीगण-मनोहारी व्यक्तित्वसे स्त्रियोंका मन हरण कर लिया।

---

१. भागवत १०।३७।२८ से ३४

२. श्रीकृष्ण संहिता अध्याय ८

३. श्रीमद्भगवद्गीता ४।६ बलदेव विद्याभूषण कृत टीका

४. श्रीमद्भगवद्गीता ४।८ बलदेव टीका

नगरकी नारियां सोत्सुका उनके दर्शनके लिये अटारियोंपर चढ़ गयीं। कर्ण-परम्परासे कृष्णलीला-कथाओंको सुनकर उनका हृदय श्रीकृष्णाक्षिप्त होकर श्रीकृष्णको देखनेके लिये विकल था, अद्य उन्हें देखा, श्रीकृष्णने भी अपनी स्वाभाविक, स्नेहमयी चितवन और मधुरातिमधुर स्मित-सुधाके साथ सिंचन करते हुयेसे उनका सम्मान किया। पुलकायमाना वपु उन स्त्रियोंने नेत्रोंके द्वारा भगवान् श्रीकृष्णको अपने हृदयमें ले जाकर उनके आनन्दमय स्वरूपका आलिंगन किया, चिरकालकी विरह-व्याधि शान्त हो गयी।[1]

सर्वपालनकर्त्ता श्रीकृष्ण आज धोबीसे वस्त्र माँग रहे हैं, विनिमयमें परमकल्याणका लाभ दे रहे हैं, परन्तु ये सरकारी परिचारक उन्हें बर्बर समझ रहे हैं, कैदमें डलवा देनेकी धमकी भी दे रहे हैं, अपना रूप प्रकट किया सर्वशासक श्रीकृष्णने। कुपित हुये उस रजकरूपी मदपर श्रीकृष्णने एक तमाचा मारा, जिससे उसका सिर धड़से नीचे गिर गया, सारा मद उतर गया, श्रीकृष्णने उसे वहीं छोड़ दिया।[2]

आगे दर्जी मिला। कृष्ण-बलरामके कथनानुसार दर्जीने दोनोंको रंग-बिरंगे वस्त्रोंसे सुसज्जित कर दिया। श्रीकृष्णकी प्रसन्नताका फल उस वायकको इस लोकमें भरपूर धन-सम्पत्ति, बलैश्वर्य, इन्द्रिय सम्बन्धी शक्तियाँ और मृत्युके बाद सारूप्य मोक्षके रूपमें मिला।[3]

दयालु कृष्ण, बलरामके साथ सुदामा मालीपर अनुग्रह करनेके लिए गये। मालाकारने उनकी पूजा-स्तुतिकी और उनके चरणोंमें अविचल भक्तिका वरदान माँगा। श्रीकृष्णने इस वरदानके साथ वंश-परम्पराके साथ बढ़नेवाली लक्ष्मी और बल, आयु, कीर्ति तथा कान्तिका भी वरदान दिया।[4]

आगे मिली है 'कुब्जा' नामकी त्रिवक्रा सैरन्ध्री। यह कंसके यहाँ चन्दन और अंगराग लगानेका कार्य करती है। प्रेमरसदायी उस सैरन्ध्रीपर कृपा करनेके लिए पूछ बैठे, 'का त्वं वरोर्वेतदु हानुलेपनं कस्यांगने वा कथस्व साधु नः' कुब्जाने अपना परिचय दे दिया। भगवानके रूपपेशलमाधुर्यहसिता-लापने इसके मनका भी हरण कर लिया। दोनों भाइयोंको इसने अंगराग दे दिया। प्रसन्न भगवानने अपने चरणोंसे कुब्जाके दोनों पंजे दबा लिये और

---

१. भागवत १०।४१।२४ से २६
२. वही १०।४१।३२ से ३६
३. वही १०।४१।४० से ४२
४. वही १०।४१।४३ से ५२

हाथ ऊँचा करके दो अंगुलियाँ उसकी ठोड़ीपर लगाकर उसका शरीर तनिक उचका दिया। उचकाते ही त्रिवक्राके सारे अंग समान हो गये। मुकुन्दस्पर्शसे प्रमत्त हुई यह सुन्दरी भगवानसे अपने घर चलनेके लिये आग्रह करने लगी— 'एहि वीर गृहं यामो न त्वां त्यक्तुमिहोत्सहे। त्वयान्मथित चित्तायाः प्रसीद पुरुर्षभ।' भगवान् श्रीकृष्णने कहा—हे सुभ्रु ! मैं अपना कार्य पूरा करके अवश्य आऊंगा।[1]

आगे बढ़ दिये कृष्ण व्यापारियोंके बाजारमें, व्यापारियोंने उनको नैवेद्य अर्पित किया। सम्पूर्ण राजपथपर नारियाँ बेसुध होकर चित्रलिखित मूर्तिकी तरह श्रीकृष्ण-बलरामको देख रही हैं।[2]

अब तक श्रीकृष्ण पर्याप्त मात्रामें अपनी सर्वसमर्थताका विज्ञापन कर चुके हैं, रंगशाला पहुँचे हैं अब। रक्षक-वार्यमाण होनेपर भी इन्द्र-धनुषवत् एक अद्भुत धनुषके श्रीकृष्णने दो टुकड़े कर डाले। धनुष-भंगकी ध्वनिसे सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड गुंजायमान हो गया, कंस भयभीत हो गया। रक्षकोंके रूपमें जो आततायी असुर हैं श्रीकृष्णको पकड़ लेनेकी इच्छासे चिल्लाने लगे—पकड़ लो, बाँध लो, जाने न पावे। उनका दुष्ट-अभिप्राय जानकर कृष्ण-रामने धनुषके खण्डोंसे उनका और उनके सहायकोंका संहार कर डाला। कंसको अपशकुन होने लगे।[3]

मण्डेलश्वरोंकी मन्त्रणासे बल्गुवाद्य प्रहर्षित चाणूर, मुष्टिक, कूट, शल, तोषल आदि पहलवान अखाड़ेमें जा बैठे।[4] कृष्ण-राम रंगभूमिके द्वारपर जैसे ही पहुँचे, सम्मुख ही कुंजरेन्द्र कुवलयापीड़को देखा। दोनों वीरोंने इस बाधाको भी महामात्रोंके साथ भूतलपर पटक दिया। रंगभूमिमें प्रवेश किया अब दोनोंने। लोगोंकी भावनारूप ही एक साथ श्रीकृष्णका श्रीअंग अत्युच्च रूपसे प्रकाशित हो उठा। गुण-वैशिष्ट्यकी चर्चा होने लगी।

मल्ल चाणूरने कृष्ण-रामके साथ कुश्ती खेलनेका प्रस्ताव रखा, प्रस्तावका अनुमोदन किया दोनों वनवासियोंने। चाणूरसे श्रीकृष्णका और मुष्टिकसे श्रीबलरामका मल्ल-युद्ध प्रारम्भ हुआ। प्रयोजन है सर्वभूतमय

---

१. भागवत १०।४२।१ से १२

२. वही १०।४२।१४

३. वही १०।४२।१५ से ३१

४. वही १०।४२।३७

राजाकी प्रसन्नता। हस्तसे हस्त, पादसे पादका विचकर्षण हुआ, अरत्निसे अरत्नि, जानुसे जानु, सिरसे सिर, उरसे उर भिड़ाकर एक-दूसरेपर चोट करने लगे। परस्पर परिभ्रामण, विक्षेप, परिरम्भण, उत्सर्पण, अपसर्पण, उत्थापन, उन्नयन, चालन, स्थानादि दाव-पेचोंका प्रदर्शन हुआ। दर्शकोंके मध्यमें तो उनके सौन्दर्य और गुणोंका ही वर्णन हो रहा है। कृष्णने चाणूर मल्लपर विजय प्राप्त की, उधर बलरामने मुष्टिकपर। परम वैशिष्ट्य यह कि श्रीकृष्णसे पिट रहा है चाणूर और हृदय विदीर्ण हो रहा है कंसका।

अत्र कृष्णस्य संग्रामे दृश्यतां परमाद्भुतम्।
चाणूरः पीड्यते तेन वुक्का कंसस्य भिद्यते ॥[1]

कंस क्रोधोन्मत्त होकर विकत्थमान हो रहा था, तभी प्रकुपित अविनाशी कृष्ण तरसा मंचपर चढ़ गये, खड्गपाणि कंस पैतरा बदलने लगा, भगवान् श्रीकृष्णने बलपूर्वक उसे पकड़ लिया, कंसका मुकुट गिर गया, फिर श्रीकृष्ण भगवानने कंसके केश पकड़कर उसे भी उस ऊंचे मंचसे रंगभूमिसे गिराकर स्वयं उसके ऊपर कूद पड़े। कंसकी मृत्यु हो गयी, अभिमानका नाश हुआ है अद्य।[2]

नित्य चिन्तनके फलस्वरूप वह चाहे द्वेषभावसे ही क्यों न किया गया हो, कंसको सारुप्य मुक्ति प्राप्त हुई, इसकी प्राप्ति बड़े-बड़े तपस्वी योगियोंके लिए भी कठिन है।

जय जय जय जय जय जय जय जय।
जय जय जय जय जय जय जय जय ॥ वीर ॥[3]

कृष्ण-रामने कारागारमें जाकर माता-पिताको बन्धनसे छुड़ाया, उनको शिरसा-चरण-वन्दना की। संदिग्ध माता-पिताने हृदयसे नहीं लगाया। श्रीकृष्णने क्षमायाचनाके रूपमें अपनी योगमाया फैलायी, विश्वात्मा श्रीहरिकी वाणीसे मोहित हुये माता-पिताने पुत्रोंको हृदयसे लगाकर परमानन्द प्राप्त किया।

---

१. उत्तर गोपाल चम्पू ५।५८

२. प्रगृह्य केशेषु चलत्किरीटं निपात्य रंगोपरि तुंग मंचात्।
तस्योपरिष्टात स्वयमजनाभः पपात विश्वाश्रय आत्मतन्त्रः ॥
— भागवत १०।४४।३७

३. गोपाल चम्पू : उत्तर भाग ५।१३१

देवकीनन्दन श्रीकृष्णने उग्रसेनको यदुवंशियोंका राजा बना दिया।[1] मथुरामें साथ आये हुए नन्दबाबा आदिको अपने पुनरागमनका आश्वासन देकर व्रजके लिये प्रस्थान कराया। वे साश्रु व्रज प्रस्थान कर गये।[2]

मथुरामें ही गर्गाचार्य आदि ब्राह्मणोंने वसुदेव-पुत्रोंका द्विजाति-समुचित संस्कार किया। तत्पश्चात् गुरुकुल-निवासकी इच्छासे काश्यगोत्री सान्दीपनि मुनिके पास गये। संयमी शिरोमणि दोनों भाइयोंने चौंसठों कलाओंका ज्ञान चौंसठ दिन-रातमें प्राप्त कर लिया।[3] समुद्रमें डूबकर मृत गुरु-पुत्रको यमराजसे लाकर दिया गुरु दक्षिणाके रूपमें। वियोग विह्वल गोपियोंको सन्देश प्रेषित करनेके लिये श्रीकृष्णने उद्धवको भेजा। उसके बाद जो गोपियोंकी बातचीत और भ्रमर-गीतका प्रसंग है, उसको पंचम स्तवकमें वर्णित किया जायेगा--गान प्राधान्यसे।'

मथुरा-लीलाओंके अन्तिम प्रसंगोंमें भगवानने अपने वचन पूर्ण किये—कुब्जाको काम-सुख प्राप्त कराकर और अक्रूर गृह-गमन द्वारा। गान्दिनी-नन्दन अक्रूरजीको हस्तिनापुर भेजा गया पाण्डवोंके समाचार जाननेके लिये। अक्रूरने श्रीकृष्णकी बुआजी कुन्तीके दुःखका और धृतराष्ट्रके पक्षपातका वर्णन श्रीकृष्णको कह सुनाया।

मथुरावासियों किंवा व्रजवासियोंके सूक्ष्मतम हृदय-प्रदेशमें श्रीकृष्णका प्रवेश ही मथुरा-लीलाओंका रहस्य है।

द्वारका लीलाके प्रारम्भमें इसके बाद कंस-मृत्योपरान्त अस्ति-प्राप्ति नामकी अपनी पुत्रियोंके वैधव्यको जरासन्ध सह नहीं सका। मथुरापर जरासन्धने सत्रह बार आक्रमण किये, बीचमें एक आक्रमण कालयवनका हुआ और अठारहवाँ आक्रमण शिव बल, यज्ञ-बल, धर्म-बलसे परिपुष्ट होकर

---

१. भागवत १०।४५।१२

२. भागवत १०।४५।२३ - यात यूयं व्रजं तात वयं च स्नेहदुःखितान्।
ज्ञातीन् वो द्रष्टुमेष्यामो विधाय सुहृदां सुखम्॥

३. चौसठ प्रकारकी कलाओंका वर्णन शास्त्रमें तीन जगहोंपर मिलता है। १ शुक्रनीति ४–३–६५ से ६६, कामसूत्र १–१–१५ तथा शैवतन्त्र। ये चौंसठ कलायें भागवत सुधा सागर पृष्ठ ६४८ पर अंकित है।

जरासन्धने किया, श्रीकृष्ण-बलरामने इस बार उसे ज्ञान-बलसे पराजित किया।[१] जरासन्ध और कालयवन दोनोंके एक साथ आक्रमण करनेपर जो अत्याद्भुत थी, एक ब्रह्मविद्या थी मथुरा, दूसरी ब्रह्मनिष्ठा रूप नगरी बसायी गयी द्वारका—इसका जीवन श्रीकृष्णके निवासपर्यन्त ही था। श्रीकृष्णका सान्निध्य ही मथुरा-द्वारकाका प्राण है।

कालयवन जब श्रीष्णकी ओर दौड़ा, तब श्रीकृष्ण पलायन कर गये। श्रीकृष्णने (अमरकोशमें जैसे वर्णित है) द्रव (पलायन) केलि एवं परिहास इन तीनों शद्वों की एकार्थकताका ही विस्तार किया, तीनों शद्व परिहास अर्थके पर्यायवाचक हैं।[२] श्रीकृष्णका रण छोड़ रूप परिहासमें ही पर्यवसित है। श्रीकृष्ण उसे अपना अनुसरण कराते हुये एक पहाड़की गुफामें ले गये जहां तपस्वी मुचुकुन्दकी रुष्ट दृष्टि पड़ते ही वह भस्म हो गया।[३] श्रीकृष्णकी स्तुतिकी मुचुकुन्दने।

एक ब्राह्मण देवता हिरण्यवर्णा लक्ष्मी रुक्मिणीका सन्देश लेकर पधारे-सिंही वपुः किमु नृसिंह श्रृगाल योग्यम्।[४] सार था सन्देशका। रुक्मिणीका भाई है विष-रुक्मी। श्रृगाल है शिशुपाल। नरश्रेष्ठ श्रीकृष्ण वैष्णवी शक्ति रुक्मिणीके साथ प्रेम सन्देशके रूपमें गान्धर्व, अपहरण करके राक्षस, तब विधिवत् शास्त्रीय विवाह कर लेते हैं। रुक्मी श्रीकृष्णसे पराजय प्राप्त करता है। इसके बाद श्रीकृष्णने सौरी शक्तिरूपी सत्यभामाको सत्राजितसे स्यमन्तक मणिके साथ[५] तथा ब्राह्मी शक्ति जाम्बवतीको ऋक्षराज जाम्बवानको युद्धमें हराकर पत्नियोंके रूपमें प्राप्त किया।[६] आत्मबोध स्वरूपा सूर्यपुत्री कालिन्दीने तपस्यासे श्रीकृष्णको पतिके रूपमें प्राप्त किया। विन्द और अनुविन्दकी बहिन तपस्यारूपा मित्रविन्दाको श्रीकृष्णने स्वयम्बर-में-से बलपूर्वक हरण करके प्राप्त किया। नाग्नजिती योगरूपा सत्याको श्रीकृष्णने सात दुर्दान्त बैलोंपर विजय प्राप्त करके प्राप्त किया। सन्तर्दनने

---

१. भागवत - एतदर्थो वतारोऽयं भूभारहरणाय मे।
संरक्षणाय साधूनां कृतोऽन्येषां बधाय च॥ - १०।५०।६

२. अमरकोष १।७।३२ - द्रवकेलिपरिप्तसाः क्रीड़ा लीला चनर्म च।

३. भागवत १०।५१।६ से १२

४. गोपाल चम्पू १६।१४

५. भागवत १०।५६।३८ से ४३

६. भागवत १०।५६।१३ से ३१

अपनी बहन भद्राको स्वयं श्रीकृष्णको दिया। भक्तिरूपी लक्ष्मणाको श्रीकृष्णने स्वयंवरमें अकेले ही उसे हर लिया। इन आठों कन्याओंके साथ श्रीकृष्णका पाणिग्रहण संस्कार विधिवत् हुआ है। श्रीकृष्णने जिस प्रकार कन्याओंको बलपूर्वक प्राप्त किया है, उसे 'वीर-भाव' कहते हैं। यही शाश्वत उत्साह अथवा अखण्ड उत्साह कहा जाता है। शार्ंगधनुषधारी श्रीकृष्णने सोलह हजार एक सौ राजकन्याओंको बन्दीगृहसे छुड़ाकर और भौमासुरको मारकर प्राप्त किया है। समाज-त्यक्ता इन श्रीकृष्णाभिलाषणियों[२] की अन्य कोई गति भी नहीं थी। स्यमन्तक हरणार्थ शतधन्वाका वध भी किया है श्रीकृष्णने। रुक्मिणीसे उनका पुत्र प्रद्युम्न उत्पन्न हुआ है। श्रीकृष्णकी संततिका विस्तार करोड़ों तक हुआ है पुत्र–पौत्रोंके रूपमें।[३]

श्रीकृष्णने अपने पौत्र अनिरुद्धको बाणासुरकी कैदसे छुड़ाया, उसे पराजित कर उसे अभय दान दिया।[४] राजा नृगका गिरगिटकी योनिसे मोचन किया।[५] अपने साथ डाह करनेवाले और स्वयंको वासुदेव माननेवाले पौण्ड्रक और उसके मित्र काशिराजको युद्धमें हराकर उनका उद्धार किया है। भौमासुरका मित्र द्विविद बलराम द्वारा मारा गया है। नारदने सविस्मित भगवानकी गृहचर्या देखी, एक ही श्रीकृष्णको उनकी प्रत्येक पत्नीके महलमें अलग-अलग देखा।[६]

इन्द्रप्रस्थ जानेपर श्रीकृष्णका राजोचित और हार्दिक स्वागत किया गया। पाण्डव कृत राजसूय यज्ञमें जरासन्ध अविजित रहा। तब उद्धवके परामर्शानुसार भीमसेन, अर्जुन और भगवान् श्रीकृष्ण ब्राह्मणका वेश धारण करके ब्राह्मणभक्त जरासन्धकी राजधानी गिरिव्रज पहुँचे।[७] वहाँ भीमसेनने

---

१. अहं देवस्य सवितुर्दुहितापतिमिच्छती। विष्णुं वरेण्यं वरदं तपः परममास्थिता ॥ – भागवत १०।५६।२०

२. भूयात् पतिरयं मह्यं धाता तदनुमोदताम्। इति सर्वाः पृथक् कृष्णे भावेन् हृदयं दधुः ॥ - भागवत १०।५९।३५

३. भागवत १०।६१।१८–१९

४. भागवत १०।६३।४९

५. भागवत १०।६४।६

६. भागवत १०।७०।४१ – इत्याचरन्तं सद्धर्मान् पावनान् गृहमेधिनाम्। तमेव सर्वगृहेषु सन्तमेकं ददर्श ह ॥

७. भागवत १०।७२।१६

जरासन्धके शरीरके दो टुकड़े कर दिये श्रीकृष्णके परामर्शपर।[१] श्रीकृष्णने जरासन्ध कृत बन्दियोंको कारागारसे विमुक्त किया। जरासन्धको भागवतमें कर्मपाशकी संज्ञा दी है। श्रीकृष्ण इन्द्रप्रस्थ लौट आये। यज्ञकी अग्रपूजार्थ सहदेव द्वारा भगवान् श्रीकृष्णको नियुक्त करनेपर ईर्ष्यालु शिशुपाल भगवानकी सभासदोंके मध्य निन्दा करने लगा। भगवान् श्रीकृष्णने अपने चक्रसे उसका सिर काट डाला। शिशुपालके शरीरसे एकज्योति निकलकर भगवान् श्रीकृष्णमें समा गयी। वह वैरभावसे हतारिगतिदायक श्रीकृष्णमें तन्मय हो गया था।[२] तीन जन्मों बाद आज शिशुपालको गति प्राप्त हुई। अथ शिशुपालके मित्र शाल्वका वध किया। इसके भी मित्र दन्तवस्त्रका उद्धार किया भगवान् श्रीकृष्णने। इसके मृत शरीरमें-से एक अत्यन्त सूक्ष्म ज्योति निकली और बड़ी विचित्र रीतिसे भगवान् श्रीकृष्णमें समा गयी। इसके भाई विदूरथका भी श्रीकृष्ण द्वारा आज उद्धार हुआ है।[३]

दरिद्रताकी प्रतिमूर्ति सुदामाको श्रीकृष्णने ऐश्वर्य्यकी प्राप्ति करायी। माता देवकीके मृत छः पुत्रोंको सुतल लोकाधिपति राजा बलिसे लाकर सौंप दिया।

विदेह नगरीमें एक था अपरिग्रह ब्राह्मण श्रुतदेव और दूसरा था वहाँका निराभिमान राजा बहुलाश्व। दोनोंकी युगपत् प्रार्थना, दोनोंपर समान अनुग्रह अर्थात् दोनोंके घर साथ-साथ आतिथ्यकी स्वीकृति श्रीकृष्ण द्वारा। दोनोंको यही अनुभव हुआ कि भगवान् हमारा ही आतिथ्य स्वीकार कर रहे हैं। केवल व्यक्ति, अंग, स्थान ही दो-दो नहीं हुए, काल भी दो हो गये, राजाके घरमें एक मास, ब्राह्मणके घरमें एक दिन।[४] श्रीभगवान्के अनुग्रहसे शंकरजीका संकट-मोचन हुआ वृकासुर-मरण द्वारा।[५] दशम स्कन्धकी समाप्ति पर भगवान् श्रीकृष्णका पत्नियोंके साथ लीला-विहारका वर्णन है।

यदुवंशपर ऋषियोंके शाप, उसका संहार और श्रीकृष्णके स्वधामगमन का वर्णन पूर्व प्रसंगोंमें अंकित है।

---

१. भागवत १०।७२।४५

२. भागवत १०।७४।४६

३. भागवत १०।७८।१२

४. भागवत १०।८६।५८

५. भागवत १०।८८।३६

द्वारका–लीलामें श्रीकृष्णका ऐश्वर्यमय राजोचित् एवं गार्हस्थय स्वरूप विद्यमान है, हतारिगतिदायकत्व गुण तो सर्वकाल ही है।

प्रकट और अप्रकट लीला

जो लीला प्रपंचमें नयनगोचर होती है वह 'प्रकट' और जो नहीं होती, वह 'अप्रकट' कही जाती है।[1] प्रकट लीलाको 'कादाचित्की'-कहा जाता है और अप्रकट लीलाको 'नित्य'। नित्य लीला प्रापंचिक लोगोंके गोचरीभूत नहीं होती।[2] प्रकट विहारके समय स्वयं प्रकाश शक्तिके द्वारा एवं स्वेच्छा प्रकाशसे ही श्रीकृष्ण नेत्रगोचर होते हैं। जब प्रपंचेन्द्रिय विषय होते हैं, तब ही प्राकट्य कहा जाता है।

यों तो शास्त्रादिमें वर्णित सभी लीलायें नित्य है। अनन्त ब्रह्माण्डोंमें क्रमानुसार लीला प्रकट होती रहती है। एक ब्रह्माण्डमें लीला प्रकट करके भगवान् श्रीकृष्ण पुनः अप्रकट हो जाते हैं। श्रीकृष्णकी जो लीला एक ब्रह्माण्डमें एक क्षणमें हो रही है, वही लीला द्वितीय क्षणमें दूसरे ब्रह्माण्डमें प्रारम्भ हो जाती है। इसी प्रकार अनन्त ब्रह्माण्डोंमें 'उस क्षणकी लीला' परिवर्तित होती हुई परिभ्रमित होती रहती है। लीलाका कभी अवच्छेद नहीं होता।[3] प्रकट और अप्रकट लीला दोनों स्वरूपतः नित्य है। लीलायें ज्योतिश्चक्रमें सूर्यकी तरह नित्य अवस्थान करती हैं। जो देश सूर्यके सामने आते हैं, वहाँ सूर्योदय आदि माना जाता है, जो देश सूर्यकी विपरीत दिशामें घूम जाते हैं, वहाँ सूर्यका अस्त होना मान लिया जाता है। इसी प्रकार भगवत्लीलाका आविर्भाव- तिरोभाव मात्र है।[4] इनकी लीलाकी नित्यताका प्रतिपादन भागवतमें इस प्रकार है–

---

१. प्रपंचगोचरत्वेन सा लीला प्रकटा मता।
अन्यास्त्व प्रकटा भान्ति तादृश्यस्तदगोचरा॥ - लघुभागवतामृत १।७।१७

२. ....तत्र प्रकटा प्रापंचिक लोकगोचरीभूता सा च कादाचित्की अप्रकटा तद्गोचरीभूता सा तु नित्येव श्रीवृन्दावनादो वर्तते॥
–भक्तिरसामृत सिन्धु पश्चिम विभाग प्रेवोभक्तिरसाख्या लहरी ३, श्लोक १२८

३. श्रीचैतन्य चरितामृत, मध्य लीला, २०, ३७९-३९५

४. भागवत ३।२।७

जयति जननिवासो देवकी जन्मवादो यदुवरपर्षत्स्वैर्दोर्भिरस्यन्नधर्मम् ।
स्थिरचरवृजिनध्नः सुस्थित श्रीमुखेन व्रजपुरवनितानां वर्धयन् कामदेवम् ॥[1]

अर्थात् यद्यपि वे सदा-सर्वदा विद्यमान है, फिर भी देवकीजीके गर्भसे जन्म लेने जैसी लीलायें करते हैं, उनकी जय हो। 'जयति' में वर्तमान कालका प्रयोग होनेसे लीला-विलासकी नित्यता सूचित हुई है।

प्रकट लीलाके अनुसार भागवतमें विरहावस्थाका वर्णन हुआ है। श्रीकृष्णका मथुरागमन व्रजमण्डलके रसकी पुष्टिका हेतु है अर्थात् उसके बिना समृद्धिमान सम्भोगादिकी सम्भावना नहीं हो सकती।[2] ऐसा भी कहा जाता है कि मथुरामें श्रीकृष्ण क्षत्रिय वेश-स्वरूपसे जाते हैं और वृन्दावनमें गोपवेश स्वरूपसे रह आते हैं। प्रकट लीलामें श्रीकृष्णके विरहसे गोपियोंको महाभावकी प्राप्ति हुई है, इस आनन्दके परमावधिरूप भ्रमरगीतसे विलापोन्माद हुआ है। भ्रमरगीत व्रजसुन्दरियोंके प्रेमका सचमत्कार परमोत्कर्ष है। श्रीकृष्णके वियोगमें उद्धवजीने व्रजमें समृद्धि देखी इससे स्पष्ट है कि श्रीकृष्ण-बलराम एक रूपसे नन्दजीके पास भी थे—

गायन्तीभिश्च कर्माणि शुभानि बलकृष्णयोः ॥
स्वलंकृताभिर्गोपीभिर्गोपैश्च सुविराजितम् ॥[3]

अर्थात् सुन्दर वस्त्र और अलंकरणोंसे अलंकृत गोप-गोपियाँ श्रीकृष्ण तथा बलरामजीके मंगलमय चरित्रोंका गान कर रहे थे। उद्धव श्रीकृष्णको व्रजमें पूर्ण रूपसे पाकर कृतकृत्य हुये।[4] अप्रकट प्रकाशमें श्रीकृष्ण व्रजमें नित्य विहार करते हैं, प्रकट प्रकाशसे मथुरा रहनेपर भी—

---

१. भागवत १०।९०।४८

२. (क) पुनरुदयजशर्मपोषिधर्मं, स्वयमुपराये हरेः प्रवासमात्रम् ।
व्रजमपि तद्दृते रसस्य पूर्ति यदि वलयेत तदा तदेव न स्यात् ॥
- उत्तर गोपाल चम्पू २९।१५४

(ख) तत्र प्रकटलीलायामेव स्यातां गमागमौ - भागवतामृत १।२६०

(ग) व्रजभूमेः सकाशात् मथुरापुरीं प्रतिगमनम् आगमो द्वारकातो.... प्रकटलीलायामेव स्यातां न त्वप्रकटलीलायाम् - पश्चिम विभाग, लहरी ३, श्लोक १२८, भक्तिसारप्रदर्शिनी टीका

३. भागवत १०।४६।११

४. भावगत १०।४७।४७ - पर वैष्णव तोषिणी और सारार्थ दर्शिनी टीका

भवतीनां वियोगो मे न हि सर्वात्मना क्वचिद् इति ।[1]

(गोपाल चम्पूमें) श्रीकृष्ण कहते हैं–सर्वात्मा मुझसे, आपका कभी भी वियोग नहीं है । ब्रजमें रहते हुये आपमें मेरी स्फूर्ति होनेसे मेरा संभोग है । निष्कर्षतः गोपियोंका कभी भी श्रीकृष्णसे विरह नहीं है ।[2] महाप्रवासका अवसर ही नहीं है । मन्त्र परम्पराको रखनेके लिये नित्य स्थिति मानी जाती है । कालिय-हृद-प्रवेशलीला महादुःखद है । किन्तु कालिय-दमन आदि सामयिक लीला है ।

दुष्ट विनाशी श्रीकृष्ण कभी अपने रमणीय भावसे अर्थात् इच्छा क्रमसे उन गोलोकवासीजनोंके साथ अनुपम भावसे प्रकाशित होकर निश्चयेन इस जगतको आह्लादित करते हैं जैसे कोई दिव्य-नृत्य नायक नैपथ्य स्थानसे निकलकर दर्शकगणके सम्मुख आता है और अपने नाटय-काव्यसे दर्शकोंको आह्लादित कर नैपथ्य स्थानपर लौट आता है, उसी प्रकार श्रीकृष्ण भी गोलोकमें प्रवेश कर जाते हैं ।[3] प्रकट लीला साधक सिद्धिके लिये है, अप्रकट लीला द्वापरान्तमें होती है । उनकी विशेषतः प्रकट लीलाका गान महर्षि करते हैं, अप्रकट लीला अति रहस्यपूर्ण होनेके कारण गान नहीं की जाती । माधुर्य सिद्ध अधिकारियोंके लिये यह लीला प्रकट की गयी है ।

भौम जगतमें जो असुर-मारणादि है, वह अप्रकट लीलामें इस पुष्टिके लिये अभिमानके रूपमें वर्तमान है । वही अभिमान-भाव असुर-मारणके रूपमें प्रकट लीलामें देखा जाता है ।[4] श्रीकृष्णकी यह मायिकत्व उनके 'नित्य लीला विहार' को गुप्त रखनेके लिये है । उद्धवजी कहते हैं–वे ब्रजवासियोंकी दृष्टि आकृष्ट करनेके लिए कभी हँसते, कभी रोने-से लगते और कभी सिंह-

---

१. गोपाल चम्पू, उत्तर भाग १२।२६

२. प्रोक्तेयं विरहवस्था स्पष्टलीलानुसारतः ।
कृष्णेन विप्रयोगः स्यान्न जातु व्रजवासिनाम् ॥ - भक्तिरसामृत सिन्धु २।३।१२८

३. (क) तादृशात्तस्मादेव च निष्क्रम्य रम्यतया तैः सममसमं प्रकाशमानः स खलु खलनाशनस्तदिदं जगदपि कदाचित् प्रमदयति, दिव्य नृत्यनायक इव नेपथ्य स्थानादथ तद्वतत्र प्रविशति च ।
- गोपाल चम्पू, उत्तर भाग १।५

(ख) भागवत ८।८।५

४. चैतन्य शिक्षामृत ६।६

शावकके समान मुग्ध-दृष्टिसे देखते ।[१] नन्दबाबाने वरुण-लोकमें इन्द्रियातीत ऐश्वर्यको देखा और देखा कि वहाँके निवासी उनके पुत्र श्रीकृष्णके चरणोंमें झुक-झुककर प्रणाम कर रहे हैं ।[२] इसके बाद उन्होंने व्रजवासियोंको भी दिव्य भगवत्स्वरूप लोक दिखाया । व्रजवासियोंने देखा कि सारे वेद मूर्तिमान होकर भगवान श्रीकृष्णकी स्तुति कर रहे हैं—नित्य लीला अथवा अप्रकट लीलामें कभी किसी लीलाकी अनित्यता नहीं है—

नन्दादयस्तु तं दृष्ट्वा परमानन्दनिर्वृताः ।
कृष्णं च तत्रच्छन्दोभिः स्तूयमानं सुविस्मिताः ॥[३]

भगवान् श्रीकृष्णके स्वधामगमन करनेपर भी श्रीशुकदेवजी कहते हैं— भगवान् श्रीकृष्ण वहाँ अब भी सदा-सर्वदा निवास करते हैं 'नित्यं संनिहितस्तत्र भगवान् मधुसूदनः ।'[४] सनकादि मुनीश्वर निरन्तर ब्रह्मानन्दमें निमग्न रहा करते थे। किन्तु जिस समय भगवान् कमलनयनके चरणारविन्द मकरन्दसे मिली हुई तुलसी मंजरीके गन्धसे सुवासित वायुने नासिकारन्ध्रोंके द्वारा उनके अन्तःकरणमें प्रवेश किया, तब वे अपनेको सम्भाल न सके,[५] अतः अप्रकट लीलामें भी वे सदा इसी रूपमें किंवा परमानन्द रूपमें अवस्थित हैं । मनुने ध्रुवको यही बात अवगत करायी है ।[६] श्रुतिमें एक प्रश्न है, भुमाख्य श्रीहरि कहाँ है ? उत्तरमें कहा गया है—अपनी महिमामें अवस्थित है । वियोग-स्थितिमें स्वयं श्रीकृष्णने उद्धवके द्वारा गोपियोंको यही सन्देश प्रेषित किया—

---

१. भागवत ३।३।२८
२. भागवत १०।२८।१०
३. भागवत १०।२८।१७
४. (क) भागवत ११।३१।२४ पूर्वार्द्ध
   (ख) तुलनीय - मथुरा भगवान् यत्र नित्यं संनिहितो हरिः
   - १।१०।२८
५. भागवत ३।१५।४३
६. त्वं प्रत्यगात्मनि तदा भगवत्यनन्त आनन्दमात्र उपपन्नसमस्तशक्तौ ।
   भक्तिं विधाय परमां शनकैरविद्याग्रन्थिं विभेत्स्यसि ममाहमिति प्ररूढम् ।
   — भागवत ४।११।३०
७. छान्दोग्योपनिषत् ७।२४।१

यथा भूतानि भूतेषु खं वायु वाय्वग्निर्जलं मही।
तथाहं च मनः प्राणभूतेन्द्रिय गुणाश्रयः ॥[1]

अर्थात् आकाश आदि कारणरूप भूतसमूह अपने-अपने कार्य रूप भूतोंमें स्थित हैं, उसी प्रकार मैं भी आपके मन आदिका आश्रय हूँ, मेरे वियोगमें क्षण भर भी आपके मन और प्राण आदि टिक नहीं सकते। 'अप्रकट लीलातः प्रसूतिः प्रकट लीलायामभिव्यक्तिः'[2] अर्थात् अप्रकट लीलासे ही प्रकट लीला प्रसूत होती है, वियोग किंवा आविर्भाव-तिरोभाव प्रकट लीलामें ही है, वह भी एक ही प्रकाशमें, दूसरे प्रकाशमें संयोग है, अतः सम्पूर्ण रूपसे वियोग नहीं है।

स्वारसिकी और मन्त्रोपासनामयी लीला

स्वारसिकी लीला :

अप्रकट लीलाको स्वारसिकी कहते हैं, क्योंकि वह स्वेच्छामयी है और भिन्न-भिन्न समय, भिन्न-भिन्न स्थानोंपर भिन्न-भिन्न रूपमें अनुष्ठित होती रहती है। यह प्रवाहरूपा, प्रकाशमयी और आदि-मध्य-अन्त होना है। स्वारसिकी लीलामें अभिसारके पश्चात् युगल-मिलन, कुंज-प्रवेश, विविध-विलास, तदनन्तर उपवनमें भ्रमण आदि विविध विचित्रतायें हैं। इसकी नित्यता तो स्पष्ट ही है—

मा खिद्यतं महाभागौ द्रक्ष्यथः कृष्णमन्तिके।

अन्तर्हृदि स भूतानामस्ते ज्योतिरिवैधसि ॥[3]

यह उक्ति श्रीउद्धव द्वारा श्रीव्रजराज दम्पत्तिके लिये है। वे कहते हैं, हे महाभागद्वय ! जैसे काष्ठमें अग्नि सदा ही व्यापक रूपमें रहती है, वैसे ही श्रीकृष्ण समस्त प्राणियोंके हृदयमें सर्वदा विराजमान रहते हैं। यह है स्वारसिकी लीला। इसे क्रममयी लीला भी कहा गया है। इस लीलामें श्रीकृष्ण प्रातःकाल मां यशोमति द्वारा लालित-पोषित हैं। पूर्वाह्नमें उनका वनगमन, गोचारण, मध्याह्नमें कुण्डादि स्थानोंमें गोपियों-सखियोंसे मिलन और अपराह्नमें गोचारणके उपरान्त पुनर्व्रजागमन, सायंकालमें गोदोहन

---

१. भागवत १०।४७। २९

२. श्रीकृष्ण सन्दर्भ, पृष्ठ ४७

३. भागवत १०।४६।३६

और रात्रिमें शयन, मध्यरात्रिमें वृन्दावन जाकर निधुवनमें मिलन एवं शयन एवं पुनः प्रभातमें दोनोंका व्रजागमन होना है।[१] इस लीलामें अन्तर्भुक्त लीलाओंका आदि, मध्य और अवसान होता है। श्रीकृष्णकी इन स्वेच्छामयी विभिन्न लीलाओंको साधक समयानुसार स्मरण और मानसिक सेवा करते हैं–

श्रीमान रासरसारम्भी वंशीवटतटस्थितः।
कर्षन् वेणुस्वनैर्गोपीर्गोपीनाथः श्रियेऽस्तु नः॥[२]

राग मनका धर्म है जो मानसिक सेवा (मानसी) रूपसे केवल विशुद्ध सत्वमय मनमें संचालित होता है। यही स्वारसिकी उपासना है।[३]

मन्त्रोपासनामयी लीला :

साधक श्रीकृष्णकी लीलाको उपयुक्त स्थानमें सदा स्थित होकर मन्त्र सहित ध्यान करते हैं, स-परिकर श्रीकृष्णकी आराधना करते हैं, ध्यानगत इस गोलोक प्रकाशकी इस लीलाको मन्त्रोपासकमयी लीला कहते हैं।[४] शास्त्रोंमें बहुतसे उपासना मन्त्रोंमें ऐसी लीलाका उल्लेख है, जो सदा-सर्वदा एक ही स्थानपर एकही रूपसे होती रहती है। यह लीला नित्यस्थितिशीला होनेसे एक ही प्रकारसे एक ही स्थानपर नित्य होती रहती है। इसमें साधक श्रीकृष्णके स्वरूप, चिन्मय व्रजलीला विलास स्वरूपका ध्यान करता हुआ[५] प्रमोदय

---

१. (क) चैतन्य सम्प्रदाय : सिद्धान्त और साहित्य पृष्ठ १५५
   (ख) भजन रहस्य–प्रथम अध्याय
   (ग) गोविन्द लीलामृत १५।१
   (घ) श्रीचैतन्य शिक्षामृत ६।६

२. चैतन्य चरितामृत आदि लीला १।१७

३. रागवर्त्म चन्द्रिका, विश्वनाथ चक्रवर्ती, लोभ एवं प्रवर्त्तक १।३

४. (क) चैतन्य चरितामृत : कृष्णदास कविराज गोस्वामी -
   दीव्यद्वृन्दारण्य कल्पद्रुमाधः, श्रीमद्रत्नागार सिंहासनस्थौ
   श्रीमद्राधा-श्रीलगोविन्द देवो, प्रेष्ठालीभिः सेव्यमानो स्मरामि॥

५. (क) क्लीं कृष्णाय गोविन्दाय गोपीजन वल्लभाय स्वाहा। - आदि लीला १।१६
   (ख) नमस्ते वासुदेवाय सर्वभूतक्षयाय च।
   हृषीकेश नमस्तुभ्यं प्रपन्नं पाति मां प्रभो॥ - भागवत १०।४०।३०
   (ग) भागवत १०।३८।१६

होनेसे सिद्ध अवस्थामें पहुँच जाता है।[1] उसकी स्थिति होती है पंखहीन पक्षियोंकी तरह, माँका दूध पीनेके लिये आतुर क्षुधार्त्त वत्सकी तरह, प्रवासी प्रियतमसे मिलनेके लिये उत्कण्ठित वियोगनी पत्नीके समान। उसकी अभिव्यक्ति होती है—

अजातपक्षा इव मातरं खगाः स्तन्यं यथा वत्सतराः क्षुधार्ताः।
प्रियं प्रियेव व्युषितं विषण्णा मनोऽरविन्दाक्ष दिदृक्षते त्वाम्॥[2]

उपासना-मन्त्रोंकी विभिन्नताके अनुसार मन्त्रोपासनामयी लीला भी अनेक प्रकारकी है जैसे—गोचारण लीला, रासलीला, कुंज-क्रीड़ा-लीला इत्यादि।[3] प्रत्येक मन्त्रोपासनामयी लीलाकी अवस्थिति वृन्दावनके एक विशेष प्रकाशमें है।[4]

मन्त्रमयी, स्वारसिकीके मध्यमें स्वारसिकी श्रेष्ठ है, स्वारसिकी श्रीराधा प्राणबन्धुकी मानसी सेवामें विद्यमान है।[5] मन्त्रोपासनामयी लीलाका स्वारसिकी लीलामें पर्यवसान सम्भव है। श्रीजीवगोस्वामीके अनुसार मन्त्रोपासनामयी नित्यस्थितिशीला-लीला, स्वारसिकी गतिशीला-लीलासे उसी प्रकार उद्भूत और उसके अन्तर्गत है, जिस प्रकार यमुनामें कालीयह्रदके समान बहुतसे ह्रद उससे उद्भूत और उसके अन्तर्गत हैं। स्वारसिकी लीला अपने चक्राकार प्रवाह-पथपर चलते हुये बहुतसे ह्रदोंमें परिणत होती है और इन ह्रदोंके भीतरसे बहती हुई निकलती रहती है। जिस समय स्वारसिकी लीलाका प्रवाह मन्त्रोपासनामयी लीलाके ह्रदमें प्रवेश करता है, उस समय सामयिक रूपसे दोनों लीलाओंका ऐक्य होता है। पर स्वारसिकी लीलाका

---

१. हा नाथ ! रमण ! प्रेष्ठ क्वासि क्वासि महाभुज।
दास्यास्ते कृपणाया मे सखे दर्शय संनिधिम्॥ - भागवत १०।३०।४०

२. भागवत ६।११।२६

३. रात्रि दिन कुंजे-क्रीड़ा करे राधा संगे—मन्त्रोपासना रूप-चैतन्य चरितामृत २।८।१४८

४. गौड़ीय वैष्णव दर्शन १।१।११९

५. मन्त्रमयी स्वारसिक्योर्मध्ये स्वारसिकी श्रेष्ठा। स्वारसिकी चात्र श्रीराधाप्राणबन्धोरित्यत्र मानस्यामपि सेवायां सद्भावात्।-
—स्वकीयात्व निरास परकी यात्व निरूपण पृष्ठ १०

प्रवाह आगे बढ़ जाता है और मन्त्रोपासनामयी लीलाका हृद वहीं रह जाता है।[1]

लीलाओंकी कालक्रम संगति :

श्रीकृष्णके लीला-क्रम विकीरणका प्रमुख कारण कल्पभेद तो है ही, साथ ही प्रेम-पक्षसे एक सारस्वतीय कल्पकी श्रीकृष्ण-लीला भागवत-पुराणमें इतस्तत: हो गयी है। पात्र ब्रह्म-तत्त्वके विषयमें जिज्ञासु हुये और लीला-प्रसंग चल पड़ा, कहीं-कहीं तो लीलासे भी अधिक महत्व अवतार-चर्चापर दे दिया। स्तुतियोंके माध्यमसे लीलाओंका स्मरण तो किया गया है, परन्तु उनमें भी कल्प-भेद और काल-संगति है। श्रीकृष्णकी लीला नित्य (अप्रकट) और कालातीत होनेपर भी उनकी जन्मादि लीलाके प्राकट्यसे लेकर तिरोभाव तककी प्रकट लीलाओंका कालक्रम प्रस्तुत किया जा रहा है—

आजसे ५०८७+१२५ वर्ष पूर्व भगवान् श्रीकृष्ण द्वापरान्तमें प्रपंचमें प्रकट हुये, कंसको वंचित करते हुए माँ देवकीके गर्भसे, गर्भकी असम्पूर्ण स्थितिमें ही।[2]

राक्षसी पूतनाको धात्री गति दी है, जन्म-लीलाके शीघ्र बाद। इस लीलामें-कालके सन्दर्भमें 'एकदा रात्रो' लिखा गया है। श्रीविश्वनाथ चक्रवर्ती, सनातन गोस्वामी और गर्गजीका भी यह अभिमत है।[3] तीन मासके होनेपर (कदाचिदोत्थानिक:) उच्चन उत्सव हुआ, इसमें शकटासुरका उद्धार श्रीकृष्णने किया। श्रीधरस्वामीने इसे 'अंग परिवर्तन उत्सव'[4] तथा सुदर्शन सूरीने इसे 'उत्थापन मंगल'[5] लिखा है। यद्यपि स्मृति-शास्त्रोंमें चार मासके बाद ही

---

१. गौड़ीय वैष्णव दर्शन १।१।११६

२. भागवत—उच्चस्था: शशिभौम चान्द्रिशनयो लग्नं वृषो लाभगो।
जीव सिंह तुलालिषु क्रमवशात् पूषोशनोराहव:॥
नैशीथ: समयोऽष्टमी वुधदिनं ब्रह्मर्क्षमत्रक्षणें श्रीकृष्णा-
भिधमम्वुजेक्षणमभूदावि: परं ब्रह्म तदिति॥
१०।३।७ सारार्थ दर्शिनी, स्वमाणिक्य नामक ज्योतिष ग्रन्थके आधारपर

३. भागवत १०।६।३ वैष्णव-तोषिणी और सारार्थ-दर्शिनी

४. भागवत १०।७।४ भावार्थ-दीपिनी

५. वही पर शुक-पक्षीया

बालकका उच्चान उत्सव मनाया जाता है-'चतुर्थे मासं निष्क्रमु.' (धर्मशास्त्र) तथापि उस दिन जन्म-नक्षत्र योग उपस्थित होनेसे यह उत्सव हुआ था। जीवगोस्वामीके अनुसार यह निष्क्रमण महोत्सव चतुर्थमास (पौष मास) में ही मनाया गया था।[1] वीरराघव, विजयध्वज तथा वल्लभाचार्य शकट-स्पर्श उत्सव निष्क्रमणके अनन्तर ही मानते हैं। तीन महीने दस दिन बाद अर्थात् सौंवे दिन श्रीकृष्ण-बलरामका नामकरण हुआ। एक साथ ही जानुचंक्रमण आदि हुये। आयुकी दृष्टिसे व्यतिक्रम इसलिये नहीं है बलरामका जन्म कृष्ण-जन्मके आठ दिन पूर्व पूर्णिमा तिथिको हुआ, गौड़ीय सिद्धान्तका ऐसा निश्चय है।[2] एक वर्ष पूर्ण होनेपर तृणावर्त असुर मारा गया है। कृष्ण लीला-कथा प्रेम-रस समुद्रमें अवगाहित शुकदेवने शकटासुर-वध रूप ऐश्वर्य लीलाका वर्णन व्यतिक्रम होनेपर भी भावावेशसे नामकरण पहले बता दिया है। दधि, माखन-चोरी लीलाके वर्णनके साथ ही शुकदेवने मृद्भक्षण-लीलाका वर्णन किया है, कालके लिये प्रयुक्त है 'एकदा'।

तृतीय वर्षमें प्रविष्ट कृष्ण कार्तिक मासमें प्रेम-रज्जुसे बँधे हैं। आज ही यमलार्जुन-मोचन हुआ है।[3] चतुर्थ वर्षके अन्तमें कृष्णका कौमार-परित्याग देखा जाता है, साधारण रूपसे पाँच वर्षमें ही कौमार-परित्याग माना जाता है; परन्तु कृष्णका एक वर्ष पहले हो गया है। वैष्णवतोषिणीकार कहते हैं कि हरिवंश पुराण आदिमें जो सात वर्षकी वयमें यह लीला पायी जाती है, वह कल्प-भेदकी लीला है।[4] वत्सपाल रूपमें उन्होंने वकासुर, वत्सासुर आदिको मारते हुये जगतकी रक्षा की है। चतुर्थ वर्षके प्रारम्भमें ब्रह्माजी श्रीकृष्णके परब्रह्मत्वमें संदिग्ध हुए हैं, इनके द्वारा वत्स और सखा

---

१. भागवत १०।७।४ पर क्रम-सन्दर्भ

२. नामकरणस्य शततम पर्यन्ताहे निर्णयात् तृणावर्तबधस्य वार्षिकत्वात्, अस्य वर्षाभ्यन्तरे।

च प्रसंगेनावेशेन च व्यतिक्रम सम्भाव्यः, प्रपिबतोः स्तनं दत्वा तत्र-दन्तरा मुखं निरीक्ष्य च ॥
—क्रम सन्दर्भ १०।८।१७

३. (क) भागवत १०।९।१ वैष्णव तोषिणी, सारार्थ दर्शिनी

(ख) प्रायोऽयं दीपमालिका महोत्सवो भवेत्।
दामोदर लीलोपासनस्य कार्तिकेऽभिधानात् ॥ — वही पर क्रम सन्दर्भ

४. भागवत १०।११।१९ वैष्णव तोषिणी

चुरा लिये जानेपर श्रीकृष्ण स्वयं यथावत् और यथासंख्यामें वत्स और सखाओंका रूप धारण करते हैं, यह क्रम एक वर्ष तक चलता है। बलरामके जन्म-दिवसपर कृष्णने अघासुरको मारा है, आज ही एक वर्ष बाद ब्रह्माके मोहका नाश हुआ है, इस प्रकार पंचम वर्षमें ही पौगण्डावस्थाका प्रकाश हुआ है।[१]

द्वादश, त्रयोदश और चतुर्दश अध्यायोंको श्रीमन्मध्वाचार्य एवं उनके साम्प्रदायिक आचार्य तथा आचार्य बल्लभ-भागवतमें प्रक्षिप्त मानते हैं। परन्तु प्राचीन टीकाकार और वासना-भाष्य आदि सम्मत सर्ववादि, सार्वदेशिक ग्रन्थमें ये अध्याय प्रक्षिप्त कैसे हो सकते हैं? पद्मपुराण और ब्रह्माण्ड पुराणमें ये लीलायें स्पष्ट रूपसे प्रसिद्ध हैं। यह पक्ष वैष्णवतोषिणीकार, सारार्थदर्शिनीकार और क्रमसन्दर्भकारके समर्थनमें है।

षष्ठ वर्ष प्रारम्भ होनेपर गोपोंसे सम्मति पाकर कार्तिक मासके शुक्लपक्ष की अष्टमीको गोचारण प्रारम्भ किया। आज श्रीकृष्ण वत्सपालसे गोप बने हैं। व्रजमें आज भी इस दिनकी स्मृतिमें गोपाष्टमी उत्सव मनाया जाता है।[२] इसी वर्ष की ग्रीष्म ऋतुमें 'एकदा' कालिय-दमन लीलाका प्रकाश किया है।[३] इसी दिनकी रात्रिको वनाग्निसे व्रजवासियोंकी रक्षा की है; दूसरे दिन वृन्दावनमें दावाग्नि पान किया है।[४] इसी ऋतुमें द्वितीय बार श्रीकृष्ण द्वारा दावाग्नि-पान हुआ है। इसके बाद शुकजीने वर्षाकालीन वृन्दावनीय शोभाश्रीका वर्णन किया है। शरद्-कालकी शोभाका वर्णन करके 'वेणु लीला' प्रसंग है।

हेमन्त ऋतुमें गोपियों द्वारा कात्यायनी व्रत और श्रीकृष्ण द्वारा चीर-हरण लीला सम्पन्न हुई है।[५] श्रीधर स्वामि इस लीलाको मार्गशीर्ष (अग्रहायण) मासमें मानते हैं, हरिवंश-विष्णु और ब्रह्मपुराणमें भी यही

---

१. भागवत १०।१२।१ वैष्णवतोषिणी और सारार्थदर्शिनी

२. (क) १०।१५।१ सारार्थ दर्शिनी, वैष्णव तोषिणी

(ख) शुक्लाष्टमी कार्त्तिकेतु स्मृता गोपाष्टमी बुधैः — पद्मपुराण, कार्तिक माहात्म्य २।२६

३. भागवत १०।१५।१६ सारार्थ दर्शिनी

४. भागवत १०।१८।२ सारार्थ दर्शिनी

५. भागवत १०।२२।१ सारार्थ दर्शिनी, वैष्णव तोषिणी

मानस माना है। अनन्तर कृष्ण-रामका विप्र-पत्नियोंसे अन्न-ग्रहण है। इसी वर्षके कार्त्तिक मासकी शुक्ला-प्रतिपदाको इन्द्र-यागका विधान है। प्रातःकाल गोवर्द्धन-पूजा और रात्रिमें दीप-दानका विधान है।[१]

वैष्णवतोषिणीकारके अनुसार धेनुक, प्रलम्ब वध, कालिय-मर्दन और गोवर्धन धारण आदि लीलायें कल्प-भेदसे हुई है।[२] अन्ततः अष्टम वर्षमें कार्तिक शुक्ला तृतीयासे आरम्भ कर नवमी पर्यन्त अर्थात् सप्त दिवस पर्यन्त गोवर्धन धारण-लीला सम्पन्न हुई। द्वितीयासे कुपित इन्द्रका कोप आज एकादशीके दिन शान्त हुआ, उसका गर्व दूर हुआ। श्रीकृष्णका 'गोविन्द' नामसे अभिषेक हुआ। पूर्णिमाको व्रजवासियोंको ब्रह्म-लोक-गोलोक-धामका दर्शन कराया गया है। अष्टम वर्ष पूर्ण कर लेनेके बाद लीला-मुकुट-मणि-रासलीला आश्विनके प्रारम्भमें हुई।[३] कैशोरावस्थाकी लीला है—कैशोरं सफलीकरोति कलयन् कुंजे विहारं हरिः।

शारदीय रास-लीला वर्णनके बाद शिवरात्रि-यात्राका वर्णन है। यह यात्रा फाल्गुन-कृष्ण-चतुर्दशीको हुई। दशम वर्षमें गोपियोंके साथ वन-विहार, जल-केलि करते हुए शंखचूड़ दैत्यका वध किया एवं अरिष्टासुरको मारा। अरिष्टासुर श्रीकृष्णके एकादशवें वर्षकी चैत्र पौर्णमासीके दिन मारा गया है सनातन गोस्वामीके अनुसार।[४]

श्रीकृष्णने अब द्वादश वर्षमें प्रवेश कर लिया है। फाल्गुन-कृष्णपक्षकी एकादशीके दिन कंसने अक्रूर द्वारा व्रजसे कृष्ण–बलरामको बुलानेके लिये मन्त्रणा की। द्वादशीके प्रातःकाल केशी दैत्यका वध किया, इधर अक्रूरने मथुरासे व्रजके लिये प्रस्थान किया। अपराह्नमें व्योमासुरको मारा, सायंकाल अक्रूर व्रज पहुँचे। त्रयोदशीको कृष्ण–राम मथुरा आये। शिव चतुर्दशीको कंसको सिंहासनसे गिराकर एक ही घूंसेमें मार दिया। आज ही देवकी–वसुदेवके बन्धन खुले।

श्रीकृष्णका द्वादश वर्ष पूर्ण न होनेके कारण ग्यारह या साढ़े ग्यारह वर्ष तक ही व्रज स्थितिका उल्लेख है। अनन्तर मथुरा–द्वारका लीला है।

---

१. भागवत १०।२४।१ वैष्णव तोषिणी

२. भागवत १०।२६।३ वैष्णव तोषिणी

३. भागवत १०।२९।१ सारार्थ दर्शिनी

४. भागवत १०।३६।१४ सारार्थ दर्शिनी

साथ ही कैशोर रूपकी नित्य स्थिति है। किशोर प्रद्युम्नके पुरीमें आते समय प्रद्युम्नको कृष्ण समझ पट्टमहिषियोंको लज्जा–भाव हुआ था। इनकी नित्य स्थिति भी श्रीवृन्दावनमें है और है व्रजमें–मथुरां यत्र भगवान् नित्यं सन्निहितो हरिः, वृन्दावनं परित्यज्य पादमेकं न गच्छति।[१]

भागवतमें शम्बरासुर–वध–प्रसंगके अनन्तर ही श्रीकृष्णका अन्य पत्नियोंके साथ विवाह कहा गया है। परन्तु जाम्बवती आदिके विवाहके बाद हीप्रद्युम्नका द्वारका-आगमन है। प्रद्युम्नके जन्म–प्रसंगके साथ ही उनका चरित्र वर्णन कर दिया है। क्रम–भंग होने पर भी कथा–प्रसंगकी ऐसी धारा है।[२]

अन्तिम प्रसंगोंमें सनातन गोस्वामीके अनुसार पहले सूर्य–ग्रहण उपलक्ष्यमें कुरुक्षेत्र–यात्रा, अनन्तर राजसूय–यज्ञ हुआ। इसके बाद द्युत–क्रीड़ा और पाण्डवोंका वन–गमन द्वादश वत्सरके लिये और एक वत्सरके लिए अज्ञातवास हुआ। कृष्ण राजसूय-यज्ञ समापन कर कई महीने वहीं वासकर परिजनोंके साथ द्वारकापुरीमें आये। उस समय सत्ताईस दिन पहलेसे ही शाल्व-पक्षियोंके साथ यादवोंका युद्ध चल रहा था। अतः श्रीकृष्ण पुरीमें प्रवेश न करके सीधे युद्धमें गये और शाल्वासुरका वध किया। नारदसे दन्तवक्रका आक्रमण सुनकर मथुरा आये और उसका बध किया। तभी यमुना-पार कर वृन्दावनमें आये और अपना दर्शन देकर सभीको परमानन्द-सागरमें स्नान कराया। दो महीने व्रजमें रहे, तदनन्तर व्रज-लीलाको प्रपंचसे अन्तर्हित कर लिया। इसके बाद कृष्ण द्वारकामें आये। उधर बलराम तीर्थयात्राके समय अपने शिष्य दुर्योधनके प्रति स्नेह होनेपर भी श्रीकृष्ण द्वारा कुरुक्षेत्रमें पाण्डवोंका पक्ष समर्थन करने पर कुरुक्षेत्र-युद्ध-ध्वंस-लीलाको ही कृष्णका अभिप्राय जान चुपचाप चले गये। भीमके गदायुद्धके समयमें भी तीर्थ-भ्रमण करते हुए आये, परन्तु कृष्णका 'दुर्योधनकी मृत्यु' ही निश्चय समझकर एक बार फिर 'कुछ नहीं' कहकर चले गये।[३]

यथार्थमें दन्तवक्र-वधके पूर्व सूर्य-ग्रहण हुआ है, किन्तु वर्णन बादमें हुआ है। सूर्य-ग्रहणमें भीष्म-द्रोण आदिका भी गमन हुआ है। श्रीकृष्णने

---

१. भागवत १०।४३।१७ क्रम सन्दर्भ : जीवगोस्वामी

२. भागवत १०।५५।१ सारार्थ दर्शिनी

३. भागवत १०।७८।६ वैष्णव तोषिणी

(११+३३) चौवालीस वर्षकी आयुमें दन्तवक्त्रको मारा है। श्रीकृष्णने एक सौ पच्चीस वर्ष तक प्रपंचांगनमें लीला प्रकटित की है। तदनन्तर लीला सहित स्वयंको अन्तर्हित किंवा अप्रकट कर लिया है।

श्रीमद्भागवतमें कथा-वर्णन करते हुए श्रीशुकदेवजी श्रीकृष्णको स्मरण करते हुए प्रेम-विकल और प्रेम-मूर्च्छासे विवश हो जाते थे। पात्र भी यत्र-तत्र, यदा-कदा इस-उस लीलाका स्मरण करते हैं। प्रमुख वक्ता श्रीशुकजी कहीं इच्छा रहनेपर भी प्रेम-गद्गद्-कण्ठ-अवरोध होनेसे वर्णन नहीं कर सके और प्रेम-वश ही कहीं कर गये। इसलिए लीलाओंका क्रम-भंग, क्रम-वैपरीत्य और लीलाओंके, 'नित्यत्व' गुणसे कालके वर्णनका अभाव पाया जाता है।[1]

लीलाओंके आद्यवसान पर एक दृष्टि :

भगवानके श्रीविग्रहके जीवोंके प्राकृत-शरीरके समान जन्मादि नहीं होते। उनका श्रीविग्रह विभु, नित्य, सदा सर्वत्र विद्यमान रहनेपर भी प्राकृत इन्द्रियोंके अगोचर है। भगवान् अपनी ही शक्तिसे अपने विग्रहको गोचरीभूत कराते हैं[2], इसीको आविर्भाव कहते हैं।[3] योगमाया आविर्भावके समय भगवानके विग्रहका निर्माण नहीं करती, उनके नित्य, सिद्ध, विग्रहको हमें गोचरीभूत मात्र कराती है। श्रीमन्महाप्रभुने कहा है—

योगमाया चिच्छक्ति, विशुद्ध सत्वपरिणति, तार शक्ति लोके देखाइते।
एई रूप रतन भक्तगणेर गूढ़ धन, प्रकट कैल नित्य लीला हइते॥

सच्चिदानन्दका जन्म, जन्मका अनुकरण मात्र है, एक ऐसी लीला है, जिसे वे स्वेच्छासे करते हैं। आविर्भावके समय उनके स्वरूपगत धर्मका व्यत्यय नहीं होता। लीलावपु श्रीकृष्ण देवकीके हृदयमें अवस्थित रहनेके समय भी

---

१. भागवत १०।७८।६ वैष्णवतोषिणी—सनातन गोस्वामी

२. (क) अजोऽपि सन्नव्ययात्मा भूतानामीश्वरोऽपि सन्।
प्रकृतिं स्वामधिष्ठाय सम्भवाम्यात्ममायया॥
—श्रीमद्भगवद्गीता ४।६

(ख) जन्म कर्म च मे दिव्यम्, — श्रीमद्भगवद्गीता ४।६

३. चैतन्य चरितामृत २।२१।८५

४. जन्म नित्य सिद्धस्य एव मम सच्चिदानन्दघनस्य लीलया तथानुकरणम्।
—गीता ४।६ श्लोककी श्रीधरी टीका

उसी प्रकार सारे जगतके आश्रय थे, जिस प्रकार उसमें आविर्भूत होनेसे पूर्व।[1]

जिस प्रकार भगवानका जन्म नहीं होता, उसी प्रकार उनकी मृत्यु भी नहीं होती, केवल आविर्भाव और तिरोभाव होता है।[2] तिरोभाव-अवसरपर भी वह उस लीलाकी समाप्तिका अनुकरण करते हैं। श्रीजीव-गोस्वामी कहते हैं कि मौषल-लीलासे लेकर अर्जुन-पराभव पर्यन्त सारी लीला इन्द्रजालके समान कल्पित थी।[3] श्रीकृष्णके तिरोभावसे ही लीलाका अवसान नहीं होता, लीला नित्यवाची है। जीव गोस्वामीका मत है कि 'तनु' शब्दसे शरीरका ग्रहण नहीं, अपितु भू-भार जिहीर्षा-लक्षण-रूप भावका ग्रहण होना चाहिये।[4] लीला आद्यन्त-रहित है। जिस प्रकार सूर्य उदय और अस्त होता है, उसी प्रकार भगवानके श्रीविग्रहका आविर्भाव और तिरोभाव होता है।

ए सब लीलार कभु नाहि परिच्छेद।
आविर्भाव तिरोभाव एई कहे वेद॥[5]

श्रीउद्धव कहते हैं कि भगवान् श्रीकृष्ण अपने त्रिभुवनमोहन श्रीविग्रह-को छिपाकर अन्तर्धान हो गये है, अपनी योगमायाका प्रभाव दिखानेके लिये मर्त्य-लीलाओंके योग्य श्रीविग्रह प्रकट किया था।[6] परब्रह्मत्व रूपमें जैसे वह इस विश्वको अपने-से सृजन कर, स्वयं रक्षण कर और अन्तमें संहार कर अपनेमें ही समा लेते हैं, उसी प्रकार श्रीकृष्ण नामसे जगतरूपी अपनी क्रीड़ा-भूमिमें स्वयंको प्रकाशित कर पुनः अन्तर्हित हो जाते हैं।[7] भगवानके अवतारणका प्रयोजन होता है शुद्ध हृदयवाले विचारशील जीवन्मुक्त परम-

---

१. विष्णु पुराण ५।२।१२ से २०

२. अनुभवविषयत्वयोग्यता आविर्भावः। तद् विषय योग्यता तु तिरोभावः।

—विद्वन्मंडन - विट्ठलाचार्य पृष्ठ ८५—८६

३. भागवत १२।३०।४९ क्रम सन्दर्भ : जीव गोस्वामीकी टीका

४. भागवत १।१५।३६ क्रमसन्दर्भ

५. चैतन्य भागवत १।२।२८२

६. भागवत ३।२।११—१२

७. भागवत ११।३१।३०

हंसोंके हृदयमें अपनी प्रेममयी भक्तिका सृजन करना[1], और पृथ्वीका भार उतारना।[2] श्रीब्रह्माजी कहते हैं–'हे प्रभो। आप विश्वके बखेड़ेसे सर्वथा रहित है, फिर भी अपने शरणागत भक्तजनोंको अनन्त आनन्द वितरण करनेके लिये पृथ्वीमें अवतार लेकर विश्वके समान ही लीला विलासका विस्तार करते हैं।[3] इन लीलाओंमें श्रीकृष्ण साक्षात्-रूपसे रसयिता रूपमें क्रीड़ा करते हैं, सृष्ट्यादि शेष कार्य तो उन्होंने कारणार्णवशायी विष्णु आदिपर छोड़ रखा है। स्वयं तो ब्रह्माण्ड-वैधानिक आदि लीलाओंसे अतीत है। लीलाओंकी मनोमुग्धकारिता श्रोताओं अथवा जिज्ञासुओंको शब्दारण्य, वेदारण्य, ज्ञानारण्यसे निर्गत करके कृष्ण-भावारण्य अथवा कृष्ण-प्रेमारण्यमें ले जाती है। मायिकी लीला दुर्बोध और स्वारसिकी लीला सहजगम्या हो जाती है। असुर हननादि लीलाओंको तात्कालिक कार्य माना जाता है और नित्यता स्थापित होती है रासलीला आदि की। लोक-परलोकके प्रलोभनोंकी बद्धता किसीको स्वीकार नहीं है, स्वीकृत हैं 'कृष्ण'का-नटवरका-नटनरका-नर्तन-प्रदर्शन-का प्रलोभन। अन्य अवतारोंकी लीलाओंका प्रकाश वैशिष्ट्य मात्र कृष्णको ही एकमात्र 'स्वयं भगवान्' बोध कराने तक है, श्रोतागण क्रमशः कृष्णको प म लक्ष्य जानकर कृष्ण-रमणके दिव्योन्मादित हो जाते हैं।

लीलाओंकी क्रमबद्ध अनुक्रमणिका : एक गवेषणा

यों तो भागवतमें सभी नारायणों (अवतारों), नाना नरों, नारियों और कर्मों-विकर्मोंकी कथायें हैं, परन्तु जिस तरह रत्नजटित मुद्रिकामें स्वर्ण होनेपर भी उसका सारभूत पदार्थ रत्न है अथवा जिस तरह सभी नदियोंका लक्ष्य सागर है, उसी तरह उन सब कथाओंका सार और लक्ष्य श्रीकृष्ण-चरित ही है। श्रीकृष्णकी लीलायें अनादि है, अनन्त है, फिर भी उनके जीवन-चरितमें लीला-कार्यों का एक क्रम है जो दशम स्कन्धमें वर्णित है।[4] वह इस प्रकार है–

---

१. भागवत १।८।२०

२. भागवत १।८।३४

३. भागवत १०।१४।३७

४. भागवत–यत्रावतीर्णो भगवान् कृष्णाख्यो जगदीश्वरः..........तस्य कर्माण्यपाराणि कीर्तितान्यसुरद्विषः–१२।१२।२७-२८

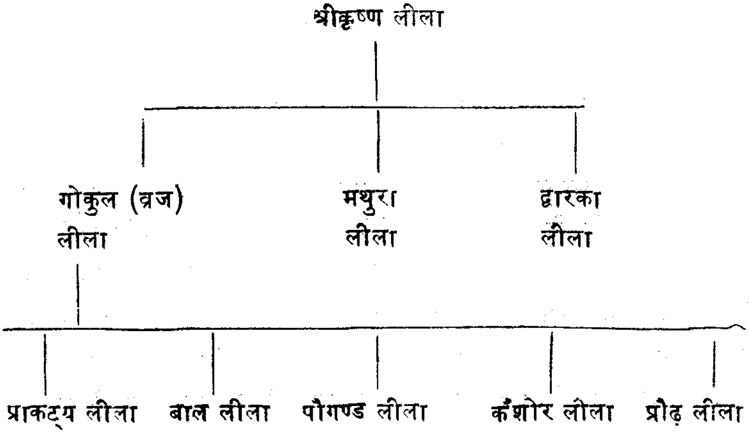

प्राकट्य लीला :

प्रकट लीला क्रमशः इस प्रकार है[1]

१. उत्पन्न होनेवाले कृष्णसे कंसका भय
२. देवकीसे श्रीकृष्णका जन्म
३. उत्पन्न होते ही गोकुल चले जाना
४. योगनिद्राके कहनेसे पुनः कंसका भय

(२) बाल लीला

१. श्रीकृष्ण-जन्मोत्सव व्रज (गोकुल) में
२. पूतना-बध
३. शकट भंजन और तृणावर्त्त वध
४. नामकरण और चापल्य
५. दामोदर लीला
६. दामोदर रूपसे यमलार्जुन उद्धार
७. वत्सासुर और बकासुर उद्धार

---

२. (क) हरि लीला : श्रीवोपदेव कृत

(ख) आविष्टवसुदेवांशो देवकीगर्भभूषणम्, पूर्णतेजोमयः पूर्णः कंसाधृष्यप्रतापवान् ।
गोकुलागतिलीलाप्तवसुदेवकरस्थितिः, सर्वांशत्वप्रकटनो मायाव्यत्ययकारकः ।।

—पुष्टिमार्गीयस्तोत्र रत्नाकरे पुरुषोत्तमसहस्रनाम १०।१५३, १५७

८. अघासुर उद्धार
९. ब्रह्मा-मोह निवारण
१०. ब्रह्मा द्वारा श्रीकृष्ण-स्तुति

(३) **पौगण्ड-लीला**

१. बलराम द्वारा धेनुकासुर-वध
२. स्वयंका कालिय-मर्दन
३. दावाग्निसे व्रजवासियोंकी रक्षा
४. बलरामजी द्वारा प्रलम्बासुर-वध
५. मूंज वनमें दावाग्निसे गायोंकी रक्षा
६. वर्षा और शरद्-ऋतुकी शोभाका वर्णन
७. वेणु नाद
८. चीर-हरण
९. यज्ञ-पत्नियोंपर अनुकम्पा
१०. इन्द्र-यज्ञ-निवारण
११. गोवर्द्धन-धारण
१२. गोपोंकी कृष्णमें देव-बुद्धि
१३. सुरभि तथा इन्द्रके द्वारा श्रीकृष्णका गोविन्दाभिषेक
१४. वरुण लोकसे नन्दको छुड़ा लाना

(४) **कैशोर-लीला**

१. रात्रिमें गोपियोके साथ विहार
२. वनमें गोपी-विप्रलम्भकी शोभा
३. गोपियोंका श्रीकृष्ण-विरहमें गान
४. गोपियोंके साथ श्रीकृष्णका संवाद
५. ललित रास-क्रीड़ा
६. विद्याधर, सुदर्शन और शंखचूड़का मोक्ष
७. गोपियों द्वारा युगल गीत

(५) **प्रौढ़-लीला**

१. अरिष्टासुरके मारे जानेपर कंसका भयभीत होना
२. केशी और व्योमासुर वध
३. अक्रूरका व्रजके लिये प्रस्थान

४. श्रीकृष्णका मथुरा-प्रयाण
५. यमुना-जलमें अक्रूर द्वारा श्रीकृष्ण-स्तुति
६. श्रीकृष्णका मथुरा नगर दर्शन
७. कंसके मल्लोंका युद्धोद्योग
८. मल्ल-दर्शन
९. कंस-मरणपर देवताओंका उत्सव मनाना

(६) मथुरा-लीला

१. श्रीकृष्णका विद्योपार्जन
२. उद्धवका व्रजमें आना
३. गोपियोंको आश्वासन देना
४. श्रीकृष्ण द्वारा कुब्जा तथा अक्रूरको प्रसन्न करना
५. अक्रूरका कौरवोंके पास जाना—श्रीकृष्णके आदेशसे
६. जरासन्ध-पराजय
७. कालयवन-वध

(७) द्वारका-लीला

माधुर्योपासक सभी आचार्योंने जिन्होंने भागवतपर टीका की है, ऐश्वर्यमयी होनेसे द्वारका लीलापर अपेक्षाकृत कम विचार किया है, फिर भी उपस्थित शंकाओंका निवारण 'लीलाओंकी कालक्रम संगति' शीर्षकके विवरणमें कर दिया है। श्रीमद्भागवत सम्मत-क्रम इस प्रकार है—

१. रुक्मिणीजीकी श्रीकृष्ण-प्राप्तिकी अभिलाषा
२. रुक्मिणी-रमणका रुक्मिणी-हरण
३. रुक्मीकी पराजय
४. प्रद्युम्न द्वारा शम्बरासुरका वध
५. स्यमन्तकमणिव्याजप्राप्त जाम्बवतीपति, सत्यभामाप्राणपति हुये
६. कालिन्दी, मित्रविन्दा आदिसे विवाह
७. भौमासुरको मारकर कल्पवृक्ष ले आना
८. रुक्मिणी परिहासोक्ति, पुत्र-पौत्र महाभाग्यगृहधर्मप्रदर्शन
९. पौत्र अनिरुद्धके विवाहमें रुक्मीका मारा जाना
१०. बाणासुर द्वारा पौत्र-अनिरुद्धका बन्धन
११. श्रीकृष्ण द्वारा बाणासुर-विजय
१२. नृगका गिरगिट योनिसे छूटना

१३. बलरामजी द्वारा यमुना-कर्षण
१४. काशिराज और पौण्ड्रक वध
१५. बलरामजी द्वारा द्विविद-वध
१६. बलराम द्वारा कौरवोंका पराभव
१७. श्रीकृष्णका अद्भुत गार्हस्थ्य
१८. जरासन्ध बधकी मन्त्रणा
१९. युधिष्ठिर मिलन
२०. भीम द्वारा जरासन्ध-वध
२१. अर्जुनादि द्वारा दिग्विजय
२२. राजसूय-यज्ञमें शिशुपाल-वध
२३. दुर्योधनापमान
२४. यादवोंके साथ शाल्व-युद्ध
२५. शाल्व-वध
२६. दन्तवक्र-वध, विदूरथ-वध
२७. बलराम द्वारा बल्वल प्राण-हरण
२८. श्रीदामा और श्रीकृष्णका वार्तालाप
२९. श्रीदामाको अद्भुत-सम्पत्ति-प्रदान
३०. कुरुक्षेत्रमें सुहृदोंका मिलन
३१. रानियों द्वारा श्रीकृष्णके विवाहोंका वर्णन
३२. वसुदेव-यज्ञ
३३. देवकीको उसके मृत-पुत्र लाकर प्रदान करना
३४. श्रुतदेवका आतिथ्य सत्कार
३५. वेद-स्तुति द्वारा श्रीकृष्णके ब्रह्मत्वका निरूपण
३६. त्रिदेव ब्रह्मा-विष्णु-महेशके गुणोंका विभाग
३७. मृत द्विज-पुत्रोंको लाना
३८. श्रीकृष्ण-यशोगान

अन्तिम प्रसंग अर्थात् श्रीकृष्णका तिरोभाव और यदुकुलका संहार आदि पूर्व प्रसंगोंमें निरूपित हो चुके हैं।

लीला निष्कर्ष

जिस समय भगवान् अपनी योगमायाका विस्तार करके लीला करने लगते हैं, उस समय त्रिलोकीमें ऐसा कौन है, जो यह जान सके कि आपकी लीला कहाँ, किसलिये, कब और कितनी होती हैं।[1]

---

१. भागवत १०।१४।२१

भगवान् कृष्णकी सभी लीलाओंमें अध्यात्म है, इस अध्यात्म तत्वका निर्देश स्थान-स्थानपर मिलता ही है, जिससे स्पष्ट हो जाता है कि भगवान-की सारी लीलायें प्रच्छन्न रूपसे किसी-न-किसी उद्देश्यको लेकर की जा रही थीं। ये लीलायें भावके रूपमें भी लोकोत्तर तथा लोकातीत हैं।

हरिर्यद् यद् करिष्यति तथैव तस्य लीलेति।[1]

अर्थात् भगवान् जो भी करेंगे, वह उनकी लीला है।

जगतके लिये भगवान् अपने आपको चार रूपोंमें आविर्भूत कर देते हैं—व्यूह, विभव, अर्चा, अन्तर्यामी।[2] सर्ग, विसर्ग आदि लीला अक्षर-ब्रह्मके रूपमें श्रीकृष्णका विलास है अर्थात् ब्रह्मशक्तिसे उत्पन्न तत्व विशेष है। आत्म-स्वरूप कृष्ण ही परमब्रह्म है। वे ही चार पद वाले अर्थात् एक होकर भी अपनी अचिन्त्य शक्ति द्वारा नित्य चार स्वरूपोंमें महारसमय है।[3] श्रीकृष्ण ही समस्त भूत-समुदायके 'मधु' है।[4] ये नित्य वस्तु है अथवा नित्य वस्तुओंमें परम श्रेष्ठ है।[5] अपनेही अंशभूत ब्रह्माको मोहित करना, बाणा-सुरके युद्धमें शिवको पराजित करनेके लिये अस्त्रका प्रयोग करना इस बातका प्रमाण है कि वे ऐश्वर्यमें उनसे बढ़े हुये हैं। लीला तो कर्त्ता और कार्यके भेदसे रहित है।

लीलाओंकी काव्यशास्त्रीय व्यवस्था मात्र अभिनिवेश है। भक्ति तत्व ही अप्राकृत, अलौकिक रस है। इस अलौकिक रसका ब्रह्मानन्द प्रतिपाद्य काव्यशास्त्रसे कोई भी सम्बन्ध नहीं है। 'रसो वै सः' उस लीला तत्वका लीलारस ही है। काव्यशास्त्रीय रति प्राकृत रसिकोंका विषय है। रसका स्वभाव है 'कृष्ण रूप की उत्कृष्टता' रसेनोत्कृष्यते कृष्ण रूपमेषा रस-स्थिति।[6] हाँ, श्रृंगारमूर्ति रसात्मक श्रीकृष्णकी अध्यात्मरूप श्रृंगारिक

---

१. नवरत्न : महाप्रभु वल्लभाचार्य, श्रीवल्लभ प्रकाशन, अलीगढ़ १९७८
२. श्रीमद्वल्लभ : दर्शन एवं भक्ति सिद्धान्त : प्रतिभा व्यास, श्रीवल्लभ प्रकाशन, अलीगढ़, १९७८
३. सर्वं ह्येतद् ब्रह्मायमात्मा ब्रह्म। योऽयमात्मा चतुष्पात्। माण्डूक्यो-पनिषत्‌द्वय
४. अयं आत्मा सर्वेषां भूतानां मधु – वृहदारण्यकोपनिषत् २।५।१४
५. नित्यो नित्यानाम्—कठोपनिषत् २।१३, श्वेताश्वतरोपनिषत् ६।१३
६. हरिभक्तिरसामृत सिन्धु १।२।१८

लीलाओंके लिये काव्यशास्त्रीय शैलीका प्रयोग किया जा सकता है। पण्डित-राज जगन्नाथ अपने ग्रन्थ 'रस गंगाधर' में भक्तिकी रसरूपताका न ही खण्डन कर सके और न ही उसे प्राकृत सम्बन्धी काव्यशास्त्रीय परिभाषामें बाँध सके।

काव्यके अर्थमें रहनेवाले इत्यादि स्थायिभाव लौकिक हैं और रसानु-भविता सामाजिकोंमें रहनेवाले वे ही स्थायिभाव समान विषयक होनेपर भी अलौकिक होते हैं—

काव्यार्थनिरठा रत्याद्या स्थायिनः सन्ति लौकिकाः।
तद्बाद्धृनिष्ठास्त्वपरं तत्समा अप्यलौकिकाः॥[3]

विभाव, अनुभाव, संचारी भाव आदिके स्वसम्बन्ध और परसम्बन्धका ज्ञान हो जानेसे विलक्षण होनेपर भी अलौकिक भावको व्यक्त करते हैं।

रासलीलामें पुरुषोत्तम रमण अथवा भगवद्भोग रूपी परमफलकी उपलब्धिके लिये पूतना-वधसे लेकर ब्रह्महृदस्नान तककी लीलाओंका परस्पर कारण-कार्य भाव है। इन लीलाओंका अन्तिम प्रयोजन है—साधक जीवोंके नित्य सिद्ध-भावको प्रकटित कर—अप्राकृत सेवानन्द प्रदान कर उन्हें भी सच्चिदानन्दरूपताका परमफल प्रदान करना।

लीलाङ्ग, लीलातीत महाचैतन्य लीलापुरुषोत्तम श्रीकृष्ण लीलामयी सृष्टिकी लीलाभूमिमें, लीला जगतके लीलास्थलमें, लीलाधामके लीलामण्डलमें लीलाशक्तिके साथ लीलाराज्यमें, लीलामय भावराज्यमें, लीला सूक्ष्मकुंजमें लीलाचक्र, लीलातत्व, लीलातरंग, लीलाराग, लीला वैचित्र्य, लीलारस लीलारहस्यको प्रकटित करते हुये लीला-विलास, लीला-विहार, लीला-अभि-नयके द्वारा लीला-प्रसंगोंसे लीला-परिकरोंके साथ अपने प्रेमीजनोंको लीलाका लीलानन्द-आस्वादन कराते हैं लीला निर्वृत्ति कराते हैं, लीलामय परमानन्दका लाभ कराते हैं।

---

२. भक्तिरसायन ३।४

तृतीय स्तवक

कथा-न्यास

कथा-न्यास

'प्रबन्ध-योजना कथा' भागवत कथा प्रबन्ध परम्परासे प्रवाहित है।[1] सूत्र रूपमें चतुःश्लोकी भागवतकी प्रसिद्धि है। कथा-विस्तार व्यास और समास दोनों पद्धतियोंसे होता है। कथा-सारका अर्थ है समास पद्धतिसे, संक्षेपमें; कथा-व्यास अर्थात् विस्तारसे। श्रीमद्भागवतमें समास पद्धतिसे प्रथम और द्वितीय स्कन्धमें कथा-सारका न्यास है, किन्तु कर्णरसायन होनेसे इस कथाका विस्तार हुआ है द्वादश स्कन्ध तक। भागवत-कथा परमानन्ददात्री है। इस स्वभावके आधारपर इस कथाके विषयोंका द्वित्व और पुनर्कथन भी हुआ है—

तव कथामृतं तप्तजीवनं कविभिरीड़ितं कल्मषापहम्।
श्रवणमंगलं श्रीमदाततं भुवि गृणन्ति ते भूरिदा जनाः॥[2]

भगवत्-चर्चामें वक्ता द्वारा भगवान्का लीला-वाचन स्वाभाविक ही है और श्रोताका 'केन प्रकारेण' इस प्रकारसे जिज्ञासा भी स्वाभाविक है। कैसे सृष्टि हुई, कैसे भगवान्का अवतार हुआ, कैसे भगवान् बँध गये। यह 'कैसे' बतानेके लिये जिस-जिस सिद्धान्तका, जिस-जिस वस्तुका प्रतिपादन होता है, उसके प्रति कथा शब्दका प्रयोग होता है। कथाकी यह परिभाषा भागवतानुसार है—

अथाख्याहि हरेर्धीमन्नवतार कथाः शुभाः।
लीला विदधतः स्वैरमीश्वरस्यात्ममायया॥[3]

कथा-शिल्प-विधानमें उत्तरोत्तर उत्कण्ठाका संचार करनेवाली, निरन्तर उत्कण्ठा वृद्धि करनेवाली भगवत्लीलाकी प्रणालीका समर्थन अथवा प्रतिपादन किया गया है। परब्रह्म श्रीकृष्णकी दशों लीलाओंको भागवतमें कथा रूपमें व्यक्त किया है। अवतार कथा-वर्णन कुछ इस प्रकारका है कि अन्य-अवतार गौण हो जाते हैं, क्योंकि गुणोंकी दृष्टिसे श्रीकृष्ण-अवतार सर्वाधिक गुणवान है—

---

१. **शब्दकल्पद्रुम द्वितीय काण्ड पृष्ठ—१७ परम्पराश्रया या स्यात् सा मताराख्यायिका क्वचित्।**

२. **भागवत १०।३१।९, ११।१।१९, २।२।३७**

३. **भागवत १।१।१८**

वासुदेव कथा प्रश्नः पुरुषांस्त्रीन् पुनाति हि ।
वक्तारं पृच्छकं श्रोतृंस्तत्पादसलिलं यथा ।।[1]

एक और रूपसे वेदव्यासने भागवतके मंगलाचरणमें ही भागवत-कथा-तत्त्वका सार निरूपित कर दिया है । इस श्लोकमें भगवान्की मायिकी-लीला-कथा और अन्तरंग लीला-कथाका भेद स्पष्ट कर दिया है कि सत्य रूप भगवानकी अन्तरंग शक्ति वास्तविक सत्य है, जबकि प्राकृत सृष्टिरूपी बहिरंग शक्तिका कार्य अनित्य है, इसकी सत्यता मृगतृष्णावत् है ।[2] भागवत ग्रन्थ सिंहावलोकन शैलीका ग्रन्थ है, इसकी प्रत्येक कथा उसी अंश तक वर्णित है जिस अंश तक कि वह श्रीकृष्णकी महिमाको बढ़ानेसे सम्बन्ध रखती है । भागवतके कथा-न्यासका केन्द्र-बिन्दु है—

'तत्कथ्यतां महाभाग यदि कृष्णकथाश्रयम् ।'[3]

भागवतीय—कथा—न्यास भागवत-शास्त्रीय ढंगका ही है, सभी कथाओंमें अलौकिकताका पुट है । राजर्षि परीक्षित सर्गकी स्थिति, उनके निवासी आदिके विषयमें अनेकों प्रश्न करते हैं, ऐसी जिज्ञासाओंके उत्तरमें श्रीमद्भागवतका विवरणात्मक विकास होता है ।[4] एक लीला-कथामें दूसरी लीला-कथाका अकुंर निहित रहता है, अग्रिम प्रसंगोंमें विस्तार होता है । कथनार्थ द्वितीय स्कन्धमें भागवतका सारातिसार और सकल बोध आ गया है, परीक्षितको जो उपदेश देना था वह भी प्रथम, द्वितीय और तृतीय अध्यायोंमें वर्णित है,[5] इसके बाद तो परीक्षित राजाका मन विषयकी ओर न चला जाय, इसलिये सभी चरित्र कहे गये हैं । भागवतका कथा-न्यास भाव-द्युति सुवलित है । कथा-क्रम कुछ इस प्रकार है—ताम्र, कांसा, चांदी, स्वर्ण तथा अनन्त चिन्तामणि आदि खनिज

---

१. भागवत १०।१।१६
२. जन्माद्यस्य यतोऽन्वयादितरतश्चार्थेष्वभिज्ञः स्वराट् तेन ब्रह्म हृदा य आदिकवये मुह्यन्ति यत्सूरयः तेजो वारिमृदां यथा विनिमयो यत्र त्रिसर्गो मृषा धाम्ना स्वेन सदा निरस्तकुहकं सत्यं परं धीमहि । — भागवत १।१।१
३. भागवत १।१६।५ उतरार्द्ध
४. श्रीचैतन्यमहाप्रभुका शिक्षामृत, भक्तिवेदान्त स्वामी महाराज द्वारा, हरेकृष्ण लैण्ड, जुहू, बम्बई
५. तस्माद् भारत सर्वात्मा भगवानीश्वरो हरिः ।
श्रोतव्यः कीर्तितव्यश्च स्मर्तव्यश्चेच्छताभयम् ।। - भागवत २।१।५

निरीक्षण, उत्कर्षत्व दृष्टिसे। प्रारम्भमें आवश्यकीय अध्यात्म ज्ञानका वर्णन है, क्योंकि कितनी ही कथाओंकी आलंकारिक भाषामें रचना हुई है, जिनके लिये अध्यात्म-ज्ञानकी आवश्यकता है, यथा जन्म-लीला-कथा, चीरहरण लीला-कथा, रासलीला-कथा आदि ……हरिस्मृतिः सर्वविपद्मोक्षणम्।[1]

कथा-न्यासमें ऐतिहासिक प्रवृत्तिका भी आश्रय लिया गया है। पूर्व पुराणोंके अनुसार भागवतमें सर्गादि विषयको ऐतिहासिक तत्व बना दिया है। इसकी कथा-वाचनीमें ऐतिहासिक प्रवृत्ति रही है। कृष्णमणि त्रिपाठी कहते हैं 'वंशान्तर्गता प्राचीनानां राज्ञामृषीणांच विस्तृता वंशावली विद्यते मन्वन्तरेषु युगानां कालनिर्द्धारणं कृतमस्ति। वंशानुचरितं च राज्ञां जीवनेन सम्बद्धानां वृत्तान्तानां वर्णनं वर्तते। वंशवर्णनप्रसंगे कस्यचिद्राज्ञः चरित्र-चित्रणं गाथा द्वारा कदाचित् संक्षेपतो कृतमस्ति। पुराणानां गाथा अभिलेख-प्रशस्तिवत् राज्ञां व्यक्तित्व-चरित्रयोः सूक्ष्मं परिचयं प्राप्नुवन्ति। …………ऐतिहासिकी प्रवृत्ति स्पष्टा भवति।[2]

श्रवणौ कथायाम्[3] :

भागवत-कथामें अनुरक्त श्रोताओंकी यही अभिलाषा है कि कान कथामें ही लगे रहें। इस भागवत—कथाके पाँच मुख्य फल हैं[4]।

१. साक्षात्भगवत्प्रवेश
२. सर्वसन्देहराहित्य
३. भगवत्कृपा
४. सर्वत्रनिर्भयत्व
५. परमप्रेम

प्रथम स्कन्धसे दशम स्कन्ध तक कथाक्रमकी भावना है—लाली मेरे लाल की, सब जगह रही समाइ, लाली देखन मैं गयी, मैं भी हो गयी लाल।[5] अखिल शास्त्र भागवत और उसके अखिल स्कन्ध, अखिल प्रकरण, अखिल

---

१. कल्याण भागवतांक पृष्ठ ३२
२. 'पुराण पर्यालोचनम्' – पं० श्रीकृष्णमणि त्रिपाठी पृष्ठ २६ चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन, वाराणसी १९७५
३. भागवत १०।१०।३२
४. भागवत रहस्य : श्रीरामचन्द्र डोंगरे पृष्ठ २१-२
५. कबीरका प्रसिद्ध दोहा - संग्रहीत

अध्याय, अखिल वाक्य, अखिल पद, अखिल अक्षर एक ही अर्थका प्रतिपादन करते हैं, एक ही प्रयोजनका संकेत करते हैं–

शास्त्रे स्कन्धे प्रकरणेऽध्याये वाक्ये पदाक्षरे ।

एकार्थं सप्तधा जानन्नविरोधेन मुच्यते ॥[1]

लाक्षणिक-आधार :

सर्वमान्य है कि भागवत शास्त्र महापुराण लक्षणात्मक ग्रन्थ है। पुराणमें दो प्रकारकी कथायें हैं–

१. सिद्धान्त प्रतिपादनकी दृष्टिसे कही गयी कथायें अथवा अन्योक्ति या प्रतीक रूपमें कथित कथायें।

२. ऐतिहासिक आख्यान।

ऐतिहासिक आख्यानोंकी दो मुख्य परम्पराएँ हैं–ब्राह्मण परम्परा और क्षत्रिय परम्परा। पुराण वंशावलियों और परम्पराओंकी एक निधि है। मुख्य विषय है भगवान् विष्णु और उनके अवतारोंकी चर्चा करना। भागवतीय कथाकी दृष्टिसे कृष्णावतार सर्वोपरि है।

इतिहास[2] से मिलता-जुलता शब्द ऐतिह्य है। बिना वक्ताके नाम बताये हुये परम्परागत कथनका नाम ऐतिह्य है[3]। तीसरा शब्द पुराकल्प-पुराण काल या पुराने कालकी घटनायें हैं। चतुर्थ है परिकृति या परक्रिया 'अन्यस्यान्यस्य चौक्तत्वाद् बुधैः परिकृतिः स्मृता।' पंचम है इतिवृत अथवा पुरावृत–यह लगभग इतिहासपरक है। छठा शब्द है अवदान् 'अवदानमितिवृते।' सप्तम है आख्यान आख्यानमितिवृतं स्यादितिहारः स एव च।' अष्टम है आख्यायिका 'आख्यायिका कथावत्स्यास्यात्कवेर्वंशादिकीर्तनम्।' नवम है उपाख्यान 'अन्यप्रबोधनार्थं यदुपाख्यातमित्युपाख्यानम्।' दशम है 'अन्वाख्यान'– 'अन्वाख्याने त्वदुद्यत इतिहासे त्वदुद्यते।'[4] एकादशवां है

---

१. भागवतार्थ प्रकरण १. २

२. 'इतिह' इति पारम्पर्योपदेशोऽव्ययम्। तदा स्तेऽस्मिन। 'आस उपवेशने'। 'हलश्च' (३।३।१२१) इति घञ्। अमरकोष १।६।४ चौखम्भा संस्कृत संस्थान, वाराणसी बि० सं० २०३६

३. पारम्पर्योपदेशे स्यादैतिह्यमितिहाव्ययम्ः वही २।७।१२

४. इतिहास प्रकरणम् - प्रकाशः प्रकारः अनुकर्षः परकृतिः अवधारण-परामर्श मानम् इतिकथं पारम्पर्योपदेश तत्पर्याय ऐतिह्य पूर्ववृतान्त प्राचीन कथा तत्पर्याय पुरावृतः शब्दकल्पद्रुम,प्रथम काण्ड पृष्ठ २२८

'चरित'।[1] इतिहास और चरित समानार्थक है। द्वादशवां शब्द है 'अनु-चरित'— वंशानुचरितं चैव। त्रयोदशवां 'कथा' है। चतुर्दशवां शब्द है 'परिकथा' 'पर्यायेण बहुनां यत्र प्रतियोगिनां कथाः। कुशलैः श्रूयन्ते शुद्रकवज्जिगीषुभिः परिकथा सातु।' पंचदशवां है 'अनुवंश श्लोक।' प्राचीन पुराणोंकी राजवंशावलियोंके अन्तर्गत प्रतापी राजाओंके विषयमें कहीं-कहीं जो श्लोक विशेष मिलते हैं, वे अनुवंश श्लोक कहलाते हैं। षष्ठदशवां है 'गाथा' ये इतिहासमें बड़ी सहायक है। सप्तदशवां है 'राज-शासन'। एकोनविंशवां शब्द है 'पुराण' यह इतिहासका शरीर माना जाता है और एक प्रकारसे इतिहासकी सूची प्रस्तुत करता है।[2] इन सभी अर्थोंसे भागवतीय-कथा सम्पूर्ण रूपसे और निर्विवाद रूपसे ऐतिहासिक है। हाँ, कथा भाग ही इतिहासपरक है।

भागवत महापुराण है, इससे भी बढ़कर यह एक आध्यात्मिक ग्रन्थ है। इसमें इतिहासके साथ भक्ति, ज्ञान, विविध, दार्शनिक सिद्धान्तों, आदिका सुन्दरतम समन्वय है फिर भी वर्तमान मान्यता अनुरूप और प्रचलित ग्रन्थ-शैलियोंके लाक्षणिक आधार अन्वेषण करनेपर इसमें मिल जाते हैं। ग्रन्थ रूपमें भागवतके विषयका प्रतिपादन चतुर्विध रूपसे हो सकता है—[3]

१. वादकथा :

तत्वनिर्णयके लिये वादकथाके रूपमें विषयका प्रतिपादन करना, किसी वस्तुके विचारार्थ कथोपकथनको शास्त्रोंमें 'कथा' कहते हैं—पौराणिक कथाएँ लोकमें प्रसिद्ध है।

२. पूर्वापर विचार :

'यत्परः, शब्दः स शब्दार्थः' अर्थात् जिस पदार्थको लक्ष्यमें रखकर किसी शब्दका प्रयोग किया जाता है वही उसका शब्दार्थ है—यह सर्वसम्मत सिद्धान्त है। भाव यह है कि वक्ता जिस अर्थको बोध करानेकी इच्छासे शब्दका उच्चारण करे, श्रोताको उसी अर्थका ज्ञान होना उचित है इससे भिन्न अर्थको समझनेमें श्रोताका भ्रम माना जायेगा।

---

१. कथितो वंशविस्तारो भवता सोमसूर्ययोः।
राज्ञा चौभयवंश्यानां चरितं परमाद्भुतम्॥ - शब्दकल्पद्रुम, द्वितीय काण्ड पृष्ठ १३५

२. भागवत दर्शन : डा० हरबंश शर्मा पृष्ठ ४८

३. कल्याण 'कृष्णांक' पृष्ठ १०

३. अज्ञातार्थज्ञापकत्व :

यद्यपि शास्त्र मूल प्रमाण है।[१] किन्तु जब उसमें 'अज्ञातार्थ ज्ञापकत्व' हो अर्थात् जब उसकी किसी अज्ञात वस्तुका बोध हो, तभी वह प्रमाण हो सकता है। तात्पर्य यह है कि प्रमाण वही कहलाता है जो अज्ञात विषयका यथार्थ ज्ञान कराता है, ज्ञातका ज्ञान कराना अनुवादका स्वरूप है, प्रमाणका नहीं।

४. तात्पर्य निर्णय :

किसी ग्रन्थविशेषका तात्पर्य निर्णय करनेके लिए सात-तत्त्वोंपर विचार किया जाता है—१;२, उपक्रमोपसंहार (प्रारम्भ और समाप्ति), ३. अभ्यास (जो बात बार-बार दोहरायी गयी हैं), ४. अपूर्वता (कोई नवीन वार्ता, जो ग्रन्थमें कही गयी हो), ५. फल (परिणाम), ६. अर्थवाद (प्रशंसात्मक वाक्य) और ७. उपपत्ति (उपपादन)[२]

काव्य सम्बन्धी दृष्टि :

कोई भी विद्या, रीति, शास्त्र एवं कला ऐसा नहीं है जो काव्यका अंग न बन सके। भागवत अपने वर्ण्य-विषयकी गरिमा, विस्तार और व्यापकताके कारण सहज ही अनेक श्रेष्ठ काव्यके गुणोंसे अलंकृत हो गया है। लौकिक काव्योंसे भी महनीय भगवद्विषयक रति और भक्तिको भागवतमें इस कोटि तक पहुँचा दिया गया है। 'वाक्यं रसात्मक काव्यं'[३] काव्यकी सर्वोत्तम परिभाषा है। निस्संदेह भागवत एक परम रसमय काव्य है। आध्यात्मिक वर्णनके कारण भागवत काव्य लौकिक काव्योंसे उच्चतर धरातलपर पहुँचकर दिव्य-काव्यके रूपमें अभिहित होनेका अधिकारी है। वेदार्थकी चरम परिणति श्रीमद्भागवतके आविर्भावमें है। भागवतीय तत्व और रस-सिद्धान्त प्रकरण ही वेदार्थकी चरम सार्थकता है।[४] भागवत वेद-रूपी वृक्षका सुपरिपक्व, सुस्वादु फल है।[५] वृक्ष और फलके दृष्टान्तके द्वारा अति गम्भीर

---

१. शास्त्र एवं मूल प्रमाण - गौड़ीय कण्ठहार, नवद्वीप पृष्ठ १६

२. कल्याण 'कृष्णांक' पृष्ठ १०

३. साहित्य दर्पण : श्रीविश्वनाथ : पृष्ठ १६ मोतीलाल बनारसीदास, १६७७

४. वैष्णव आभिधानकोष पृष्ठ ५४५ गौड़ीय मठ, नवद्वीप

५. निगम कल्पतरोर्गलितं फलं शुकमुखादमृतद्रवसंयुतम्।
पिबत भागवतं रसमालयं मुहुरहो रसिका भुवि भावुकाः॥
- भागवत १।१।३

सत्यकी चेष्टाको अन्तर्निहित किया गया है। समग्र वेदका सार है 'प्रणव'।[1] प्रणवकी मूर्ति है ब्रह्म-गायत्री। ब्रह्म गायत्री ही फलवती होकर, रसवर्ती होकर भागवतके प्रत्येक अक्षरमें विद्यमान है। प्रारम्भसे ही ग्रन्थकी जिस रसमयताको जिस सुन्दर रूपकसे व्यक्त किया गया है, उसका निर्वाह अन्त तक हुआ है और अपने विशाल कलेवरमें गौण रूपमें ही क्यों न सही, यह ग्रन्थ एक सुन्दर काव्यत्वको संजोये हुये है। वर्ण्य-विषयको ही महत्व देते हुये श्रीमद्भागवत एक निसर्ग सिद्ध काव्य बन गया है। एक महामनीषि साहित्य स्रष्टा द्वारा एक महान् सत्यका वर्णन करते हुये प्राचीन ब्रह्मर्षियों और राजर्षियोंका मुख्य चरित तथा सर्वोपरि लीला पुरुषोत्तम भगवान् श्रीकृष्णकी लीलाओंका अत्यन्त विस्तृत वर्णन हुआ है। इतने महत्वपूर्ण वर्ण्य-विषय सहज ही काव्यके विषय बन जाते हैं।[2]

मानव-हृदयको उद्वेलित करनेवाले भावोंके चित्रणमें भागवत अद्वितीय काव्य है, हृदय-पक्षका प्राधान्य होनेपर भी कला-पक्षका अभाव नहीं है। इसकी शब्दमाधुरी, अर्थचातुरी और वैदुष्य पूर्ण रूपसे मनोरम है। भागवत रस तथा माधुर्यका अजस्र स्रोत है।[3] रसात्मक काव्यं काव्यं आदि भेद दृश्य काव्यके हैं। इसलिये भागवतमें कृष्ण चरित्रका प्रतिपादक दशम स्कन्ध ही मुख्य रूपसे काव्यकी श्रेणीमें आता है। दशम स्कन्ध ही काव्य-सौन्दर्यसे सुशोभित है। महापुराणात्मक काव्य है श्रीमद्भागवत। पुराणकी शैली और काव्यकी शैलीमें अन्तर है।

लाक्षणिक आधारपर भागवतका विवेचन किया जाता है—कथा-न्यासका प्रथम आधार है—दार्शनिक + तात्विक दृष्टि, अतः—

ग्रन्थ तात्पर्य निर्णय :

भागवतीय प्रबन्ध—योजना अति विचित्र है। पुराणमें श्रीकृष्णकी लीला प्रधान तत्व होते हुये भी अन्यान्य विषयों और चरितोंका संविशन है। कभी—कभी तो ऐसा प्रतीत होने लगता है कि मात्र श्रीकृष्ण—लीलाका ही वर्णन करना इस ग्रन्थका तात्पर्य नहीं है। फिर भी सम्पूर्ण ग्रन्थका तात्पर्य

---

१. प्रणव : सर्व वेदेषु — श्रीमद्भगवद्गीता ८।७

२. भागवत दर्शन : डा० हरवंशलाल शर्मा पृष्ठ १६०

३. संस्कृत साहित्यका इतिहास : बलदेव उपाध्याय, हिन्दू विश्वविद्यालय, काशी १९६०

निर्णीत किया जाय तो श्रीकृष्णलीलाके वर्णनका पक्ष ही उभरता है–अन्यान्य विषय मात्र सहायक ही प्रतीत होते हैं। अक्षर-अक्षर और पद-पदमें श्रीकृष्ण ही हैं। आदि, मध्य और अन्तमें श्रीकृष्णलीलाका ही गान है। उन्हींकी अवतार लीला और उन्हींकी चरित्र लीलाका वर्णन है। मुख्य अवतार यदि चौबीस भी मान लिये जाँय तो 'अवताराह्यसंख्यात्' के अनुसार जिसका भी वर्णन हुआ है, वे या तो अंशावतार हैं या भगवत् भक्त हैं। क्योंकि भक्त और भगवान् तो एक ही है। जहाँ भी कथा पूछनेका प्रसंग आया है, स्पष्ट कह दिया गया है–'तत् कथ्यतां महाभाग ! यदि कृष्णकथाश्रयम्'[1]–अर्थात् यदि यह कथा कृष्णकी लीलासे 'अथवा स्व पदाम्भोजमकरन्दलिहां सताम्'[2] अथवा उनके चरण-कमलोंके मकरन्दका रस पान करनेवाले रसिक महानुभावोंसे सम्बन्ध रखती हो तो अवश्य कहिये। इस प्रकार इस ग्रन्थमें कृष्णसे अतीत कुछ भी नहीं है। जब मनुके चरितका वर्णन हुआ, तब भी यही कहा गया–'ब्रूहि मे श्रद्धधानाय बिष्वक्सेनाश्रयो ह्यसौ'[3] अर्थात् हरि ही उनके आश्रय हैं, इसलिये उनकी कथा मुझसे कहिये। सर्वदा और सर्वत्र श्रीकृष्णकी सत्ता और अस्तित्वका ही अनुभव कराना, इस ग्रन्थके लीलाकथा-प्रबन्धका तात्पर्य है। ग्रन्थके मध्यमें भागवतके आदि प्रवर्त्तक नारद कहते हैं कि इस संसारमें या मनुष्य-शरीरमें जीवका सबसे बड़ा स्वार्थ अर्थात् एकमात्र परमार्थ इतना ही है कि वह भगवान् श्रीकृष्णकी अनन्य भक्ति प्राप्त करे। इस भक्तिका स्वरूप है सर्वदा और सर्वत्र सकल वस्तुओंमें भगवान्का दर्शन।[4] यह उत्तर है कृष्ण-लीलासे इतर किसी वस्तुकी उपस्थितिकी शंकाका। यही भागवतके लीला-प्रबन्धका परमातिपरम गुह्य ज्ञान है। सम्पूर्ण ग्रन्थमें श्रीकृष्णकी लीलाका ही अविच्छिन्न धारावत् प्रवाह है।

छः हेतु हैं तात्पर्य निर्णयके लिये–

उपक्रमोपसंहारअभ्यासोऽपूर्वता फलम्।
अर्थवादोपपत्ती च लिंग तात्पर्यनिर्णये॥[5]

क्रमशः विचार किया जाता है–

---

१. भागवत १।१६।५, उत्तरार्द्ध, २. वही १।१६।६ पूर्वार्द्ध, ३. वही ३।१३।३ उत्तरार्द्ध

४. एतावानेव लोकेऽस्मिन् पुंसः स्वार्थः परः स्मृतः।
एकान्तभक्ति गोविन्दे यत् सर्वत्र तदीक्षणम्॥ - भागवत ७।७।५५

५. वेदान्त सार पृष्ठ १५३८

(१) उपक्रमोपसंहार :

'तत्र प्रकरणप्रतिपाद्यस्येति ।' प्रकरण प्रतिपाद्य विषयम् आदौ उपक्रम्य (प्रारम्भ) अन्ते उपपादनम् उपक्रमोपसंहारो इत्यर्थः । अच्छी तरह उपपादन करना उपक्रमोपसंहार है ।[1]

प्रतिपाद्यका आरम्भ है 'सत्यं परं धीमहि' से और समापन है 'नमामि हरिं परम्' से ।[2] सत्य तत्व और परम तत्वका नाम है 'श्रीकृष्ण'। प्रारम्भ है इसलिये 'धीमहि' कहा गया, समापनमें प्रणाम किया गया 'नमामि' यही रीति है । 'धीमहि' बहुवचनात्मक है । उपक्रम श्लोकमें सम्पूर्ण भागवत-का तात्पर्य है । महापुराणके दस लक्षण इसी श्लोकमें अन्तर्निहित है । चार अध्याय युक्त वेदान्तका तात्पर्य इसी श्लोकके चार पादमें प्रकटित है, जैसे 'कि भागवत सभी उपनिषदोंका सार है । 'अन्वयादिरतश्च' पदमें वेदान्तके समन्वयाध्यायका, 'मुह्यन्ति यत्सूरयः में अविरोधाध्याय', 'धीमहि' पदमें साधनाध्याय एवं सत्यं परं में फलाध्यायका उद्देश्य वर्णित है । इसी उपक्रम श्लोकमें ध्येय वस्तुका सविशेषत्व, मूर्तिमत्व एवं भगवान्के नित्य साकार स्वरूपका प्रकाश है । उपक्रम और उपसंहारके मध्यकी कड़ी है–

योऽस्योत्प्रेक्षक आदिमध्यनिधने योऽव्यक्तजीवेश्वरो
यः सृष्टेवदमनुप्रविश्य ऋषिणा चक्रे पुरः शास्ति ताः ।
यं सम्पद्य जहात्यजामनुशयी सुप्तः कुलायं यथा
तं कैवल्यनिरस्तयोनिमभयं ध्यायेदजस्रं हरिम् ॥[3]

अर्थात् प्रत्येक स्कन्धके प्रत्येक पदका तात्पर्य भगवत्-तत्व-चिन्तनमें ही है । भगवान् ही इस विश्वका संकल्प करते हैं तथा उसके आदि, मध्य

---

१. ज्ञात्वारम्भ उपक्रम : अमरकोष २।७।१२

२. (क) जन्माद्यस्य यतोऽन्वयादितरतश्चार्थेष्वभिज्ञः स्वराट् तेने ब्रह्म हृदा य आदिकवये मुह्यन्ति यत्सूरयः ।
तेजोवारिमृदां यथा विनिमयो यत्र त्रिसर्गो मृषा धाम्ना स्वेन सदा निरस्तकुहकं सत्यं परं धीमहि ॥ - भागवत १।१।१

(ख) कस्मै येन विभासितो यमतुलो ज्ञानप्रदीपः पुरा तद्रूपेण च नारदाय मुनये कृष्णाय तद्रूपिणा ।
योगीन्द्राय तदात्मनाथ भगवद्राताय कारुण्यतस्तच्छद्धं विमलं बिशोकममृतं सत्यं परं धीमहि ॥ - भागवत १२।१३।१९

३. भागवत १०।८७।५०

तथा अन्तमें स्थित रहते हैं। जैसे गाढ़ निद्रा-सुषुप्तिमें मग्न पुरुष अपने शरीरका अनुसन्धान छोड़ देता है, वैसे ही भगवानको पाकर यह जीव मायासे मुक्त हो जाता है। वे ही वास्तवमें अभय स्थान है। उनका चिन्तन निरन्तर करते रहना चाहिये।

व्यासजीकी समाधिके आराध्य और ध्येय श्रीकृष्ण ही हैं। ग्रन्थ संवादात्मक है—परम्परासे इसका वर्णन हुआ है। भगवान्‌ने स्वयं अपने मुखसे इस ग्रन्थ-रत्नका वर्णन किया है। परम्परा-क्रमका वर्णन हो ही चुका है। भागवत ग्रन्थमें जितने भी प्रसंग हैं प्रायः उन सभीका उपक्रम सत्संगसे तथा उपसंहार भगवत्-तत्व-चिन्तन भगवन्नाम-जप तथा ऐकान्तिक भक्तिपर किया है। सभी पात्र और तत्व कृष्णपर ही आश्रित हैं। साधन रहे हैं सत्समागम और भागवती-कथा। उपसंहारमें उक्त है—

यस्तूत्तमश्लोकगुणानुवादः संगीयतेऽभीक्ष्णममंगलघ्नः।
तमेव नित्यं शृणुयादभीक्ष्णं कृष्णेऽमलां भक्तिमभीप्समानः॥[1]

अर्थात् जो भगवान् श्रीकृष्णके चरणोंमें अनन्य प्रेममयी भक्तिकी लालसा रखता हो, उसे नित्य-निरन्तर भगवान्‌के दिव्य गुणानुवादका ही श्रवण करते रहना चाहिये। यथा उपक्रम श्लोकमें ग्रन्थका सम्पूर्ण अभिप्राय निहित है, उसी प्रकार उपसंहार श्लोकमें भी अखिल ग्रन्थका विषय और प्रतिपाद्य स्पष्ट है। तात्पर्य निश्चित हुआ है कि भागवतके प्रतिपाद्य हैं श्रीकृष्ण, विषय है—श्रीकृष्ण-भक्ति और उद्दीपक है लीला श्रवण अथवा गान।

(२) अभ्यास :

'पौनः पुन्येने'ति। प्रकरण प्रतिपाद्यस्य अर्थस्य प्रकरणस्य मध्ये असकृत् प्रतिपादनम् अभ्यास इत्यर्थः।[2] अर्थात् प्रकरण प्रतिपाद्य अर्थ (वस्तु) का प्रकरणके मध्यमें पुनः पुनः प्रतिपादन करना अभ्यास है। प्रतिपाद्य श्रीकृष्ण—लीलाको पुनः पुनः प्रतिपादित किया गया है, सर्वत्र ही श्रीकृष्ण-लीलाका गान है और श्रीकृष्ण-चिन्तनका विधान है, श्रीकृष्ण-स्तुतिका ही संविधान है भागवत तो श्रीकृष्ण-स्तुतियोंका निधान है ही। जब पात्रोंकी चित्तवृत्ति श्रीकृष्णमय हो जाती है, तब वह भाव-विभोर होकर स्तुति

---

१. भागवत १२।३।१५

२. वेदान्तसार : सदानन्द प्रणीत : व्याख्याकार —डा० गजानन शास्त्री मुसलगांवकर कृष्णदास अकादमी, वाराणसी, १९८२, पृष्ठ १५८

करने लगता है। स्तुतियोंमें उनके अवतारों, उनकी लीलाओंका पुनः पुनः स्मरण करता है। यह तो रही तत्वकी बात, विषयकी दृष्टिसे जिन अन्य विषयोंपर और पात्रोंका वर्णन है, वे सब श्रीकृष्णसे इतर अथवा अतीत नहीं है। सृष्टि आदि जो विषयगत वर्णन है, उसे केन्द्र–भगवच्चिन्तनका पर्यावरण कहा जा सकता है। सर्वत्र श्रीकृष्ण ही गीत हैं–

कलिमलसंहृति कालनोऽखिलेशो,
हरिरितरत्र न गीयतेह्यभीक्ष्णम्।
इह तु पुनर्भगवान् शेष मूर्तिः
परिपठितोऽनुपदं कथा प्रसंगः॥[1]

इस प्रकार श्रीमद्भागवत महापुराणमें प्रत्येक कथा-प्रसंगमें पद-पद-पर सर्वस्वरूप भगवान् श्रीकृष्णका ही वर्णन हुआ है।

(३) अपूर्वता :

'प्रमाणान्तरे'ति। प्रकरण प्रतिपाद्यस्य अद्वितीय वस्तुनः प्रमाणान्तराविषयत्वम् अपूर्वता, इत्यर्थः।[2] अर्थात् प्रकरण प्रतिपाद्य अद्वितीय वस्तुको बतानेवाले किसी अन्य प्रमाणका न होना अपूर्वता है।

अयमतुलो ज्ञानप्रदीपः[3]। अर्थात् यह अतुलनीय ज्ञानप्रदीप अथवा यह अध्यात्मदीप राजा परीक्षितको श्रीशुक मुनीन्द्र द्वारा दिया गया। किं बहुना भगवान् स्वयं अध्यात्मदीप हैं। इस प्रकार अपूर्वताके सम्बन्धमें प्रथम पक्ष यह है कि भागवत और भगवान् अभिन्न हैं। भगवान्‌के प्रकाशक स्वयं भगवान् हैं। भागवतकी प्रकाशिका स्वयं भागवत है। जो-जो श्रीमद्भागवतको श्रवण एवं ग्रहण करता गया, वह-वह भगवत्भावमें निमग्न होता गया। प्रत्येक वक्ता भगवत्सस्वरूप है। अड़तीस विशेषताओं वाले शुकदेवजी इसके वक्ता और प्रायोपविष्ट कृष्ण-अनुग्रह-भाजन परीक्षित इसके श्रोता हैं। यह वैष्णवोंका धन और परमहंसोंके ज्ञानका निधान है। भक्ति ही इसका प्रतिपाद्य होना भागवतकी अनन्य अपूर्वता है।[4] भागवतमें लौकिक वस्तुओंसे लेकर परमार्थ वस्तुकी उपलब्धि तक भक्तिको साधन स्वीकार किया गया है। जब

---

१. भागवत १२।१२।६५

२. वेदान्तसार पृष्ठ १५८, ३. भागवत १२।१३।१६ श्लोकांश

४. सर्ववेदान्तसारं हि श्रीभागवतमिष्यते। तद्रसामृततृप्तस्य नान्यत्र स्याद् रतिः क्वचित्॥ १२।१३।१५

भक्ति स्वभावसिद्ध हो जाती है, तब लौकिक और पारलौकिक दोनों सुखोंकी वांछा समाप्त हो जाती है।[१] श्रीकृष्णकी तो सभी लीलाओंमें अपूर्वता ही है; यथा नाग-नृत्य, वेणुवादन आदि।

भगवदवतार एवं अन्य सभी प्रसंग भी अपूर्व शैलीसे युक्तियों और उपपत्तियोंके निरूपण द्वारा अपूर्व चमत्कारकारिणी रीतिसे भगवतत्त्वके ही बोधक हैं। सर्वत्र अति अपूर्व विलक्षण प्रकृतिसे भगवतत्त्वका रहस्य निहित है। एक विशिष्ट अपूर्वता यह है कि इस ग्रन्थके श्रवण-मात्रसे हृदय तत्काल श्रीकृष्ण-भावमय हो जाता है। भागवती कथाके प्रेमी मोक्षका तिरस्कार करते हैं। भागवतीय-लीला-कथा एक आध्यात्मिक-अतुलनीय, अद्वितीय अमृत है, जो मधुर, मादक, प्रभावोत्पादक, आनन्ददायी है।[२]

(४) फल :

'प्रकरणप्रतिपाद्यस्य आत्मज्ञानस्य तदनुष्ठानस्य वा श्रूयमाणं यत् प्रयोजनं तत् फलम् इत्यर्थः।'[३] अर्थात् प्रकरणमें प्रतिपादन किये जानेवाले आत्मज्ञान अथवा उसके अनुष्ठानका यत्र-तत्र श्रूयमाण जो प्रयोजन है, वह फल है। तात्पर्य है कि प्रकरण प्रतिपाद्यका ज्ञान उसका फल है। निरन्तर भगवत्-तत्व-चिन्तनसे और उनके गुणानुवाद श्रवणसे परमानन्दकी प्राप्ति होती है। ज्ञानकी पूर्णता तभी है, जब उसमें किसी शंकाका स्थान नहीं हो। शंकासे युक्त ज्ञान फलदायी नहीं हो सकता। श्रीकृष्ण आप्तकाम हैं। उनकी रहस्यपूर्ण लीला दो प्रकारकी है—एक वास्तवी और दूसरी व्यावहारिकी। वास्तवी लीला स्वसंवेद्य है—और गुप्त रूपसे होती है, उसे स्वयं भगवान् और उनके रसिक भक्तजन ही जानते हैं। जीवोंके सम्मुख जो लीला होती है, वह व्यावहारिकी लीला है। वास्तवी-लीलाके बिना व्यावहारिकी लीला नहीं हो सकती, परन्तु व्यावहारिकी लीलाका वास्तविक लीलाके राज्यमें कभी प्रवेश नहीं हो सकता।[४] यह ज्ञान श्रीकृष्णके सम्बन्धमें किसी भी शंकाको प्रतिहत करता है। ज्ञान होनेपर फल तो प्रत्यक्ष ही है—

---

१. भागवत १२।१३।१८

२. श्रीमद्भागवत स्याथ श्रीमद्भगवतः सदा। स्वरूपमेकमेवास्ति सच्चिदानन्दलक्षणम्। श्रीकृष्णासक्त भक्तानां तन्माधुर्यप्रकाशकम्। समुज्जृम्भति यद्वाक्यं विद्धि भागवतं हितम्।
—स्कन्द पुराण, द्वितीय वैष्णव खण्ड, भागवत माहात्म्य ४।३-४

३. वेदान्तसार पृष्ठ १५८

४. वही १।२५ से २८

पिबन्ति ये भगवत आत्मनः सतां कथामृतं श्रवण पुटेषु सम्भृतम् ।
पुनन्ति ते विषयविदूषिताशयं व्रजन्ति तच्चरणसरोरुहान्तिकम् ॥[1]

अभिप्राय है कि सन्त पुरुष कथाका मधुर अमृत वितरण करते रहते हैं, श्रवण करनेवालोंके हृदयोंका विषयसे विषैला प्रभाव जाता रहता है, हृदय शुद्ध होनेपर वे भगवान् श्रीकृष्णके चरण-कमलोंकी सन्निधि प्राप्त कर लेते हैं।

५. अर्थवाद :

'प्रकरणेति।' प्रकरण प्रतिपाद्यस्य वस्तुनः स्थाने-स्थाने प्रशंसनम् अर्थवादः।[2] अर्थात् प्रकरण प्रतिपाद्य वस्तु की, स्थान-स्थानपर जो प्रशंसा की गयी है, वह अर्थवाद है। अर्थवादका स्थान भागवत शास्त्रमें प्रायः नगण्य है; क्योंकि अर्थवाद तो वहाँ होता है, जिसका अन्त हो और उस अन्तसे बाहरकी बात कही जाय। भगवान् श्रीकृष्ण अनन्त हैं। अतः उनके नाम, गुण, लीला और धाम किसीमें भी अर्थवादका स्थान नहीं। फिर भी, भागवतमें स्थान-स्थानपर प्रतिपाद्य भगवान् श्रीकृष्णकी प्रशंसा की गयी है। अर्थवाद स्तुति-वाक्योंको कहते हैं–

यं ब्रह्मा वरुणेन्द्ररुद्रमरुतः स्तुन्वन्ति दिव्यैः स्तवै-
र्वेदैः सांगपदक्रमोपनिषदैर्गायन्ति यं सामगाः।
ध्यानावस्थिततद्गतेन मनसा पश्यन्ति यं योगिनो
यस्यान्तं न विदुः सुरासुरगणा देवाय तस्मै नमः॥[3]

अर्थ है ब्रह्मा, वरुण, इन्द्र, रुद्र और मरूद्गण दिव्य स्तोत्रों द्वारा जिसकी स्तुति करते हैं, सामवेदके गानेवाले अंग, पद, क्रम और उपनिषदोंके सहित वेदों द्वारा जिसका गायन करते हैं, योगीजन ध्यानमें स्थित तद्गत हुये मनसे जिसका दर्शन करते हैं, देवता और असुरगण (कोई भी) जिसके अन्त-को नहीं जानते, उन भगवान् श्रीकृष्ण देवके लिये नमस्कार है।

६. उपपत्ति :

'प्रकरणप्रतिपाद्येति।' प्रकरण प्रतिपाद्य विषयं प्रमाणयितुं या युक्तिः उपस्थाप्यते सा उपपत्तिः।[4] अर्थात् प्रकरण-प्रतिपाद्य विषय (वस्तु) को

---

१. भागवत २।२।३७
२. वेदान्त सार पृष्ठ १५९
३. भागवत १२।१३।१
४. वेदान्त सार पृष्ठ १५९

प्रमाणित सिद्ध करनेके लिए स्थान-स्थानपर जो युक्ति दी जाती है, वह उपपत्ति है। भागवतमें प्रतिपाद्यको प्रमाणित करनेके लिये अनन्त प्रमाण प्रमाणित है युक्तियों और उपपत्तियों द्वारा। वृषपर्वा, बलि, जटायु, तुलाधार आदिके दृष्टान्त देकर प्रतिपाद्यका माहात्म्य स्थापित किया है। नाम-माहात्म्यके लिये अजामिलका प्रसंग लिया गया है। सर्ग, विसर्ग आदि स्थूल-वर्णन भी प्रतिपाद्यके माहात्म्य प्रसंग है—

भगवान् सर्व भूतेषु लक्षितः स्वात्मना हरिः।
दृश्यैर्बुद्ध्यादिभिर्द्रष्टा लक्षणैरनुमापकैः॥[1]

अर्थात् समस्त चर, अचर प्राणियोंमें उनके आत्मारूपसे भगवान् श्रीकृष्ण ही लक्षित होते हैं, क्योंकि ये बुद्धि आदि दृश्यपदार्थ उनका अनुमान करानेवाले लक्षण हैं; वे इन सबके साक्षी एकमात्र दृष्टा हैं।

अन्ततः सम्पूर्ण भागवत श्रीकृष्णको लक्ष्य करके हैं।

कथा-न्यासका द्वितीय आधार है—

प्रबन्ध-काव्यकी दृष्टिसे कथा-प्रवाह :

शब्द और अर्थकी सुन्दर अवस्थिति काव्य है। काव्यमें हृदय-पक्षके भावोंका भी सहभाव अपेक्षित है। अपने अन्तरमें उत्सेकित भावोंको जब इस तरह सम्प्रेषण अथवा अभिव्यक्त किया जाता है कि वह अन्तस् को स्पर्श कर दे और वैसा ही स्पन्दन एवं भावोद्रेक उत्पन्न कर दे, यथार्थमें वही तो काव्य है, भागवत ऐसा ही काव्य है। सच यह भी है कि काव्य-कला इतनी विविध रूप और सूक्ष्म हैकि उसे सर्वसम्मत निश्चित परिधिके भीतर बाँध देना बड़ा कठिन है। अपनी-अपनी अनुभूतिके अनुसार जिस-जिस परिप्रेक्ष्यसे जिसने उसे निहारा अथवा स्वाद लिया उसने उसका वही रूप मान लिया, किन्तु वह गलतीमें नहीं रहा, क्योंकि वह रूप-कलाका एकदेश अवश्य है। भागवत महापुराणात्मक काव्य है, प्रबन्ध-काव्यकी दृष्टिसे वर्णन महापुराणात्मक काव्य-रूप-कलाका एकदेश अवश्य है। प्रबन्ध काव्य वह विधा है जिसमें आद्योपान्त कथा-सूत्रका तारतम्य बना रहता है।[2] किसीके जीवनकी

---

१. भागवत २।२।३५

२. काव्य चन्द्रिका—मंगलीप्रसाद शर्मा पृष्ठ ६, गुप्ता ब्रदर्स, मण्डी, घनौरा १९५०

विशेष घटनायें विस्तार और प्रायः पूरे ब्यौरेके साथ कही जाती है, तब वह रचना महाकाव्य कहलाती है। महाकाव्य[1] प्रबन्ध काव्यका एक प्रकार है। भागवतके प्रबन्ध-विधानपर विचार किया जाता है–

प्रबन्ध-विधान :

पुराण-लक्षण-प्रधान होनेसे श्रीमद्भागवतमें महाकाव्यके सम्पूर्ण लक्षण उसी रूपमें अर्थात् पूर्ण रूपमें घटित नहीं होते हैं। एतदर्थ भागवतके कथा-प्रवाहपर ही विचार किया जाता है।

कथा-वस्तु-योजना :

मुख्य प्रतिपाद्य विषय कथावस्तु है। कथावस्तु दो प्रकारकी होती है।[2]

१. आधिकारिक कथावस्तु,

२. प्रासंगिक कथावस्तु।

आधिकारिक कथावस्तु :

अधिकारका अर्थ है फलका स्वामित्व और अधिकारी उस फलके स्वामीको कहते हैं। उन अधिकारीके द्वारा बढ़ाई गई और फल-पर्यन्त अभि-व्याप्त कथाको आधिकारिक कथावस्तु कहते हैं।[3] भागवतमें श्रीकृष्णका चरित वर्णन आधिकारिक वस्तु है।

प्रासंगिक-कथावस्तु

जो इतिवृत्त दूसरे अर्थात् प्रधान कथाके प्रयोजनसे काव्यमें सन्निविष्ट किया गया हो और उस प्रधान इतिवृत्तके प्रसंगसे जिसका स्वयंका प्रयोजन भी सिद्ध हो जाता हो, उसे प्रासंगिक कथावस्तु कहते हैं।[4] दुष्टोंका विनाश, साधुओंका परित्राण और अपने प्रेमीजनोंको परमानन्द प्राप्ति कराना श्रीकृष्ण-

---

१. सर्गबन्धो महाकाव्यं तत्रैको नायकः सुरः - साहित्यदर्पण : विश्वनाथ ६।३१५ मोतीलाल बनारसीदास, १९८२

२. इदं पुनर्वस्तु बुधैर्द्विविधं परिकल्पयते,
आधिकारिकमेकं स्यात्प्रासंगिकमथापरम्। ६।४२ : साहित्य-दर्पण

३. अधिकारः फलस्वाम्यमधिकारी च तत्प्रभुः।
तन्निर्वर्त्यमभिव्यापि वृत्तं स्यादाधिकारिकम्॥ : दशरूपक १।१२
—धनंजय चौखम्बा अमरभारती प्रकाशन, वाराणसी १९७९

४. प्रासंगिक परार्थस्य स्वार्थो यस्य प्रसंगतः वही १।१३ पूर्वार्द्ध

चरितका मुख्य प्रयोजन है, इसकी सिद्धिके लिए श्रीकृष्णके अनेकों अवतार हैं. यथा-नृसिंह अवतार-कथा, श्रीराम-अवतार-कथा आदि। सभी अवतारोंका प्रयोजन प्रायः दुष्टोंका बध है, जैसे-श्रीराम द्वारा रावण-बध नवम स्कन्धमें, श्रीनृसिंह द्वारा हिरण्यकशिपु-बध सप्तम स्कन्धमें इत्यादि।

पताका और प्रकरी भेदसे प्रासंगिक कथावस्तु भी दो प्रकारकी होती है।

पताका :

सानुबन्धं पताकाख्यं[1] अर्थात् अनुबन्धके सहित (प्रधान कथाके साथ गौण रूपसे दूर तक चलनेवाले) प्रासंगिक इतिवृत्तको 'पताका' कहते हैं। पताका इतिवृत्त मुख्य नायकके झण्डेकी चिह्नकी तरह प्रधान कथावस्तुका उपकारक होता है।[2] भगवान् श्रीकृष्णके अन्यान्य अवतारोंकी कथाको पताका इतिवृत्त कहा जा सकता है। प्रथम स्कन्धसे नवम स्कन्ध तक, एकादश एवं द्वादश स्कन्धमें भी व्यापक रूपसे श्रीकृष्णके अन्यावतारोंका वर्णन है, ये श्रीकृष्णकी भगवत्ताका पोषण करते हैं।

प्रकरी :

'प्रकरी च प्रदेशभाक्' अर्थात् एक प्रदेशमें ही सीमित होकर (कुछ ही दूर तक चलनेवाले) प्रासंगिक इतिवृत्तको 'प्रकरी' कहते हैं। प्रकरी इतिवृत्त छोटा होनेसे प्रधान कथाके साथ दूर तक अनुवर्तन नहीं करता। जैसे—अजामिलोपाख्यान, गजेन्द्र-मोक्ष, श्रीरामकी कथा आदि। ये कथायें एक देशमें ही रुक गयी है। ये इतिवृत्त निरपेक्ष रूपसे प्रधान-कथाकी सहायक है।

पताकास्थानक :

'प्रस्तुतागन्तुभावस्य वस्तुनोऽन्योक्तिसूचकम्'—अर्थात् आनेवाली (=आगन्तुक) प्रस्तुत (=प्रसंग प्राप्त) कथावस्तुकी सूचना जहाँ अन्योक्तिके द्वारा की जाय उसे 'पतानास्थानक' कहते हैं। भागवतमें श्रीकृष्णके जन्मकी

---

१. वही

२. पताकेवसाधारण-नायकाचिह्न वत्तदुपकारित्वात्-वही १।१३ की अवलोक टीका

३. यदल्पम्—दूरं नानुवर्तते सा प्रकरी—वही

सूचना जो अशरीरवाणी द्वारा की गयी है[1] वह 'पताकास्थानक' है। मत्स्यावतारके द्वारा सत्यव्रत राजाको आगामी मन्वन्तरमें मनु बननेकी सूचनाको भी पताकास्थानक कहा जा सकता है।

कथावस्तुका फल :

कार्य त्रिवर्गस्तच्छुद्धमेकानेकानुबन्धि च।[2] अर्थात् उस इतिवृत्तका फल है त्रिवर्ग (=धर्म, अर्थ, काम)। यह कभी तो शुद्ध (अर्थात् त्रिवर्गमें-से कोई एक) हो सकता है, कभी (अन्य) एकसे अनुगत तथा कभी अनेक (अर्थात् दोसे) अनुगतन होता है। इस परिभाषा सूत्रमें भागवतकी कथाका फल निहित नहीं हो सकता। भागवत तो परम पुरुषार्थ 'प्रेम (भक्ति) फल' प्रदायक है, धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष स्वतः सिद्ध हो जाते हैं। श्रीमद्भागवतका फल निरोध और मुक्तिसे भी उच्च 'भगवदाश्रय' है।

फलकी दृष्टिसे कथावस्तुका विभाजन -

अर्थप्रकृतियाँ–यह पाँच प्रकार से है।

१. बीज :

'स्वल्पोदृष्टस्तु तद्धेतुर्बीजं विस्तार्यनेकधा।'[3] अर्थात् आरम्भमें अल्प रूपमें संकेतिक किन्तु आगे चलकर अनेक प्रकारसे पल्लवित होनेवाला (इतिवृत्त) 'बीज' कहलाता है। नैमिषारण्यमें सूतजी से शौनकादि ऋषियोंके छः प्रश्न भागवत कथाके बीज हैं–

किं श्रेयः शास्त्रसारः कः स्वावतारप्रयोजनम्।
किं कर्म केऽवताराश्च धर्मः कं शरणं गतः॥[4]

२. बिन्दु :

'अवान्तरार्थविच्छेदे बिन्दुरच्छेदकारणम्।'[5] अर्थात् अवान्तर कथा (=अर्थ) की समाप्तिके अवसरपर प्रधान कथाके साथ सम्बन्ध विच्छेद न होने देनेवाली वस्तुको 'बिन्दु' कहते हैं। छः प्रश्नोंके उत्तर 'बिन्दु' है–

---

१. भागवत १०।१।३४
२. दशरूपक १।१६
३. दशरूपक १।१७ पूर्वार्द्ध
४. श्रीमद्भागवत-कथा (साप्ताहिक) पृष्ठ ३
५. दशरूपक १।१७ उत्तरार्द्ध

कृष्णभक्तिः परं श्रेयः शास्त्रसारश्च सैव हि ।
प्रयोजनं सतो रक्षा कर्म सृष्ट्यादिलक्षणम् ।।
अवतारा असंख्येया धर्मो भागवते स्थितः ।[१]

३. पताका :

'व्यापि प्रासंभिकं वृत्तं पताकेत्यभिधीयते'[२] अर्थात् जो प्रासंगिक-कथा दूर तक व्याप्त हो उसे पताका कहते हैं। पताका नायकका अपना कोई भिन्न फल नहीं होता, प्रधान नायकके फलको सिद्ध करनेके लिये ही उसकी समस्त चेष्टायें होती हैं। भागवतमें श्रीकृष्णके अन्यावतारोंकी कथा पताका है।

४. प्रकरी :

प्रासंगिकं प्रदेशस्थं चरितं प्रकरी मता।[३] अर्थात् प्रसंगागत तथा एकदेशस्थित चरित्रको प्रकरी कहते हैं। भगवद्भक्तोंके चरित्र प्रकरी हैं।

५. कार्य :

अपेक्षितं तु यत्साध्यमारम्भो यन्निबन्धनः। समापनं तु यत्सिद्धये तत्कार्यमिति संमतम्।[४] अर्थात् जो प्रधान साध्य है, सब उपायोंका आरम्भ जिसके लिये किया गया है, जिसकी सिद्धिके लिये सब 'समापन' इकट्ठा हुआ है, उसे कार्य कहते हैं। प्रधान नायक परीक्षित द्वारा भगवत्-प्राप्ति कार्य है—

अज्ञानं च निरस्तं मे ज्ञानविज्ञाननिष्ठया ।
भवता दर्शितं क्षेमं परं भगवतः पदम् ।।[५]

कार्यावस्थायें—

फलके इच्छुक पुरुषोंके द्वारा आरम्भ किये गये कार्यकी पाँच अवस्थायें होती हैं—

१—आरम्भ

मुख्य फलकी सिद्धिके लिये जो औत्सुक्य है, उसे आरम्भ कहते हैं।[६] परीक्षितके श्रीकृष्ण सम्बन्धी कथा प्रश्न 'आरम्भ' हैं।[७]

---

१. श्रीमद्भागवत-कथा (साप्ताहिक) पृष्ठ ३५
२. साहित्यदर्पण ६।६७ पूर्वार्द्ध
३. साहित्यदर्पण ६।६८ उत्तरार्द्ध
४. साहित्यदर्पण ६।६९-७०, ५. भागवत १०।७४।४३, १२।६।७
६. औत्सुक्य मात्रमारम्भः फललाभाय भूयसे – दशरूपक १।२० पूर्वार्द्ध
७. भागवत ११।१९।३७–३८

२–प्रयत्न

फलप्राप्तिके लिये अत्यन्त त्वरायुक्त व्यापार को यत्न कहते हैं।[१] फलस्तुति सहित श्रीशुकदेवके उत्तर प्रयत्न हैं।[२]

३–प्राप्त्याशा

जहाँ प्राप्तिकी आशा, उपाय तथा अपायकी आशंकाओंसे घिरी हो, किन्तु प्राप्तिकी सम्भावना हो, उस अवस्थाको प्राप्त्याशा कहते हैं।[३]

परीक्षितके सन्तुष्टि प्रतिपादक वाक्य प्राप्त्याशा हैं।[४]

४–नियताप्ति

विघ्नोंके अभावमें फलकी प्राप्तिका पूर्णरूपेण निश्चय हो जानेकी अवस्थाको नियताप्ति नामक अवस्था कहते हैं।[५] श्रीकृष्णकी सम्पूर्ण लीलाओं-का श्रवण होनेमे परीक्षितकी कृत्कृत्यता नियता ही है।[६]

५–फलागम

जहाँ सम्पूर्ण फलकी प्राप्ति हो जाय उस अवस्थाको फलयोग या फलागम कहते हैं।[७] परीक्षितका ब्रह्मस्वरूपमें स्थित होना और देवताओं द्वारा पुष्पवृष्टि फलागम है।[८]

संधि

कथाके अंशोंका एक प्रयोजनसे सम्बन्ध होनेपर उनका ही जब किसी एक अवान्तर प्रयोजनसे सम्बन्ध हो जाता है तो वही 'सन्धि' कहलाती है।[९] सन्धियाँ कार्यावस्थाओंका अनुगमन करती है।[१०] भागवतकी कथाओं और

---

१. प्रयत्नस्तु पदप्राप्तौ व्यापारोऽतित्वरान्वितः १।२० उत्तरार्द्ध दशरूपक

२. भागवत १।१६।४०

३. उपायापायशंकाभ्यां प्राप्त्याशा प्राप्तिसम्भवः – दशरूपक १।२१ पूर्वार्द्ध

४. भागवत १०।१।१३

५. अपायाभावतः प्राप्तिर्नियताप्तिः सुनिश्चिता–दशरूपक–उत्तरार्द्ध

६. भागवत १२।६।२–सिद्धो स्म्यनुगृहीतोस्मि............... ।

७. समग्रफलसम्पत्तिः फलयोगो यथोदितः – दशरूपक १।२१ पूर्वार्द्ध

८. भागवत १२।६।१०–१५

९. अन्तर कार्थसम्बन्धः सन्धिरेकान्वये सति – दशरूपक १।२३

१०. नाट्य–शास्त्र १९।३७–४३

नायक श्रीकृष्णकी सभी लीलाओंमें संधि भेद है। यहाँ प्रधान-लीला 'रास-लीला' के आधारपर संधि भेदपर विचार होगा।

संधिभेद

१. मुख-सन्धि

बीज+आरम्भ=मुख-सन्धि।

नाना प्रकारके प्रयोजन और उसको उत्पन्न करनेवाली बीजोत्पत्ति जहाँपर होती है वहाँ मुख-सन्धि होती है।[1] श्रीकृष्ण द्वारा वेणुवादन तथा गोपियोंका आगमन मुख-सन्धि-स्थल है।[2]

२. प्रतिमुख-सन्धि

बिन्दु+प्रयत्न=प्रतिमुखसन्धि। मुख-सन्धिमें निवेशित फलप्रधान उपायका कुछ लक्ष्य और कुछ अलक्ष्य उद्‌भेद (विकास) जहाँ हो उसे प्रतिमुख सन्धि कहते हैं।[3] श्रीकृष्ण-द्वारा लौटनेका आग्रह, गोपियों द्वारा प्रेमका परिचय देना, कृष्ण-द्वारा स्वीकृति प्रतिमुख-सन्धि है।[4]

३. गर्भ सन्धि

पताका+प्राप्त्याशा=गर्भसन्धि। पूर्वसन्धियोंमें कुछ-कुछ प्रकट हुये फलप्रधान उपायका ह्रास और अन्वेषण ये युक्त बार-बार विकास हो उसे गर्भ-सन्धि कहते हैं।[5] रासका प्रारम्भ गोपियोंके मनमें गर्वकी उत्पत्ति, कृष्णका अन्तर्धान होना गर्भसन्धि है।[6]

४. विमर्श-सन्धि

प्रकरी+नियताप्ति=विमर्श सन्धि। जहाँ मुख्य फलका उपाय गर्भ-सन्धिकी अपेक्षा अधिक उद्भिन्न हो, किन्तु शापादिके कारण अन्तराय (विघ्न) युक्त हो उसे विमर्श या अवमर्शसन्धि कहते हैं।[7] अवमर्श शब्दका

---

१. मुखं बीजसमुत्पत्तिर्नानार्थरससम्भवा १।२४ उत्तरार्द्ध : दशरूपक

२. भागवत १०।२६।३

३. लक्ष्यालक्ष्यतयोद्‌भेदस्तस्य प्रतिमुखं भवेत् — दशरूपक १।३० पूर्वार्द्ध

४. भागवत १०।२६।२७-३५-४२

५. गर्भस्तु दृष्टनष्टस्य बीजस्यान्वेषणं मुहुः — दशरूपक १।३६ पूर्वार्द्ध

६. भागवत १०।२६।४६ से ४८

७. क्रोधेनावमृशेद्यत्र व्यसनाद्वा विलोभनात्।
गर्भनिर्भिन्नबीजार्थः सोऽवमर्श इति स्मृतः॥ - दशरूपक १।४३

अर्थ विचार या पर्यालोचन है गोपियोंका विरह-वर्णन तथा स्वयंको कृष्णरूप समझना विमर्श सन्धि है।

५. निर्वहण सन्धि

कार्य + फलागम = निर्वहण। बीजसे युक्त, मुखादि सन्धियोंसे बिखरे हुये अर्थोंका जहाँ एक प्रधान प्रयोजनमें यथावत् समन्वय साधित किया जाय, उसे निर्वहण सन्धि अथवा उपसंहृति कहते हैं।[२] श्रीकृष्णका लौटना तथा आनन्द-प्राप्ति निर्वहण सन्धि है।

इस प्रकार दशम स्कन्धका और प्रमुख रूपसे रास-पंचाध्यायीका कथानक ही प्रबन्ध-काव्यकी रचनाके अनुकूल है। ग्रन्थ-तात्पर्य निर्णयसे तो तात्पर्य हुआ 'व्यासने क्या कहा' पर 'कैसे कहा'[३] यह प्रबन्ध-काव्यका शिल्प-विधान है।

अतः उपर्युक्त वर्णन सर्गो नाटकसंधयः, चत्वारस्तस्य वर्गाः स्युस्तेष्वेकं च फलं लभेत्, सर्गान्ते भाविसर्गस्य कथायाः सूचनं भवेत् अर्थात् महाकाव्यकी कथावस्तुमें सब नाटक सन्धियाँ रहती हैं, धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष इस चतुर्वर्गमें-से एक उसका फल होता है, सर्गके अन्तमें अगली कथाकी सूचना होती है,[४] आदि लक्षणोंके आधारपर किया गया है। यद्यपि ये भागवतके एकदेशमें स्थित है। दर्शन और काव्यका परस्पर सम्बन्ध है। दर्शन और काव्यके दो पंखोंपर मानव-चेतना इस अनन्त आकाशमें उड़ानें भरती हैं। जो बुद्धि द्वारा तर्कोपनत होता है, वही काव्य द्वारा विभावित होता है। भागवत साहित्यका सुमेरु है और है एक अभ्रंकष शिखर। चाहे कथोत्थं लावण्य हो या उत्पाद्य चारुता।

महाकाव्यीय अन्य तत्वोंका निर्देश—

वर्णन कौशल :

तदनुसार महाकाव्यमें सन्ध्या, सूर्य, चन्द्रमा, रात्रि, प्रदोष, अन्धकार, दिन, प्रातःकाल, सन्ध्या, मध्याह्न, मृगया, पर्वत, ऋतु, वन, समुद्र, संभोग-

---

१. भागवत १०।३०।३१

२. बीजवन्तो मुखाद्यर्था विप्रकीर्णा यथायथम्।
ऐकार्थ्यमुपनीयन्ते यत्र निर्वहणं हि तत्॥ —दशरूपक १।४८-४९

३. भागवत १०।३२।३ एवं १०।३३

४. साहित्य-दर्पण ६।३१५-३२५

वियोग, मुनि, स्वर्ग, नगर, यज्ञ, संग्राम, यात्रा, विवाह, मन्त्र, पुत्र और अभ्युदय आदिका यथासम्भव सांगोपांग वर्णन होना चाहिये–

संध्यासूर्येन्दु-रजनीप्रदोषध्वान्तवासराः ।प्रातर्मध्याह्नमृगयाशैलर्तुवनसागराः ।।
संभोग विप्रलम्भौ च मुनिस्वर्गपुराध्वराः । रण प्रयाणोपयममन्त्र पुत्रोदयादयः।।
वर्णनीया यथायोगं सांगोपांगा अमी इह ।।[1]

सन्ध्या :

श्रीव्यासजीने सन्ध्या-सुन्दरीको इस प्रकार अलंकृत किया है–सन्ध्याका समय था। चन्द्रमा उदित हो अपनी मनोहर किरणोंका विस्तार कर रहे थे, सहस्र-सहस्र डालियों वाले वृक्ष लताओंका आलिंगन पाकर धरती तक झुके हुये थे–

उद्यच्चन्द्रनिशावक्त्रः प्रवालस्तबकालिभिः ।
गोपद्रुमलताजालैस्तत्रासीत् कुसुमाकरः ।।[2]

सूर्य :

अद्वितीय ज्योतिमान् सूर्यपर इस प्रकार प्रकाश डाला गया है–

मध्वादिषु द्वादशसु भगवान् कालरूपधृक् ।
लोकतन्त्राय चरति पृथग् द्वादशभिर्गणैः ।।[3]

अर्थात् कालरूपधारी भगवान् सूर्य लोकोंका व्यवहार ठीक-ठीक चलानेके लिये क्षेत्रादि बारह महीनोंमें अपने भिन्न-भिन्न बारह-वर्णोंके साथ चक्कर लगाया करते हैं।

चन्द्रमा :

तदोडुराजः ककुभः करैर्मुखं प्राच्या विलिम्पन्नरुणेन शन्तमैः ।
स चर्षणीनामुदगाच्छुचो मृजन् प्रियः प्रियाया इव दीर्घदर्शनः ।।[4]

प्रस्तुत स्थलपर चन्द्र-वर्णनमें व्यासजीने 'ककुभः करैर्मुखं प्राच्यां विलिम्पन्न रुणेन शन्तमैः तथा प्रियः प्रियायाः इत्यादि प्रतीकों द्वारा वर्णन परम्पराका अनुगमन करते हुये अद्भुत वैचित्र्यकी प्रतीतिका दिग्दर्शन कराया है। 'स चर्षणीनामुदगाच्छुचोमृजन्' कहकर श्रृंगारिक वर्णनसे हटकर चन्द्रोदयको जन-हितेषी बना दिया है।

---

१. साहित्य दर्पण ६।३२२–३२४
२. भागवत १२।८।२१ ३. वही १२।११।३२ ४. वही १०।२९।२

रात्रि :

श्रीकृष्णके प्राकट्य समयमें जहाँ रात्रिमें निर्मल आकाशमें तारे जगमगा रहे थे–निर्मलोडुगणोदयम्–वहीं सरोवरोंमें कमल खिल रहे थे–हृदा जलरुसश्रियः। कृष्ण-प्राकट्यके समय रात्रिमें प्रकृति प्रफुल्लित तो थी ही अतः हृदोंने कमलके बहाने अपने प्रफुल्लित हृदयको ही श्रीकृष्णके प्रति अर्पित कर दिया, कितना सुन्दर स्वागत है।[1]

अन्धकार :

जन्म-मृत्युके चक्रसे छुड़ानेवाले जनार्दनके अवतारका समय था निशीथ, चारों ओर अन्धकारका साम्राज्य था–निशीथे तमउद्भूते जायमाने जनार्दने–निशीथ यतियोंका संध्याकाल और रात्रिके दो भागोंकी सन्धि है। उस समय श्रीकृष्णके आविर्भावका अर्थ है–अज्ञानके घोर अन्धकारमें दिव्य प्रकाश।[2] अन्धकारका ऐसा प्रकाश अन्यत्र दुर्लभ है।

प्रातःकाल :

अथोषस्युपवृत्तायां कुक्कुटान् कूजतो शपन्–प्रातःकाल कुक्कुटका कूजन हर्षपूर्ण और उल्लास-उत्साहपूर्ण सुबहका प्रतीक है-वयांस्यरुरुवन्.... गायत्स्वलिष्वनिद्राणि मन्दारवनवायुभिः–पारिजातकी सुगन्धसे सुवासित भीनी-भीनी वायुका बहना 'चलैवैति चलैवैति' की प्रेरणा देता है, अति-कुलका सुगम संगीत हार्दिक सुन्दरतम भावोंका वाचिक रूप है, व्यासजी कृत प्रातःकालकी ऐसी छटा यथार्थ ही बहुत सुन्दर है।

पर्वत :

गजेन्द्र-मोक्ष-प्रकरणमें पर्वतराज 'त्रिकूट' के वर्णनमें प्रकृतिका मनोरम-रूप दर्शनीय है।[4] गोवर्द्धन-पर्वतकी तो गोपियोंने स्तुति करते हुये उसके महत्वका वर्णन कर उसके प्रति अपनी कृतज्ञता व्यक्त की है–

> हन्तायमद्रिरबला हरिदासवर्यो यद् रामकृष्णचरणस्पर्शप्रमोदः।
> मानं तनोति सहगोगणयोस्तयोर्यत् पानीयसूयवसकन्दरकन्दमूलैः॥[5]

१. भागवत १०।३।२-३, २. वही १०।३।८, ३. वही १०।७०।१–२
४. सर्वतोऽलंकृतं दिव्यैर्नित्यं पुष्पफलद्रुमैः।
मन्दारैः पारिजातैश्च पाटलाशोकचम्पकैः॥-भागवत ८।२।१० आदि
५. वही १०।२१।१८

ऋतु :

रासलीला रंग-स्तम्भके अन्तर्गत शरद्-पूर्णिमामें 'शरदोत्फुल्ल मल्लिका:-…………' में शरद् ऋतु वर्णन परम्पराका निर्वाह है। वर्षा और शरद् ऋतुका वर्णन तो श्रीकृष्णकी सानन्द लीलाका विलास है।[1]

वन :

दशम स्कन्धके एकादशवें प्रकरणमें कविने वृन्दाविपिनका वर्णन संक्षेपमें किन्तु मनोरमरुपेण किया है–

वनं वृन्दावनं नाम पशव्यं नवकाननम्।
गोपगोपीगवां सेव्यं पुण्याद्रितृणवीरुधम्॥[2]

यह वर्णन अग्निपुराण सम्मत भी है।[3]

वृन्दारण्यमें प्राप्त फल-प्रवाल और उनका उपयोगका वर्णन इस प्रकार किया गया है–

फलप्रबालस्तबकसुमनः पिच्छधातुभिः।
काचगुंजामणिस्वर्णभूषिता अप्यभूषयन्॥[4]

समुद्र :

समुद्र वर्णन भी लक्षण-परम्पराके नितान्त अनुकूल है–

निर्मथ्यमानादुदधेरभूद्विषं महोल्बणं हालहलाह्वमग्रतः।
सम्भ्रान्तमीनोन्मकराहिकच्छपात् तिमिद्विपग्राहतिमिंगिलाकुलात्॥[5]

इस प्रकार श्रीमद्भागवतमें वेदव्यासने प्रकृतिसे अभिन्न सम्बन्ध स्थापित कर विभिन्न प्रकरणोंमें उसकी सुषमाकी अभिव्यजना की है। वेणूगीत प्रकरणमें तो प्रकृति चषकमें अध्यात्म-सुधाके दर्शन होते हैं। शरत्स्वच्छजलं– शारदीय परिष्कृत जल उसमें भी 'पद्माकरसुगन्धिना' कहकर कविने सुन्दरताको भी सुन्दरता प्रदान कर प्रकृतिमें अत्युज्ज्वल रूपका दर्शन कराया

१. सान्द्रनीलाम्बुदैर्व्योम सविद्युत्स्तनयित्नुभिः।
अस्पष्टज्योतिराच्छन्नं ब्रह्मेव सगुणं बभौ॥ वही १०।२०।४ आदि।

२. भागवत १०।११।२८

३. उद्यान सलिलाः……………इत्यादयः – ३३।८।३० पूर्वार्द्ध : अग्निपुराण

४. भागवत १०।१२।४, ५. वही ८।७।१८

है। प्रकृति छटा-निरूपणमें 'कुसुमितद्विजकुलघुष्टसरः तथा मधुपतिखगाह्य'[1] आदि पद्यांशोंमें 'क', 'ज', 'त', 'न', 'म' आदि स्पर्श एवं मधुर वर्णोंका प्रयोग कर वर्णन-शैलीमें माधुर्य गुणका समावेश कर प्रकृतिके रमणीय रूपको अत्यधिक रमणीयत्व प्रदान किया है। प्राकृतिक सुषमाका निरूपण स्वयं सौन्दर्य-स्रोत भगवानके व्रज-विहार-रूपके प्रसंगमें किया ही है—

नद्यस्तदा तदुपधार्य मुकुन्दगीतमावर्तलक्षित मनोभवभग्नवेगाः।
आलिंगन स्थगितमूर्मिभुजैर्मुरारेर्गृह्णन्ति पादयुगलं कमलोपहाराः॥[2]

किं बहुना, श्रीमद्भागवतमें व्यासका प्रकृति वर्णन अत्यधिक प्राकृतिक है।

नगर :

महाकाव्यीय परम्परामें नगर-वर्णन भी व्यासजीने चारु-रीतिसे किया है। नवम स्कन्धमें अयोध्या नगरीका वर्णन दृष्टव्य है—

आसक्तिमार्गो गन्धोदैः करिणां मदशीकरैः।
स्वामिनं प्राप्तमालोक्य मत्तां वा सुतरामिव॥[3]
आदर्शैरंशुकैः स्रग्भिः कृतकौतुकतोरणाम्॥[4]

'आसक्तिमार्ग' के 'आ' में प्रासादगोपुर एवं 'कृतकौतुकतोरणाम्' आदि विशेषण महाकाव्योपयोगी दण्डी कृत लक्षणोंके अनुकूल हैं[5] तथा अग्नि-पुराण सम्मत भी हैं।[6]

यज्ञ :

यज्ञ-वर्णन महाकाव्य परम्परा-तत्त्व वर्णनमें ग्राह्य है। भागवतमें 'राजसूय यज्ञ' का विवृत्त वर्णन है, इसके ऋत्विज और आचार्य हैं—

द्वैपायनो भरद्वाजः सुमन्तुर्गोतमोऽसितः।
वसिष्ठश्च्यवनः कण्वो मैत्रेयः कवषस्त्रितः॥[7]

---

१. भागवत १०।२१।१-२ २. वही १०।२१।१५
३. भागवत ९।११।२६, ४. वही ९।११।२८
५. पुरेन्द्रपरिखावप्रपतौली तोरणादयः।
प्रसादाध्वप्रपारामवाप्योबै श्यासतीत्वरी॥ - काव्यादर्श, प्रथम परिच्छेद
६. नगराणांवित्यादयः........अग्निपुराण ३३।८।२९ उत्तरार्द्ध
७. भागवत १०।७४।७

यज्ञमें अग्र-पूजाका विधान काव्य लक्षणके अन्तर्गत भी है–

अर्हति ह्यच्युतः श्रैष्ठ्यं भगवान् सात्वतां पतिः ।
एषवै देवताः सर्वा देशकालधनादयः ॥[1]

यज्ञान्त स्नान भी आवश्यक तत्व है–

राजसूयावभृथ्येन स्नातो राजा युधिष्ठिरः ।
ब्रह्मक्षत्रसभामध्ये शुशुभे सुरराडिव ॥[2]

विवाह :

विवाह-वर्णन भी एक उपादेय तत्व है, महाकाव्यके तत्व-प्रतिपादनमें। भागवतमें अनेक विवाहोंके अनेक प्रसंग हैं । ऊषा-अनिरुद्ध विवाह,[3] रेवती-बलराम-विवाह,[4] रुक्मिणी-श्रीकृष्ण विवाह आदि–

नरा नार्यश्च मुदिताः प्रमृष्टमणिकुण्डलाः ।
पारिबर्हमुपाजह्रुर्वरयोश्चित्रवाससोः ॥[5]

युद्ध-वर्णन :

नितान्त सत्य है कि महाकाव्यके सभी तत्त्व मानव-जीवनमे सम्बन्ध रखते हैं। युद्ध तो दुष्ट संहारार्थ परमावश्यक ही है, अन्यथा जीवनमें स्थायित्व नहीं हो सकेगा। भागवतमें अनेकों युद्ध-प्रसंग हैं और सभी दुष्ट-संहारार्थ और अन्याय-निवारणार्थ हैं। रुक्मीके साथ युद्धमें–

परिघं पट्टिशं शूलं चर्मासी शक्तितोमरौ ।
यद्यदायुधमादत्त तत् सर्वं सोऽच्छिनद्धरिः ॥[6]

विजय :

महाकाव्यकी परम्परामें युद्धका परिणाम उल्लासवर्धक होता है। कंस, भौम, शिशुपाल आदिपर श्रीकृष्णकीविजयका प्रसंग भागवतमें पूर्ण विवरणके साथ है। श्रीकृष्णकी अनेकों विजयोंके प्रसंग भागवतमें उपलब्ध हैं। भीम द्वारा जरासन्धपर विजयके अवसानका यह दृश्य कितना उल्लासप्रद है–

हाहाकारो महानासीन्निहते मगधेश्वरे ।
पूजयामासतुर्भीमं परिरभ्य जयाच्युतौ ॥[7]

---

१. वही १०।७४।१६

२. भागवत १०।७४।५१, ३. वही १०।६२।६३, ४. वही १०।५२।१५

५. वही १०।५४।५५, ६. १०।५४।२६

७. भागवत १०।७२।४७,

इस प्रकार वर्णनकी चित्रात्मकता, भावोंकी कोमल व्यंजना, अनुभावोंके मनोरम विधान, घटनाओंकी भावुकतापूर्ण कल्पना, प्रकृतिके स्वाभाविक चित्रण, अलंकारोंके संतुलित प्रयोग और भाषाके यथाप्रसंग संयोजनसे भागवतमें उन सत्काव्योचित गुणोंका समावेश हो गया है, जो किसी भी रचनाके लिये गौरवका विषय बनकर उसे स्थायी साहित्यकी श्रेणीमें रख सकते हैं।

श्रीकृष्णके रूप वर्णन, चरिताख्यान और लीलागानके अवसरपर भागवतकारका दार्शनिक रूप पूर्णरूपेण तिरोहित हो जाता है, वे एकदम भक्ति-भावके सागरमें डूब जाते हैं और अलंकारोंमें गूंथे जाने योग्य शब्द-रत्न स्वतः ही उनकी भाषाकी विस्तार परिधिमें सिमटते चले आते हैं, ऐसे ही स्थलोंपर अलंकृत भावात्मक शैलीका मंजुल घोष सुनायी पड़ता है।[१] प्रसादपूर्ण सहज भावात्मक शैलीका उदात्त रूपसे प्रस्फुटन है।[२] गद्यकी कसौटीपर भी भागवत खरा उतरता है।[३] कवित्वमय वर्णन तो है ही।[४] काव्यशैलियोंके रूपमें विविध आख्यान और उपाख्यानमें इतिवृतात्मक शैली प्रयुक्त है। भक्तिभावपूर्ण स्तोत्र, भावोंकी अभिव्यक्ति सीधे-सादे शब्दोंमें प्रसादपूर्ण अनलंकृत भावात्मक शैली द्वारा हुई है। अलंकार प्रधान भावात्मक शैली द्वारा अलंकारोंका अनुकरण भाव-ध्वनिकी पृष्ठभूमिमें हुआ है। कहीं-कहीं भावोंकी ध्वनिकी अपेक्षा अलंकारोंकी चमक-दमक और झनझनाहटका दर्शन होता है, जिसे अलंकार प्रधान ऊहात्मक शैली कह सकते हैं।

इस प्रकारसे श्रीमद्भागवत एक रमणीय काव्य है, अति मधुर काव्य है। और है अति रसमय पुराणात्मक महाकाव्य। यदि काव्यके सभी लक्षण भागवतमें संघटित हो सकते हैं तो सभी लक्षणोंका सर्वोत्कृष्टत्व भी भागवतमें ही घटित होता है।

कथा-न्यासका तृतीय परन्तु प्रमुख आधार है-पौराणिक दृष्टि-

महापुराणीय लक्षणोंका संगठन :

श्रीमद्भागवतमें सर्ग, विसर्ग, स्थान, पोषण, ऊति, मन्वन्तर, ईशानुकथा, निरोध, मुक्ति और आश्रय-इन दश महापुराणीय लक्षणोंका सुचारु, सुव्यवस्थित संगुठित संगठन है। श्रीशुक, विदुर, मैत्रेयादि विशुद्धचित्त

---

१. भागवत १।८।३३-३४, २. वही १।८।३६

३. वही ६।८।३६-४१, ५।८।१६, ४. ३।१५।१६ से १९

विवेकिगण इस पुराणमें दशम पदार्थ अर्थात् आश्रय-तत्त्वकी विशुद्धि अथवा तत्त्वज्ञानके निमित्त अन्य नौ लक्षणोंका कहींपर श्रुतिसे अथवा भगवानकी स्तुति करते हुये साक्षात् सम्बन्धमें कहींपर उपाख्यानों द्वारा तात्पर्यसे और कहीं परम्परा सम्बन्धसे आश्रय तत्वका निरूपण करते हैं–

अत्र सर्गो विसर्गश्च स्थानं पोषणमूतयः ।
मन्वन्तरेशानुकथा निरोधो मुक्तिराश्रयः ॥
दशमस्य विशुद्ध्यर्थं नवानामिह लक्षणम् ।
वर्णयन्ति महात्मानः श्रुतेनार्थेन चांजसा ॥[1]

१–सर्ग

ईश्वरकी प्रेरणासे गुणोंमें क्षोभ होकर रूपान्तर होनेसे जो आकाशादि, पंचभूत, शब्दादि तन्मात्राएँ, इन्द्रियाँ, अहंकार और महतत्वकी उत्पत्ति होती है, उसको सर्ग' कहते हैं ।[2] सृष्टिका क्रम इस प्रकार है[3]–जब माया क्षोभको प्राप्त होती है, तब परमात्माके अंश-पुरुष द्वारा उसमें चिदाभासरूप बीजका स्थापन होता है । इसके बाद–

---

१. भागवत २।१०।१-२

२. भूतमात्रेन्द्रियधियां जन्म सर्ग उद्धाहृतः २।१०।३ पूर्वार्द्ध

३. अव्याकृतगुणक्षोभान्महतास्त्रिवृतोऽहमः । भूतमात्रेन्द्रियार्थानां सम्भवः सर्ग उच्यते ॥ १२।७।११

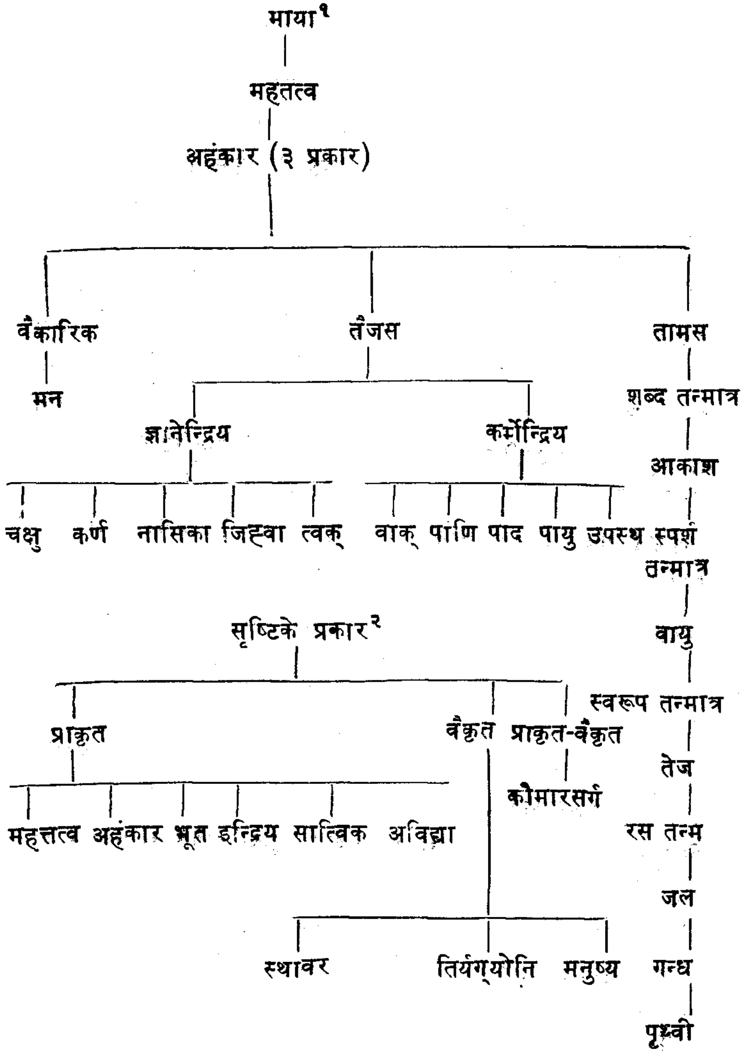

इसी प्रकारसे अलौकिक सर्ग भी निरूपण है। गुणातीत, सगुण, काल, तत्व, बद्धजीव, मुक्तजीव, सृष्टिका निरूपण अन्य प्रकारसे वर्णित है। कल्पोंके भेदसे सृष्टि-वर्णनमें भिन्नता पायी जाती है। कभी आकाशसे, कभी तेजसे, जलसे और प्रकृतिसे भी सर्गकी उत्पत्ति होती है। सृष्टि-क्रम अनादि है। ब्रह्मपुराणके इस लक्षणका निरूपण भागवतके तृतीय स्कन्धमें है।

१. भागवत ३।५।२५-३५, २. वही ३।१०।१४-२६

२–विसर्ग

ब्रह्मणो गुणवैषम्याद् विसर्गः पौरुषः स्मृतः[1] अर्थात् प्रकृतिके गुण-वैषम्यसे जो विराट् सृष्टि होती है अथवा विराटके एक अण्डमें ब्रह्माके द्वारा जो व्यष्टि सृष्टि अथवा विविध सृष्टि होती है, उसका नाम विसर्ग है। विसर्गका अर्थ है–विशिष्ट सर्ग, विशिष्ट सृष्टि। यह विशिष्ट सृष्टि ब्रह्माकी वासना सृष्टि है। परमेश्वरके अनुग्रहसे सृष्टिका सामर्थ्य प्राप्त करके महत्तत्व आदि पूर्वकर्मोंके अनुसार अच्छी और बुरी वासनाओंकी प्रधानतासे जो यह चराचर शरीरात्मक जीवकी औपाधिकी सृष्टि करते हैं, एक बीजसे दूसरे बीजके समान यही विसर्ग है।[2] ब्रह्माकी सृष्टि मानसिक ही होती है। वह शरीर संयोगपूर्वक वैधी सृष्टि नही करते। –मनसा साधु पश्यति। मानसाः प्रजा असृजन्त। मानसी सृष्टिसे ह्रास होते-होते वैधी-सृष्टि होती है। भागवतमें विसर्गका विस्तृत, अति सुन्दर और विज्ञानानुमोदित वर्णन हुआ है। विसर्ग उस परम पुरुषके सर्वोत्कृष्ट ज्ञान, शक्ति और क्रियाका बोधक है। विसर्गका प्रकाशन चतुर्थ स्कन्धमें है।

३–स्थान

सर्ग-पदार्थ-समूहमें जो मर्यादा अथवा सीमा निर्णीत की गई है और उनके द्वारा जो भगवानका उत्कर्ष वर्णन किया गया है, उसका नाम स्थिति है।[3] परम-पुरुष ही समस्त लोकोंके धारक; मर्यादाप्रवर्त्तक और संरक्षक हैं। भगवान् ही समस्त चराचरका अतिक्रमण करके उनसे दस अंगुल आगे निकल जाते हैं। अन्य अर्थमें इसे 'वृत्ति' कहते हैं। 'वृत्ति' –चर प्राणियोंकी अचर-पदार्थ वृत्ति अर्थात् जीवन-निर्वाहकी सामग्री है।[4] ''भीषाद्स्माद्वातः पवते, भीषोदेति सूर्यः भीषास्मादग्निश्चन्द्रश्च मृत्युर्धावति पंचम' इत्यादि श्रुतिमें भी स्थितिको दीप्त किया है।[5] भागवतमें स्थितिकी दीप्ति पंचम स्कन्धमें है।

---

१. भागवत २।१०।३ उत्तरार्द्ध

२. पुरुषानुगृहीतानामेतेषां वासनामयः।
विसर्गोऽयं समाहारो बीजाद् बीजं सचराचरम्॥ वही १२।७।१२

३. स्थितिर्वैकुण्ठविजयः - भागवत २।१०।४ पूर्वार्द्ध

४. वृत्तिर्भूतानि भूतानां चराणामचराणि च। कृता स्वेन नृणां तत्र
कामाच्चोदनयापि वा। भागवत १२।७।१३

५. तैत्तिरीयोपनिषत् २।८।१

४–पोषण

सृष्टि नियामक और न्यायाधिपति होनेके साथ ही भगवान् अहैतुकी कृपा और सर्वतोमुखी दयाके सागर हैं। स्थिति-कालमें अशेष करुणामय श्रीभगवान् दैत्योंके द्वारा मर्यादाका अतिक्रम होनेपर, उनके उत्पीड़नसे, धर्मकी ग्लानिको दूर कर अपने भक्तोंकी रक्षा करते हैं।[1] इसके साथ ही श्रीभागवतके षष्ठ-स्कन्धमें मनुष्य, देवता और दैत्य-तीनोंपर ही भगवानके अहैतुक अनुग्रहका दिग्दर्शन कराया है। मनुष्योंमें अजामिलको सद्गति प्रदान की, देवताओंमें अपराधी इन्द्रको अपनाया और दैत्योंमें भयंकर वृत्रासुरको भी अपना लिया, इसी अनुग्रहका नाम पोषण है।[2] पोषणका विभावन षष्ठ स्कन्धमें है।

५–ऊति

स्थिति कालमें मायामोहित जीवके प्राकृत-अप्राकृत कर्म द्वारा जि वासनाका उद्भव होता है, उस वासनाके उत्पन्न होनेसे जीव भविष्यमें भी शुभाशुभ फलका भोग करते हैं, यही ऊति है।[3] वास्तवमें कर्मकी गति है भी बड़ी गहन–गहना कर्मणो गतिः। बैकुण्ठके द्वारपाल जय-विजयको सनकादिकोंके द्वेषसे अशुभ वासना हुई और बहुत काल तक उनका जीवन नीरस रहा। अविद्यावश भी जीव अनेक कर्म-कलापोंमें उलझ गया है – अन्य अर्थमें, जिस सद्गुण और सदाचारोंके द्वारा कर्म-वासनाओंका त्याग और सद्वासनाओंका ग्रहण होता है, उनका वर्णन सप्तम स्कन्धमें है।

६–मन्वन्तर

महापुराणके इस लक्षणकी व्यवस्था अष्टम स्कन्धमें है। भागवतमें मनु धर्मकी व्याख्या 'सद्धर्म' शब्दसे की गयी है।[4] भगवानके द्वाराअ नुग्रह प्राप्त मन्वन्तर प्रतिपालित अर्थात् भिन्न-भिन्न मन्वन्तरमें अवस्थित मनु आदि साधुओंके चरित एवं उनसे आचरित तदीय उपासनाख्य सद्धर्म ही मन्वन्तर

---

१. भागवत : रक्षाच्युतावतारेहा विश्वस्यानु युगे-युगे।
तिर्यऽमर्त्यर्षिदेवेषु हन्यन्ते यैस्त्रयीद्विषः॥ १२।७।१४

२. वही पोषणं तदनुग्रहः २।१०।४ श्लोकांश

३. वही ऊतयः कर्मवासनाः २।१०।४ उत्तरार्द्ध

४. वही मन्वन्तराणि सद्धर्माः २।१०।४ उत्तरार्द्ध

है। मनु, देवता, मनुपुत्र, इन्द्र, सप्तर्षि और भगवानके अंशावतार—इन्हीं छः तत्वोंकी विशेषतासे युक्त समय ही मन्वन्तर है।[1] इन सभीका वर्णन भागवतमें स्थान-स्थानपर आता है। पृथ्क-पृथ्क प्रत्येक मनु अपने शासन-कालमें सद्धर्मकी रक्षा और प्रचार करते हैं और इनके पुत्र ऋषि, देवता आदि स्थान-स्थानपर गुप्त रूपसे रहकर धार्मिकोंकी सहायता करते हैं, अधिकारी पुरुषोंके सान्मुख्यमें प्रकट होते हैं और उद्धारका साधन भी बतलाते हैं।

७–ईशानुकथा

यह लक्षण भागवतमें नवम स्कन्धमें वर्णित है। भगवान्‌के विभिन्न अवतारोंके और उनके प्रेमी भक्तोंकी विविध आख्यानसे युक्त गाथाएँ ईशकथा है–

अवतारानुचरितं हरेश्चास्यानुवर्तिनाम्।
सतामीशकथाः प्रोक्ता नानाख्यानोपबृंहिताः ॥[2]

अवतार-आविर्भाव इस तथ्यके प्रतीक हैं। जल, स्थल और आकाशमें रहनेवाले सभी प्राणी भगवान्‌की अभिव्यक्तिके स्थल हैं। कोई भी योनिहीन नहीं है। सभीमें परमात्माका दर्शन कर आश्रयस्वरूप भगवान्‌की दयाका स्मरण करके मुग्ध होते रहना चाहिये। जहाँ तक भक्तोंका प्रश्न है, भगवान् और भक्तमें कोई अन्तर नहीं रह जाता–

तस्मिंस्तज्जने भेदाभावात्।[3]

८–निरोध

जब भगवान् योगनिद्रा स्वीकार करके शयन करते हैं, तब जीवका अपनी उपाधियोंके साथ उनमें लीन हो जाना निरोध है।[4] यह सृष्टि और उसकी स्थिति प्रलयोन्मुखी है। इन विश्वब्रह्माण्डका स्वभावसे ही प्रलय होता

---

१. वही – मन्वन्तरं मनुर्देवा मनुपुत्राः सुरेश्वरः।
ऋषयोऽशांवताराश्च हरेः षड्विधमुच्यते ॥ १२।७।१५

२. भागवत २।१०।५

३. ख नारदभक्तिसूत्र ४१

४. भागवत – निरोधो स्यानुशयनमात्मानः सह शक्तिभिः २।१०।६ पूर्वार्द्ध

है, तत्वज्ञ विद्वान अन्य अर्थमें इसको 'संस्था' कहते हैं।[1] महापुराणके इस लक्षणका द्योतन भागवतके दशम स्कन्धमें है। परमात्माके अतिरिक्त जो कुछ स्थावर-जंगमात्मक जगत् दीख रहा है, उसकी अन्तिम गति प्रलय है। अवतार ले-लेकर भगवान् उसकी विपरीत गतिका निरोध करते ही रहते हैं, जब तमोगुण अधिक बढ़ जाता है, तब भगवान् नवीन रूपसे सात्विक सृष्टि करनेके लिये इस जगत्का प्रलय कर दिया करते हैं।[2]

६–मुक्ति

'मुक्तिर्हित्वान्यथारूपं स्वरूपेण व्यवस्थितिः'[3] अर्थात् अज्ञान-कल्पित कर्तत्व, भोक्तृत्व आदि अनात्मभावका परित्याग करके अपने वास्तविक जैव-स्वरूपमें किसी किसीका भगवत्पार्षदके रूपमें स्थित होना ही मुक्ति है। मुक्तिका निवर्चन एकादशवे स्कन्धमें है। आत्यन्तिक प्रलयको ही मुक्ति कहते है। भागवतमें सालोक्य, सार्ष्टि, सामीप्य, सारुप्य और सायुज्य पांच प्रकारकी मुक्तियोंका वर्णन है। भागवतमें सर्वश्रेष्ठ मुक्तिका स्वरूप है कि भोग और मोक्षकी कोई कामना न रहे 'नैरपेक्ष्यं परं प्राहुर्निःश्रेयसमनल्पकम्' अर्थात् परम निरपेक्षता ही सर्वश्रेष्ठ निःश्रेयस है। जो मुक्ति चाहता है, उसके द्वारा मुक्ति चाहना ही आवरण है, इसे छोड़ देनेपर मुक्ति स्वतः सिद्ध है। यही मुक्ति वास्तविक मुक्ति है।

आश्रय :

आश्रयका आश्रयण द्वादशवें स्कन्धमें है। दशम स्कन्धका लक्षित दशम पदार्थ ही आश्रय तत्व श्रीकृष्ण है।[4] इस चराचर जगत्की उत्पत्ति और प्रलय जिस तत्वसे प्रकाशित होते हैं, वह परम ब्रह्म ही 'आश्रय' है। शास्त्रों में उसीको परमात्मा कहा गया है।[5] आश्रयत्वकी उपलब्धिके लिये ही

---

१. भागवत – नैमित्तिकः प्राकृतिको नित्य आत्यन्तिको लयः।
संस्थेति कविभिः प्रोक्ता चतुर्धास्य स्वभावतः॥ - १२।७।१७

२. परित्राणाय साधूनां विनाशाय च दुष्कृताम्।
धर्मसंस्थापनार्थाय संभवामि युगे- युगे॥ श्रीमद्भगवद्गीता ४।८

३. भागवत २।१०।६ उत्तरार्द्ध

४. तत्व सन्दर्भ अनु० ५७

५. भागवत – आभासश्च निरोधश्च यतश्चाध्यवसीयते।
स आश्रयः परं ब्रह्म परमात्मेति शब्द्यते॥ २।१०।७

सर्गादि नौ विषयोंका वर्णन हुआ है। सर्गादिके वर्णन द्वारा भगवानकी अनन्त महिमा और स्वरूपका बोध कराकर अविद्याको निवृत्त कर देना ही श्रीमद्-भागवतका उद्देश्य है। यों तो भागवतके प्रत्येक स्कन्धमें ही आश्रयका निरूपण किया गया है, तथापि अप्राकृत सर्वगुण-सर्वशक्तिसम्पन्न आश्रयका दशम स्कन्धमें सविस्तार विस्तार हुआ है। तथापि द्वादश स्कन्धमें वर्णित कुछ प्रसंगोंके आधारपर शंकराचार्य आदि भगवान्‌को निर्गुण-निराकार ही मानते हैं,[1] यह नितान्त भ्रम है। भागवतकी चतुःश्लोकीमें जिस परमतत्वका वर्णन किया है, वह भी आश्रय-तत्वका रूप ही है।

महापुराणीय दश लक्षणोंकी व्यवस्था द्वादश स्कन्धात्मक महापुराणमें तृतीय स्कन्धसे प्रारम्भ है, जो दशसंख्यक होनेपर द्वादश स्कन्ध पर्यन्त व्यवस्थित है। लक्षणोंका निवर्चन द्वितीय स्कन्धमें है। अष्टम लक्षण 'निरोध' अष्टम स्कन्धमें नहीं दशम स्कन्धमें ही विवेचित है। इस स्कन्धमें श्रीकृष्ण 'रूप' आश्रय तत्वका प्राधान्य है, आश्रय विग्रहकी लीला है। प्रथम स्कन्ध अधिकार-प्राधान्यसे है और द्वितीय साधन-प्राधान्यसे

अत्र सर्गो विसर्गश्च स्थानं पोषणमूतयः ॥
मन्वन्तरेशानुकथा निरोधो मुक्तिराश्रयः ।
अधिकारी साधनानि द्वादशार्थास्ततोऽत्र हि ॥
निरुप्य संखया स्कन्धा हि द्वादशेव न चान्यथा ।
तृतीयादिदशस्कन्धैर्लीला दशाविधोदिता ॥
श्रोतुर्वक्तुश्च लक्ष्माद्ये द्वितीये त्वंगनिर्णयः ।
इतीदं द्वादशस्कन्धं पुराणं हरिरेव सः ॥[2]

सर्गादि नौ पदार्थोंका ज्ञान होनेपर ही आश्रय-स्वरूप श्रीकृष्ण ज्ञात हो सकते हैं क्योंकि इनके द्वारा विश्वकी सृष्टि स्थिति अवगत होती है। इन नौ पदार्थोंका कर्तृत्व श्रीकृष्णमें पर्यवसित होता है—

दशमे दशमं लक्ष्यभाश्रिताश्रयविग्रहम् ।
श्रीकृष्णाख्यं परं धाम जगद्धाम नमामि तत् ॥[3]

---

१. शारीरिक भाष्य ३।२।११

२. भागवतार्थ प्रकरणम् १।३–६

३. भागवत १०।१।१ भावार्थ दीपिका टीका : कृत श्रीधरस्वामि

निष्कर्षतः लाक्षणिक आधारपर श्रीमद्‌भागवत महापुराणात्मक काव्य है जिसका पद-पद श्रीकृष्णका वैशिष्ट्य है।

कथा-नायक श्रीकृष्णकी कथाका प्रकटन और विस्तार :

संवादात्मक पुराण श्रीमद्‌भागवत संवादोंके माध्यमसे प्रकटित और विस्तृत हुई है। दो परम्पराओंका वर्णन श्रीमद्‌भागवतमें है। प्रथम परम्पराके वक्ता श्रीशुक और द्वितीय परम्पराके वक्ता मैत्रेय ऋषि हैं। दोनों परम्पराओंका समावेश सूतजीमें है। व्यास कृत मंगलाचरणके पश्चात् जिज्ञासु शौनकादि ऋषि सूतजीसे प्रश्न करते हैं, उन्हीं प्रश्नोंके उत्तर-स्वरूप कथा-नायक श्रीकृष्णकी कथा प्रकटित होती है और प्रश्नोंके आधारपर ही विस्तृत होती है। इन ऋषियों द्वारा 'भगवत्-प्राप्तिकी-इच्छा' से ही नैमिषारण्य क्षेत्रमें अनुष्ठान किया गया था।[1]

भागवतमें कथाका प्रकटन 'शौनकादि ऋषियोंके प्रश्न : श्रीकृष्ण कथा-औत्कण्ठोदय, विस्तार तथा कथा-क्रम वैशिष्ट्यमें और शिल्प विधानका वर्णन स्कन्धोंका लीलापरक विनियोग' में किया जायेगा।

शौनकादि ऋषियोंके प्रश्न : श्रीकृष्ण कथा औत्कण्ठोदय :

उत्कण्ठा चेतसोऽपि स्यात् कथाप्रक्षेपणं ततः।
ततो विशेषप्रश्नश्चेद्वाच्यं रीतिरियं सदा॥[2]

अर्थात् प्रश्न करनेपर उत्तर दे, भागवतकी यह रीति है; किंबा सामान्य रूपसे कथा-श्रवणोत्कण्ठा, उत्कण्ठा होनेपर कथा सुनाना, कोई विशेष प्रश्न यदि वक्ता करे तो उसका उत्तर बतलाना, सम्पूर्ण भागवतमें यही रीति है।

प्रारम्भमें ही सूतजीकी प्रशंसा करते हुये शौनकादि ऋषियोंने श्रीसूतजीके समक्ष छः प्रश्न रखे–

१. जीवोंका श्रेय साधन सम्बन्धी प्रश्न :

तत्र तत्राञ्जसाऽऽयुष्मन्भवता यद्विनिश्चितम्।
पुंसामेकान्ततः श्रेयस्तन्नः शंसितुमर्हसि॥[3]

---

१. भागवत १।१।४
२. भागवतार्थ प्रकरणम् १।२५
३. भागवत १।१।६,

अर्थात् आपने समस्त इतिहास, पुराण और धर्मशास्त्रोंका विधिपूर्वक अध्ययन किया है, ये आयुष्मन् ! आप कृपा करके यह बतलाइये कि उन सब शास्त्रों, पुराणों और गुरुजनोंके उपदेशोंमें कलियुगी जीवोंके परम कल्याणका सहज साधन आपने क्या निश्चित किया है ?

२. श्रोतव्य-सार सम्बन्धी प्रश्न :

प्रायेणाल्पायुषः सभ्य कलावस्मिन्युगे जनाः ।
मन्दाः सुमन्दमतयो मन्दभाग्या ह्युपद्रुताः ॥
भूरीणि भूरिकर्माणि श्रोतव्यानि विभागशः ।
अतः साधोऽत्र यत्सारं समुद्धृत्य मनीषया ।
ब्रूहि नः श्रद्दधानानां येनात्मा सम्प्रसीदति ॥[1]

अर्थात् हे सूतजी ! आप सन्त-समाजके भूषण हैं । इस कलियुगमें प्रायः लोगोंकी आयु अल्प हो गयी है । साधन करनेमें लोगोंकी रुचि और प्रवृत्ति भी नहीं है । लोग आलसी हो गये हैं । उनका भाग्य तो मन्द है ही, समझ भी थोड़ी है, इसके साथ ही वे नाना प्रकारकी विघ्न बाधाओंसे भी घिरे रहते हैं । शास्त्र भी बहुतसे हैं । परन्तु उनमें एक निश्चित साधन नहीं, अनेक प्रकारके कर्मोंका वर्णन है । साथ ही वे इतने बड़े हैं कि उनका एक अंश सुनना भी कठिन है । आप परोपकारी हैं । जिससे हमारे अन्तःकरण की शुद्धि प्राप्त हो, अपनी बुद्धिसे सार निकालकर प्राणियोंके परम कल्याणके लिये हम श्रद्धालुओंको सुनाइये ।

३. वासुदेव-चरित सम्बन्धी प्रश्न :

सूत ! जानासि भद्रं ते भगवान् सात्वतां पतिः ।
देवक्यां वसुदेवस्य जातो यस्य चिकीर्षया ॥[2]

अर्थात् हे सूतजी ! आपका कल्याण हो । आप तो जानते ही है कि यदुवंशियोंके रक्षक भक्तवत्सल भगवान् श्रीकृष्ण वसुदेवकी धर्मपत्नी देवकीके गर्भसे क्या करनेकी इच्छासे अवतीर्ण हुये थे ?

४. अवतार-लीला सम्बन्धी प्रश्न :

तन्नः शुश्रूषमाणानामर्हस्यंगानुवर्णितुम् ।
यस्यावतारो भूतानां क्षेमाय च भवाय च ॥[3]

---

१. भागवत १।१।१०–११

२. भागवत १।१।१२		३. वही १।१।१३–१७

अर्थात् हे निष्पाप ! भगवान्का अवतार जीवोंके परम कल्याण और उनकी भगवत्प्रेममयी समृद्धिके लिये ही होता है, आप कृपा करके हमारे लिये उसका वर्णन कीजिये, हम उसे सुनना चाहते हैं।

५. श्रीकृष्ण लीला–यश सम्बन्धी प्रश्न :

को वा भगवतस्तस्य पुण्यश्लोकेऽयकर्मणः ।

शुद्धिकामो न श‍ृणुयाद्यशः कलिमलापहम् ।।[1]

अर्थात् सूतजी ! ऐसे पुण्यात्मा भक्त जिनकी लीलाओंका गान करते रहते हैं, उन भगवानका कलिमलहारी पवित्र यश भला आत्मशुद्धिकी इच्छा-वाला ऐसा कौन मनुष्य होगा, जो श्रवण न करे ?

६. धर्म–शरण सम्बन्धी प्रश्न :

ब्रूहि योगेश्वरे कृष्णे ब्रह्मण्ये धर्मवर्मणि ।
स्वां काष्ठामधुनोपेतो धर्मः कं शरणं गतः ।।[2]

अर्थात् हे सूतजी ! धर्मरक्षक, ब्राह्मणभक्त, योगेश्वर भगवान् श्रीकृष्ण-के अपने धाममें पधार जानेपर धर्मने अब किसकी शरण ली है, यह बताइये।

इन प्रश्नोंमें उत्तरोत्तर प्राधान्य है। उत्तरोत्तरसे पूर्व-पूर्व बाधक नहीं है। प्रश्नोंके मध्य ही श्रीकृष्ण 'प्रकट' हो गये हैं। सूतजीके द्वारा प्रथम तो प्रश्नोंकी प्रशंसा की गई है, तदुपरान्त छःहों प्रश्नोंके उत्तर दिये हैं। श्री-कृष्णकी कथा रहस्यमयी और मनोरम होनेसे श्रोताओंकी उत्कण्ठाके आधारपर द्वादश स्कन्ध तक वर्णित हुई है। इन प्रश्नोंके उत्तर क्रमशः इस प्रकार हैं–

सूतजीके उत्तर

१. श्रीकृष्ण भक्ति ही श्रेय :

स वै पुंसा परो धर्मो यतो भक्तिरधोक्षजे।

अहैतुक्यप्रतिहता ययाऽऽत्मा सम्प्रसीदति ।।[3]

अर्थात् मनुष्योंके लिये सर्वश्रेष्ठ धर्म वही है, जिससे भगवान् श्रीकृष्ण में भक्ति हो - भक्ति भी ऐसी, जिसमें किसी प्रकारकी कामना न हो और जो नित्य-निरन्तर बनी रहे, ऐसी भक्तिसे हृदय आनन्दस्वरूप परमात्माकी उप-लब्धि करके कृतकृत्य हो जाता है।

---

१. भागवत १।१।१६, १८–१२, २. वही १।१।२३, ३. वही १।२।६

श्रीकृष्ण भक्ति-माहात्म्यकी चर्चा सभी स्कन्धोंमें है ।[1]

२. परम सार : अद्वय ज्ञान तत्व

वदन्ति तत्तत्वविदस्तत्वं यज्ज्ञानमद्वयम् ।
ब्रह्मेति परमात्मेति भगवानिति शब्द्यते ।।[2]

अर्थात् तत्ववेत्ता लोग अद्वयज्ञान अर्थात् एक अद्वितीय सच्चिदानन्द स्वरूप वास्तव वस्तुको ही तत्व (परमार्थ) कहते हैं । उसीको कोई ब्रह्म, कोई परमात्मा और कोई भगवान्के नामसे पुकारते हैं ।

जीवनका फल है तत्वजिज्ञासा । भागवतका प्रारम्भ है जैसे 'अथातो तत्वजिज्ञासा' । शौनकादि तत्त्वके प्रति जिज्ञासु है । षडैश्वर्य सम्पन्न लीला-पुरुषोत्तम श्यामसुन्दर ही अद्वयज्ञान परतत्त्व हैं । इन्हींको भागवतमें प्रायश: ब्रह्म, परब्रह्म, परमात्मा, योगेश्वर, भगवान्, स्वयं-भगवान् कहते हुये लीला-विग्रहस्वरुप उनके भक्त-मनोहारी एवं त्रिजगन्मानसाकर्षी लीलाओंको प्रकाशित किया है । श्रीकृष्ण ही एकमात्र परम तत्त्व हैं, ब्रह्म और परमात्माके आश्रय है और उनका ही सम्पूर्ण भागवतमें विस्तार है ।[3]

३. अवतार प्रयोजन : भूभार हरण

'भुवो भगवानहरद्भरम्'[4] अर्थात् भगवान् श्रीकृष्ण पृथ्वीका भार हरण करनेके लिये ही देवकीके गर्भसे प्रकट हुये थे ।

भगवान् श्रीकृष्णने अनेकों दुष्टों जैसे शिशुपाल, दन्तवक्त्र, कंस, पूतना आदिका बध करके पृथ्वीका भार हरण किया और प्राणियोंकी रक्षा की । भक्तोंके चित्तका अनुरंजन भी उनके अवतारका प्रयोजन था—

भूभारहरणं, धर्म संस्थापन, साधु परित्राण ।
दैत्य विनाशन व भक्त चित्त विनोदन ।।

---

१. भागवत : तुलनीय : एतावानेव लोकेऽस्मिन् पुंसां धर्मः परः स्मृतः ।
भक्तियोगो भगवति तन्नामग्रहणादिभिः ।।
६।३।२२

२. वही १।२।११

३. वही - तुलनीय : कृष्णाय वासुदेवाय हरये परमात्मने ।
प्रणतक्लेशनाशाय गोविन्दाय नमो नमः ।। १०।७३।१६

४. भागवत १।३।२३,

४. अवतार-वर्णन :

प्रथम स्कन्धके तृतीय अध्यायमें भगवान्के अवतारोंका वर्णन है। यहाँ भगवान्के बाईस अवतारोंकी गणना की गई है। परन्तु उनके असंख्य अवतार हैं। सार रूपमें—

अवतारा ह्यसंख्येया हरेः सत्वनिधेर्द्विजाः।
यथाऽविदासिनः कुल्याः सरसः स्युः सहस्रशः॥
ऋषयो मनवो देवा मनुपुत्रा महौजसः।
कलाः सर्वे हरेरेव सप्रजापतयस्तथा॥[१]

अर्थात् शौनकादि ऋषियों! जैसे अगाध सरोवरसे हजारों छोटे-छोटे नाले निकलते हैं, वैसे ही सत्वनिधि भगवान् श्री हरिके असंख्य अवतार हुआ करते हैं। ऋषि, मनु, देवता, प्रजापति वे सब-के सब भगवान्के ही अंश विभूति हैं। ये सब अवतार तो भगवान्के कलावतार है, परन्तु भगवान् श्रीकृष्ण तो स्वयं भगवान् (अवतारी) ही है। जब लोग दैत्योंके अत्याचारसे व्याकुल हो उठते हैं, तब युग-युगमें अनेक रूप धारण करके भगवान् उनको रक्षा करते हैं—

एते चांशकलाः पुंसः कृष्णस्तु भगवान्स्वयम्।
इन्द्रारिव्याकुलं लोकं मृड़यन्ति युगे-युगे॥[२]

भगवानके सभी अवतारोंका वर्णन श्रोताओंकी उत्कण्ठाके आधारपर विस्तारसे हुआ है। वाराह और कपिल अवतारकी कथा तृतीय स्कन्धमें, अंशावतार मनुका व तुर्थ स्कन्धमें, नृसिंह अवतार सप्तम स्कन्धमें, वामन-अवतार अष्टम स्कन्धमें, श्रीराम अवतार नवम स्कन्धमें और श्रीकृष्णके अवतारका वर्णन प्रधान रूपसे दशम स्कन्ध किन्तु सम्पूर्ण भागवतमें ही हुआ है।

५. श्रीकृष्ण-लीला रति वर्णन :

श्रीसूतजी शौनकादिके प्रश्नोंका समर्थन करते हुये कहते हैं—

तस्मादेकेन मनसा भगवान्सात्वतांपतिः।
श्रोतव्यः कीर्तितव्यश्च ध्येयः पूज्यश्च नित्यदा॥
यदनुध्यासिना युक्ताः कर्मग्रन्थिनिबन्धनम्।
छिन्दन्ति कोविदास्तस्य को न कुर्यात्कथारतिम्॥[३]

---

१. भागवत १।३।२६—२७ २. वही १।३।२८
३. वही १।२।१४—१५

अर्थात् शौनकादि ऋषियों ! एकाग्र मनसे भक्तवत्सल भगवान्का ही नित्य-निरन्तर श्रवण, कीर्तन, ध्यान और आराधन करना चाहिये। कर्मोकी गांठ बड़ी कड़ी हैं। विचारवान् पुरुष भगवान्के चिन्तनकी तलवारसे उस गांठ को काट डाल देते हैं। तब भला, ऐसा कौन मनुष्य होगा, जो भगवान्की लीला-कथामें प्रेम न करे।

अद्वितीय दीपक भागवतके सभी पात्र श्रीकृष्ण-रति परायण हैं।

६. धर्मकी शरण श्रीमद्भागवत :

श्रीश्रीगोलोक वृन्दावनपति कृष्णचन्द्रके द्वारा प्रपंचगत लीलाको अप्रकट करनेपर, उन्हींसे अभिन्न भागवत-पुराण-भास्करका आश्रय धर्मने लिया है। इससे जीवोंका कल्याण होता है—

कृष्णे स्वधामोपगते धर्मज्ञानादिभिः सह ।।
कलौ नष्टदृशामेष पुराणार्कोऽधुनोदितः ।
तत्र कीर्तयतो विप्रा विप्रर्षेर्भूरितेजसः ।।[1]

भागवत और भगवान्, भगवान् और भागवत अभिन्न है। इसका कारण है भागवतमें भगवान् द्वारा अपना तेज स्थापित करना।[2]

श्रीकृष्ण-कथा औत्कण्ठोदय :

परम्परा प्रकटित भागवतमें नारदजी ब्रह्माजीसे पूछ ही तो बैठे—पिताजी ! इस संसारका क्या लक्षण है ? इसका आधार क्या है ? इसका निर्माण किसने किया है ? इसका प्रलय किसमें होता है ? यह किसके अधीन है ? और वास्तवमें यह है क्या वस्तु ? आप इसका तत्व बतलाइये।[3] इस प्रकार उत्कण्ठा होनेपर श्रीब्रह्मा वासुदेव कृष्णकी वन्दना कर उनकी लीला-कथाका वर्णन करने लगे।

---

१. भागवत १।३।४५-४३

२. वही : तुलनीय : **स्वकीयं यद्भवेत्तेजस्तच्च भागवतेऽदधात् ।**
तिरोधाय प्रविष्टोऽयं श्रीमद्भागवतार्णवम् ।।
तेनेयं वाङमयी मूर्तिः प्रत्यक्षा वर्तते हरेः ।
सेवनाच्छ्रवणात्पाठाच्छ्रर्शनात्पापनाशिनी ।।
—पद्मपुराण, भा०मा० ३।६१—६२

३. वही २।५।२

श्रीव्यास असन्तुष्ट ही रहे अनेकों शास्त्रोंकी रचनाके बाद भी। नारद जी कहने लगे 'आपने भगवानके निर्मल यशका गान नहीं किया है।'[1] व्यासमें उत्कण्ठा हुई, फलतः नारदजीने भागवत प्रकट की।

योगी श्रीशुक तो जन-समुदायके समक्ष अप्रकट ही रहते थे, वह भी श्रीकृष्ण सम्बन्धी तीन श्लोक बर्हापीडं नटवरवपुः—इत्यादि सुनकर श्रीकृष्णकी लीला-कथाके प्रति उत्कण्ठित हुए हैं।[2]

इधर मैत्रेयजीने विदुरकी उत्कण्ठाको शान्त किया है। विदुरने प्रश्न किया त्रिलोकीके नियन्ता और परम स्वतन्त्र श्रीहरि अवतार लेकर जो-जो लीलाएँ करते हैं—वह सब रहस्य आप हमें सुनाइये।[3] विदुरजीने श्रीकृष्णकी कथा कह सुनायी।

श्रीसूतजी कहते हैं—शौनकादि ऋषियों! जब महातेजस्वी श्रीशुक इस भागवत पुराणकी कथा परीक्षितको सुना रहे थे, तब मैं भी वहाँ बैठा था।[4] परीक्षितने भगवान् श्रीकृष्णमें सुदृढ़ आत्मभावको प्राप्त होकर बड़ी श्रद्धासे भगवान् श्रीकृष्णकी महिमा सुननेके लिये श्रीशुकसे यही प्रश्न किये; जिन्हें आपलोग मुझसे सुन रहे हैं।[5]

श्रीशुक कहते हैं, परीक्षित तुमने मुझसे जो प्रश्न किये हैं उनके उत्तरमें परम्परासे प्राप्त भागवतपुराणके रूपमें देता हूँ।[6]

श्रीकृष्णके समकालीन लोग भी श्रीकृष्ण-कथाके प्रति उत्कण्ठित हैं। गोपी, उद्धव सभी श्रीकृष्णसे प्रभावित हैं। भीष्मपितामह तो श्रीकृष्णका प्रभाव जानते ही थे। शरशय्यापर ही उन्होंने लीलासे मनुष्यका वेश धारण करके श्रीकृष्णकी जगदीश्वरके रूपमें हृदयमें विराजमान उनकी बाहर तथा भीतर दोनों जगह पूजा की।[7] भीष्म श्रीकृष्णको साक्षात् भगवान् मानते हैं—

---

१. वही १।५।८

२. भागवत ३।५।५-६, ३. वही १।३।४४, ४. (क) वही २।४।४

४. (ख) वही - अथाभिधेह्यङ्ग मनोऽनुकूलं प्रभाषसे भागवतप्रधानः।
यदाह वैयासकिरात्मविद्याविशारदो नृपतिं साधु पृष्टः॥

५. वही २।८।४५, ६. वही १।८।१०, ७. वही १।८।१८-१९

एष वै भगवान् साक्षादाद्यो नारायणः पुमान् ।
मोहयन्मायया लोकं गूढश्चरति वृष्णिषु ।।
अस्यानुभावं भगवान् वेद गुह्यतमं शिवः ।
देवर्षिर्नारदः साक्षाद् भगवान् कपिलो नृप ।।[1]

इस प्रकार उस समय सभी उपस्थित लोग श्रीकृष्णको भगवान् ही मानते हैं। किसी भी वस्तुके निर्माणके लिये आधारको निर्मित करना होता है। श्रीकृष्णकी कथाके लिये सूतजीने अश्वत्थामा आदि प्रसंगोंसे धरा का निर्माण किया है। इसी प्रसंगमें राजर्षि परीक्षितके जन्म, कर्म और मोक्षकी तथा पाण्डवोंके स्वर्गारोहणकी कथा कही गई, क्योंकि इन्हींसे भगवान् श्रीकृष्णकी अनेकों कथाओंका उदय होता है।[2] सभी कथाओं और सभी तत्वोंका पर्यवसान श्रीकृष्णमें ही है। तभी तो सभी पात्र श्रीकृष्ण-लीलासे अतृप्त रहे हैं और उत्कण्ठा वृद्धिको प्राप्त करती चली गयी है। वसुदेवकी उत्कण्ठा, देवकीकी उत्कण्ठा, युधिष्ठिरकी उत्कण्ठा, अर्जुनकी उत्कण्ठा, द्रौपदी-कुन्तीकी उत्कण्ठा, व्यास-नारद-ब्रह्माकी उत्कण्ठा, शौनकादिकी उत्कण्ठा, शुक-परीक्षितकी उत्कण्ठा, सांख्यायन-मैत्रेय-विदुरकी उत्कण्ठा, गोपियोंकी उत्कण्ठा, ब्रह्मा-इन्द्रकी उत्कण्ठा, कंस-शिशुपालकी उत्कण्ठा, रुक्मिणीकी उत्कण्ठा निश्चयेन पृथक्-पृथक् कारणोंसे है, तथापि ये उत्कण्ठाएँ प्रथम स्कन्धके प्रारम्भसे द्वादश स्कन्ध पर्यन्त श्रीकृष्णकी कथाओंके उदयकी मूलस्रोतस्वती हैं—इस स्रोतमें सृष्टि-स्थिति-प्रलय आदि तत्त्वोंकी उत्कण्ठा तो उपराम हो जाती है, सभी पात्र श्रीकृष्णसे जुड़ जाते हैं और जुड़ते हैं श्रीकृष्णकी कथासे ही। ये सभी अजस्र रूपसे उत्कण्ठित हैं, रहेंगे-वासुदेवकथायां ते यज्जाता नैष्ठिकी रतिः।[3]

कथा-क्रम वैशिष्ट्य :

श्रीमद्भागवतमें ज्ञान-विज्ञान-रहस्य और तदंग ये चार विषय आलोच्य कहे हैं—

---

१. भागवत १।६।१८

२. भागवत – परीक्षितोऽथ राजर्षेर्जन्मकर्मविलापनम् ।
संस्थां च पाण्डुपुत्राणां वक्ष्ये कृष्णकथोदयम् ।। १।७।१२

३. भागवत १०।१।१५

ज्ञान–शास्त्रार्थ बोधका नाम ज्ञान है।
विज्ञान–तत्वानुभूतिका नाम विज्ञान है।
रहस्य–प्रेम भक्ति ही रहस्य है।
तदंग–साधनभक्ति ही तदंग है।

यही चतुःश्लोकी है और भागवत-चतुःश्लोककी परिणति है। यही चार भागवतके अनुबन्ध चतुष्टय है–इन्हींमें समग्र शास्त्र द्वारा वर्णनीय विषयोंका प्रतिपादन है। प्रधानतः भागवतमें तीन विषय परिवेष्टित हैं–[1]

१. सम्बन्ध – मूल वाच्य तत्व ही सम्बन्ध है।

२. अभिधेय – प्रयोजन-प्राप्तिके लिए कर्तव्यका निर्धारण ही अभिधेय है। अर्थात् प्रयोजन-प्राप्तिका साधन ही अभिधेय है।

३. प्रयोजन – मूल प्राप्य तत्त्व ही प्रयोजन है।

सम्बन्ध तत्त्व :

'सम्बन्ध' में जड़ जगत् या मायिक तत्त्व, जीव या अधीन तत्व और भगवत् तत्त्वका निरुपण किया जाता है। भगवान् एक अद्वितीय हैं, वे सर्व-शक्ति सम्पन्न, सर्वाकर्षक, ऐश्वर्य और माधुर्यके एकमात्र निलय तथा जीव-शक्तिके आश्रय हैं। परम स्वतन्त्र स्वरूप हैं। उनके अंगोंकी प्रभा दूरसे निर्विशेष ब्रह्मके रूपमें प्रतिभाषित होती है। ऐश्वर्य प्रधान प्रकाशमें वे पर व्योममें - बैकुण्ठमें नारायण हैं और वहीं अपने माधुर्य प्रकाशमें वृन्दावनमें गोपीजनवल्लभ श्रीकृष्णचन्द्र हैं। उनके प्रकाश और विलास नित्य अनन्त हैं। उनके समान कोई या कुछ भी नहीं है। उनसे अधिक श्रेष्ठ होनेकी तो बात ही क्या हैं। उनकी पराशक्ति द्वारा उनके समस्त प्रकाश या विलास प्रकटित होते हैं। जीव और जड़के साथ भगवानका जो सम्बन्ध है - यही सम्बन्ध तत्व है। सम्पूर्ण भागवतका यही ज्ञान है और इसकी अनुभूति विज्ञान है। सम्बन्ध तत्त्वका रहस्य है 'प्रेम-भक्ति' और तदंग है साधन-भक्ति।[2]

इस सम्बन्ध तत्वकी व्याख्या हुई है – कथा, आख्यान, उपाख्यानों द्वारा। कथा-परिपुष्टिका क्रम अव्यवस्थित नहीं, विचित्र है। भागवतके सम्पूर्ण कथानकके आधारपर सम्बन्धका अर्थ है 'श्रीकृष्ण।' अभिधेय रूपमें साधन है

---

१. अतएव भागवते एइ तीन कय।
सम्बन्ध अभिधेय प्रयोजनमय॥ – चैतन्य चरितामृत २।२५।१०५

२. जैव-धर्म हिन्दी संस्करण पृष्ठ ५२

'भक्ति'। भागवतीय कथानकके आधारपर, इस स्थितिकी प्राप्तिका प्रयोजन है 'प्रेम'।

आमि सम्बन्ध तत्व, आमार ज्ञान-विज्ञान।
आमा पाइते साधन—भक्ति अभिधेय नाम॥
साधनेर-फल 'प्रेम'—मूल प्रयोजन।
सेई प्रेमे पाय जीव आभार सेवन॥[१]

कथा-केन्द्र : श्रीकृष्ण :

अखिल कथाके केन्द्र हैं श्रीकृष्ण। इसीलिये भागवतमें अव्यवस्थित प्रतीयमाना कथाको अव्यवस्थित नहीं माना जा सकता। कथा भी व्यवस्थित है और सारी घटनाएँ क्रमबद्ध हैं। श्रीकृष्णके चहूँ पर्यन्त ही कथाका ताना-बाना बुना गया है। जहाँ श्रीकृष्ण जाते हैं, कवि भी वहाँ पहुँच जाता है। कृष्णको छोड़कर कहीं भी कविने कथाका वर्णन नहीं किया। जिन प्रसंगोंमें श्रीकृष्ण अनुपस्थित हैं, वहाँ श्रीकृष्णके विरुद्ध किसी षड्यन्त्रकी रचनाकी जा रही होती है। जब सम्पूर्ण कथाका केन्द्र एक ही है वहाँ कथाके विश्रृंखलित होनेका प्रश्न ही नहीं उठता। आकाशवाणी आदि आश्चर्यजनक प्रसंगोंसे श्रीकृष्णकी कथाको रोमांचकारी गति प्रदान हुई है। उपकथाओंसे प्रमुख-कथाकी पुष्टि हुई है।

कथाके प्रबन्ध-सौष्ठवका पुराणात्मक ढंग है, भागवतकी वर्णन शैली पुराणात्मक है। श्रीकृष्णकी मूल-कथाके साथ-साथ अनेक प्रासंगिक कथाओं और घटनाओंको जो सम्मिलित किया गया है, उनकी योजना पुराण शैलीके आधारपर की गयी है। वक्ताओंके प्रश्न रखनेपर वक्ता विस्तृत उत्तर देते हैं; जो स्वच्छन्द कथाका ही रूप धारण कर लेते हैं। मूलकथासे पूर्व जो श्रीकृष्णके परमधामगमनकी चर्चा है, वह प्रसंग रुचि उत्पन्न करनेके लिये ही जोड़ा गया है। ये प्रसंग स्वतंत्र होते हुये भी श्रीकृष्णपर आधारित है। अतः कथा-क्रम विश्रृंखलित नहीं होता। कथा प्रबन्धकार सदैव दो युगोंमें विचरण करता है – कथा-युगमें तथा जीवन-युगमें। अतः ग्रन्थकी कथा सुनियोजित, प्रवाहयुक्त, क्रमबद्ध और श्रृंखलाबद्ध है।

भागवत कथा-चक्र तो विचित्र है ही, साथ ही कथा-वारण भी विचित्र है। श्रृंगी ऋषि द्वारा छोड़े गये अमोघ वाग्वज्रको निष्फल करनेकी सामर्थ्य

---

१. चैतन्य-चरितामृत २।५।१०५

किसमें थी ? इस वाग्वज्रको असम्भव करनेके लिये सम्भवतः सुदर्शन चक्रकी भी पहुंच न थी, तभी श्रीमद्भागवतका निःसरण हुआ, इसका कारण ही आध्यात्मिक है।

प्रश्न–उत्तरकी परम्परा

एकेन प्रश्नः, उत्तरं द्वयेन ! - एकके द्वारा प्रश्न, दूसरेके द्वारा उत्तर।[१] यह है भागवत कथाका क्रम। शौनकादि प्रश्न करते हैं–

कस्मिन् युगे प्रवृत्तेयं स्थाने वा केन हेतुना।[२] उत्तर रूपमें अनागत कथाका उदय हो जाता है। श्रीपरीक्षित कहते हैं–महाभाग्यवान शुकदेवजी। आप मुझे ऐसा उपदेश कीजिये कि मैं अपने आसक्तिरहित मनको सर्वात्मा भगवान् श्रीकृष्णमें तन्मय करके अपना शरीर छोड़ सकूं।[३] सूतजी कहते हैं–प्रश्नोंके उत्तरमें श्रीशुकदेवने जो कुछ कहा था, वही मैं आप लोगोंसे कहता हूँ।

मूल चतुःश्लोकी :

भागवतकी चतुश्लोकीके है – जिसके आधारपर भागवतका सम्पूर्ण कथानक आधारित है–

अहमेवासमेवाग्रे नान्यद्यत्सदसत्परम्।
पश्चादहं यदेतच्च योऽवशिष्यते सोऽस्म्यहम्॥
ऋतेऽर्थम् ....यथा महान्ति....एतावदेव॥[४]

अहमेवासमेवाग्रे–इस वाक्यके द्वारा 'आश्रय तत्व' कहा गया है, यह द्वादश स्कन्धमें वर्णित है। 'पश्चादहम्' से पुरुष-प्रधान आदिका वर्णन हुआ है - यह द्वितीय, तृतीय स्कन्धोंमें निरुपित है। 'यदेतच्च' इस वाक्यसे विसर्ग, स्थान, ऊति मन्वन्तर और ईशानुकथा आदिका वर्णन किया गया है – इनका सार है कि यह कार्य रूप जगत् है, वह भी भगवत् शक्तिसे उत्पन्न होनेसे भगवत्स्वरूप ही है। इसका संकेत चतुर्थ, पंचम, सप्तम, अष्टम एवं नवम स्कन्धोंमें हुआ है। 'योऽवशिष्यते सोऽस्म्यहम्' से निरोध कहा गया है, इसकी

---

१. भागवतार्थ प्रकरणम् कारिका ३६, प्रकाशटीका
२. भागवत १।४।३ पूर्वार्द्ध
३. वही २।८।३
४. भागवत २।९।३२-३५

ज्योति दशम स्कन्धमें ज्योतिसत है। 'ऋतेऽर्थम्' से मायाका निरूपण अर्थात् मायासे जगतकी सृष्टि, जीवका संसार-बन्धन और जीव ईश्वरका विभाग कहा गया है, यह समस्त ग्रन्थके उपाख्यानोंमें विकीरित रूपसे सुव्यवस्थित है। प्राधान्यरूपेण इसका द्योतन प्रथम स्कन्धमें हुआ है। 'यथा महान्ति' के द्वारा पोषण' कहा गया है यह षष्ट स्कन्धमें दीप्त है। 'एतावदेव' पदवाच्यके द्वारा साधनका वर्णन कर मुक्तिका-स्वरूप अवलोकित किया गया है यह एकादश स्कन्धमें प्रकाशित है।[1]

कल्प–भेद :

चतु:श्लोकी भागवतकी ओर 'पुरा मया प्रोक्तमजाय नाभ्ये पद्मे'-इस वाक्यको संगत करते हुये श्रीविश्वनाथ चक्रवर्ती भागवती-कथाकी ब्राह्मकल्प-की और जीवगोस्वामी पद्मकल्प (क्रमसन्दर्भमें) मानते हैं, इस प्रकार भागवत में जहाँ कथा-सूत्र में भेद दिखायी पड़ते हैं, उसका कारण है भगवान् श्रीकृष्ण-का अनेक कल्पोंमें अवतरण होता है। अतः भागवतमें कई कल्पोंकी कथा मिलाकर कही गयी है। श्रीकृष्णका पूर्णाविर्भाव सारस्वत कल्पमें होता है इसलिये सारस्वतीय कल्पकी कथाका प्रामुख्य है। पाद्मकल्प, ब्राह्मकल्प और वाराहकल्पका प्रसंगवश वर्णन है। सूतजी कहते हैं– श्रीशुकने परीक्षितको वही वेद तुल्य श्रीमद्भागवत महापुराण सुनाया, जो ब्राह्मकल्पके आरम्भमें स्वयं भगवान्ने ब्रह्माजीको सुनाया था–

प्राह भागवतं नाम पुराणं ब्रह्मसम्मितम्।
ब्रह्मणे भगवत्प्रोक्तं ब्रह्मकल्प उपागते॥[2]

इतिहास :

श्रीवेदव्यास द्वारा सर्ग आदि दस तत्त्वोंका वर्णन करते हुये एक ही कथानकमें (और कहीं-कहीं तो एक ही पद्यमें) मानव-इतिहासके साथ-साथ विज्ञान, अध्यात्म, दैवत एवं अन्यान्य धार्मिक तत्त्वोंका विमिश्रण हो गया है। एक सन्दर्भ उपक्रम और उपसंहारसे ऐतिहासिक प्रतीत होता है, परन्तु उसीके अन्तर्गत विज्ञान आदिका अंश ऐसे ढंगसे मिल-जुलकर तादात्म्य रूप हो रहा है कि जिसका पृथक्करण किये बिना ऐतिहासिक तथ्यको समझना कठिन हो जाता है। यदि कथानकको आद्यन्त इतिहास समझने लगें, तो तदन्तर्वर्ती

१. कल्याण, 'भागवतांक' पृष्ठ १६

२. भागवत ३।४।१३ पूर्वार्द्ध, ३. वही २।२।२८

अध्यात्म आदि विषयोंके विमिश्रित अंशमें अनेक प्रकारकी असंभवता, अश्लीलता, परस्पर विरुद्धता एवं धर्मविरुद्धताका आभाष प्रतीत होने लगता है, जिससे किसीका भी विशुद्ध ऐतिहासिक चरित्र जानना असम्भव हो जाता है। इसी प्रकार यदि आध्यात्मिक अंशको मुख्य मानकर तदनुरुप समस्त सन्दर्भका रूपक-प्राय: अर्थ समन्वय करने लगे, तब इतिहासपर पानी फिर जाता है।[1] भागवतका इतिहास महिमामय अवश्य है पर उसका सम्पूर्ण कथानकसे एकीकरण नहीं किया जा सकता। तब भी, यह इतिहास कथा-क्रमका वैशिष्ट्य है। क्योंकि भागवतका स्कन्धके बाद स्कन्ध, अध्यायके पश्चात् अध्याय, श्लोक एकके पश्चात् दूसरा गूढ़ एवं व्यवस्थित है।

भक्तिका प्राधान्य :

भागवत कथाका मुख्य लक्ष्य 'भक्ति' का प्रतिपादन करना है।[2] जितनी भी कथा-लीला-चरित्रोंका वर्णन है सबका पर्यवसान भक्तिमें है ही। सर्ग-विसर्ग कथा-वर्णन भी भक्तिका प्रतिपादन करते हैं। आदितोऽन्तपर्यन्त सम्पूर्ण कथा-क्रममें भक्तिका ही वैशिष्ट्य है। जिस प्रकार कथाओंका रहस्यार्थ भक्ति है, उसी प्रकार कथा-क्रमका रहस्य भी भक्ति है। कथा-क्रमका विकास भक्तिका विकास है और भक्तिका विकास कथा-क्रमका विकास है। अद्वितीय दीपक-भागवतका कथाक्रम आध्यात्मिक तत्वोंको प्रकाशित करनेवाला है। प्रथम स्कन्धमें भक्तिका स्वरुप, परिभाषा और माहात्म्यका वर्णन है और द्वादशमें, ग्रन्थके अन्तमें भक्तिकी ही याचना है। मध्यमें कथाओंके व्याजसे भक्तिका विवेचन है, अष्टम और नवम स्कन्धमें। द्वितीय, तृतीयमें भक्ति-योगकी महिमा और भक्तिका मर्म वर्णित है। चतुर्थ और पंचममें भक्तिका क्रियात्मक स्वरूप है, जो स्तुति और स्तोत्रोंसे प्रकट होता है। षष्ठ तो भक्ति-का केन्द्र है। सप्तम स्कन्धमें भक्तशिरोमणि प्रह्लादके आख्यान-द्वारा भक्ति-का महत्व प्रदर्शित किया है। दशम स्कन्ध तो भगवान् श्रीकृष्णकी लीलाओंका स्कन्ध होनेके कारण साक्षात् भक्तिका स्वरुप ही है। एकादश स्कन्धमें तो भागवतकारने भक्तिकी पूर्णरुपसे व्याख्या की है।

नाटकीय-विधान :

प्रत्येक कथाका बीज पहले प्रकट होता है और परिणति पश्चात्। श्रीकृष्णके स्वधामगमनकी चर्चा तो प्रथम स्कन्धमें ही है। सम्पूर्ण चरित्रकी

---

१. भागवत दर्शन : प्रथम भाग : श्रीभक्ति वेदान्त स्वामी महाराज

२. भागवत दर्शन : डा० शर्मा, पृष्ठ १३५

परिणति दशम स्कन्धमें है। प्रथम स्कन्धमें भगवान् श्रीकृष्णकी उपस्थितिमें क्या होता है और अनुपस्थितिमें क्या होता है, युधिष्ठिर आदिके चरित्रसे अवगत तो हो ही जाता है। तृतीय स्कन्धमें ज्ञान-लीलाकी धरा तैयार की गई, सम्पूर्णता प्राप्त हुई एकादश स्कन्धमें। अतः श्रीभगवान् द्वारा कह दिया गया है—

भक्तया पुमान्जातविराग ऐन्द्रियाद् दृष्टश्रुतान्मद्रचनानुचिन्तया।
चितस्य यतो ग्रहणे योगयुक्तो यतिष्यते ऋजुभिर्योगमार्गैः ॥[1]

परिच्छेदके अन्तमें पूरे परिच्छेदका सार और अगले परिच्छेदकी सूचना, नये परिच्छेदके प्रारम्भमें पूर्व परिच्छेदकी बात और नये परिच्छेदकी प्रस्तावना। भागतकी यह एक विशेषता है। भागवत क्रम यह है—

स्तर-क्रम—भागवतीय कथा नायक श्रीकृष्ण-कथाके चार स्तर हैं—

प्रथम स्तरः ऊपरी पटल—श्रीकृष्णके अवतारकी पूर्ण लीला।

भीतरी पटल—अंश कलाको दिखाकर पूर्ण कला : कृष्ण स्वयं-भगवान्

द्वितीय स्तर : भगवदाविर्भाव, श्रीकृष्ण अवतार-कथा-प्रारम्भ

तृतीय स्तर : विस्मयकारी चरित्र

चतुर्थ स्तर : माधुर्य भाव

रस-भाव-मूलक :

भक्तिका मूल है 'भाव' (श्रद्धा)। भावकी प्रधानताने किस मर्यादाको नहीं तोड़ा है! किस सीमाको पार नहीं किया है! किस आदर्शका उल्लंघन नहीं किया है! किस व्यवस्थाको नहीं बिखेरा है और किस बन्धको स्वीकार किया है और कब वह योजनाबद्ध तरीकेसे चलता है! 'तस्मारितान्तहृताखिलेन्द्रिय' श्रीशुकके भावने भागवतके कथा-क्रमको प्रभावित किया है।[2] व्यास समाधिमें भागवतकी कथा कहते हैं तो श्रीशुक प्रेमसमाधिस्थ होकर। उद्भट भाव उत्पन्न होनेपर तो सर्वत्र सर्वलीला होती है, किसी क्रम-शास्त्रकी मर्यादा नहीं रहती। इस ग्रन्थमें भी सर्वत्र सर्वलीला कही है, पूर्वोक्त क्रम

---

१. भागवत ३।२५।२६

२. भावा इति कस्मात्। किं भवन्तीति भावाः, किंवा भावयन्तीति भावाः ॥
नाट्यशास्त्र १०४

विवक्षित नहीं है। रसिकोंको और भावुकोंको भावनीय है, इसलिये क्रम है। व्युत्क्रम-वैशिष्ट्य भी भागवतका क्रम है। रसिक शिरोमणि, रसात्मा, रसेश्वर, अखिल रसामृतमूर्ति श्रीकृष्ण ही बिशिष्ट तत्त्व हैं, इसी 'रस' को द्वादश स्कन्ध रूप द्वादश रससे पुष्ट किया - क्रम-व्युत्क्रम-वैचित्र्य-वैशिष्ट्यका कारण स्यात् रसका पोषण है।

कथा-क्रम-प्रयोजन :

प्रत्येक कथाका फल कथान्तमें वर्णित है; किन्तु मुख्य प्रयोजन है अमृत महासागरसे भी मधुर उन लीलाओंका अनुशीलन-परिशीलन करते हुये अपवर्गसे भी उत्तम भगवद्रमणका आनन्द प्राप्त होना।

कथा-क्रम-वैशिष्ट्य

जिज्ञासु श्रोताओंके श्रीकृष्णकी भक्ति प्राप्त करनेका जो क्रम 'श्रीकृष्ण-प्रसंग' में बताया गया है, उसका प्रारूप इस प्रकार प्रस्तुत किया जा सकता है[1]

भागवतीय कथामे श्रीकृष्ण-प्राप्ति का क्रम

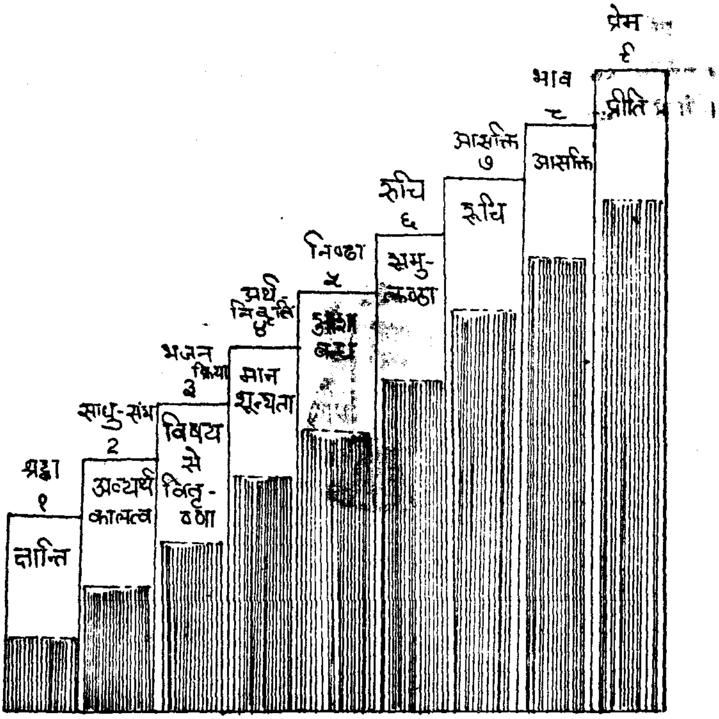

१. (क) श्रीकृष्ण-प्रसंग : गोपीनाथकविराज अनुवाद : कु० उर्मिला शर्मा, भारतीय विद्या प्रकाशन, वाराणसी पृष्ठ ३३८

(ख) क्षान्तिरव्यर्थकालत्वं विरक्तिर्मानशून्यता। आशाबन्धः समुत्कण्ठा नामगाने सदा रुचिः।
आसक्तिस्तद्गुणाख्याने प्रीतिस्तद्वसतिस्थले। इत्यादयोनुभावाः स्युर्जातभावाङ्कुरे जने ॥
— भक्तिरसामृतसिन्धु १।३।१५-१६

(ग) आदौ श्रद्धा ततः साधुसंगोऽथ भजन-क्रिया(भ०र०सि०१।४।१५।१६)

स्कन्धोंका लीलापरक विनियोग :

भगवत्स्वरूपका प्रतिपादन करना भागवती-कथाका मुख्य अर्थ है। रसस्वरूप भगवान् श्रीकृष्णकी लीला दस प्रकार की मानी गयी है। भगवान् श्रीकृष्णकी कथा ही बारहों स्कन्धोंमें है–

भागवत

भग-शब्दार्थका विवेचन	स्कन्ध विनियोग
ज्ञान	प्रथम, द्वितीय
वैराग्य	तृतीय, चतुर्थ
प्रभाव	पंचम, षष्टम
ऐश्वर्य	सप्तम, अष्टम
यश	नवम, दशम
श्री	एकादश, द्वादश

पुराणार्क :

'पुराणार्कोधुनोदितः'[1] इस उपदेशसे श्रीमद्भागवत मार्तण्ड रूप है, इसके बारह स्कन्ध द्वादश आदित्य हैं और द्वादशात्मा दिवाकर एक ही सूर्य बारह रूपोंमें प्रकाशित हैं। इस पक्षसे बारह स्कन्ध इस भास्करके बारह रूप हैं और यह भी है कि बारह स्कन्ध बारह राशि हैं। भागवत प्रतिपादित परमपुरुष भी द्वादशाङ्ग है। 'द्वादशो वै पुरुषः' यह श्रुति प्रमाण है। जिस प्रकार दसवीं राशिपर सूर्य नारायण उत्तरायण होते हैं, उसी प्रकार दशम स्कन्धमें उत्तरार्द्ध है, इस रीतिसे दशम स्कन्धसे तृतीय तक एक खण्ड (उत्तरायण) चतुर्थ स्कन्धसे नवम स्कन्ध तक एक खण्ड (दक्षिणायन) है।[2]

कार्य-कारण-सम्बन्ध :

श्रीमद्भागवतके सब स्कन्धोंमें परस्पर कार्य-कारण सम्बन्ध यथावत् है। जैसे अधिकारीके साधन प्रथम स्कन्धमें, साधनयुक्तोंके श्रवण दूसरेमें, सर्ग-लीला तृतीय स्कन्धमें, उत्पन्न हुये जीवोंके धर्मादि पुरुषार्थ साधन चतुर्थ-स्कन्धमें, सिद्ध पुरुषार्थोंके उन-उन मर्यादाके द्वारा स्थापन पंचम स्कन्धमें, उनमें-से किसीपर अनुग्रह छठे स्कन्धमें, अनुग्रह-प्राप्त जीवके वैषम्यदोषके

---

१. भागवत १।३।४४ श्लोकांश

२. श्रेयः भागवतांक : श्रीमद्भागवतकी श्लोक-संख्या (लेख) श्रीलक्ष्मणाचार्य पृष्ठ ३०७

परिहारके लिये वासना सप्तम स्कन्धमें, वासनाकी निवृत्तिके लिये सद्धर्म अष्टम स्कन्धमें, फिर निवृत्त जीवोंकी भक्ति नवममें, भक्तोंकी श्रीकृष्ण-लीलाके प्रति आसक्ति दशममें, आसक्तोंके स्वरूपके द्वारा व्यवस्थिति एकादशमें और व्यवस्थितोंका भगवदाश्रय द्वादशमें समुचित रूपसे वर्णन है।

अंगांगिभाव :

श्रीनन्दनन्दनके लीला-लता-विस्तार श्रीमद्भागवतमें सर्गादि लीलाका यथोत्तर अंगांगिभाव है, ये सभी आश्रयके शेष हैं। प्राकृत शरीर-रहित भगवानकी अप्राकृत स्वरूप-स्वीकृति ही सर्ग है, भगवान्‌के अंश कारणार्णवशायी विष्णूसे ब्रह्मादिकोंकी उत्पत्ति विसर्ग है, सबका आधार पद्मके व्यवस्थान (विभाग अथवा विस्तार) स्थान है—लोक संस्थानमें स्थित चेतनामें स्थित वर्गोंकी अभिवृद्धि पोषण है, पुण्योंका आचार ऊति है, सदाचार-मन्वन्तर है, भगवानकी भक्ति ईशानुकथा है, भगवद्भक्तोंके प्रपंच-भावका निरोध 'निरोध' है, निष्प्रपंचोंका स्वरूप-लाभ मुक्ति है, मुक्तोंको सर्वदेश, सर्वकाल, सर्वावस्थोचित् निरवच्छिन्न प्रेमसुखप्रदायक लीलापुरुषोत्तम ही आश्रय हैं।

अधिकार-लीला : प्रथम स्कन्ध-श्रोता-वक्ता :

अधिकारका प्रश्न पहिले आता है। कोई कार्य, कोई विद्या, कोई साधन, अधिकारी-विशेषके लिये ही होता है। अतः भागवतका प्रथम स्कन्ध अधिकार सूचित करनेवाला है। विवेचन इस प्रकार है—

अधिकारी निरुपण

कनिष्ठाधिकारी	मध्यमाधिकारी	उत्तमाधिकारी
अध्याय १–२–३	अध्याय ४–५–६	अध्याय ७–,–१९

कनिष्ठाधिकारी

अध्याय १	अध्याय २	अध्याय ३
श्रोता – जिज्ञासुत्व	मात्सर्यरहितत्व	श्रवणमें प्रीति
वक्ता – श्रुतभागवतत्व	चातुर्यवत्व	गुह्यज्ञानवत्व

मध्यमाधिकारी

अध्याय ४	अध्याय ५	अध्याय ६
श्रोता – भगवत्कृपा	भगवदीयत्व	भगवदेकत्व
वक्ता – भगवत्कृपा	भगवदीयत्व	भगवदेकत्व

उत्तमाधिकारी

दो पाद, दो हस्त, दो जानु, दो बाहु, दो स्तन, एक हृदय, एक शिर=अंगी श्रीकृष्णके अंग

अध्याय ७,१९

साधन लीला – द्वितीय स्कन्ध :

अधिकारीके लिये साधन। अत: दूसरा स्कन्ध साधन स्कन्ध है। उत्तम अधिकारी वक्ता शुकदेव; अत: द्वितीय स्कन्धमें उत्तम साधनका निरुपण है।

साधन-निरुपण

तत्वध्यान	हृत्प्रासाद	मनन
अध्याय १–२	अध्याय ३–४	अध्याय ५ - १०

प्रथम साधन - तत्वध्यान

स्थूलध्यान	सूक्ष्म ध्यान
अध्याय १	अध्याय २

द्वितीय साधन - हृत्प्रासाद

श्रोताका हृत्प्रसाद	वक्ताका हृत्प्रसाद
अध्याय ३	अध्याय ४

तृतीय साधन - मनन

- उत्पत्ति अध्याय ५-६-७
  - अनित्य जनन
  - परिच्छिन्न समागम
  - नित्य-अपरिच्छिन्न प्राकट्य
- उपपत्ति अध्याय ८-९-१०
  - आशंका
  - उत्तर
  - फल

सर्ग लीला - तृतीय स्कन्ध :

साधनका सम्पूर्ण निरूपण सृष्टिकालमें ही हो सकता है । सृष्टिकी प्रक्रिया मूल सृष्टि अर्थात् सर्गका वर्णन तृतीय सर्गमें साधन पुष्ट करनेके लिये क्योंकि आत्मतत्वके बोधके लिये सृष्टि अनुलोम-विलोम दोनों क्रमोंसे चिन्तन करना पड़ता हैं ।

लौकिक-अलौकिक-सर्ग निरुपण

- बन्ध सृष्टि (अध्याय १, १९)
- मुक्त सृष्टि (अध्याय २०,-३३)

बन्ध सृष्टि

- गुणातीता प्रकरण १ — (अध्याय १, ६)
- सगुणसृष्टि प्रकरण २ — (अध्याय-७-८-९)
- कालसृष्टि प्रकरण ३ — (अध्याय १०-११)
- तत्वसृष्टि
- मुक्तजीवसृष्टि प्रकरण ४ — (अध्याय १२)
- मुक्तजीवसृष्टि (उपोद्घात:) प्रकरण ५ — (अध्याय १३, १९)

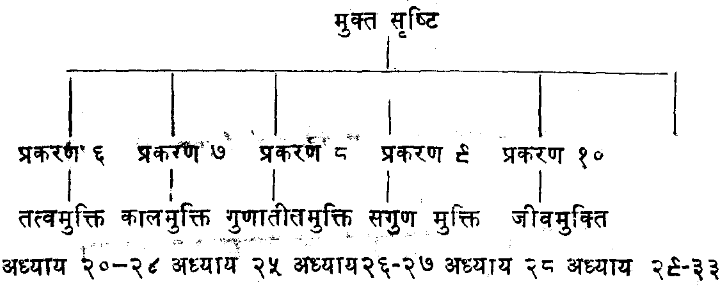

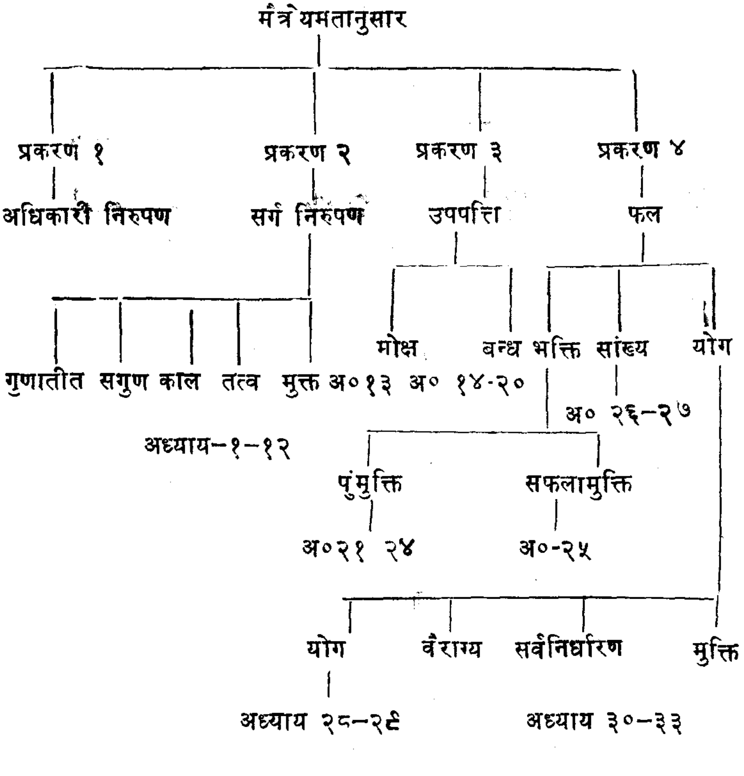

विसर्ग लीला - चतुर्थ स्कन्ध :

मूल सृष्टि वर्णनके पश्चात् सृष्टिकी विविधताका वर्णन तो क्रम प्राप्त ही है।

विसर्ग निरूपण

- धर्म प्रकरण (अध्याय १ - ७)
- अर्थ प्रकरण (अध्याय ८–१२)
- काम-प्रकरण (अध्याय १३–२३)
- मोक्ष-प्रकरण (अध्याय२४–३१)

धर्म

- अग्निष्येम
- उक्थ्य
- पोडशी
- अतिरात्र
- अप्त
- अर्याम
- बाजपेय

अध्याय १ - ७

अर्थ

- साधन द्वारा
- साध्यसे
- मूनूपदेश से
- दोषनिवृत्तिसे
- फलप्राप्तिसे

अध्याय ८ - १२

काम

तीन अवान्तर प्रकरण

- पृथ्वाविर्भाव प्रकरण
- सर्वकाम प्रकरण
- स्वकाम प्रकरण

अध्याय १३ - २३

मोक्ष

दो अवान्तर प्रकरण

- ब्रह्मभाव प्रकरण
  अध्याय ५
  २४ - २८
- सायुज्य प्रकरण
  अध्याय ३
  २९ - ३१

स्थान लीला - पंचम स्कन्ध :

यह सृष्टि कहाँ है ? कितनी विस्तीर्ण है, इसमें कहां-कहां साधन सम्भव है—इसके वर्णनके लिये स्थानका वर्णन है ।

रूढ़ार्थसे प्रथम पक्ष

- स्थान
  - प्रकरण १ — प्राकृतपदार्थजय
    - अध्याय १—२४
  - प्रकरण २ — आत्म जय
    - जीव
      - अध्याय २५
    - ब्रह्म
      - अध्याय २६

योगिकार्थसे द्वितीय पक्ष

- स्थान
  - देश
    - भू
    - भुव:
    - स्व:
  - काल
    - द्वादश मास
    - पांच ऋतु
    - तीन लोक
    - आदित्य
  - स्व (आत्मा)
    - जीवात्मा
    - परमात्मा

- स्थान
  - स्वरूपस्थिति
    - प्रकरण १ — भगवतः — अ० १–६
    - प्रकरण २ — योगतः — अ० ७–१४
    - प्रकरण ३ — जानतः — अ० १५
  - देशस्थिति
    - प्रकरण ४ — भूः — अ० १६-२०
    - प्रकरण ५ — भुवः — अ० २१-२३
    - प्रकरण ६ — स्वः — अ०२४-२६

पुष्टि लीला - षष्ठ स्कन्ध :

सृष्टिकी स्थितिमें सभी प्रकारके लोगोंका पोषण भगवानका अनुग्रह करता है–

- पुष्टि निरूपण
  - नाम — अध्याय १-२-३
    - श्रवण
    - कीर्तन
    - स्मरण
  - ध्यान — अध्याय ४--१४
    - रूपके १४ गुण[1]
  - अर्चन — अध्याय १५–१६
    - बाह्य
    - आभ्यन्तर

---

१. रूपेण मोक्षदः प्रोक्तः रसेनानन्ददायकः ।
गन्धेन भक्तिदः प्रोक्तः स्पर्शेनाखिलतापनुत् ॥
मनोहरस्तु नादेन योगेनात्मप्रवेशदः ।
कालमोक्षप्रदोद्दिष्टः स्वामी सर्वसुखप्रदः ॥
हीनभावाहु खदश्च केवलः सकलार्थदः ।
मीतो योगप्रदः प्रोक्तो भिन्नो मृत्युप्रदः स्मृतः ॥
यथास्थितो ज्ञानदश्च स्नेहाद्वश्योभवेद् ध्रुवम् ॥

ऊति लीला - सप्तम स्कन्ध :

कर्मवासनाका नाम ऊति है। कर्मवासना कहां तक कर्म करा सकती है, उससे सम्पूर्ण स्थानपर आधिपत्य मिलना सम्भव है, यह हिरण्यकशिपुके वर्णनसे दिखलाकर धर्माचरण ही कर्तव्य हैं, इसे बतलानेके अन्तमें वर्णाश्रम धर्मका निरुपण किया है।

कर्मवासना निरूपण

- असद्वासना
  - अध्याय १–५
    - अविद्याके पंच पर्व अथवा पंचाधिष्ठान
- सद्वासना
  - अध्याय ६–१०
    - अविद्याके पंच पर्व अथवा पंचाधिष्ठान
- मिश्रवासना
  - अध्याय ११–१५
    - अविद्याके पंच पर्व अथवा पंचाधिष्ठान

कर्म

- आध्यात्मिक
  - अध्याय १–५
    - अविद्याके पंचपर्व अथवा पंचाधिष्ठान
- आधिदैविक
  - अध्याय ६–१०
    - अविद्याके पंचपर्व अथवा पंचाधिष्ठान
- आधिभौतिक
  - अध्याय ११–१५
    - अविद्याके पंचपर्व अथवा पंचाधिष्ठान

मन्वन्तर लीला - अष्टम स्कन्ध :

सब कालोंमें सब मन्वन्तर स्थिति प्राय: एक सी रहती है–

मद्धर्म निरूपण

- अध्याय १--४ हरिसंस्मरण
  - धर्म
  - अर्थ
  - काम
  - मोक्ष
- अध्याय ५--१४ दान
  - सत्व तत्व
  - सत्व रज
  - सत्व तम
  - रजस्सत्वम्, रजोरज
  - तमसत्वम्
  - तमोरज
  - तमस्तम
  - निर्गुण
- अध्याय १५--२३ स्वोक्तनिर्वाह
  - दानोक्त नव प्रकार
- अध्याय २४ मत्स्यचरित्र

ईशानुकथा लीला - नवम स्कन्ध :

सब स्थान और कालमें जो परम आश्रयणीय है, उन परमपुरुषके मानव-रूपमें अवतार-श्रीराम; परशुराम और श्रीकृष्णका वर्णन करनेके लिये इनके वंशोंका वर्णन इस लीला स्कन्धमें है–

कथा

- श्रीहरिकी
- उनके अनुवर्तियोंकी

ईशानुकथाका फल

- दुःखनिवारण
  - सगुणतदनुवर्त्ति द्वारा अध्याय १-९
  - ज्ञानतदनुवर्त्ति द्वारा अध्याय १०
  - भगवच्चरित्र द्वारा
    - ज्ञान अध्याय ११
    - कर्म अध्याय १२
    - भक्ति अध्याय १३
- सुखप्रापण
  - तदनुवर्त्ति द्वारा अध्याय १४--२३
  - भगवान् द्वारा अध्याय २४

निरोध लीला - दशम स्कन्ध :

भगवान् अवतार लेकर अपनी लीलासे कैसे सब प्रकारके जीवोंकी वृत्ति अपनेमें निरुद्ध करते हैं, यह विस्तारपूर्वक इस स्कन्ध-लीलामें वर्णित है–

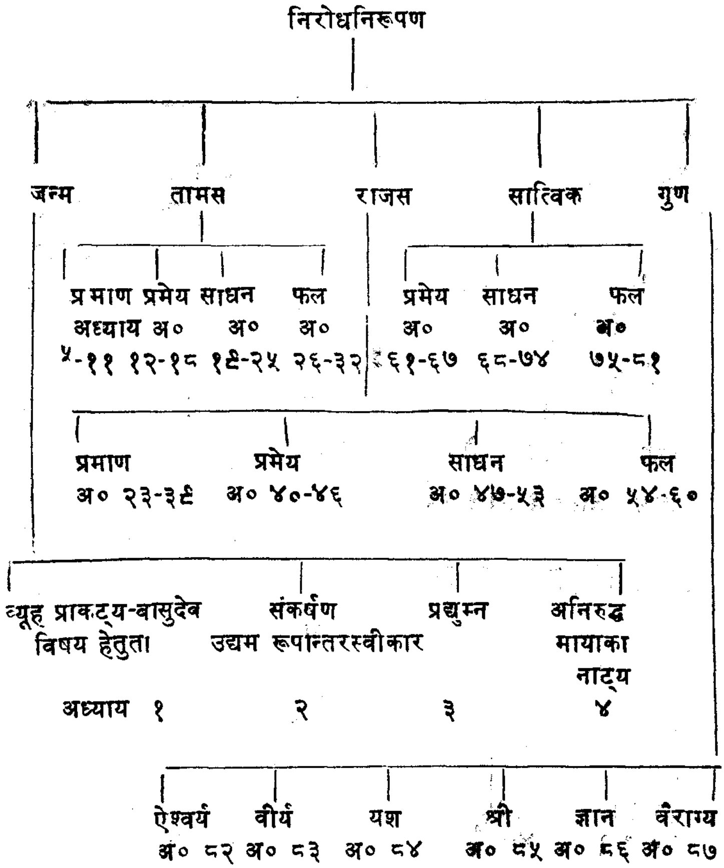

मुक्ति लीला - एकादश स्कन्ध :

सब कालमें तो धरापर भगवान् अवतार रूपमें रहेंगे नहीं। अतः जब अवतार काल न हो तो मनुष्य किन साधनोंका आश्रयण करके भगवानमें वृत्ति निरुद्ध करे और आवागमनसे छूटे, यह मोक्षके साधनोंका निरूपण एकादश स्कन्धके मुक्ति-स्कन्धमें है–

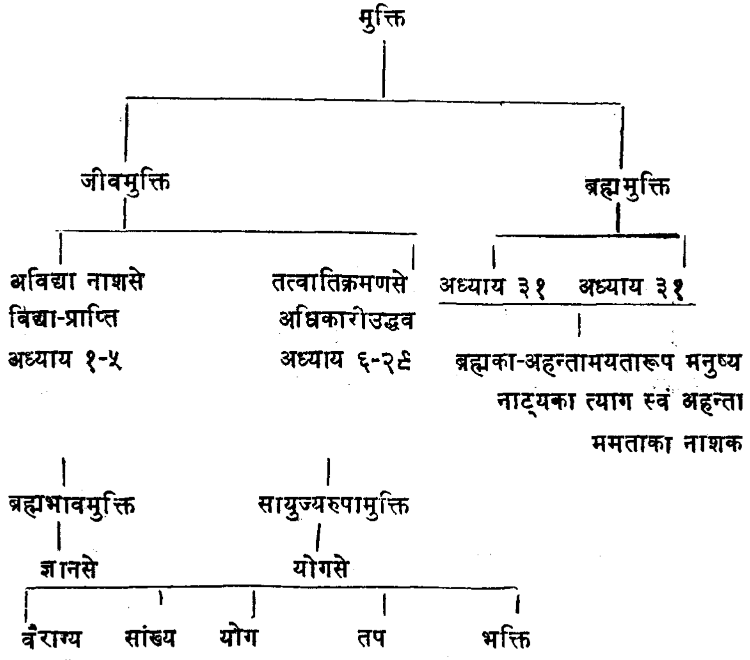

आश्रय लीला - द्वादश स्कन्ध :

परमब्रह्म ही आश्रय है। इसके आश्रयणके अंग रूपसे इस स्कन्धमें पंचविध आश्रयोंका वर्णन है–

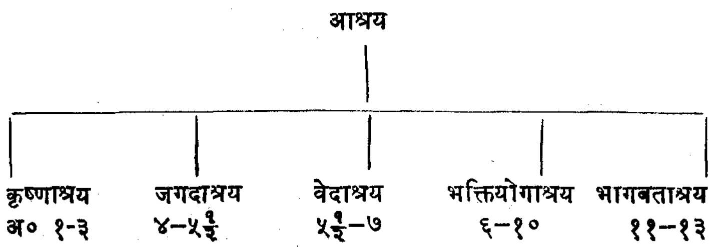

कथावस्तुका निष्कर्षात्मक अध्ययन :

निष्कर्षत: श्रीमद्भागवतकी कथावस्तुको चार भागोंमें विभाजित किया जा सकता है–

---

१. भागवतार्थ प्रकरणम्–श्रीभागवतार्थामृतार्णवस्य सोपानानि
- पृष्ठ १ से ८

१. घटनात्मक : (क) भगवानकी लीला
(ख) साधारण चरित्र

साधारण चरित्र : (क) इतिहास
(ख) भविष्य
(ग) उपाख्यान

इतिहासके प्रयोजन : (क) किसी उपदेश, स्तुति अथवा गीतोंका उपक्रम या उपसंहार करना
(ख) कोई विशेष शिक्षा देना

श्रीमद्भागवतके प्रथम स्कन्धमें ब्रह्मा, नारद और इसी प्रकार प्रायः सभी स्कन्धोंमें कथा-विशेषका उपक्रम करनेके लिये अनेक व्यक्तियोंका वर्णन है। प्रथम स्कन्धमें भीष्मकी कथा केवल उनकी स्तुतिका उल्लेख करनेके लिये आयी है। ऐसे ही गीतोंके प्रसंग हैं। मनु, उनके वंश और वंशानुचरितका वर्णन, सद्धर्मकी शिक्षा देनेके लिये ही आता है–ऐसा श्रीमद्भागवतका सिद्धान्त है। इसके अन्तर्गत देव, दानव, मनुष्य, पशु, पक्षी सबके चरित्र आ जाते हैं। भागवतके बारहवें स्कन्धमें वेद-विभाजनके प्रसंगमें उनके अध्ययन करनेवाले अनेक ऋषियोंका वर्णन ग्रन्थके उपसंहारके लिये हुआ है। भगवान्‌की लीला और साधारण चरित्र दोनों ही सत्य है, इतिहास है।

भागवतमें भविष्यमें होनेवाली वंश-परम्परा और कल्कि-अवतार आदिका उल्लेख है – भविष्यकी वंशावलियाँ भूतवंशावलियोंके समान ही सत्य है।

परम तत्वकी प्राप्तिके लिये रूपकों द्वारा आध्यात्मिक-तत्वका वर्णन हुआ है। श्रीमद्भागवतमें जहाँ उपाख्यानोंका वर्णन हुआ है, वहाँ उसका स्पष्टीकरण भी कर दिया है कि यह रूपक है। जहाँ रूपक नहीं है, वहाँ रूपककी चर्चा भी नहीं है, इसलिये वे इतिहास है।

२. उपदेशात्मक :

उपदेशोंको दो भागोंमें विभक्त कर सकते है–

१. साधारण
२. विशेष

साधारण उपदेशोंमें वह अंश है, जो साधु-महात्माओंने, मित्रोंने और सगे-सम्बन्धियोंने उपदेश दिये हैं। श्रीमद्भागवतके प्रत्येक अध्याय और प्रत्येक

संवादमें ऐसे उपदेश मिलते हैं, जिनके अनुसार आचरण करनेसे जीव अपना परम कल्याण कर सकता है। सभी उपदेशोंका सार है – विषयोंकी आसक्ति छोड़कर भगवत् प्रेम लाभ करना। श्रीमद्भागवतमें तरह-तरहसे यही बात दोहरायी गयी है। ज्योतिषचक्रका वर्णन करके, भूगोलका वर्णन करके और अनेक राजा-प्रजाओंका वर्णन करके यही बात चित्तमें बैठानेकी चेष्टा की गयी है, जीवोंके जीवनकी पूर्णता केवल भगवान् श्रीकृष्णको प्राप्त करनेमें ही है।

विशेष उपदेशके रूपमें श्रीमद्भागवतके अनेक अंशोंको लिया जा सकता है। जैसे गीता रुपसे हंसगीता, कपिलगीता और उद्धवके प्रति भगवान-के उपदेश आदि, क्रियारुपसे युधिष्ठिरके यज्ञमें श्रीकृष्णके द्वारा अतिथियोंका पाद-प्रक्षालन आदि।

स्तुत्यात्मक :

भगवान् श्रीकृष्ण साररुप हैं। स्तुति करनेसे भगवान्के नाम, रुप, गुण, लीला आदिका स्मरण होता है, धीरे-धीरे स्तुति करनेवालेके चित्तमें वह गाढ़ हो जाता है और अन्ततः उसीसे भगवत्प्राप्ति हो जाती है। भगवान्के गुणोंकी दृष्टिसे भगवान्की स्तुति करनेवाले यही कहकर चुप हो जाते हैं कि 'आपकी स्तुति नहीं की जा सकती।' फिर भी स्तुति है और भक्तोंकी दृष्टिसे होती है - 'नैमः पत्न्यात्मसमं पतत्त्रिणः।'[1]

भगवानकी स्तुतियाँ भी प्रायः दो प्रकारकी है-

१. सकाम
२. निष्काम

सकाम स्तुतियोंके भी अनेक भेद हैं– कारागारसे मुक्त होनेके लिये, क्रोध शान्त करनेके लिये, दुःखसे छूटनेके लिये आदि।

निष्काम स्तुतियोंके भी दो भेद हैं–एक तो वह जिनमें तत्व-ज्ञानकी प्रधानता है और दूसरी वह जिनमें साधनकी प्रधानता है। वेदस्तुति आदिके प्रसंग तत्वप्रधान वर्णन है। तत्वप्रधान वर्णन स्तुतियाँ सारे जगतका, वाणीका विचारोंका, स्तुति करनेवालोंका भगवानमें पर्यवसान करके स्वयं भी उसीमें पर्यवसित हो जाती है।[1] साधन-प्रधान स्तुतियोंमें आत्मसाक्षात्कार और मुक्तिका भी निषेध करके कहते हैं– 'हमें सत्संग, लीलाके श्रवण-कीर्तन और भक्त चरित्रमें इतना आनन्द आता है कि उतना स्वरूप-स्थितिमें नहीं आता–

---

१. भागवत १०।८७।५०

या निर्वृतिस्तनुभृतां तव पादपद्मध्यानाद्भवज्जनकथाश्रवणेन वा स्यात् ।
सा ब्रह्मणि स्वमहिमन्यपि नाथ माभूत्किं त्वन्तकासिलुलितात्पततां विमानात् ॥[1]

अथच हमें दस हजार कान दे दो, जिससे हम तुम्हारी कथा सुना करें ।

न कामये नाथ तदप्यहं क्वचिन्न यत्र युष्मच्चरणाम्बुजासवः ।
महत्तमान्तर्हृदयान्मुखच्युतो विधत्स्व कर्णायुतमेष मे वरः ॥[2]

इन सभी स्तुतियोंसे आत्मशुद्धि होती है, भगवतत्वका ज्ञान होता है साधनमें और भगवानके स्वरूपमें निष्ठा होती है ।

४. गीतात्मक :

गीत शब्दका अर्थ है 'गायन' । प्रेमकी मूर्तिमान गोपियोंकेगीत विरह गीत हैं । पिंगलाका गीत निर्वेद गीत है । भिक्षु-गीत है एक ब्राह्मण भिक्षु द्वारा वह सात्विक और सदाचारी होनेपर भी लोगोंसे अपमानित और सताया हुआ था । वह लोगोंके द्वारा अपमानित होनेके समय भी गाया करता था ।

प्रेमोन्माद केवल वियोगमें नहीं, संयोगमें भी होता है । श्रीकृष्णके साथ रहनेवाली, श्रीकृष्णसे विहार करनेवाली, द्वारकाकी श्रीकृष्ण पत्नियोंका चित्त उनकी लीलामें इतना तन्मय हो जाता है कि उन्हें स्मरण ही नहीं रहता कि हम श्रीकृष्णके पास ही हैं । एक ही समय उन्हें कभी दिनकी प्रतीति होती है - कभी रात की । वे न जाने क्या-क्या बोल रही हैं, हाँ यह 'बोल' नहीं 'गीत' है ।

ये गीत यहाँ कथावस्तु संगठनके सौन्दर्यकी वृद्धि करते हैं, वहीं भावोंसे मानसको संस्पर्श करते हुये अमर गान हो गये हैं । भाव-पक्षसे इन गीतोंकी महिमा अनिवर्चनीय है ।

भागवतकी कथावस्तु घटना, उपदेश, स्तुति और गीत चारों ही रूपोंमें वेदोंके समान अत्यन्त महत्वपूर्ण हैं । अपने स्वरूपसे तो यह कथा साक्षात् रूपसे भगवत्साक्षात्कार कराती है । श्री 'भगवानउवाच', 'राजोवाच; 'शुकदेव-उवाच' आदिसे इसका प्रबन्ध सौष्ठव पुराणात्मक ढंगका ही सिद्ध होता है-- इसीसे कृष्णके जीवनको पूर्णता प्रदान की गयी है । भागवतको, विचरित कृष्ण-

---

१. भागवत ४।१।१०

२. भागवत ४।२०।२४

चरित काव्य-पुराण कह सकते हैं। भागवतकी कथा दिव्य-कथा है; फिर पात्र भी तो दिव्य हैं। अन्ततः भागवतमें श्रीकृष्णका कथा-लीला-प्रबन्ध भागवतके जैसा ही है, चाहे इसे अद्‌भुत कहें चाहे विचित्र अलौकिक कहें, चाहे दिव्य विकीरित कहें या सुनियोजित, भावनात्मक कहें या तथ्यात्मक, विषयगत कहें या आश्रयगत, मानसी कहें या मस्तिष्कीय, अतिरंजित कहें या अभिव्यंजनात्मक, एक समृद्ध अभिलेख हो या वैष्णव मतका प्रमुख उत्स, प्रेमका मादकत्व हो या विचारोत्तेजकता, कुछ भी कहें सभी 'त्व' और 'त्मक' से भागवतकी उर्जस्विता ही सिद्ध है। भगवानके सम्बन्धसे जैसी भी स्थिति हो सकती है, भागवतकी भी वैसी ही है। यह स्थिति चाहे प्रश्नात्मक हो संशयात्मक हो (?)... ....भागवतका ज्ञान भगवान्‌की कृपा का फल है और है कृपागम्य, शब्दगम्य और अर्थगम्य तो है नहीं, जिसके लिये कोई विशेष शब्द प्रयोग किया जाय अथवा शब्द चित्रण, और अर्थ चित्रण कर दिया जाय। सभी प्रौढ़ और सम्भावित प्रश्न परीक्षितने प्रस्तुत कर दिये हैं, इसके आगे जो भी प्रश्न हैं वे हैं श्रीकृष्णके प्रति विश्वासकी अपरिपक्वता। भागवत तो भारतीय मुनीषाकी बहुआयामी सर्जकताकी प्रौढ़ परिणति है। इसमें दिव्योन्मादित भाव-प्रेमके चारुत्वका प्रकाशन अत्यन्त आवर्जक हुआ है। प्रेम-प्रवाहमें लीला-कथा प्रवाहित हुई है और यही है भागवतका लॉजिक है असमोर्द्ध्व।

अथापि ते देव पादाम्बुजद्वय प्रसाद
लेशानुग्रहीत एव हि।
जानाति तत्त्वं भगवन्महिम्नो
न चान्यं एकोऽपि चिरं विचिन्वन्॥

(भा० १०-१४-६)

चतुर्थ स्तवक

लीलानायक श्रीकृष्ण

'अनुभावाश्च लीला चेत्युच्यते चरितं द्विधा।'[1] अर्थात् अनुभाव एवं लीला चरितके दो भेद हैं। अनुभाव तो चित्तस्थ भावोंका अवबोधक है।[2] मनोहर-क्रीड़ा, ताण्डव, वेणु-वादन, गौ-दोहन, पर्वतका धारण, गौका आह्वान एवं गमन-ये सब लीला कही जाती हैं।[3] ये लीला श्रीकृष्ण करते हैं किन्तु श्रीकृष्ण-चरितमें 'कृष्ण' नामसे अद्भुतता है। 'नायक-चरितका एक उद्देश्य होता है, उसमें कर्तृत्वका भी कुछ-न-कुछ अंश रहता ही है, चाहे कर्ताकी भावनासे और चाहे लोगोंकी भावनासे जगतके हितका उद्देश्य समाविष्ट रहता है। लीला लीलाके लिये हैं, लीलाका प्रयोजन, उद्देश्य अनिर्वचनीय है, जबकि चरित्रका वर्णन और कारण और उसका अध्ययन किया जा सकता है। लीला कर्तृत्व और भोक्तृत्वसे मर्यादित नहीं है, कर्म-बन्धनसे विक्रीड़ित नहीं है। इस प्रकार लीलानायक श्रीकृष्णका जीवन-चरित अतिगूढ़ और विसंवादी होते हुये भी लीलामय है।

महाकाव्यके लक्षणानुसार प्रख्यात श्रीकृष्ण आद्योपान्त क्रियाशील दिखायी देते हैं 'श्रीमद्भागवतमे' इसीलिये वही नायकत्वके अधिकारी हैं। समस्त कथासूत्र इन्हींसे इंगित होकर संचालित होता हुआ सा प्रतीत होता है बारहों स्कन्धोंमें भागवतके। रुद्रटके काव्यालंकार ग्रन्थके लक्षणके अनुसार[4] श्रीकृष्ण अपने क्रियाकलापोंसे, बुद्धि-बलसे, शारीरिक पराक्रमसे तथा वाग्वैचित्र्यसे श्रीमद्भागवतके समस्त पात्रोंको प्रभावित करनेसे भागवत कृतिके नायक हैं। ब्रह्म, परमात्मा, आनन्दघन, सच्चिदानन्दस्वरूप आदि जो भी शब्द भागवतमें प्रयुक्त हुये हैं, वे सब श्रीकृष्णके ही पर्याय है।[5] श्रीकृष्ण स्वयं-भगवान् माने गये हैं भागवतशास्त्रमें, अतः भगवान् ही भागवतके नायक हैं।

---

१. उज्ज्वल नीलमणि पृष्ठ २६६

२. अनुभावास्तु चित्तस्थभावानामवबोधकाः - वही पृष्ठ ३२३

३. लीला स्याच्चारुविक्रीड़ा ताण्डवं वेणुवादनम्।
गोदोहः पर्वतोद्धारो गोहूतिर्गमनादिका ॥ - वही पृष्ठ २६६

४. काव्यालंकार रुद्रट १६।१६।१७

५. भागवत १।२।११

भागवतके प्रथम स्कन्धसे लेकर द्वादश स्कन्ध तक एक विहंगम दृष्टि डालनेपर लीलानायक श्रीकृष्णकी प्रभा किरणें ही उद्दीप्त हैं। प्रथम स्कन्धमें भगवान्के अवतार गुण-माहात्म्यके स्वर गूंज रहे हैं, द्वितीयमें 'ध्यान विधि' ध्वनित है, तृतीयमें उद्धव द्वारा भगवानकी लीलाओंका मार्मिक वर्णन अद्भुत रूपसे हृदयग्राही है, चतुर्थमें ध्रुव द्वारा भगवानसे वर-प्राप्तिकी सुप्रभावी कथा है, पंचममें-संकर्षण देवकी महिमाका प्रख्यापन है, तो षष्ट स्कन्धमें अजामिलका उद्धार है। सप्तममें नृसिंह द्वारा प्रह्लादके संरक्षणका प्रभावयुक्त वर्णन है, साथ ही 'नारायण कवच' की व्यवस्था है। अष्टम स्कन्धमें गजेन्द्र द्वारा भगवानकी अति सुन्दर स्तुति की गयी है, तो नवममें श्रीरामके उदात्त चरित्रका निरूपण है। भागवतके हृदय स्वरुप दशम स्कन्धमें श्रीकृष्णके लीला-विलास का वैभव है। एकादशमें भगवानके विविध अवतारोंके उज्ज्वल प्रसंग हैं और द्वादशमें मार्कण्डेयको भगवानने अपनी महिमाका दर्शन कराया है। इस प्रकार भगवान् श्रीकृष्ण स्कन्धोंमें ही नहीं, प्रत्युत अध्यायोंमें भी समाविष्टसे दृष्टि-गोचर हो रहे है; गवेषणात्मक दृष्टिकोणसे। लीलाके जिस अंशमें तथा जिस विभागमें जिस प्रकारके नायककी आवश्यकता होती है, श्रीकृष्ण उसी प्रकारके नायकके रूपमें अनुभूत होते हैं।[1] श्रीमद्भागवतमें श्रीकृष्णके चरित्रका सूक्ष्म अध्ययन करनेपर उनके अग्रिमांकित रूप सामने आते हैं–

अद्वयज्ञान परतत्व :

'एकमेवाद्वितीयम्'[2], भागवतोक्त इस अद्वयतत्त्व सिद्धान्तके अनुसार भगवान् श्रीकृष्ण अद्वितीय वस्तु हैं। श्रीजीवगोस्वामीके मतमें एक वही अद्वितीय तत्त्व उपासककी प्रतीतिके भेदसे ब्रह्म, परमात्मा एवं भगवत्-स्वरुपमें आविर्भूत अद्वय-ज्ञान-तत्त्व है। यह अद्वितीय परतत्व ही स्वाभाविक अचिन्त्य शक्तिके द्वारा सर्वदा ही भगवत्-स्वरूप, स्वरूपवैभव, जीव एवं प्रधान-इन चार रूपोंमें विराजित हैं।[3] भागवतमें स्पष्ट है–

स एव विश्वस्य भगवान् विधत्ते गुण प्रवाहेण विभक्तवीर्यः।
सर्गाद्यनीहोऽवितथाभिसन्धिरात्मेश्वरोऽतर्क्यसहस्रशक्तिः ॥[4]

---

१. जैव-धर्म, अध्याय ३५ पृष्ठ ६०२–६०३

२. भागवत 'ज्ञानमद्वयम्' १।२।११, छान्दोग्योपनिषत् ६।२।१

३. क्रमसन्दर्भ १।२।१२, तत्वसन्दर्भ ५१, भगवत्सन्दर्भ १६, भक्तिसन्दर्भ ६।७

४. भागवत ३।३३।३

अद्वयज्ञान परतत्व श्रीकृष्ण सजातीय, विजातीय और स्वगत भेदसे रहित एक, अखण्ड है। एतदर्थ इस अविनाशी सत्यमें देह-देही प्रकाश, विलास-वैभवके मध्यमें जड़ीय भेद नहीं है, कारण वह स्वरूप-शक्तिके द्वारा संघटित है। जैसे, चन्द्रमा, सूर्य आदि नेत्र-इन्द्रियके द्वारा और नेत्र-इन्द्रिय चन्द्रमा-सूर्य आदिके द्वारा प्रकाशित होती है, वैसे वह आत्मस्वरूप दूसरेके द्वारा प्रकाशित नहीं, स्वयंप्रकाश है। कालकी सीमाके परे वह एकरस स्थित है। इसीसे प्रकाश्य-प्रकाशकभाव नहीं है उसमें। प्रकाश विलास प्रभृतिमें केवल शक्ति प्रकटनके तारतम्यसे लीला वैचित्र्य ही द्रष्टव्य है। जगतकी उत्पत्ति, स्थिति और नाशकी कारणभूता ब्रह्मशक्ति, विष्णुशक्ति और रुद्रशक्तियोंके द्वारा केवल इस बातका अनुमान हो सकता है कि वह स्वरूप एकरस सत्तारूप और आनन्दस्वरूप है—

एकं स्वयंज्योतिरनन्यमव्ययं स्वसंस्थया नित्यनिरस्तकल्मषम् ।
ब्रह्माख्यमस्योद्भवनाशहेतुभिः स्वशक्तिभिर्लक्षितभावनिर्वृतिम् ।।[1]

श्रीरूपगोस्वामीके अनुसार अचिन्त्य अनन्त शक्तियोंके कारण उस एक ही पुरुष पुरुषोत्तम श्रीकृष्णमें एकत्व और पृथकत्व, अंशत्व और अंशित्वका रहना कथमपि अयुक्त नहीं रहता।[2] इस अचिन्त्यभेदाभेदवादमें वेदान्तकी उभयनिष्ठ श्रुति-समूहको युगपत् प्रामाण्य स्वीकृत हुआ है। यथा - अभेद पक्षमें - 'सर्वं खल्विदं ब्रह्म' 'आत्मैवेदं सर्वमिति', 'सदेव सौम्येदमग्र आसीत्'[3] आदि।

भेद पक्षमें—'ब्रह्म विदाप्नोति परम्'[4] 'महान्तं विभुमात्मानं मत्वा धीरो न शोचति'[5], 'तस्यैष आत्माविवृणुते तनुं स्वां'[6], 'नित्यो नित्यानां'[7], 'यो वेद निहितं गुहायां परमे व्योमन् । सोऽश्नुते सर्वान् कामान् सह ब्रह्मणा

१. (क) भागवत १०।७०।५
(ख) तुलनीय — कृष्णेर स्वरूप विचार शुन सनातन ।
अद्वय ज्ञान तत्व व्रजे व्रजेन्द्रनन्दन ।।
सर्वादि सर्वअंशी किशोर शेखर ।
चिदानन्द देह सर्वाश्रय सर्वेश्वर ।।
— चैतन्य चरितामृत मध्य लीला २०।१३१-३२

२. एकत्वं च पृथकत्वं च तथांशत्वमुतांशिता ।
तस्मिन्नेकत्र नायुक्तम् अचिन्त्यानन्त शक्तितः ।। १।५० लघुभागवतामृत

३. छान्दोग्योपनिषत् ३।१४।१, ७।२५।१, ६।२।१, ४. तैत्तिरीय २।१

५. कठोपनिषत् १।२, ६. मुण्डकोपनिषत् ३।२, ७. कठोपनिषत् २।२३

विपश्चिता ॥'[१] 'यस्मात् परं नापरमस्ति किंचित्, प्रधान क्षेत्रज्ञ पतिर्गुणेशः'[2], 'अयमात्मा सर्वेषां भूतानां मधुप'[3] इत्यादि।

विशिष्टाद्वैतवादी रामानुज ब्रह्मको अद्वय-तत्व मानते हुये भी उनमें स्वगत भेद मानते हैं, अतः भागवतानुकूल नहीं है। अद्वैतवादी शंकराचार्यका अद्वैत-सिद्धान्त मायाशबलित होनेके कारण शुद्धाद्वैत नहीं है। श्रीवल्लभाचार्यके दर्शनके अनुसार ब्रह्म माया - रहित विशुद्ध अद्वय-तत्व है, एतदर्थ इनका दर्शन शुद्धाद्वैत कहलाता है।[४] स्वयं सिद्ध-वस्तु ही अद्वय होती है। श्रीकृष्ण एकत्वका त्याग किये बिना ही अचिन्त्य शक्तिके द्वारा नाना स्वरूपमें स्थित होते हैं।[५] यह अचिन्त्य शक्ति विरोध-भंजिका है।[६]

अमूर्त-निर्विशेष-ब्रह्म, सूर्य-स्थानीय श्रीकृष्णका प्रभा-स्थानीय है—

एकमेव परमं तत्वं स्वाभाविकाचिन्त्य शक्त्या
सर्वदैव स्वरूप तद्रूप-वैभव-जीव प्रधान रूपेण
चतुर्द्धावतिष्ठते। सूर्यान्तर-मण्डलस्थित तेज इव
मण्डल तद्बहिर्गत तद्रश्मि तत्प्रतिच्छवि-रूपेण ॥[७]

इस प्रकार श्रीकृष्णमें अद्वयत्व है-'ज्योतिरभ्यन्तरे रूपमतुलम् श्याम सुन्दरम् (श्रुति)। भागवतके ही शब्दोंमें—

अन्ये च संस्कृतात्मानो विधिनाभिहितेन ते।
यजन्ति त्वन्मयास्त्वां वै बहुमूर्त्येकमूर्तिकम् ॥[८]

श्रीकृष्णके अद्वयत्व-ज्ञानमें ही भागवतका प्रयोजन समाविष्ट है—

वदन्ति तत्तत्त्वविदस्तत्वं यज्ज्ञानमद्वयम्।
ब्रह्मेति परमात्मेति भगवानिति शब्द्यते ॥[९]

---

१. तैत्तिरीय आरण्यक १ अनु०, २. श्वेताश्वतर ३।९, ६।१६
३. बृहदारण्यक २।५।१४, ४. चैतन्य मत : ओ०बी०एल० कपूर पृष्ठ ६ द्रष्टव्य
५. एकोवशी सर्वः कृष्ण ईड्य एकोऽपि सन् बहुधा यो विभाति — गोपालपूर्वतापनी
६. प्रमेय रत्नावली — अचिन्त्या शक्तिरस्तीशे योगशब्देन योच्यते।
विरोधभंजिका सा स्यादिति तत्वविदां मतम् ॥
श्लोक १०
७. भगवत्संदर्भ १६, ८. भागवत १०।४०।७, ९. भागवत १।२।११

ब्रह्मका सम्यक् और समन्वयात्मक रूप :

अद्वय-ज्ञान-परतत्व भगवान् श्रीकृष्ण, ब्रह्मके सम्यक् और समन्वयात्मक रूप हैं, एवं शाश्वत हैं। 'कृष्णो ब्रह्मैव शाश्वतम् ।'[1] सच्चिदानन्द ब्रह्म श्रीकृष्णके षाड गुण्यादि उनसे अभिन्नरूप होकर सच्चिदानन्दमय है, अपने ब्रह्म स्वरूपमें–

ऐश्वर्यस्य समग्रस्य वीर्यस्य यशसः श्रियः ।
ज्ञान वैराग्ययोश्चैव षण्णां भगवदतीरणा ।।[2]

यह श्रीकृष्ण ही भगवत् शब्द-वाच्य हैं। कृष्ण पदका प्रयोग 'कृष्णाय देवकीपुत्राय'[3] इस उपनिषद् वाक्यका स्मारक है। 'योऽसौ परब्रह्मगोपालः ।[4] भागवतमें ब्रह्मा रुद्रादिके साथ सर्व देवगण, जगन्नायक देवाधिदेव श्रीकृष्णका स्तवन करते हैं, क्योंकि श्रीकृष्ण ब्रह्मके सम्यक् और समन्वयात्मक रूपमें पर-ब्रह्म सिद्ध है–'परब्रह्मावतरणः केशवः ।'[5]

पंचभूतोंपर परब्रह्मका ही अस्तित्व है। परब्रह्म श्रीकृष्ण हैं, क्योंकि कृष्णावतारमें उनके सभी कार्य इस तत्वके बोधक हैं–

१) पृथ्वी तत्वपर विजय = मृत्तिका भक्षण तथा गोवर्द्धन-लीला
२) जल तत्वपर विजय = कालिय-दमन, नन्दका वरुण-दूतोंसे संरक्षण, इन्द्र-मान-भंग, समुद्रमें शंखचूड़-वध ।
३) तेज तत्वपर विजय = दावानल-पान
४) वायु तत्वपर विजय = तृणावर्त-वध, शाल्व-वध
५) आकाश तत्वपर विजय = व्योमासुर-वध, ऊखल-लीला

एतदर्थ ये श्रीकृष्ण श्रीमद्भागवतमें परब्रह्म रूपसे मान्य है–

ईश्वरः परमः कृष्णः सच्चिदानन्द विग्रहः ।[6]

भागवतकी स्तुतियोंमें श्रीकृष्ण प्रकृत्यातीत माने गये हैं। प्रत्येक लीला-के पश्चात् परब्रह्म मदन-मुरारि-कामारि श्रीकृष्णपर देवगण पुष्प-वर्षा करते हैं।

१. कृष्णोपनिषत् १२
२. विष्णुपुराण ६।५।७६
३. छान्दोग्योपनिषत् ३।१७।६, ४. गोपालपूर्वतापनी १।२
५. श्रीपुरुषोत्तमसहस्रनाम १०।१४६ श्लोकांश,
६. ब्रह्म-संहिता ५।१

ब्रह्मा आदिकी स्तुतिसे परब्रह्म देवकीके गर्भमें आते हैं, तब देवगण उन्हें 'सत्यात्मक स्वरुप' में देखते हैं–

सत्यव्रतं सत्यपरं त्रिसत्यं सत्यस्य योनिं निहितं च सत्ये।
सत्यस्य सत्यमृतसत्यनेत्रं सत्यात्मकं त्वां शरणं प्रपन्नाः ॥[१]

सविशेष और निर्विशेष संदर्भमें ब्रह्म एक ही हैं। सविशेषत्व (सगुणत्व) और निर्विशेषत्व (निर्गुणत्व) एक ही ब्रह्मके प्रारूप है। ब्रह्मके सम्बन्धमें सविशेषका अभिप्राय है : अस्तिवाची वह परब्रह्म अप्राकृत गुण-सम्पन्न है अर्थात् विशेषत्व द्वारा उज्ज्वल है, अप्राकृत चिन्मय विशेषत्वसे सुशोभित है; क्योंकि चिन्मय विशेषत्व ही उज्ज्वल या स्वप्रकाश है। ब्रह्म सविशेष ही नहीं अनन्त प्रकारके विशेषणोंसे युक्त हैं यथा 'सर्वकर्म्मा, सर्वकामः, सर्गगन्धः, सर्वरसः।'[२] उसे 'विज्ञानघन' और 'आनन्दघन' भी कहा है।[३] वह सर्वकर्तृ भी है अपने स्वातन्त्र्यसे वह सब कुछका कर्त्ता है।[४] सर्वगुणका विधाता है। गजेन्द्र स्तुतिमें कहा गया है–

सोऽहं विश्वसृजं विश्वमविश्वं विश्ववेदसम्।
विश्वात्मानमजं ब्रह्म प्रणतोऽस्मि परं पदम् ॥[५]

श्रीकृष्णमें निर्विशेषत्व भी है। निर्विशेषसे तात्पर्य है - प्राकृत गुणहीन। क्षर और अक्षरको अपनेमें समेटे हुये भी वह क्षराक्षरातीत है–

दिव्यो ह्यमूर्तः पुरुषः सबाह्याभ्यन्तरो ह्यजः।
अप्राणो ह्यमनाः शुभ्रो अक्षरात्परतः परः ॥[६]

---

१. भागवत १०।२।२६
२. छान्दोग्योपनिषत् ७।१४।४
३. विज्ञानघन आनन्दघनः सच्चिदानन्देकरसे भक्तियोगे तिष्ठति – गोपालतापनी ७६
४. अष्टाध्यायी पाणिनी १।४।५४
५. (क) भागवत ८।३।२६
(ख) यूयं नृलोके बत भूरिभागा लोकं पुनाना मुनयोऽभियन्ति।
येषां गृहानावसतीति साक्षाद् गूढं परं ब्रह्म मनुष्यलिंगम् ॥ भागवत ७।१५।७५
६. मुण्डोकपनिषत् २।१।१ (क)
(ख) यस्मात् क्षरमतीतो ऽहमक्षरादपि चोत्तमः।
अतोऽस्मि लोके वेदे च प्रथितः पुरुषोत्तमः ॥ भगवद्गीता १५।१८

इस रूपमें वह अणुसे भी अणु और महानसे भी महान् है।[1] विरुद्ध धर्माश्रय है और उसकी शक्ति अचिन्त्य है। निराकार, अपरिच्छिन्न, अविनाशी और सर्वत्र विद्यमान है। शब्द-स्पर्श-रूप-रस-अव्यय-गन्ध-रहित हैं, नित्य है, अस्थूल, अनणु, अदीर्घ, अलोहित, अनाकाश, अवायु, अमात्र, असंग, अप्राण, अमुख है।[2] गजेन्द्र स्तुतिमें ही–

तमक्षरं ब्रह्म परं परेशमव्यक्तमाध्यात्मिक योगमह्यम्।
अतीन्द्रियं सूक्ष्ममिवातिदूरमनन्तमाद्यं परिपूर्णमीडे॥[3]

साररूपमें यह सत् स्वरूप ज्ञानस्वरूप 'सत्यं ज्ञानं अनन्तं ब्रह्म'[4] और आनन्दस्वरूप 'आनन्दमयोऽभ्यासात्' है।[5] अवतीर्ण कृष्ण ही परब्रह्म हैं–

'यत्रावतीर्णं कृष्णाख्यं परब्रह्म।'[6]

निर्विशेष हैं अथवा सविशेष, परब्रह्म श्रीकृष्ण स्वरूपसे ब्रजराजकुमार हैं। शक्ति द्वारा जगतके भीतर और बाहर होते हुये भी स्वरूपमें श्रीराधाके वक्षोमणि है, शक्ति द्वारा सब भूतोंमें समदर्शी, शासक और पालक होते हुये भी स्वरूपसे केवल भक्तानुग्रहकारी है, भक्ताधीन है, शक्ति द्वारा उग्र और अनुग्र होते हुये भी स्वरूपतः केवल भक्त-चकोरोंके स्निग्ध जलधर स्वरूप है। संक्षपमें, परब्रह्म शक्ति द्वारा युगपत् विरुद्धाविरुद्ध द्रव्य, गुण और कर्मरूपसे प्रकाशित होते हुये भी स्वरूपतः एक हैं[7] पूर्ण हैं–

---

१. अणोरणीयान् महतो महीयान् - श्वेताश्वतर ३।२।२०
२. कठोपनिषत् १।३।१५
३. भागवत ८।३।२१
४. तैत्तरीय, आनन्द पल्ली १
५. (क) ब्रह्मसूत्र १।१।१२
   (ख) विज्ञानामानन्दं ब्रह्म ३।९।२८
   (ग) अस्ति भाति प्रियत्वेन सच्चिदानन्दरुपेणान्वयात् - अणुभाष्य १।१।३
६. विष्णुपुराण ४।११।२
७. (क) चैतन्य मतः पृष्ठ १११-११२ पर धृत श्रीकानूप्रियगोस्वामी कृत 'श्रीनामचिन्तामणि वचन' पृष्ठ २०३-२०४ से।
   (ख) एकं सद विप्रा बहुधा वदन्ति – ऋक्वेद १।१६४।४६
   (ग) एकं रूपं बहुधा यो करोति – कठोपनिषत् ५।१२

पूर्णमदः पूर्णमिदं पूर्णात् पूर्णमुदच्यते ।
पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्णमेवावशिष्यते ॥[1]

शुकसुधीने स्पष्ट रूपसे ब्रह्मका सम्यक् और समन्वयात्मक रूप श्रीकृष्णको ही माना है-'त्वयादर्शितं ब्रह्म श्रीकृष्णाख्यं निर्वाणं .... रूपम् ।'[2] तत्वदीपनिबन्धकार परमकाष्ठापन्न वस्तु श्रीकृष्णके लिये कहते हैं-

सर्वोद्धारप्रयत्नात्मा कृष्णः प्रादुर्बभूव ह ।[3]

कृष्णके रूपमें ही परमरसत्व अर्थात् आस्वाद्यत्व एवं रसिकत्वका पूर्ण विकास है-

कृषिर्भूवाचकः शब्दः णश्च निर्वृतिवाचकः ।
तयोरैक्यं परं ब्रह्म कृष्ण इत्यभिधीयते ॥[4]

ब्रह्म, परमात्मा और भगवान्

एक ही अद्वय-ज्ञान परतत्त्वकी त्रिविध अधिकारियोंकी दृष्टिसे त्रिविध प्रतीतियाँ हैं—ब्रह्म, परमात्मा एवं भगवान । भागवतमें स्थल-स्थलपर उस एक ही परतत्त्वको कभी ब्रह्म, कभी परमात्मा और कभी भगवान् कहा गया है । किन्तु श्रीकृष्ण स्वयं-भगवत् शब्द वाच्य हैं । तारतम्य विचारसे स्वयं-भगवान सर्वोपरि हैं ।

ब्रह्म :

'बृह' या 'बृहि' धातुसे निष्पन्न बृद्ध्यर्थक 'ब्रह्म'-शब्द महत्वका अभिधान लक्षित करता है ।[5] ब्रह्मसे वृहत्तम तत्त्व निर्दिष्ट है तथा बृहत्तम है

१. बृहदारण्यक ५।१
२. सिद्धान्त प्रदीप १२।६।५
३. (क) शास्त्रार्थ प्रकरण : वल्लभाचार्य : हिन्दी व्याख्या श्रीकेदारनाथ मिश्र, भारतीय विद्या प्रकाशन, वाराणसी पृष्ठ २५
(ख) अखण्डं कृष्णवत्सर्वम् - सर्वनिर्णय प्रकरण कारिका १८२
४. गोपालपूर्वतापनी
५. श्रीमद्वल्लभाचार्य : व्यक्तित्व, सिद्धान्त और सन्देश, प्रकाशन : श्रीगोवर्द्धननाथजीका मन्दिर, इन्दौर १९८१ में धृत – S. Radha Krishnan; Religion in contemporary Philosophy P. 442-44

स्वयं भगवान् श्रीकृष्ण। ब्रह्ममें स्वरूपशक्तिका न्यूनतम विकास है केवल उतना ही जितना सत्तामात्रकी रक्षाके लिये आवश्यक है। इसलिये वह केवल सत् रूप है। परब्रह्मके प्रत्येक प्रकाशनें इसकी स्थिति है। ब्रह्म-संहितामें परब्रह्म (श्रीकृष्ण) और ब्रह्मकी तुलना सूर्य और उसकी प्रभासे की गयी है।[1] चैतन्य चरितामृतमें भी ब्रह्मको गोविन्दकी अंग-कान्ति कहा है–

कोटि कोटि ब्रह्माण्डे जे ब्रह्मेर विभूति।
सेई ब्रह्म गोविन्देर हय अंग-कान्ति ॥[2]

ब्रह्मका व्यापकत्व परब्रह्ममें ही हैं, पर रूढ़ि-वृत्तिके आधारपर 'ब्रह्म' को निर्विशेष ही समझा जाता है। निर्बिशेष-ब्रह्म परब्रह्मका असम्यक्-प्रकाश है।

तस्मै तुभ्यं भगवते वासुदेवाय वेधसे।
आत्मद्योतगुणैश्छन्न महिम्ने ब्रह्मणे नमः ॥[3]

परमात्मा :

परमात्मा चित् रूप है। ब्रह्मकी अपेक्षा परमात्मामें स्वरूप-शक्तिका विकास अधिक है, इसलिये वह मूर्त्तरूप है। वह अन्तर्यामी रूपसे सब जीवोंके अन्तःकरणमें विद्यमान है। 'परमात्मा' का व्यापकत्व भी परब्रह्ममें ही हैं। रूढ़िसे परमात्माका जीवान्तर्यामी रूपमें संकेत मिलता है। तत्वतः परमात्मा परब्रह्मसे भिन्न नहीं है। परमात्मा परब्रह्मका वह अंग है जो जीवशक्ति और मायाशक्तिके साथ सम्बन्ध होनेसे अनन्त कोटि ब्रह्माण्डकी सृष्टि आदिका कार्य करता है और उनमें व्याप्त रहकर उनका संचालन करता है–

शश्वत्प्रशान्तमभयं प्रतिबोधमात्रं शुद्धं समं सदसतः परमात्मतत्वम्।
शब्दो न यत्र पुरुषकारकवान् क्रियार्थो माया परैत्यभिमुखे च विलज्जमाना[4]

---

१. ब्रह्मसंहिता – यस्यप्रभा प्रभवतो जगदण्डकोटि कोटिष्वशेष वसुधादि विभूतिभिन्नम्। तद्ब्रह्म निष्कलमनन्तमशेषभूतं गोविन्दमादिपुरुषं तमहं भजामि ॥ ५।४०

२. (क) चैतन्य चरितामृत १।२०।१०, (ख) भगवद्गीता 'ब्रह्मणो हि प्रतिष्ठा हम् १४।२१

३. भागवत १०।१०।३३

४. भागवत २।७।४७

योगीगण हृदयमें निवासशील चतुर्भुज शंख, चक्र, गदा, पद्मधारी परमात्माका स्मरण एकाग्र मनसे करते हैं।[१]

भगवान् :

भगवान् आनन्दरूप हैं। उसमें स्वरूप-शक्तिका पूर्णतम विकास है। ऐश्वर्य, माधुर्य और सौन्दर्यकी इसमें पूर्णाभिव्यक्ति है। इसका स्वरूपगत लक्षण है 'रसमयता'। इसके विभिन्न प्रकाशोंका स्वरूप भी रसमय है। श्रीकृष्ण ही भगवान् हैं–

'कृष्ण कृष्ण महायोगिंस्त्वमाद्य पुरुषः परः।'[२]

इस प्रकार ज्ञान मार्गका अवलम्बन करनेसे परब्रह्मके निर्विशेष स्वरूपका, योग-मार्गके आश्रयसे परमात्म-स्वरूपका और भक्तिमें उसके पूर्णतम रूप स्वयं–भगवानका अनुभव होता है।[३] श्रुतिगणोंने अपनी स्तुतिमें कहा है 'नमस्तस्मै भगवते कृष्णाय।'[४] भागवतके भगवान् श्रीकृष्ण हैं।

परब्रह्म नराकृति

परमेश्वरका आद्यावतार विराट् पुरुष है– 'आद्योवतारः पुरुषः परस्य।'[५] श्रीकृष्ण द्विभुज और नराकृति है। भागवतमें 'गूढं परं ब्रह्म मनुष्य लिंगम्'[६] का संकेत है। विष्णुपुराणमें 'परमब्रह्म नराकृति' का निर्देश है।[७] गोपालपूर्वतापनी श्रुतिमें उन्हें 'द्विभुजं ज्ञानमुद्राढयं वनमालिनमीश्वरं' कहा

---

१. केचित्स्वदेहान्तर्हृदयावकाशे प्रादेशमात्रं पुरुषं वसन्तम्।
चतुर्भुजं कंजरथांगशंखगदाधरं धारणया स्मरन्ति ॥ भागवत २।२।८

२. भागवत १०।१०।२९ पूर्वार्द्ध

३. सेइ कृष्ण-प्राप्ति हेतु त्रिविध साधन। ज्ञान, योग, भक्ति तिनेर पृथक लक्षण। तिन साधने भगवान् तिन स्वरूपे भासे। ब्रह्म, परमात्मा, भगवान् त्रिविध प्रकाशे ॥ - चैतन्य चरितामृत आदि २।५७-५८

४. भागवत १०।८७।४६

५. भागवत २।६।४१

६. भागवत ७।१५।७५ श्लोकांश

७. विष्णु पुराण ४।११।२ श्लोकांश

है।[1] ब्रह्मविद् भी उन्हींको आदिपुरुष, समस्त कारणोंके मूलकारणस्वरूप, महान् पुरूष कहते हैं 'तमाहुरग्र्यं पुरुषं महान्तम् ।'[2]

सच्चिदानन्द श्रीकृष्णका विग्रह भी सच्चिदानन्द है 'सच्चिदानन्द विग्रहः'[3] जिससे स्पष्ट है परब्रह्मका श्रीविग्रह परब्रह्मसे अभिन्न है। देह-देहीका भेद नहीं है उसमें। उनके प्रत्येक अंगकी सामर्थ्य भी एक-सी है। श्रीकृष्ण तर्जनीपर भी सहजरूपसे बिना प्रयासके गोवर्द्धन-धारण करते हैं। उनका विग्रह अपरिच्छिन्न और सर्वव्यापक है। श्रीकृष्णका मुखमें ब्रह्माण्ड दिखाना इस तथ्यका प्रतीक है। उनके विग्रहको जो पांचभौतिक मानते हैं, उनके लिये श्रीकृष्णने कहा है–

अवजानन्ति मां मूढ़ा मानुषीं तनुमाश्रितम् ।'[4]

नराकृति रूप श्रीकृष्णका सूतिका-गृहमें प्रथम दर्शन होता है–'बभूव प्राकृतः शिशुः ।'[5] नराकार गूढ़ परब्रह्म-इस प्रकारसे ही श्रीकृष्णकी प्रख्याति है। भागवतमें अनेकों बार यही बात कही है–

१. गोपालपूर्वतापनी १।८
२. श्वेताश्वर उपनिषत् ३।१९
३. ब्रह्मसंहिता ५।१
४. गीता ९।११
५. भागवत १०।३।४६

‘परब्रह्म श्रीकृष्णका नराकार रूप भागवतीय प्रमाणोंसे’

पद	अर्थ	श्लोक संख्या
१. मायामनुष्यस्य	श्रीकृष्णकी मनुष्यके रूपमें प्रतीति लीलामें	१०।१।७
२. क्रीड़ामनुजबालकः	केवल क्रीड़ाके लिये ही मनुष्य बालक	१०।८।३६
३. मनुजार्भमायिनः	मनुष्य-बालककी सी लीला रचनेवाले	१०।१२।३८
४. देहीवाभाति मायया	योगमायाके आश्रयसे देहधारीवत् प्रतीति	१०।१४।५५
५. क्रीड़ामानुषरूपिणः	लीलासे ही मनुष्य रूप	१०।१६।६७
६. मायामनुजमीश्वरम्	मायासे ही मनुष्य आकृति	१०।१७।२२
७. लीलानरवपुर्नृलोक-मनुशीलयन्	लीलासे मानव देह धारण कर मनुष्यकी सी लीला	१०।२३।३३
८. क्रीड़ार्थमद्यात्तमनुष्य-विग्रह	क्रीड़ार्थ मनुष्यका सा श्रीविग्रह प्रकटन	१०।३७।२४
९. लीलागृहीत देहेन	लीलासे ही मनुष्य रूप धारण करने वाले	१०।५२।३६
१०. लीलातनूः	लीला-शरीर	१०।५८।३७
११. लीलयाधृततनोः	लीलासे ही शरीर धारण	१०।६०।९
१२. क्रीड़ानरशरीरस्य	क्रीड़ासे नर-शरीर	१०।७६।११
१३. आतयोगमायाकृतिम्	योगमायाके आश्रयसे नृ-वपु धारण	१०।८३।१४

श्रीकृष्ण परमब्रह्म और नराकार होते हुये भी ‘कृष्णत्व’ का कभी भी त्याग नहीं करते हैं श्रीमद्भागवतके वर्णनके आधारपर। श्रीकृष्णका स्वधाम-गमन भी इसी रूपमें हुआ है। लीलामय श्रीकृष्ण नराकृति ही है नित्य ही।

कृष्णस्तु भगवान् स्वयं :

परब्रह्मके जब विभिन्न अवतारोंका वर्णन किया गया, वहाँ स्पष्ट कह दिया 'एते चांशकलाः पुंसः कृष्णस्तु भगवान् स्वयम् ।'[1] 'स्वयं' पदमे तात्पर्य है–'अन्यनिरपेक्ष' । अन्य अवतारोंकी भगवत्ता अन्य-निरपेक्ष नहीं है । श्रीकृष्ण की भगवत्तासे ही उनकी भगवत्ता है । आवेश, प्राभव, वैभव, परावस्थ भेदसे अवतारोंके चार प्रकार हैं । इनके मध्यमें श्रीकृष्ण अवतारी है । परावस्थ अवतार नृसिंह, राम और श्रीकृष्णमें षड्गुण परिपूर्ण भावसे विद्यमान है; परन्तु श्रीकृष्णका माहात्म्य सर्वाधिक है ।[2] ऐश्वर्य और माधुर्य एवं प्रेमाधिक्यसे श्रीकृष्णमें भगवत्ताका सर्वाधिक प्रकाश है ।[3] जय-विजय जो सनकादिके शापसे ग्रसित थे, श्रीकृष्णके द्वारा निहत होनेपर ही उनकी मुक्ति हुई । वैदूर्यमणि जिस प्रकार स्थानभेदसे नीलपीत इत्यादि छविको धारण करती है, उसी प्रकार भगवान् अच्युत उपासना भेदसे अपने स्वरुपको नानाकारमें प्रकाश किया करते हैं । यद्यपि परेशके हेतु - ये समस्त अवतार परिपूर्ण है तो भी उनमें अखिल शक्तिकी अभिव्यक्ति नहीं है ।[4]

श्रीकृष्णके एकत्वमें भी पृथक् प्रकाश है । यथा - 'बड़े आश्चर्यकी बात है एक ही श्रीकृष्णने एक ही शरीरमें एक ही समय पृथक्-पृथक् गृहमें सोलह सहस्र स्त्रियोंका पाणिग्रहण किया है ।[5] उनके एकतत्वमें ही अंशशित्व और विरुद्धशक्तित्व है यथा–'तुममें आविष्टचित्त भक्तगण बहुमूर्ति और एकमूर्ति रूप तुम्हारा भजन करते हैं ।' अक्रूरजी की इस उक्तिमें मूर्तिका अर्थ अंशित्व

---

१. भागवत १।३।२८

२. सन्त्ववतारा बहवः पुष्करनाभस्य सर्वतो भद्रः ।
कृष्णादन्यः को वा लतास्वपि प्रेमदो भवति ।। - बिल्वमंगलचरण कृत कृष्णकर्णामृत

३. (क) रामादिमूर्तिषु कलानियमेन तिष्ठन् नानावतारमकरोद्भुवनेषु किन्तु । कृष्णः स्वयं समभवत्परमः पुमान् यो, गोविन्दमादिपुरुषं तमहं भजामि ।। - ब्रह्म संहिता ५।३९

(ख) लघुभागवतामृत १।१८२

४. लघुभागवतामृत १।४१

५. चित्रं बतैतदेकेन वपुषा युगपत् पृथक् ।
गृहेषु द्व्यष्टसाहस्रं स्त्रिय एक उदावहत् ।। - भागवत १०।६९।२

तथा बहुमूर्तिका अर्थ अंशत्व है।[1] उनके जन्मके पूर्व आकाशवाणीमें भी यही कहा है कि 'वसुदेवगृहे साक्षाद् भगवान् पुरुषः परः। जनिष्यते.......... ।'[2] श्रीकृष्णके स्वयं रूपत्वमें ही भागवतका तात्पर्य है। 'स्वयं' पदका अभ्यास भी है जैसे–

कृष्णस्तु भगवान् स्वयं'	१।३।२८
स्वयंत्वसाम्यातिशय·	३।२।२१
अष्टमस्तु तयोरासीत् स्वयमेव हरिः	९।२४।५५

रामनारायण व्यास अपनी पुस्तक 'The Synthetic Philosophy of the Bhagawata' में कहते हैं कि कृष्ण स्वयं-भगवान् हैं, यह सार्वभौमिक सत्य है और इसके लिये संसारको भागवतका ऋणी होना चाहिये।[3]

सर्वावतारी श्रीकृष्ण :

भागवतमें क्रिया और ज्ञान दोनोंसे युक्त अवतारी हरिका निरूपण किया गया है।[4] सर्वावतारी श्रीकृष्णमें अवतार ग्रहण करनेमें उनकी 'इच्छा शक्ति' ही प्रेरक है–'अवतीर्णोऽसि भगवन् स्वेच्छोपात्तपृथग्वपुः।[5] कभी वह भक्तोंकी इच्छानुसार भी रूप धारण करते हैं–'भक्तेच्छोपात्तरुपाय परमात्मन् नमोऽस्तुति ।'[6] जीवोंके कल्याणकी भावना ही उनके अवतारका कारण है–

---

१. भागवत १०।४०।७   २. वही १०।१।२३

3. '......... For the Bhagavata Krishna is the supreme, the sole Reality of the universe--Krshna stu Bhagavan svayam, the absolate, the Non-dual who could satisfy the speculative fight of the metaphysicians and attract the affectionate hearts of the vast bulk of humanity, that is a rare contribution of the Bhagavata for which the whole world should be indebted to it.

प्रकाशन : संस्कृत बुक डिपो, दिल्ली पृष्ठ ९५

४. तत्वार्थ दीप निबन्ध : शास्त्रार्थ प्रकरण ११

५. भागवत ११।११।२८

६. भागवत १०।५९।२५ उत्तरार्द्ध

स्वैरावतार उरुगाय विदाम मुष्ठु ।'[1] श्रीकृष्ण पृथ्वीका भार उतारनेके लिये ही अवतीर्ण होते हैं ।[2] स्वयं-भगवान् कहते हैं 'मेरे अवतारका यही प्रयोजन है कि मैं पृथ्वीका बोझ हल्का कर दूँ, साधु-सज्जनोंकी रक्षा करूँ और दुष्टजनोंका संहार । समय-समयपर धर्म-रक्षाके लिये और बढ़ते हुये अधर्मको रोकनेके लिये मैं और भी अनेकों शरीर ग्रहण करता हूँ ।[3] नृसिंह, बराह आदि अवतारोंमें वैशिष्ट्य होते हुये भी सर्वावतारीके विग्रहमें कोई भेद नहीं है 'अनन्त प्रकाशे कृष्णेर नाहि मूर्तिभेद ।'[4] पूर्णावतार श्रीकृष्णमें सभी पूर्वावतारोंकी स्थितिके संकेत हैं । अवतार त्रिविध है यथा जलके अवतार है-मत्स्य, कच्छप, वनके अवतार है – नृसिंह, वराह, हंस और लोकके अवतार है राम, परशुराम, वामन आदि । सभी अवतारोंकी पराकाष्ठा श्रीकृष्णमें पूर्ण है–

सर्वावतारी श्रीकृष्ण

अवतार	कार्य	श्रीकृष्णमें संकेत
१) चतुःसन, नारद	अखण्ड ब्रह्मचर्यका पालन	योगरेश्वरेश्वर श्रीकृष्णका सम्पूर्ण जीवन[5]
२) वाराह	पृथ्वीका उद्धार	मृद्भक्षण, विदुरके यहाँ शाक-ग्रहण
३) देवर्षि नारद	कर्मों द्वारा कर्मबन्धनसे मुक्तिका उपदेश	श्रीकृष्ण द्वारा उद्धवको कर्म योगका उपदेश
४) कपिल	सांख्य शास्त्रका आसुरि ब्राह्मणको उपदेश	श्रीकृष्णके द्वारा सांख्ययोगका उपदेश
५) मत्स्य	हीन जाति, मनु–रक्षा	कृष्णका भीमके साथ युद्धकी भिक्षाके लिये जरासन्धके समीप जाना, उग्रसेन-रक्षा
६) हयग्रीव	असुर-हनन	शिशुपाल-बध

१. भागवत १०।६६।१७

२. ईश्वरस्य विधिं को नु विधुनोत्यन्यथा पुमान् ।
भूमेर्भारावताराय योऽवतीर्णो यदोः कुले ॥ – भागवत १०।४६।२८

३. वही १०।५०।६–१० ४. चैतन्य चरितामृत २।२०।१४४

५. भागवत : चीरहरण प्रसंग १०।२२।८

७)	कच्छप	मन्दराचल-धारण	गोवर्द्धन-धारण
८)	नृसिंह	प्रह्लाद-रक्षा	पाण्डव-रक्षा
९)	हंस	ब्रह्मादिको उपदेश	उद्धवको ज्ञान
१०)	राम	ताड़का-वध, रावण-वध	पूतना-वध, भौमासुर-वध
११)	परशुराम	ब्रह्म वृत्ति होनेपर भी क्षत्रिय-वध	ब्रह्म रूपसे समान होनेपर भी क्षत्रिय-वध
१२)	वामन	अदितिकी प्रार्थनासे अवतार	देवकीकी प्रार्थनासे अवतार

इस प्रकार सर्वावतारी श्रीकृष्णमें सभी चरितोंका समावेश है। श्रीवीरराघवाचार्य कहते हैं-श्रीकृष्णके अतिरिक्त सभी अवतार शेषशायी भगवानके हैं। स्वयं-भगवान् श्रीकृष्ण सर्वावतारी हैं। भगवत् रूपके षडादि गुणोंमें अवतार इस प्रकार निहित है–

१–ऐश्वर्यप्रकाशक :

नृसिंहो जामदग्नश्च कल्की पुरुष एव च।
भगवन्क्तासंप्रधानावैश्वर्यस्य प्रकाशकाः॥

अर्थात् नृसिंह, जामदग्नि और कल्कि आदि भगवानके ऐश्वर्य प्रकाशक है।

२–धर्म प्रकाशक :

नारदोऽथ तथा व्यासो वराहो बुद्ध एव च।
धर्माणामेव वैविध्यादयो धर्म प्रदर्शकाः॥

अर्थात् नारद, व्यास, वराह और बुद्ध धर्म प्रदर्शक है।

३–कीर्ति प्रदर्शक :

रामोधन्वन्तरिर्यज्ञः पृथुः कीर्तिप्रदर्शिनः।

कीर्ति प्रदर्शक है राम, धन्वन्तरि, यज्ञ और पृथु।

४–श्रीप्रदर्शक :

बलरामो मोहिनी च वामनः श्रीप्रधानकः।

बलराम, मोहिनी और वामन श्रीप्रदर्शक हैं।

५–ज्ञान-प्रदर्शकः

दत्तात्रेय मत्स्यश्च कुमारः कपिलस्तथा ।
ज्ञानप्रदर्शकाः एते विज्ञातव्या मनीषिभिः ।।

ज्ञानप्रदर्शक है दत्तात्रेय, मत्स्य, कुमार और कपिल ।

६–वैराग्य-प्रदर्शक :

नारायणो नरश्चेति कूर्मश्च ऋषभस्तथा ।
वैरागदर्शिनी श्रेयास्तत् कर्मानुसारतः ।।

नर-नारण, कूर्म और ऋषभ वैराग्य प्रदर्शक है ।

ये समस्त अवतार श्रीकृष्णमें अन्तर्भूत है ।[१]

श्रीमद्भागवतमें चार स्थानपर अवतारावली प्रस्तुत की गयी है, किन्तु परस्पर संगति नहीं है । सूक्ष्म दृष्टिसे विचार करनेपर कहा जा सकता है कि प्रथम स्कन्धके अवतारोंकी गणना संख्याकी दृष्टिसे है ।[२] 'अवताराह्यसंख्येया हरेः ।'[३] द्वितीय स्कन्धमें अवतारोंके स्वरूपका परिचय ही दृष्टि रही है ।[४] दशम स्कन्धमें कीर्तिकी दृष्टिका संकेत मिलता है ।[५] एकादश स्कन्धमें अवतारोंका वर्णन वैशिष्ट्य (तपस्या, ज्ञान, उपदेश, ग्रन्थ, निर्माण आदिका वैशिष्ट्य) के दृष्टिकोणसे है ।

सभी अवतारोंमें कृष्णको प्रमुख-प्रधान मानते हुए सर्वावतारी कहा है भागवताकारने । प्रबन्धमें कृष्ण-अवतारका ही वर्णन विस्तार रूपसे है । दश प्रमुख-अवतार, विकास-क्रमसे इस प्रकार है–मत्स्य, कच्छप, वाराह, नृसिंह, वामन, परशुराम, राम, कृष्ण, बुद्ध, कल्कि । सबके मध्यमें श्रीकृष्ण अवतारी हैं 'अवतारावली बीजभवतारी ।'[६]

लीलावतार, पुरुषावतार, गुणावतार, शक्त्यावेशावतार, मन्वन्तरावतार, युगावतार

श्रीकृष्ण ही अपने तीन विशेष रूपोंसे विभिन्न लोकोंमें प्रकाशित होते हैं– १. स्वयंरूप २. तदैकात्मक रूप ३. आवेशरूप । सर्वावतारीके

---

१. कल्याण ५५ वर्ष अंक४ लेख - श्रीमद्भागवतमें श्रीकृष्णका स्वरुपः डा० वासुदेवकृष्ण चतुर्वेदी
२. भागवत १।३।६-२५ ३. वही १।३।२६
४. भागवत २।७।१-३८ ५. वही १०।४०।१७-२२
६. भक्तिरसामृत सिन्धु, दक्षिण विभाग, प्रथम लहरी कारिका ३३

स्वरूपका स्वयं-रूपके साथ ऐक्य है। किन्तु आकारादिके द्वारा जब वह अन्य प्रकारसे प्रकाशित होता है, तब यह उसका तदेकात्मक-रूप है।[1] तदेकात्म-रूप दो रूप धारण करता है–

१–विलास :

स्वयंरूप सर्वावतारी जब अपने-से भिन्न आकारमें प्रकट होते हैं और उस आकारकी शक्ति 'लगभग' समान होती है, तब उसे विलास कहा जाता है। प्राभव-विलास और वैभव-विलाससे विलास दो रूपका है। प्राभवविलासके मुख्य रूप हैं–वासुदेव, संकर्षण, प्रद्युम्न और अनिरुद्ध। इस आदि चतुर्व्यूहसे चौबीस मूर्तियोंका प्रकाश होता है जो भिन्न-भिन्न अस्त्र धारण करते हैं।

२–स्वांश :

जब शक्ति विलासकी अपेक्षा कम होती है, तब उसे स्वांश कहते हैं। स्वांश रूपमें कृष्ण अन्य अवतारोंके प्राकट्यके कारण हैं, जो मुख्यतः लीलावतारादि रूपसे छः प्रकारके हैं–

१. पुरुषावतार

सर्वावतारीका जो अंश प्रधान, गुण, सम्बन्धकी भाँति प्रकृति एवं प्राकृतका वीक्षणादि कार्य करता है, इस अंशसे विभिन्न प्रकारके अवतारोंका उद्गम स्थान है तद्विशिष्ट अवतारको 'पुरुष' कहते हैं।[2] यह त्रिविध है–

१–प्रथम पुरुष :

कारणार्णवशायी - महतत्वके स्रष्टा, संकर्षणके अंश स्वरूप और समष्टि ब्रह्माण्डके अन्तर्यामी हैं।

> **भूतैर्यदापंचभिरात्मसृष्टैः पुरं विराजं विरचय्य तस्मिन्।**
> **स्वांशेन विष्टः पुरुषाभिधानमवाप नारायण आदिदेवः॥[3]**

---

१. **यद्रूपं तदभेदेन स्वरूपेण विराजते।**
आकृत्यादिभिरन्यादृक्स तदेकात्मरूपकः।
स विलासः स्वांश इति धत्ते भेद द्वयं पुनः॥ - लघुभागवतामृत १।१४

२. भागवत १०।४६।३१

३. भागवत ११।४।३

२–द्वितीय पुरुष :

गर्भोदशायी, प्रद्युम्नके अंश रूप हैं। ब्रह्माके रचयिता है। व्यष्टि ब्रह्माण्डके अन्तर्यामी है।

यस्याम्भसि शयानस्य योगनिद्रां वितन्वतः।
नाभिहृदाम्बुजादासीद्ब्रह्मा विश्वसृजां पतिः ॥[1]

३–तृतीय पुरुष :

क्षीरोदशायी-अनिरुद्धके अंश रूप हैं, सर्वजीवान्तर्यामी हैं।

केचित्स्वदेहान्तर्हृदयावकाशे प्रादेशमात्रं पुरुषं वसन्तम्।
चतुर्भुजं कंजरथांगशंखगदाधरं धारणया स्मरन्ति ॥[2]

लीलावतार :

लीलावतार ही कल्पावतार कहे जाते हैं, क्योंकि वे प्रत्येक कल्पमें अवतीर्ण होते हैं। ये लीलावतार हैं–

भागवतमें लीलावतार-प्रबन्ध

अवतार	काल[3]	लीला-कार्य	श्लोक-संख्या
सन	प्रथम ब्राह्मकल्प	अस्खलित, असाध्य ब्रह्मचर्यका अनुष्ठान	१।३।६
२. श्रीनारद	प्रथम ब्राह्मकल्प	भक्तिका प्रचार	१।३।८
३. श्रीवाराह			
प्रथम	स्वायम्भुव मन्वन्तरसे पूर्व	पृथ्वीका उद्धार	१।३।७
द्वितीय	चाक्षुष मन्वन्तर	पृथ्वीके उद्धारार्थ हिरण्याक्ष-वध	२।७।१
४. श्रीमत्स्य			
प्रथम	स्वायम्भुव मन्वन्तर	हयग्रीव दैत्यका वध	१।३।१५
द्वितीय	चाक्षुष मन्वन्तर का अवसान	राजा सत्यव्रतपर कृपा	२।७।१२
५. श्रीयज्ञ	स्वायम्भुव मन्वन्तर	त्रिलोककी महार्त्तिका हरण	१।३।१२

१. वही १।३।२ **२. भागवत २।२।८**

३. काल-कलनाका आधार : भागवत परिचय : सम्पादक 'श्रीचक्र' पृष्ठ २८७–८८

६. श्रीनर–नारायण	स्वायम्भुव मन्वन्तर	परब्रह्म निष्ठा रूप दुःसाध्य तपस्या	१।३।९
७. श्रीकपिल	स्वायम्भुव मन्वन्तर	माता देवहूतिको सांख्ययोग उपदेश	१।३।१०
८. श्रीदत्तात्रेय	स्वायम्भुव मन्वन्तर	समस्त जगतके निदान स्वरूप	२।७।४
९. श्रीहयशीर्ष	स्वायम्भुव मन्वन्तर	वेदमय, यज्ञमय और सर्वदेवमय	२।७।११
१०. श्रीहंस	स्वायम्भुव मन्वन्तर	समस्त वस्तुओंके बोधमें समर्थ	२।७।१९
११. श्रीध्रुवप्रिय	स्वाम्भुव मन्वन्तर	ध्रुवको दर्शन	२।७।८
१२. श्रीऋषभ	स्वायम्भुव मन्वन्तर	सर्वाश्रय, वन्दित, धीरगणकी पदवी	१।३।१३
१३. श्रीपृथु	स्वायम्भुव मन्वन्तर	पृथ्वीसे सर्व-वस्तुओंका दोहन	१।३।१४
१४. श्रीनृसिंह	(चतुर्थ) तामस मन्वन्तर	प्रह्लाद रक्षा	१।३।१८
१५. श्रीकूर्म	(षष्ठ) चाक्षष मन्वन्तर	समुद्र-मन्थनपर मन्दराचल धारण	१।३।१६
१६. श्रीधन्वन्तरि	चाक्षुष मन्वन्तर	समुद्र-मन्थनसे अमृत लेकर प्राकट्य	१।३।१७
१७. मोहिनी	चाक्षुषमन्वन्तर	दैत्योंको मोहित करके देवताओंको अमृत-पान	१।३।१७
१८. श्रीवामन	चाक्षुष मन्वन्तर	बलिसे इन्द्र-पद लेकर इन्द्रको प्रदान	१।३।१९
१९. श्रीभार्गव (परशुराम)	वर्तमान (सप्तम) वैवस्वत मन्वन्तरके तृतीय त्रेतामें	इक्कीस बार पृथ्वीसे क्षत्रिय-शून्य	१।३।२०
२०. श्रीराघवेन्द्र	सप्तम मन्वन्तरके २४वें त्रेताके अन्तमें	समुद्र-बन्धनादि रूप असाधारण-प्रभाव	१।३।२२
२१- श्रीव्यास	सप्तम मन्वन्तरके बीते द्वापरके अन्तमें	वेदरूप-कल्पवृक्षका शाखा	१।३।२१

२२. श्रीबलराम कृष्ण	सप्तम मन्वन्तरके अट्ठाइसवें द्वापरके अन्त में	दुष्टोंके बध द्वारा पृथ्वीकी रक्षा		१।३।१३
२३. श्रीबुद्ध	सप्तम मन्वन्तरकी कलियुगकी प्रवृत्ति होनेपर तृतीय चतुर्युगीमें	असुर-गणोंका मोहन		१।३।२४
२४. श्रीकल्की	भविष्यमें, कलियुगके अन्तमें	दुर्व्यवहारोंका प्रलयन		१।३।२५

गुणावतार :

गुणावतार हैं जगतके सृष्टिकर्त्ता ब्रह्मा,[1] संहारकर्त्ता शिव,[2] और पालनकर्त्ता विष्णु।[3] रजोगुणकी सहायतासे ब्रह्मा सृष्टि करते हैं, तमोगुणकी सहायतासे शिव संहार करते हैं और सत्वगुणकी सहायतासे बिष्णु पालन करते है। मायिक-गुणोंके साथ सम्बन्ध होनेके कारण ये 'गुणावतार' कहे जाते हैं। ये तीनों पूर्ण हैं, किन्तु श्रीकृष्ण गुणातीत है, साक्षादीश्वर है।[4]

शक्त्यावेशावतार :

शक्त्यावेशावतार मुख्य और गौण रूपसे दो प्रकारके हैं। जब किसीमें भगवानकी साक्षात् शक्तिका संचार होता है, तो उसे मुख्य शक्यावेश अवतार कहते हैं। जब शक्तिके आभासका विभूति रूपमें संचार होता है, तब उसे गौण शक्त्यावेशावतार कहते हैं–

(क) भगवदावेश : कपिल और ऋषभदेव

(ख) शक्त्यावेश :

---

१. **भास्वान् यथाश्मसकलेषुनिजेषु तेजः। स्वीयं कियत् प्रकटयत्यपि तद्वदत्र। ब्रह्मा य एव जगदण्डविधानकर्त्ता। गोविन्दमादिपुरुषं तमहं भजामि ॥ – ब्रह्मसंहिता ५।४९**

२. **(क) शिवः शक्तियुतः शश्वत् त्रिलिंगो गुणसंवृतः॥ भागवत १०।८८।३**
(ख) क्षीरं यथा दधि विकारविशेष योगात्। संजायते न तु ततः पृथगस्ति हेतोः। यः शम्भुतामपि तथा समुपैति कार्यात्। गोविन्दमादिपुरुषं तमहं भजामि – ब्रह्मसंहिता ५।४५

३. **तल्लोकपद्मं स उ एव विष्णुः प्रावीविशत् सर्वगुणावभासम्। तस्मिन् स्वयं वेदमयो विधातो स्वयंभुवं यं स्म वदन्ति सोऽभूत ॥ - भागवत ३।८।१५**

४. **भागवत १०।८८।५**

१. वैकुण्ठस्थशेष (स्वसेवन शक्ति) २. अनन्तदेव (भूधारण शक्ति)
३. ब्रह्मा (सृष्टि शक्ति) ४. चतु:सन (ज्ञान-शक्ति)
५. नारद (भक्ति शक्ति) ६. पृथु (पालन शक्ति)
७. परशुराम (दुष्ट-दमन-शक्ति) ।

मन्वन्तरावतार :

भागवत-शास्त्रमें चौदह मन्वन्तर माने गये हैं। प्रत्येक मन्वन्तरमें एक अवतार होता है। सचराचर तत्तन्मन्वन्तरीय इन्द्र-शत्रुविनाशके द्वारा देवताओंके मध्यमें इन्द्र सहायतार्थ मुकुन्दका जो आविर्भाव है अथवा मनुके समयको लेकर जो अवतार है, वह मन्वन्तरावतार कहा जाता है।

भागवतमें मन्वन्तरावतार प्रबन्ध

मन्वन्तर	अवतार	लीला कार्य	श्लोक संख्या
१. स्वायम्भुव	श्रीयज्ञ	मन्वन्तरका पालन अपने पुत्रोंके साथ	८।१।४
२. स्वारोचिष	विभु	ब्रह्मचर्य व्रतकी शिक्षा	८।१।२१–२२
३. उत्तम	सत्यसेन	यक्ष-राक्षस और प्राणिपीड़क भूतगणोंका नाश	८।१।२५–२६
४. तामस	श्रीहरि	गजेन्द्र उद्धार	८।१।३०
५. रैवत	वैकुण्ठ	रमादेवीकी प्रार्थनासे वैकुण्ठ लोककी रचना	८।४।४–५
६. चाक्षुष	अजित	समुद्र-मन्थनसे देवताओंको अमृत-प्रदान, कूर्म-रूपसे मन्दराचल-धारण	८।५।९-१०
७. वैवस्वत	वामन	बलिसे तीन-पग भूमिकी याचना	८।२०।३३-३४
		भविष्यमें होनेवाले मन्वन्तरावतार	
८. सावर्णि	सौर्वभौम	पुरन्दर इन्द्रसे स्वर्गराज्य लेकर बलिको अर्पण	८।१३।१७
९. दक्षसावर्णि	ऋषभ	इनके द्वारा प्राप्त त्रिलोकीका अद्भुत नामक इन्द्र द्वारा भोग	८।१३।२०
१०. ब्रह्मसावर्णि	विष्वक्सेन	शम्भु नामक इन्द्रके साथ सख्यता	८।१३।२३
११. धर्मसावर्णि	धर्मसेतु	त्रिलोकीका पालन	८।१३।२६
१२. रुद्रसावर्णि	सुधामा	मनुका पालन	८।१३।२९
१३. देवसावर्णि	योगेश्वर	देवराजका कार्य-साधन	८।१३।३२
१४. इन्द्रसावर्णि	वृहद्भानु	कर्मसन्ततिका विस्तार	८।१३।३५

युगावतार :

युगावतार धारण कर श्रीकृष्ण युगधर्मका प्रचार करते हैं। जिस युगमें स्वयं-भगवान् अवतीर्ण होते हैं, उस युगमें युगावतार पृथक्-रूपसे नहीं होता, क्योंकि स्वयं भगवानमें सभी अवतार सम्मिलित होते हैं और युगावतार भी उन्हींमें होता है। ये अवतार हैं–

१–सत्ययुगका शुक्ल-अवतार[1]

२–त्रेतायुगका रक्त-अवतार[2]

३–द्वापरयुगका श्याम अवतार[3]

४–कलियुगका कृष्ण अवतार[4]

उक्त षड्विध अवतारोंमें श्रीकृष्ण ही सर्वावतारी, सर्वोपरि हैं। भागवतकारने उनकी सर्वोच्च सामर्थ्यका अद्भुत विधान करते हुए ऐसा पर्यावरण बनाया है, जहाँ सर्वत्र श्रीकृष्ण ही 'स्वयं-भगवान्' सिद्ध होते हैं।

श्रीकृष्णकी विभूति :

जो कुछ भी सर्वश्रेष्ठ है, श्रीकृष्णकी विभूति है। यही श्रीमद्भगवद्गीतामें भी वर्णित है। भागवतके एकादश स्कन्धमें श्रीकृष्णकी विभूतियोंका वर्णन है। तदनुसार श्रीकृष्ण त्रिगुणके कारण, ईश्वर-नियामक, प्राणियोंमें आत्मा, मन्त्रोंमें ओंकार, छन्दोंमें गायत्री, तेजमें सूर्य, जलाशयोंमें समुद्र, सन्मार्गप्रवर्त्तकोंमें ब्रह्मा, अष्टयोगमें मनोनिरोध रूप समाधि, प्राणियोंको अभयदान रूप सच्चा सन्यास, आत्मस्वरूपका अनुसन्धान, भगवत्स्वरूपोंमें वासुदेव, भगवद्भक्तोंमें भक्तियुक्त नारद, वीरोंमें अर्जुन–इस प्रकार जो भी श्रेष्ठ विभूति है वह स्वयं भगवानका ही अंशकला है। इनकी विभूतियोंकी गणना हो ही नहीं सकती, क्योंकि कोटि-कोटि ब्रह्माण्डोंकी तो गणना हो ही

---

१. कृते शुक्लश्चतुर्बाहुजटिलो बल्कलाम्बरः। कृष्णाजिनोपवीताक्षान् बिभ्रद खण्ड कमण्डलू। - भागवत ११।५।२१

२. त्रेतायां रक्तवर्णोऽसौ चतुर्बाहुस्त्रिमेखलः। हिरण्यकेशस्त्रय्यात्मा श्रुकश्रुवाद्युपलक्षणः। - भागवत ११।५।२४

३. द्वापरे भगवांच्छयामः पीतवासा निजायुधः। श्रीवत्सादिभिरंकैश्च लक्षणैरूप लक्षितः। - भागवत ११।५।२७

४. कृष्णवर्णं त्विषाकृष्णं सांगोपांगास्त्रपार्षदम्। यज्ञैः संकीर्तनप्रायैर्यजन्ति हि सुमेधसः॥ - भागवत ११।५।३२

नहीं पाती। जिसमें भी तेज, श्री, कीर्ति, ऐश्वर्य, लज्जा, त्याग, सौन्दर्य, सौभाग्य, पराक्रम, तितिक्षा और विज्ञान आदि श्रेष्ठ हैं वह सब कुछ श्रीकृष्ण-की विभूति है। भागवतकार भागवतमें श्रीकृष्णकी विभूतियोंका विस्मरण नहीं कर सके हैं। ये विभूतियाँ उनकी लीला एवं स्वरूपकी उत्कर्षताके परम सोपान हैं।[1]

स्वयं-रूप स्वयं-प्रकाश :

स्वयं-भगवान् श्रीकृष्णके दो स्वरूप हैं :–

१–स्वयं-रूप :

स्वयं आविर्भूत होनेवाला रूप अन्यापेक्षा रहित है।[2] अन्यनिरपेक्ष तत्व श्रीकृष्ण ही स्वयंरूप हैं। वे सदास्वरूप सम्प्राप्त हैं।[3] इनका स्वरूप कभी नहीं बदलता यहाँ तक कि प्राकृत जगतमें अवतरित होनेपर भी उनका स्वरूप अविकृत रहता है, इस समय भी वे प्रकृतिके गुणोंके अधीन नहीं हैं। स्वरूपमें ही कभी-कभी कृष्ण एकसे अधिक रूपोंमें प्रकट होते हैं, जैसे रास-लीला और द्वारकामें षोड़श सहस्र रानियोंके साथ। स्वयंरूप ब्रजेन्द्रनन्दनका गोप-वेश है। सौन्दर्य, ऐश्वर्य, माधुर्य, वैदग्ध्य-विलासका उनमें ही सर्वाधिक प्रकाश तथा स्फूर्ति है। वासुदेव भी उसे देखनेके लिये क्षुभित हो उठते हैं।

२–स्वयं-प्रकाश :

स्वयं-प्रकाशके भी दो प्रकाश हैं–प्राभव प्रकाश और वैभव-प्रकाश। चतुर्भुज स्वयंरूपका प्रकाश है।[4] आकार-गुण एवं लीलामें ऐक्य रहकर भी

---

१. भागवत ११।६।६-४०

२. अनन्यापेक्षि यद्रुपं स्वयंरूपः स उच्यते। - लघुभागवतामृत ११२

३. सदास्वरूपसंप्राप्तो मायाकार्यविशीकृतेः - भक्तिरसामृत सिन्धु, दक्षिण-विभाग, प्रथम लहरी, पृष्ठ १५३

१. (क) अनेकत्र प्रकटता रूपस्यैकस्यऽनैकधा।
सर्वथा तत्स्वरुपंव स प्रकाश इतीर्यते॥
द्वारवत्यां यथा कृष्णः प्रत्यक्षं प्रतिमन्दिरम्।
'चित्रं वैतत्त्' इत्यादि प्रमाणेन स सेत्स्यति॥
(ख) क्वचिच्यतुर्भुजत्वेऽपि न त्यजेत्कृष्ण रूपताम्।
अतः प्रकाश एव स्यात्तस्यासौ द्विभुजस्य च॥ - लघुभागवतामृत ११८-१९

एक ही विग्रह यदि युगपद् आविर्भूत होता है, तब उसको प्रकाश कहते हैं। बलराम कृष्णके 'वैभव प्रकाश' है। देवकीनन्दन भी स्वयंरूपका वैभव प्रकाश है। द्विभुज ब्रजनन्दन 'प्राभव प्रकाश' है। जब वह चतुर्भुज आदि रूपसे विलास करते हैं, तब वह स्वयंरूपका 'वैभव प्रकाश' है।

प्राभव एवं वैभव-प्रकाश श्रीकृष्ण-स्वरूपसे प्रकाशित होनेपर भी उनका अनन्त रूपोंके मूलतत्त्व मूर्तिमान श्रीकृष्णसे कोई भेद एवं पार्थक्य नहीं है। वह 'स्वयं-भगवान्' हैं।

वैभव-विलास :

परमात्माका पहला अवतार विराट् पुरुष है। श्रीकृष्ण अवतारमें श्रीकृष्ण द्वारा अपना विराट् स्वरूप माँ यशोदाको, अर्जुनादिको दिखाया गया है, जिससे निश्चित होता है कि अनादिरादि श्रीकृष्ण ही स्वयं-भगवान् हैं। सम्पूर्ण लोक और विभूतियाँ श्रीकृष्णका वैभव-विलास है।[1] काल, स्वभाव, काय, कारण, मन, पंचभूत, अहङ्कार तीनों गुण, इन्द्रियाँ, ब्रह्माण्ड शरीर, उसका अभिमानी, स्थावर और जंगम जीव-सबके-सब उन अनन्त भगवानके ही रूप हैं।[2]

स्वयंरूप-श्रीकृष्ण हैं।

नित्य-रूप :

दिव्य और आनन्दरूप आकार कभी अनित्य नहीं होता। अनुच्छित्ति-धर्मा आदि श्रुतिसे भगवानका नित्यत्व सिद्ध ही है। लीला दर्शन स्तवकमें संकेत किया जा चुका है कि श्रीकृष्णकी लीलाएँ नित्य हैं। जब लीलायें नित्य हैं तो लीलाधारी अनित्य किस प्रकार हो सकते हैं। नित्य रूपमें परम तीर्थस्वरूप भगवानकी सेवामें लक्ष्मीजी नित्य निरन्तर लगी रहती हैं। इनका नाम भी एक बार सुनने और उच्चारण करनेसे सम्पूर्ण अमंगल नष्ट हो जाते हैं। यद्यपि सदा-सर्वदा सर्वत्र नित्य हैं तथापि देवकीके गर्भसे प्रकट होते हैं, यशोदाका स्तनपान करते हुये उनकी क्रोड़में क्रीड़ा करते हैं। यदुवंशी वीर पार्षदोंके रूपमें उनकी सेवा करते रहते हैं। कैशोर ही इनका नित्य रूप है।

---

१. (क) भागवत २।६।१ से ४४, (ख) श्रीमद्भगवद्गीता ११।१०, १६,२६,३३
(ग) ऋग्वेद पुरुषसूक्त १०।६० (घ) छान्दोग्योपनिषत् ५।१८।२

२. (क) मुण्डकोपनिषत् २।१।४ (ख) श्वेताश्वतरोपनिषत् ४।२

नित्य-विहारकी रस-सरिताके मधुरिम-लहरी साम्यकी भाँति इसकी अनन्त भाव-भंगिमामें बीचिभंगोंके रूपमें नित्य उत्तरलित रहती है। इस ऐकान्तिक नित्य विहारके स्थायी भावमें संचारियोंकी भांति विहारभंगिमामें नव-नवरूप लेती रहती है। वे सभी इस नित्य स्थितिकी अवान्तर स्थितियाँ है। उस एक ही कैशोरलीलाके अनेक भाव हैं। यहाँ तक कि 'रास' भी नित्य विहारकी एक स्थिति है।[1] द्वारकामें पूर्ण, मथुरामें पूर्णतर और वृन्दावनमें पूर्णतम[2] श्रीकृष्णके नित्य-रूपका आभास न होना उसी प्रकार है, जिस प्रकार द्वारकाकी महिषियाँ भगवान् श्रीकृष्णकी उपस्थितिमें ही प्रेमोन्मादके कारण उनके विरहका अनुभव करने लगती और न जाने क्या-क्या कहने लगती।

सर्वशक्तिमान् श्रीकृष्ण :

अद्वितीय परब्रह्मकी तीन भागोंमें अवस्थिति है— कारण भावमें, शक्तिभावमें और कार्यभावमें। जो कुछ होता है वह कार्य है, जिससे होता है या किया जाता है वह शक्ति है। शक्ति कारणमें आत्मभूत रहती है, इसलिये उसे शक्तिमान् या शक्तिमत् कहते हैं। भागवतीय स्वयं-भगवान् श्रीकृष्णकी सभी शक्तियाँ सुधाकरकी ज्योत्सनाके समान, मृगमदकी गन्धके समान या कमलकी सुषमाके समान, सूर्यके आलोकके सदृश, अग्नि की दाहकताके समान, समुद्रकी उर्मियोंके समान उनकी स्वाभाविक शक्तियाँ हैं।[3] ये शक्तियां परब्रह्म श्रीकृष्णसे अभिन्न हैं। शक्ति और शक्तिमानमें किसी प्रकारका भेद नहीं है। स्वाभाविकी शक्ति एक होकर भी ज्ञान, बल और क्रिया भेदसे विविध प्रकारकी है।[4]

श्रीकृष्णका नाम, रूप, गुण और लीला यह सब कुछ शक्तिका ही परिचय है। परन्तु 'स्वतन्त्रता' और 'स्वेच्छामयता' तो शक्तिके कार्य नहीं हैं। ये दोनों परमपुरुषके स्वरूपगत कार्य हैं। कृष्ण इच्छामय तथा शक्तिके आश्रय-रुप परमपुरुष हैं। शक्ति भोग्या है, कृष्ण भोक्ता है। शक्ति अधीन होती है,

१. श्रीचैतन्य-चरितामृत

२. भक्तिरसामृत सिन्धु : रूपगोस्वामी : दक्षिण विभाग, विभाव-लहरी, कारिका ७६-७८

३. एकदेशस्थितस्याग्नेर्ज्योत्सना विस्तारिणी यथा।
परास्यब्रह्मणः शक्तिस्तदेवदखिलं जगत्॥ - विष्णुपुराण १।१२।५४

४. परास्य शक्ति विविधैव श्रूयते। - श्वेताश्वतरोपनिषत् ६।८

कृष्ण स्वाधीन है। वे शक्तिके अध्यक्ष हैं।[1] लक्ष्मी, पुष्टि, सरस्वती, कान्ति, कीर्ति और तुष्टि (अर्थात् ऐश्वर्य, बल, ज्ञान, श्री, यश और वैराग्य - ये षडैश्वर्यरूप शक्तियाँ), इला (सन्धिनी रूप पृथ्वी-शक्ति) ऊर्जा (लीलाशक्ति), विद्या-अविद्या (जीवोंके मोक्ष और बन्धनमें कारणरूपा बहिरंगा शक्ति) ह्लादिनी, संवित् (अन्तरंग शक्ति) और माया आदि शक्तियां मूर्त्तिमान होकर उनकी सेवा कर रही हैं।[2] श्रीकृष्णके अतिरिक्त और कहीं भी ये शक्तियाँ नित्यरूपसे निवास नहीं करतीं। वे सर्वेश्वर, सर्वशक्तिमान् प्रभु श्रीकृष्ण अपने नित्य आनन्दमय स्वरूपमें ही नित्य निरन्तर निमग्न रहते हैं।[3] प्रधान तीन शक्तियाँ इस प्रकार हैं–

१–चित्-शक्ति :

भगवान् श्रीकृष्णकी तीन शक्तियोंमें चिच्छक्ति सर्वश्रेष्ठ है।[4] भगवान्के धाम, परिकर, लीलादि इसी शक्तिके प्रकाश हैं। इसे स्वरूप-शक्ति या अन्तरंगाशक्ति भी कहते हैं। इसकी तीन वृत्तियाँ हैं 'संधिनी, संवित् और ह्लादिनी-जो क्रमशः भगवान्के सत्, चित् और आनन्द अंशोंसे सम्बन्धित है–

सत् चित् आनन्दमय ईश्वर स्वरूप।
तिन अंशे चिच्छक्ति हय तिन रूप॥
आनन्दांशे ह्लादिनी संदशे सन्धिनी।
चिदंशे संवित् जारे ज्ञान करि मानि॥[5]

२–जीव-शक्ति :

जीव-शक्ति स्वरूप-शक्तिमें अन्तर्भुक्त नहीं है और न ही माया-शक्तिमें। एतदर्थ यह 'तटस्थ शक्ति' कहलाती है। 'चेतन' होनेसे इसे चिद्रूपा कहते हैं। जीव इस शक्तिके अंश हैं, इसलिये इसे जीव-शक्ति कहते हैं–

---

१. जैव धर्म हिन्दी संस्करण २।१४ पृष्ठ २६७

२. भागवत १०।३९।५५ ३. गौड़ीय दर्शन

४. ते ध्यान-योगानुगता अपश्यन्। देवात्म-शक्तिं स्व-गुणैर्निगूढ़ाम्॥
यः कारणानि निखिलानि तानि। कलात्म-युक्तान्यधितिष्ठत्येकः॥
– श्वेताश्वतरोपनिषत् १।३

५. चैतन्य चरितामृत २।६।१४४-४५

यथा सुदीप्तात् पावकाद्विस्फुलिंगाः, सहस्रशः प्रभवन्ते स्वरूपाः ।
यथाक्षरात् विविधाः सौम्य भावाः, प्रजायन्ते यत्र चैवापियन्ति ।।[1]

सर्वशक्तिमान् श्रीकृष्णको चिन्मय सूर्य और जीवोंको चित्कण कहा गया है। श्रीकृष्णकी भाँति जीवोंमें भी आंशिकरूपमें कर्तत्व, भोक्तृत्व आदि गुण हैं।

३–माया-शक्ति :

मायाशक्ति परब्रह्मकी बहिरंगा शक्ति है। महतत्वादिसे लेकर महाभूत एवं भौतिक वस्तुओंको प्रकाशित करनेवाली बहिरंगा शक्ति कहलाती है। श्रीकृष्णके क्रीड़ा-स्थलसे यह सर्वदा बाहर रहती है, इसीलिये बहिरंग कही जाती है। इसे श्रीकृष्णकी शक्ति कहनेका कारण यह है कि माया ब्रह्मके आश्रित है। विश्वका निमित्त कारण माया है। जड़-प्रकृति स्वयं इस कार्यको करनेमें असमर्थ है। कृष्णकी कृपासे इसमें शक्तिका संचार होता है।[2] श्रीभगवान् कहतेहैं–वस्तुतः 'न होनेपर भी जो कुछ अनिर्वचनीय वस्तु मेरे अतिरिक्त मुझ परमात्मामें दो चन्द्रमाओंकी तरह मिथ्या ही प्रतीत हो रही है, अथवा विद्यमान होनेपर भी आकाश-मण्डलके नक्षत्रोंमें राहुकी भाँति जो मेरी प्रतीति नहीं होती, उसे मेरी माया समझनी चाहिये।' सूर्यका जलाशयमें प्रतिबिम्ब जिस प्रकार सूर्यपर आश्रित होते हुये भी सूर्यका स्पर्श नहीं करता, उसी प्रकार माया ब्रह्मकी शक्ति होते हुये भी उसे स्पर्श नहीं करती।[4] श्रीकृष्ण मायाध्यक्ष होते हुये भी मायातीत है।

मायाकी वृत्तियाँ :

मायाकी दो वृत्तियाँ हैं–

१–गुण माया :

मायाकी जो वृत्ति सत्व, रज और तमसे सृष्टिकी उत्पत्ति करनेके कारण उसका गौण उपादान कारण है, वह गुण-माया है।

---

१. मुण्डकोपनिषत् २।१।१

२. जगत् कारण नहे प्रकृति जड़ रूपा ।
शक्ति संचारिये तारे कृष्ण करेन कृपा ।। - चैतन्य चरितामृत १।५।५१

३. ऋतेऽर्थं यत् प्रतीयेत न प्रतीयेत चात्मनि ।
तद्विद्यादात्मनो माया यथा भासो यथा तमः ।। - भागवत २।९।३३

४. भागवत २।९।३३ क्रमसन्दर्भ टीका

२–जीव-माया :

मायाकी वह वृत्ति जो जीवके स्वाभाविक ज्ञानको आवृत कर उसमें अन्यथा ज्ञान उत्पन्न कराती है, वह जीव-माया है। इसकी भी दो वृत्तियाँ हैं-

(क) आवरणात्मिका :

जो बहिर्मुख जीवके स्वरूपको आवृत्त करती है, उसे आवरणात्मिका शक्ति कहते हैं।

(ख) विक्षेपात्मिका :

जो मायिक वस्तुओंमें बहिर्मुख जीवको अहं-ममका अभिनिवेश कराती है, उसे विक्षेपात्मिका शक्ति कहते हैं।

यह माया योगमायाकी छायास्वरूपा और उसकी जड़-विभूति भी कहलाती है। योगमायाने सर्पकी केंचुलीकी तरह मायाको अपने-से पृथक् कर उसका परित्याग कर रखा है।[1]

वृत्तित्रयके प्रकाश :

परमानन्द आनन्द-कन्द सर्वशक्तिमान् भगवान श्रीकृष्णकी स्वरूप शक्तिकी तीन वृत्तियाँ हैं[2]

१–ह्लादिनी २–संधिनी ३–सम्वित्

'ह्लादिनी' के प्रणय-विकारमें कृष्ण सदा अनुरक्त रहते हैं, सम्वित् शक्ति द्वारा प्रकटित अन्तरंग भावोंके द्वारा वे सर्वदा रसिक-स्वभाव है, तथा सन्धिनी शक्ति द्वारा प्रकटित निर्मल वृन्दावन आदि धामोंमें स्वेच्छामय व्रज-रस विलासी कृष्ण नित्य रस-समुद्रमें निमग्न रहते हैं–

स वै ह्लादिन्याया: प्रणय विकृतेह्लादन रत-
स्तथा सम्विच्छक्ति प्रकटित रहोभाव-रसित: ।
तया श्रीसन्धिन्या कृत-विशद-तद्धाम निचये
रसाम्भोधौ मग्नो व्रज-रस विलासी विजयते ॥[3]

दशमूल ४ (जैवधर्म)

---

१. भागवत १०।८७।३८ २. दशमूल - ४

१. **ह्लादिनी सन्धिनी सम्वित् त्वय्येका सर्वसंस्थितौ ।**
ह्लादतापकारी मिश्रा त्वयि नो गुण वर्जिते ॥
– विष्णु पुराण १२।४८, प्रथमांश

स्वरूप शक्तिकी ह्लादिनी, सन्धिनी और सम्वित्-इन तीनों वृत्तियों-का प्रभाव चित्-शक्ति, जीव-शक्ति और माया-शक्तिके प्रत्येक कार्योंमें ओतप्रोत रहता है। सन्धिनी, संवित् और ह्लादिनी दिव्य लीला-शक्तिके योगसे लीला विशेष विकास के भेद है। परमानन्द सुधासिन्धु भगवानमें भोग्य जड़ प्रपंच मूलभूत माया बहिरंग है, चिल्लक्षण जीव तटस्थ हैं और स्वरूपभूत माधुर्य ही मुख्य अन्तरंग है। सत्त्व प्रकाशक है सन्धिनी, चित्प्रकाशक है संवित् और आनन्द आह्लादक है उन श्रीकृष्णमें।[१] वृत्तित्रयके द्वारा परब्रह्मकी रसरूपता भी सिद्ध होती है। रससिन्धु श्रीकृष्णका बिन्दु भी रसस्वरूप ही है, अतः ये वृत्तियाँ श्रीकृष्ण द्वारा प्रकाशित होनेसे रसस्वरूप ही हैं।

श्रीकृष्णकी पराशक्ति 'श्रीराधा' :

श्रीकृष्णकी पराशक्ति तत्त्व है 'श्रीराधा'। तत्त्वका प्रसंग भागवतमें है, परन्तु 'नाम' अस्पष्ट है। अन्य शास्त्रोंमें वर्णित श्रीकृष्णकी प्रधान और उसकी सहायिका (अष्ट प्रधान गोपियाँ) किसीका भी नाम भागवतमें उल्लि-खित नहीं है। राधाके व्यवधान-कालमें श्रीकृष्ण शक्ति-विरहित होनेसे अपूर्ण हैं एवं कामजयमें असमर्थ हैं। उनका आनन्द स्वरूप भी 'राधा' से ही है और राधासे ही उनकी अप्राकृत मधुर लीला है। प्रसिद्धि है कि जब भी शुकदेव राधाका नाम लेते तो महीनों तक समाधिस्थ ही रह जाते। परीक्षितका जीवन-काल सात-दिवसका ही शेष था। अतः 'राधा'का नाम स्पष्ट रूप से उच्चारण नहीं किया।[१]

वस्तुतः श्रीकृष्णकी अनिर्वचनीया पराशक्ति 'राधा' पदवाच्या है। आनन्दस्वरूपा रासलीलामें श्रीकृष्ण अपनी इस अन्तरंग प्रेयसीको एकान्तमें ले गये थे। गोपियोंने उनका नाम स्पष्ट कर दिया—

'अनया राधितो नूनं भगवान् हरिरीश्वरः।
यन्नो विहाय गोविन्दः प्रीतो यामनयद् रहः ॥[२]

---

१. **श्रीराधानाममात्रेण मूर्च्छा षाण्मासिकी भवेत्।**
नोच्चारितमतः स्पष्टं परीक्षिद्धित कृन्मुनिः ॥ - सारार्थदर्शिनी टीका

२. **भागवत १०।३०।२८**
राधामाधाय हृदये तत्याज व्रजसुन्दरीः — गीतगोविन्द, तृतीय सर्ग, श्लोक १

इस श्लोककी टीकामें 'आराधितः' शब्दसे ही टीकाकारोंने 'राधा' का नामोल्लेख किया है। श्रीमत्सनातनगोस्वामिपाद कृत वृहत्तोषिणी टीका तथा श्रीमज्जीवगोस्वामिपादकृत वैष्णवतोषिणी टीकामें आराधितः का अर्थ 'राधयति आराधयतीति राधा' बताया है। श्रीविश्वनाथ चक्रवर्ति कृत सारार्थ-दर्शिनी टीकामें राधितः राधां इतः प्राप्तः' तथा विशुद्ध-रस-दीपिका टीका-कारने राधितः पूजितः वशीकृतः इत्यादि अर्थोंसे राधा सिद्ध किया है।

पराशक्ति राधा गुह्यसे भी गुह्यतर हैं। राधा शब्द ही रहस्य एवं तथ्यसे पूर्ण है। राधा कृष्णके वक्षःस्थलमें सदा-सर्वदा स्थित हैं।[1] सुबोधिनीमें कहा है 'परोक्षवादा ऋषयः परोक्षं मम च प्रियम्।'[2] सुप्रतिष्ठित सिद्धान्त है इस श्रुतिका परोक्षप्रिया इव हि देवाः।'[3] साहित्यिकोंके अनुसार प्रत्यक्ष स्पष्ट वर्णनापेक्षया परोक्षव्यंग वर्णनमें ही रसात्मिकत्व होता है।[4] 'राधा' नामका गोपन करनेकी अद्भुत शैली है यह भागवतकारकी और निष्ठा है परोक्षवादके प्रति।

कृष्ण और उनकी पराशक्ति राधा लीलारस आस्वादनके स्थलमें नित्य पृथक् होते हुये भी सर्वदा अपृथक् हैं। भागवतकारके ही शब्दोंमें—

नमोनमस्तेऽस्त्वृषभाय सात्वतां विदूरकाष्ठाय मुहुः कुयोगिनाम्।
निरस्तसाम्यातिशयेन राधसा स्वधामनि ब्रह्मणि रंस्यते नमः॥[5]

रूप और स्वरूप :

श्रीकृष्णका क्या रूप और क्या स्वरूप। रूप भी स्वतः सिद्ध है और स्वरूप भी। स्वभाव ही हैं उनका, जो बाहरके हेतुकी अपेक्षा नहीं करता है, स्वयं ही आविर्भूत होता है। अजन्य स्वतःसिद्ध भाव ही स्वरूप हैं। श्रीकृष्ण-के रूप और स्वरूपके सम्बन्धमें स्वतःसिद्ध भावका तात्पर्य रति-उत्पादक वस्तु

---

१. कृष्ण प्राणाधि देवी सा कृष्णप्राणाधिक प्रिया।
कृष्णस्य सगिनी शश्वत् कृष्ण वक्षः स्थलस्थिता॥ 'श्रेय' भागवतांक लेख : श्रीमद्भागवत और श्रीराधातत्व - पं० राधेश्याम द्विवेदी, श्रीवृन्दावन

२. (क) भागवत ४।२८।६५ (ख) सुबोधिनी कारिका ७०।३।४

३. शतपथ ब्राह्मण ३।१।३।२५

४. इदमुत्तमगतिशयिनि व्यंग्ये वाच्याद् ध्वनिर्बुधैः कथितः-काव्यप्रकाश१।४

५. भागवत २।४।१४

विशेषसे है। परिपूर्ण श्रीकृष्णका रूप भी परिपूर्ण है, स्वरूप भी। उनकी सत्ता, ज्ञान और आनन्द अपरिच्छेद रूपसे परिपूर्ण है। वपु और लीला, दोनोंसे ही श्रीकृष्णकी पूर्णता का दिग्दर्शन होता है। आध्यात्मिक, आधिभौतिक और आधिदैविक तीनों ही दृष्टिकोणसे उनका स्वरूप है सत्-चित्-आनन्दमय। अशेषविशेषणातीत है, भागवत-तात्पर्यगोचर, अपनी अचिन्त्य, मंगलमय दिव्य शक्तिसे आनन्त कल्याण गुणगणाकर; अनन्त कोटि कन्दर्प सुन्दर, विलासशाली, महाविस्तारशाली, विपुल बलशाली, प्रखर प्रकाशशाली, पावनाभिधान, निश्चल, गम्भीर, काम-पूरक, निपुण, ऐश्वर्यसम्पन्न, अघटित-घटना पटीयनम् है। पूर्ण ब्रह्म है–'यन्मित्रं परमानन्दं पूर्णं ब्रह्म सनातनम्।'[1] इनके रूप-स्वरूपसे सभीको अनुरक्ति है। श्रीकृष्णके दो स्वरूप हैं–

१. गोपाल, गोपीजनवल्लभ राधाधरसुधापान शान्तिवनमाली कृष्ण[2]

२. यदुकुल श्रेष्ठ दुष्ट-निहन्ता योद्धा योगेश्वर श्रीकृष्ण[3]

भागवतमें दोनों ही स्वरूपोंका अद्भुत सामंजस्य है।

श्रीकृष्णका रूप-वैशिष्ट्य :

एकदा श्रीकृष्ण मणिस्तम्भमें अपने प्रतिबिम्बको देखकर आश्चर्य-चकितसे स्थिर खड़े रह गये। सोचने लगे कौन है यह व्यक्ति, जिसकी ऐसी रूप-माधुरी है? ऐसा रूप तो मैंने कभी देखा नहीं। निकटसे देखनेपर अपनी भ्रांति जान वे स्मित मुखसे कहने लगे–अरे। यह तो मैं ही हूं। मेरा ही रूप मुझे इस प्रकार मुग्ध कर रहा है। आह! इसे मैं अपने वक्षमें धारण कर इसका पूर्ण रूपसे भोग कर सकता।[4]

श्रीकृष्णकी रूपमाधुरी अद्भुत है, उनका वर्ण अद्भुत है, उनका अंग-विन्यास अद्भुत है, अद्भुत (ललित) त्रिभंगी मुद्रा है। ऐसा मधुरिम सौन्दर्य किसी भगवत्-स्वरूपमें नहीं है। अपने स्वतन्त्र स्वरूपको उन्होंने प्रवर्ग्य कर्मका अनुष्ठान होते समय मन और नयनोंको आनन्दित करनेवाले अवयवोंसे युक्त अति सुन्दर हृदयाकर्षक मूर्तिमें प्रकट किया।[5] भूषण भूषणांगम्–श्रीकृष्णकी वपु-ज्योतिसे आभूषण भी चमक उठते थे। लावण्य केलिसदन, तारुण्यामृतपारावार स्वरूप श्रीकृष्ण-विग्रहमें लावण्यकी तरंगें कल्लोलित होती

१. भक्ति सुधा, प्रथम खण्ड, पृष्ठ ९९, हरिहरानन्द सरस्वती 'करपात्रीजी

२. वही १०।२९।४२ ३. भागवत १०।५७।१३,

४. श्रीचैतन्य चरितामृत आदि ४।१४६ ५. उज्ज्वलनीलमणि

रहती है ।[1] जड़-चेतन आकर्षककारी श्रीकृष्णके रूपलावण्यका यह अद्भुत प्रभाव है कि विभिन्न प्रकारकी रति आच्छादित होकर मधुर रति उद्भासित हो उठती है ।[2] उनका मुख मधुर, स्मित सुमधुर तथा कान्ति मधुरतम है। हेयादि गुणरहित नित्य सच्चिदानन्द तनु है ।

नवनवोन्मेषशाली, असमोर्द्ध्व-रूप श्रीकृष्णके नेत्र कमलदलके समान अरुणाभ विशाल नेत्र हैं, स्निग्ध, स्वच्छ कुंचित अलकावली है, उदार लीलामय भृकुटि-विलास है, कौस्तुममणि धारण करते हैं, वनमालाधारी, कौशेय पीताम्बरधारी और अतिकान्तियुक्त किरीट मुकुट केयूर कुण्डलादि आभूषणधारी हैं ।[3] ऐसी अंग-माधुरी, मुखचन्द्र तथा मदिर स्मितके दर्शनसे भागवत वर्णित सभी दर्शक प्रेम मुग्ध होकर अलौकिक उन्माद सागरमें डूब जाते हैं। गोपियाँ तो डूब ही गयी थीं।

उनका यह रूप कंसको तो विकराल सिद्ध हुआ, यह भी एक वैशिष्ट्य है ।

श्रीकृष्णका गुण-वैशिष्ट्य

सर्वाद्भुत चमत्कार लीला-कल्लोल-वारिधि श्रीकृष्णके गुण अनन्त हैं। मधुर अतुल्य-प्रेम-मण्डित, प्रिय-मण्डल-श्रीकृष्ण भक्तवश्य हैं। भक्तिके विनिमयमें वे स्वात्म-दान कर बैठते हैं ।[4] अलौकिक गुण-निधि हैं श्रीकृष्ण। ज्ञान-विज्ञान एवं यावत् नीतियोंके आधार हैं। अपने उपदेशोंका पालन स्वयं भी करते हैं। महाबली श्रीकृष्ण दुष्टोंका दमन करनेवाले हैं, शिष्टोंके अनन्य मित्र

---

१. चैतन्य महाप्रभुका शिक्षामृत पृष्ठ १५०

२. बृहद्भागवतामृत १।७।४६ सनातनकृपानुगा टीका

३. (क) तमद्भुतं बालकमम्बुजेक्षणं चतुर्भुजं शंखगदार्युदायुधम् ।
श्रीवत्सलक्ष्मं गलशोभित कौस्तुभं पीताम्बरं सान्द्रपयोदसौभगम्॥
महार्हवैदूर्यकिरीटकुण्डलत्विषा परिष्वक्तसहस्रकुन्तलम् ।
उद्दामकांच्यंगदकंकणादिभिर्विरोचमानं वसुदेव ऐक्षत् ॥ -
भागवत १०।३।१०

(ख) अयं नेता सुरम्यांगः सर्व सल्लक्षणान्वितः ।
रुचिरस्तेजसा युक्तो बलयान्वयसान्वितः ॥ - भक्तिरसामृत-
सिन्धु दक्षिण लहरी १।१

४. भक्ति रसामृतसिन्धु द. वि. विभाव लहरी ३३-३४

हैं। ये अतिशय अनुभवी, अद्भुतकर्मी हैं। अथाह पाण्डित्य है इनमें। उनकी वैदान्तिक बुद्धि और परमहंसी वृत्ति छलकी पड़ती है जब श्रीकृष्ण रुक्मिणीसे कहते हैं–'तुमने मेरे साथ विवाह करके अच्छा नहीं किया।'[१]

हठयोग की बज्रोली मुद्रा सिद्ध है इन्हें तभी तो अखिल सौन्दर्य सार गोपियोंके मध्य वह सर्वदा ब्रह्मचारी हैं।[२] पट्टमहिषियोंके मादक सौन्दर्यसे श्रीकृष्ण कभी भी उन्मादित नहीं है। त्रिवक्रा कुब्जाको स्वीकार कर लेते हैं और यज्ञपत्नियोंपर अनुग्रह करते हैं नारायण मनोहारी श्रीकृष्ण।

श्रीधामवृन्दावनमें सावतरण-कालमें त्रिजगन्मासाकर्षी श्रीकृष्णने पशु, पक्षी, वृक्ष, लतादिको भी आकर्षित करते हैं। वस्तुतः प्राणी-मात्र स्नेह व प्रेमपूर्वक श्रीकृष्णके प्रति आकृष्ट हो गया। एक ओर वे समस्त अमंगल नष्ट करते हैं तथा दूसरी ओर सर्वाधिक आत्यन्तिक मंगल विधान करते हैं। श्रीकृष्णकी लीलाओंमें तथा गुणावलीमें ऐसी शक्ति है व इतनी मनमोहक है कि उनके अनुरागमें भक्त धर्म, अर्थ, काम तथा मोक्ष तकका भी परित्याग कर देते हैं।

हतारिगतिदायकत्व गुण भी एकमात्र श्रीकृष्णमें है। शिशुपाल, पूतना आदिका उद्धार इस गुणका प्रतीक है। सर्वगुणाधिष्ठाता श्रीकृष्णके समकालीन बड़े-से-बड़े ज्ञानी, विज्ञानी, धर्मात्मा, तपस्वी, महर्षि, शूर, प्रतापी और पराक्रमी योद्धा भी उन्हें बड़ी भक्ति श्रद्धा और सम्मानकी दृष्टिसे देखते थे। उनके लोकातिशायी ऐश्वर्यके कायल थे। व्यास जैसे महर्षि, युधिष्ठिर जैसे धर्मात्मा, विदुर जैसे नीतिज्ञ, धृतराष्ट्र जैसे स्वार्थी, अर्जुन और भीम जैसे योद्धा, सहदेव जैसे ज्ञानी, द्रौपदी और कुन्ती जैसी वयोवृद्ध स्त्रियाँ और भीष्म पितामह जैसे अलौकिक ब्रह्म-क्षत्रबल-सम्पन्न महात्मा ईश्वर-बुद्धिसे उनके चरणोंमें नतमस्तक होकर सुखी होते थे। अपने गुण-सौरभसे विभिन्न योगियों व जीवन्मुक्तोंका आकर्षण करते हैं। सनत्कुमारोंको चरणार्पित तुलसीके मकरन्दसे आकृष्ट किया था।

---

१. भागवत १०

२. अहं भक्तपराधी नां ह्यस्वतन्त्र इव द्विज। साधुभिग्रस्तहृदयो भक्तैर्भक्त-जनप्रियः — भागवत ९।४।६३

३. वृतां वयं गुणैर्हीना — भागवत १०।६०।१६

४. कृष्ण कृष्ण महायोगिन् — वही १०।२८।१९

रागी श्रीकृष्ण अतिशय विरागी हैं। एक बार जब व्रज छोड़ दिया तो फिर लौटे ही नहीं। कंसकी मृत्युके पश्चात् राज्यका तिरस्कार कर दिया, युधिष्ठिरका साम्राज्य भी स्वीकार नहीं किया। उग्रसेन और युधिष्ठिर दोनोंके यहाँ सेवाका कार्य किया। स्वर्ण निर्मित द्वारका जलमें डूब गयी, कृष्ण निर्विकार रहे। रागाधिष्ठान वैराग्याध्यक्ष श्रीकृष्णका यह वैराग्य प्रदर्शन नहीं, अखण्ड वैराग्यकी सहज लीला है।

ह्री, श्री-युक्त श्रीकृष्णका भागवतीय गुण भगवत्ताका शब्दार्थ है और उसकी सीमाके बाहर भी प्रत्येक लीलामें यह बात प्रकट होती है। सर्व-शब्दार्थशून्य सर्वस्वरूपता है यह। श्रीगर्गमुनि गुणोंमें श्रीकृष्णको नारायणके समान बताते हैं—नारायण समो गुणैः.............।[२] भागवतके मतसे नारायणमें भी अखिलगुण नहीं है क्योंकि श्रीकृष्णके तुल्य सौशिल्य तथा वदान्यताका अभाव है। 'अतिशयत्व' और 'अलौकिकत्व' ही उनका गुण-वैशिष्ट्य है।

श्रीकृष्णका दर्शन : रसिकत्व और करुणत्व

महायोद्धा, योगेश्वरेश्वर, सिद्धान्तप्रिय, तत्वदर्शी, सर्वसमर्थ श्रीकृष्णके जीवन-दर्शनमें दो बातें विशेष रूपसे परिलक्षित होती हैं—रसिकत्व और करु-णत्व। गवेषणात्मक दृष्टिसे उनकी लीलाओंके मूलमें ये दो ही तत्व अन्त-र्निहित है।

१. रसिकत्व

रसास्वादनकी अनन्त स्पृहा ही श्रीकृष्णका दर्शन है; क्योंकि सहज भावसे वे रसस्वरूप हैं, रसिक शिरोमणि है। रसास्वादनके निमित्त ही श्रीकृष्ण नर-लीला प्रकट करते हैं। भक्तोंको भी अनुग्रह कर रागात्मिका भक्ति प्रदान करते हैं। उनका कथन है—मेरे प्रेमी भक्त तो मेरे हृदय हैं और उन प्रेमी भक्तोंका हृदय में स्वयं हूँ।[३] यह रसिकत्व भगवानकी अपनी ही स्वरूप शक्तिकी वृत्ति है। रसोंमें भक्तिरस या प्रेमरस श्रेष्ठ है। कृष्ण रसिक हैं क्योंकि वे प्रेममय हैं। अपने रसिक स्वभावके आधारपर वे गोपियोंके वशमें नहीं गोपियोंके प्रेमके वशमें है—'न पारये हं निरवद्यसंयुजा' जन्म-जन्मके

---

१. भागवत १०।२१।१४-१५

२. नारायण समो गुणैः – भागवत १०।८।१९

३. साधवो हृदयं मह्यं साधूनां हृदयं त्वहम्।
मदन्यत् ते न जानन्ति नाहं तेभ्यो मनागपि ।। - भागवत ९।४।६८

ऋणी हैं।[१] इन्हें उद्धवका ज्ञान बिल्कुल नहीं सुहाता, श्रीकृष्ण उद्धवको व्रजमें भेज देते है। उद्धव ब्रजके रसमें डूबकर लौटे हैं।[२]

२. **करुणत्व :**

सबका असंकुचित रीतिसे उद्धार करना और उसका प्रयत्न किंवा साधन अपने पास रखना, अर्थात् स्वरूपसे ही सबका कल्याण करना श्रीकृष्णका करुणत्व है। दाम-बन्धन फलविक्रयिणीपर कृपा, कुब्जापर करुणा, ब्रजवासियोंपर करुणाकी लीलाएँ तो भागवतमें वर्णित ही है। उनके करुणत्वका कारण है उनका 'उद्धारक स्वरुप'। 'उत्हरणं उद्धार:'—उनकी हीनताको चुराकर उसे अपना स्वरूप दे देना, यह उद्धारका रहस्यार्थ है, यही अन्यथा करण-लीला और अन्यथा कर्त्तुं सामर्थ्य कहा जाता है।[३] उनके करुणत्वकी पराकाष्ठा है 'हतारिगतिदायकत्व'।[४] श्रीकृष्ण पारावारविहीन करुणाके समुद्र हैं।

श्रीकृष्णके दर्शनमें रसिकत्व और करुणत्वका अन्योन्याश्रय सम्बन्ध है। श्रीकृष्ण भक्तवश्यतासे ही रसिकशेखर हैं और रसिकत्वसे ही करुणानिधान हैं। भक्त अपने प्रीतिरसका भण्डार लेकर श्रीकृष्णके पास आता है, उन्हें उसका आस्वादन कराकर सुखी करनेकी उत्कण्ठा लिये। परमकरुण कृष्ण उसे अंगीकार कर लेते हैं। उनमें करुणावश भक्तोंके आनन्द-वर्धनकी इच्छाका उन्मेष न होता, तो प्रीतिरसका आस्वादन भी उन्हें न होता। प्रेममें करुणाकी तरंग स्वाभाविक रूपसे प्रेमरसको शिखर तक पहुंचाती है - करुणाकर कृष्णको रसिकशेखर बनाती है।

रसिकशेखर कृष्ण परमकरुण।[५]

---

१. भागवत १०।३२।२२

२. क्वेमा : स्त्रियो वनचरीर्व्यभिचारदुष्टाः कृष्णे क्व चैष परमात्मनि रूढ़भावः।
रासोत्सवैऽस्य भुजदण्डगृहीतकण्ठलब्धाशिषां य उदगाद् ब्रजवल्लवीनाम्॥ – भागवत १०।४७।६०

३. श्रीकृष्णकी लीलाओंपर शास्त्रीय प्रकाश : रमानाथ शास्त्री पृष्ठ ३१

४. नरकाह्शिच दैतेयास्तान्महिम्नामृतं गताः। – वृहद्भागवतामृत १।५।२१

५. चैतन्य चरितामृत १।४।१५

यह प्रेम जगतकी स्वाभाविक करुणा है। करुणाकी बर्षा कर कृष्ण अपना कुछ खो नहीं देते, कुछ पा लेते हैं। इससे उनकी क्षति नहीं, पूर्ति होती है, रिक्ति नहीं तृप्ति होती है। भागवतकार कहते हैं भगवान् जीवों पर कृपा करनेके लिये ही मनुष्य-रूपमें प्रकट होते हैं।[1] आनन्दरसके तरंगोच्छ्वासके स्वाभिमुखी होनेसे है उनका रसिकत्व और परमुखी होनेसे उनका करुणत्व।[2] रसिकत्व और करुणत्वके अभावमें श्रीकृष्णके जीवन-दर्शनकी व्याख्या नहीं हो सकती; क्योंकि अन्य सभी 'त्व' इन्हीं दोमें अन्तर्भूत है।

श्रीकृष्णका माधुर्य :

श्रीकृष्णका माधुर्य उनकी भगवत्ताका सार-सर्वस्व है। श्रीकृष्ण आनन्द-स्वरूप हैं, रस-स्वरूप हैं। रस माधुर्य-स्वरूप है।[3] ह्लादिनी शक्ति माधुर्यका मूल है, इस शक्तिकी वृत्ति है 'प्रेम'। यह शक्ति स्वयं श्रीकृष्णकी है। उनकी लीला केवल लीलाके रूपमें ही सामने आती है, क्योंकि किसी भी लीलाका श्रीकृष्णके माधुर्यपर कोई अन्तर नहीं आता। जो स्थिति पहले होती है, वही लीलाके बाद रहती है, वह सर्वदा रहती है। रास लीलाके पश्चात् भी वह अवरुद्धसौरत है, पूतना बधपर भी दूध पीते ही रहते हैं। ब्रह्मा-मोह लीलामें भी उनका माधुर्य नित्य रहा। उन्हें न तो ऐश्वर्यका ज्ञान था, न उनके ऊपर उसका कोई प्रभाव था।

श्रीकृष्णका माधुर्य विशेष रूपसे चार प्रकारका है—

१—लीला-माधुरी :

श्रीकृष्णके सभी चरित्र आश्चर्यमय हैं। परन्तु रासलीला सर्वापेक्षा अति मदिर, मधुर मनोहारिणी है। श्रीकृष्णका कथन है—

सन्ति यद्यपि मे प्राज्या लीलास्तास्ता मनोहराः।
न हि जाने स्मृते रासे मनो मे कीदृशं भवेत्॥[4]

---

१. **अनुग्रहाय भूतानां मानुषं देहमास्थितः।**
भजते तादृशीः क्रीड़ा याः श्रुत्वा तत्परो भवेत्॥ भागवत १०।३३।३७

२. **चैतन्य चरितामृत आदि चतुर्थ** अध्याय

३. **माधुर्य भगवत्तासार व्रजे कैल परचार, ताहा शुक व्यासेर नन्दन।**
भागवतेर स्थाने-स्थाने, करियाछिन व्याख्याने, जाहा शुनि जुड़ाय भक्त प्रन॥ -चैतन्य चरितामृत २।२१।९२

४. **वृहद्वामन पुराण १।१८३**

२—प्रेम-माधुरी :

श्रीकृष्ण कभी अकेले नहीं रहते। कृष्णका अर्थ है उनके नाम, रूप, गुण, लीला, यश, उनके मित्र, उनकी सामग्री, उनका परिकर इत्यादि सभी कुछ। वृन्दावन लीलामें तो वह अपने परिकरोंसे नित्य परिवेष्टित रहते हैं। परिकर सर्व धर्मोंको छोड़कर श्रीकृष्णकी प्रेम-सेवा करते हैं। इनके विरहमें उन्हें एक क्षण भी युगके समान बीत जाता है—

अटति यद्भवानह्नि काननं त्रुटिर्युगायते त्वामपश्यताम्।
कुटिलकुन्तलं श्रीमुखं च ते जड़ उदीक्षतां पक्ष्मकृद् दृशाम्॥[१]

३—वेणु-माधुरी :

यह तो अनिर्वचनीय है, त्रिलोक-जनों, पशु-पक्षी, लता सभीको आकर्षित करती है

का स्त्र्यङ्ग ते कलपदायतमूर्च्छितेन सम्मोहिताऽऽर्यचरितान्न चलेत्त्रिलोक्याम्।
त्रैलोक्यसौभगमिदं च निरीक्ष्य रूपं यद् गोद्विजद्रुममृगाः पुलकान्यबिभ्रन्॥[२]

४—रूप-माधुरी:

जिनके समान और जिनकी अपेक्षा अधिक कोई नहीं है, जो माधुर्य तरंगमय अमृतके समुद्र हैं, उन्हीं नन्दनन्दनका रूप स्थावर-जंगमके उल्लासको अतिशय बढ़ानेवाला है।[३] श्रीकृष्णका माधुर्य असीम होते हुये भी निरन्तर वर्धमान होनेके कारण नित्य नवीन है—

यन्मर्त्यलीलौपयिकं स्वयोगमायाबलं दर्शयता गृहीतम्।
विस्मापनं स्वस्य च सौभगर्द्धेः परं पदं भूषणभूषणाङ्गम्॥[४]

---

१. भागवत १०।३१।१५, १०।८०।१६, १०।६।१८

२. भागवत १०।२६।४०, १०।३५।१५

३. (क) असमानोर्द्धवमाधुर्यतरंगमृतवारिधिः। जंगम स्थावरोल्लासि रूपो गोपेन्द्रनन्दनः॥ - लघुभागवतामृत १।१८५

(ख) मधुरं मधुरं वपुरस्य विभो मधुरं, मधुरं वदनं मधुरम्।
मधुगन्धि मृदुस्मितमेतदेहो मधुरं मधुरं मधुरं मधुरम्॥
— कृष्णकर्णामृत ६२

४. भागवत ३।२।१२, १०।२६।४०

श्रीकृष्ण-चरित्रके अन्य सूक्ष्म संकेत :

सर्वथा अलौकिक होते हुये भी श्रीकृष्णके चरितमें कुछ मानवीय गुण भी है—नायकत्व। श्रीकृष्णका चरित्र प्रधान रूपसे धीरललित है, फिर भी वह मथुरामें उनका धीरोद्धत, द्वारकामें धीरोदात्त और हस्तिनापुरमें धीरप्रशान्त है। जहाँ जैसा अवसर होता है, श्रीकृष्ण वैसे ही बन जाते हैं।

वीर

अनन्वय श्रीकृष्ण धर्मवीर हैं प्रधानतः। इसके अतिरिक्त द्रौपदी, उत्तरा प्रसंगमें वह दयावीर, शाल्व आदि प्रसंगोंमें युद्धवीर, द्वारकामें सुदामा प्रसंगमें दानवीर, अनेकों विवाहोंसे गार्हस्थ्य धर्मका निर्वाह करते हुये भी सुखवीर रूपमें परिलक्षित होते हैं।

समदर्शिता

मनुष्य-पशु-पक्षी--लता-वृक्ष सभीके प्रति श्रीकृष्णकी समदर्शिताका संकेत भागवतमें है गो आदि पशुकी सेवा, कदम्ब आदि वृक्षके तले विहार कर उद्भिज जगतकी प्रतिष्ठा, कालिन्दीमें किलोलसे नदियोंकी मर्यादाको बढ़ावा, गोवर्धनगिरिकी पूजा कर स्थावर जगतके महत्वका प्रदर्शन श्रीकृष्णने किया है।

सेवा

मातृ-पितृ-परिजन-गुरु आदिके महान् सेवक हैं। अर्जुन-सारथि, पाण्डव-दूत, राजदूत, यज्ञमें चरण-प्रक्षालनका कार्य, राजपाटका त्याग आदिसे उन्होंने सेवा-धर्मका परिचय दिया है।

आदर्श कर्मयोगी

ब्रह्मचर्य और गृहस्थाश्रम ही कलियुगमें रहेंगे, एतदर्थ उन्होंने अर्जुन, उद्धव, अक्रूर और गोपियोंको दिव्यज्ञान बतलाया।

राजनीतिज्ञ

भारतवर्षकी जनतापर उनका विलक्षण आधिपत्य था। राजनीति-विशारद श्रीकृष्ण युधिष्ठिर आदि राजाओंके परामर्शदाता थे। वे ऐसे कूट राजनीतिज्ञ थे कि अपने समयमें आर्यावर्त्तकी छिन्न-भिन्न एवं परस्पर विरोधिनी समस्त राजशक्तियोंको एक धर्मात्मा एवं न्यायवान् सम्राटकी विजय-पताकाके नीचे एकत्र कर दिया था। राजनीति निपुण श्रीकृष्णने राजनीतिका उपयोग राजधर्म निभानेके लिये किया। उनका राजधर्म न्याय और सत्यका

पोषक है। उनकी राजनीति धर्मका स्वरूप है, जो पापी है, नराधम है, नृशंस है, वह दण्डका पात्र है, फिर चाहे वह अपना भाई-बन्धु ही क्यों न हो। राजनीति क्षेत्रमें श्रीकृष्णके सन्धिविग्रहादि कार्योंको देखकर तो राजनीतिज्ञ शिरोमणि विदुर, उद्धव, भीष्म आदि भी आश्चर्यचकित हो जाते थे। जरासन्धको मारकर उसकी कैदसे राजाओंको छुड़ाना तथा उसके राज्यको उसीके पुत्रको सौप देना उन्नत राजनीतिका अति सुन्दर उदाहरण है। यह साम्राज्य स्थापनका बड़ा सहज और परमोचित उपाय है।

रणनीतिज्ञ

अपनी थोड़ी-सी सेनासे जरासन्धका सामना करना असाध्य समझकर मथुरा छोड़ना (रणछोड़ रूप) नया नगर बसानेके लिये द्वारका द्वीपको चुनना और उनके सामनेकी रैवतक पर्वतमालामें दुर्भेद्य दुर्ग बनाना उनकी रणनीतिका परिचायक है।

अन्य सूक्ष्म संकेत

श्रीकृष्णके कार्योंमें अद्‍भुत अपरिच्छिन्न-परिच्छिन्नता है। वे रुचिर,[१] दक्ष,[२] सम,[३] सर्वाराध्य,[४] नित्य नूतन,[५] प्रेममय, दयामय, उद्‍कर्मा, धर्मात्मा, वेदज्ञ, नीतिज्ञ, धर्मज्ञ, लोक-हितैषी, न्यायवान्, क्षमाशील, निरपेक्ष, शास्त्रज्ञ, निर्भीक, निरहंकारी, योगी, तपस्वी हैं। धावक ऐसे हैं कि कालयवन भी उनको पकड़ न सका। सदैव अपराजेय और प्रेममें पराजित है। जनताके हृदय-सम्राट श्रीकृष्ण क्रान्तिकारी थे। सूक्ष्म रूपमें वे सम्पूर्ण मानवीय चरित्र-के अखिल गुणोंके प्रकाशक हैं। पूर्ण आदर्श हैं।

श्रीकृष्णके उपदेश एवं आचरणीयगत शिक्षायें

सच्चरित्रताके अभावमें जीवन और बुद्धिकी समस्त आधारशिला ही हिल जाती है। पवित्र, प्रबुद्ध, न्यायपरायण, प्रेमी श्रीकृष्णसे हमें शिक्षा लेनी पड़ेगी। मानव चेतनाके तीन भाग हैं—ज्ञान, भावना और संकल्प। ज्ञान सत्य है, भावना उसका सुन्दर रूप और संकल्प उसके शुभ स्वरूपकी प्राप्तिका प्रयत्न है। सत्यं-शिवं-सुन्दरम् ही आचरणका आदर्श है। श्रीकृष्ण इसके प्रतिष्ठाता हैं।

---

१. भागवत ३।२।१३
२. वही १०।५६।१०
३. वही १०।१६।३३
४. ख वही १।६।४१
५. वही १।११।१३

उपदेश

एकादश स्कन्धमें विश्वमंगल श्रीकृष्णने उद्धवको आत्मविद्या सम्बन्धी, ब्रह्मतत्त्व सम्बन्धी उपदेशोंके साथ कर्म (निष्काम) गुण-दोष, व्यवस्था, भोगोंकी असारता, वर्णाश्रम-धर्म निरूपण, परमार्थ निरूपण, भागवत धर्मोंका निरूपण करके अनेकानेक उपदेश दिये हैं।[१] कैतव-रहित इन मंगलमय उपदेशोंके पालनसे जीव परम भागवत हो जाता है–

एषां बुद्धिमतां बुद्धिर्मनीषा च मनीषिणाम्।
यत् सत्यमनृतेनेह मर्त्येनाप्नोति मामृतम्॥[२]

भागवतमें कपिल-गीत,[३] नारद गीत[४], हंसगीत[५] और भिक्षुगीत[६] में प्राणियोंके कल्याणार्थ उपदेश वर्णित हैं।

आचरणीयगत शिक्षाएं

भगवान् श्रीकृष्णने लोकसंग्रह या लोकशिक्षाके लिए आदर्श लीलाएँ की। वे नारदजीसे कहते हैं–मैं ही धर्मका उपदेशक, पालन करनेवाला और उसका अनुष्ठान करनेवालोंका अनुमोदनकर्त्ता भी हूँ। इसलिए संसारको धर्मकी शिक्षा देनेके उद्देश्यसे ही मैं इस प्रकार धर्मका आचरण करता हूँ।[७] प्रातःकालसे ही श्रीकृष्ण परम पवित्र श्रेष्ठ आचरण करते हैं—

ब्राह्मे मुहूर्त उत्थाय वार्युपस्पृश्य माधवः।
दध्यौ प्रसन्नकरण आत्मानं तमसः परम्॥[८]

अर्थात् शय्यासे उठते ही आचमन, भगवत्-चिन्तन, सरोवर-स्नान, गात्र-मार्जनादि क्रिया वस्त्र-युगलका परिधान, सन्ध्या-गायत्री जप, हवन,

---

१. **मां भजन्ति गुणाः सर्वे निर्गुणं निरपेक्षकम्।**
सुहृदं प्रियमात्मानं साम्यासंगदयोऽगुणाः॥ - भागवत ११।१३।४७

२. भागवत ११।२९।२२

३. भागवत ३।५।१३–१७, ३२, ४४, ३।२६।१–७२, ३।२७।१–१६, २१–३०, ३।२८।१–४४, ३।२९।७–४५, ३।३०।१–४८, ३।३१।१–४८, ३।३२।१–४३ ४. वही १०।१०।८–२२,

५. वही ११।१३।२०–४० ६. वही ११।२३।१४–३०, ४३–५८

७. **ब्रह्मन्धर्मस्य वक्ताहं कर्ता तदनुमोदिता। तच्छिक्षयँल्लोकमिममास्थितः पुत्र! मा खिदः॥** –भागवत १०।६९।४०

८. भागवत १०।७०।४

धेनुदान आदि नित्य-कार्य करते थे। असुर-वधसे श्रीकृष्णका संहारक व उद्धारक स्वरूपका संकेत ही नहीं मिलता, अपितु लोकशिक्षक रूप भी परिलक्षित होता है। पूतना-बधसे कपटता और शकट-भंजनसे अनर्थ दूर करनेकी शिक्षा देते हैं। तृणावर्त्त-बधसे कुतर्क, पाखण्डादिको दूर करते हैं और यमलार्जुन भंजनसे आसवपायी, जिह्वा लम्पट आदि दोषोंसे बचाते हैं। कालिय-मर्दन लीलामें स्वार्थपरता, निर्दयता आदि दोष-समूहको कुचलनेकी शिक्षा मिलती है। जिससे जीवनमें माधुरीकी धारा बहकर वह जीवनके स्त्रोतको पवित्र, मंगलमय बना देती है।

श्रीकृष्णके चरित सभीके ध्येय है, मंगलमय है, कीर्तनीय है, गेय है। अन्तरके परिमार्जक-पोषक पेय हैं, कल्मष-नाशक, दिव्य ज्योति अभिधेय है।

श्रीकृष्ण चरित्रका सार-सर्वस्व : स्तवनात्मक आधार

भगवद्गुणानुवादके लिये प्रणीत भागवत पुराण एक विशाल स्तोत्र है। श्रीकृष्णका चरित्र विलक्षण है। विलक्षण होनेपर भी रूपक नहीं, परम सत्य है। भागवतकी स्तुतियाँ भी सत्यस्वरूप हैं, उनका विषय है अचिन्त्य अपरिमित शक्तिशाली, अखिल रसामृतमूर्ति व्रजेन्द्रनन्दन श्रीकृष्ण। उनके सब गुणोंकी स्तुति करना प्रत्येक स्तावककी शक्तिके बाहरकी बात है। तथापि उनकी जिस प्रकार स्तुति की जाय, वह उनमें अच्छी रीतिसे घटती है। श्रीकृष्णतत्व मत्स्यादि अनेक अवतारोंमें मुख्य कारणभूत परमानन्ददायक और गोलोकमें नित्य क्रीड़ारत तत्व है। वह आनन्दरूप और रसरूप है।[1] स्तुतियोंमें श्रीकृष्णका जैसा अलौकिक तथा अदृश्य स्वरूपका ठीक-ठीक वर्णन उपलब्ध होता है, वैसा केवल कथामात्रमें नहीं होता। कथामात्रमें केवल परमात्म के अद्भुत स्वरूपका जो उस समयमें प्राप्त था, वर्णन मिलता है।[2] भागवतकी स्तुतियोंमें वैदिक-स्तोत्रके समान

---

१. विज्ञानामानन्दं ब्रह्म (वृ० उ० ३।९।२८) रातिर्दातुः परायणम (सिद्धान्त रत्न) आनन्दो ब्रह्मेति व्यजानात् (तै० ३।६) रसो वै सः (तै० २।७)

२. भागवत स्तुति-संग्रह : पं० नित्यानन्द पाण्डेय, गीताप्रेस गोरखपुर सं० १९९४ पृ० ६५

स्वतन्त्र फल है।[१] भागवतके स्तावक प्राय: पराभक्तिको चाहनेवाले हैं। बिना स्तुतिके भगवान्‌की प्रेमलक्षणा भक्ति प्राप्त होना सम्भव नहीं है—

तत् तेऽर्हत्तम नमः स्तुतिकर्मपूजाः कर्म स्मृतिश्चरणयोः श्रवणं कथायाम्।
संसेवया त्वयि विनेति षडंगया किं भक्तिं जनः परमहंसगतौ लभेत् ॥[२]

भागवतकारको जहाँ भी अवसर मिलता है किसी न किसी पात्रके द्वारा किसी भी रूपमें स्थित भगवानकी स्तुति करने लगता है। भागवतकी स्तुतियोंकी गणना करनेपर छोटी-बड़ी समस्त स्तुतियोंकी संख्या एक सौ चालीस ठहरती है। इन स्तुतियोंमें श्रीकृष्णके विविध रूपोंके तत्वका सुन्दर और तात्विक निरूपण है। अर्जुन, उत्तरा, कुन्ती, भीष्म, द्वारका, प्रजा-गण, वसुदेव, देवकी, यमलार्जुन, ब्रह्मा, नागपत्नी, कालिय नाग, दावानल पीड़ित गोपादि, इन्द्र, वरुण, नारद, अक्रूर, उद्धव, मुचुकुन्द, जाम्बवान्, भूमि, माहेश्वर ज्वर, रुद्र, राजा नृग, यमुना, युधिष्ठिर, मुनिगण, बलि, राजा बहुलाश्व, श्रुतदेव और शुकदेव आदि सभी भगवानकी स्तुति करते हैं, सभी स्तुतियाँ आद्यावतार, सर्वावतारी श्रीकृष्णकी है, और श्रीकृष्ण परक ही हैं—'कृष्णशब्देन परं वस्तूच्यते।'[३] अवतार स्तुति प्रिय होते हैं।[४] इनकी स्मृतिमें स्तुतिका योग हो जानेपर ये मधुर पृथ्वीके रज-कणोंको गिनना सम्भव है किन्तु भगवानके गुणों और पराक्रमोंकी गणना असम्भव है—

यो वा अनन्तस्य गुणाननन्तानुक्रमिष्यन् स तु बाल-बुद्धिः।
रजांसि भूमेर्गणयेत् कथं चित् कालेन नैवाखिलशक्तिधाम्नः ॥[५]

श्रीकृष्णके परिकर और लीला-धाम :

भगवान् श्रीकृष्ण और उनके परिकर एक ही प्रकारकी अप्राकृत चिन्मय शक्ति वाले हैं। आनन्द-चिन्मय-रस श्रीकृष्णके पिता, उनकी माता, उनके सखा, गोप-बालक और गायें सभी भगवान् श्रीकृष्णके प्रकाश (विस्तार) हैं।[६] श्रीकृष्णके धाम भी उनसे अभिन्न हैं। उन्हींकी विभूति, उन्हींकी

---

१. अविस्मृतिः कृष्णपदारविन्दयोः क्षिणोत्यभद्राणि शमं तनोति च।
सत्वस्य शुद्धिं परमात्मभक्तिं ज्ञानं च विज्ञानविरागयुक्तम् ॥
भागवत १२।१२।५४

२. भागवत ७।६।५०

३. भागवतार्थ प्रकरण कारिका १, प्रकाश टीका

४. भागवत ११।४।२

५. भागवतार्थ प्रकरणम् : वल्लभाचार्य : कारिका १ प्रकाश टीका

चिच्छक्तिके प्रकाश हैं। सन्धिनी प्रधाना चिच्छक्ति आधार शक्ति है, जो सभी वस्तुओंकी सत्ताका कारण है। घनीभूत आधार-शक्तिकी वृत्ति ही भगवद्धाम हैं।

श्री कृष्णके परिकर : लीला विधायक तत्व :

लीलाविग्रह श्रीकृष्ण, उनकी लीला तथा लीलाविधायक तत्त्वोंके भेदकी परम तत्व श्रीकृष्णसे अतिरिक्त कोई स्थिति नहीं है। रसस्वरूप श्रीकृष्णके परिकर और लीला-सहायक जितने भी उपकरण हैं सभी रसस्वरूप ही हैं। भागवतकारका वचन है 'श्रीकृष्णके अतिरिक्त कोई वस्तु है ही नहीं—

कृष्णमेनमवेहि त्वमात्मानमखिलात्मनाम्।
जगद्धिताय सोऽप्यत्र देहीवाभाति मायया ॥[२]

१—गोपी

गोपियाँ रसकी परिणति हैं, परम सिद्धि है। श्रीकृष्ण वशीकरण योग्य प्रेम (महाभाव) की संरक्षिका ये गोपियाँ मानव शरीर धारिणी अप्राकृत भगवत्त-शक्तियाँ ही है। भागवतमें उक्ति है—'तत्प्रियार्थं सम्भवन्तु सुरस्त्रियः।'[३] अर्थात् श्रीकृष्णके प्रियार्थ सुरस्त्रियां जन्म लें। लीलामधुरिमा और रसातिशयताके लिये इन गोपियोंके साथ कितनी ही कोमल, मंजुल एवं मधुर भावनायें जुड़ी हुई हैं। गोपियाँ साधारणतः श्रीकृष्ण-प्रेयसियाँ हैं। प्रेमा-भक्तिकी आदर्श हैं। इनका भाव श्रीकृष्णके प्रति परकीया है। इन्होंने अन्त-रंग रागसे ही आत्माको श्रीकृष्णके प्रति अर्पित किया है, परन्तु विवाह-प्रकियात्म-रूप बहिरंग धर्मसे नहीं। गोपियाँ कन्या और परोढ़ा भेदसे दो प्रकारकी हैं।[४] कन्यका रागसे पति-उपपति-विचार-शून्य होकर रहस्यमें श्रीकृष्णका भजन करती है। दोनों ही प्रकारकी गोपियाँ प्रच्छन्न-कामता गोकुलेन्द्र श्रीकृष्णको सुख देनेवाली हैं। गोपियाँ श्रीकृष्णकी नित्य-सिद्ध परि-कर है। इनकी स्तुति परमज्ञानी उद्धव आदिने की है। प्रियतम श्रीकृष्णकी रस-लीलाकी अंगभूता, लीला-सहकारणी, लीला-आस्वादिनी लीलास्वरूपा हैं, इनका इससे अतिरिक्त कुछ भी व्यावहारिक परिचय नहीं।

१. आनन्दचिन्मयरसप्रतिभाविताभिः, स्ताभिर्य एव निजरूपतया कलाभिः।
गोलोक एव निवसत्यखिलात्मभूतो, गोविन्दयादिपुरुषं तमहं
भजामि ॥ — ब्रह्मसंहिता ५।३७

२. भागवत १०।१४।५४   ३. वही १०।१।२३ उत्तरार्द्ध

४. उज्ज्वल नीलमणि पृष्ठ ४२

२–महिषियाँ

द्वारकाकी महिषियाँ भी कृष्णकी स्वरूप-शक्तिकी मूर्त्तविग्रह हैं। ये श्रीकृष्णकी स्वकीया वल्लभाएँ हैं। इनकी संख्या सोलह हजार एक सौ आठ है। समस्त महिषीगणोंमें रुक्मिणी; सत्यभामा, जाम्बवती, कालिन्दी आदि आठ प्रधान है। रुक्मिणी एवं सत्यभामा सर्व प्रकारसे प्रधान हैं। ऐश्वर्यमें रुक्मिणी तथा सौभाग्यमें सत्य-भामा अधिक हैं। ये विवाह-विधिसे प्राप्त पति श्रीकृष्णके प्रति इनका पातिव्रत आदि शास्त्रोक्त धर्म अविचलित है।

३–यशोदा

वात्सल्य रसकी 'आश्रय' यशोदाके समकक्ष वात्सल्यका कोई और अधिष्ठान नहीं है। कुछ अन्य गोपिकाओंका भी श्रीकृष्णके प्रति वात्सल्य भाव है। इनका वात्सल्य श्रीकृष्णके प्रति सतर्क है।[१] माता यशोदाके सौभाग्यकी तो खुलकर प्रशंसा हुई है भागवतमें–

नेमं विरिंचो न भवो न श्रीरप्यंगसंश्रया।
प्रसादं लेभिरे गोपी यत्तत् प्राप विमुक्तिदात्॥[२]

४–अन्य परिकर

श्रीकृष्णके अन्य परिकर हैं, वसुदेव, देवकी, नन्द, ब्रजके गोप और मथुराके यादवगण। वसुदेव-देवकी विशुद्ध सत्व हैं, इनका वात्सल्य पूर्ण नहीं है। नन्द कृष्णके पालक पिता हैं। वत्सचारण, वन-विहार आदि बाल-लीलाओंमें गोप-बालक श्रीकृष्णकेनित्य सहचर हैं, इनके सहयोगसे लीलामें एक विचित्र रसकी सृष्टि होती है।[३] यमुना[४], गिरिराजगोवर्द्धन[५], गौएँ[६] वेणु आदि श्रीकृष्ण लीलाके उपकरण हैं।

लीलाधाम और उनका तारतम्य :

लीलाधाम :

जब प्रपंचमें भगवान्‌का अवतरण होता है, उसी समय उनके साथ-साथ उनके धाम भी अवतीर्ण होते हैं। अवतरण होनेपर भी मूल स्थान रिक्त

---

१. भागवत – **किं पुनः श्रद्धया भक्त्या कृष्णाय परमात्मने।**
यच्छन् प्रियतमं किं नु रक्तास्तन्मातरो यथा॥
– १०।६।३६

२. वही १०।९।२०, ३. वही १०।५।१९–३२,
४. वही १०।३।१५ ५. वही १०।२४।३५,
६. वही १०।२१।२

नहीं होता। भगवत्-स्वरूपका जैसा विलास है, उसी प्रकार धामका भी संकुचन और विलास है। भगवान्‌के जितने रूप है, उनमें-से प्रत्येकके पृथक्-पृथक् धाम हैं। किसीमें भगवान् पूर्णरूपसे और किसीमें अंशरूपसे विराजमान हैं। इसी प्रकार उनका धाम भी कहीं पूर्ण और कही अंशरूपसे विराजमान है। 'कृष्णः पदमवभाति भूरि;'[१] 'विष्णोः परमं पदम्'[२] इत्यादि श्रुतियोंमें परम पद अथवा परम व्योम अथवा व्यापि बैकुण्ठका स्पष्ट निर्देश मिलता है। भगवान्‌के धाम नित्य और चिन्मय हैं। परमब्रह्म श्रीकृष्णके धाम गोकुलको 'वन-बैकुण्ठ' भी कहा गया है। परमब्रह्मका धाम साक्षात् ब्रह्म-स्वरूप है। जीवकी परम गति यही धाम है, जहाँसे वह कभी लौटता नहीं—

अव्यक्तोऽक्षर इत्युक्तस्तमाहुः परमांगतिम् ।
यं प्राप्य न निवर्त्तन्ते तद्धाम परमं मम ॥[३]

ये धाम स्वप्रकाशवान् हैं। श्रीकृष्णके स्वधाम रूपमें बैकुण्ठ नाम भागवतमें स्पष्ट नहीं है; किन्तु गोकुल, व्रज-वृन्दावनकी शोभा, महिमा और परम पावनताका वर्णन हुआ है। भागवतमें वृन्दावनकी महिमाका अनावृत्त रूपसे वर्णन है।[४] अक्रूर भावविभोर होकर वृन्दावनकी धूलिमें लोटपोट होने लग जाते है[५] और उद्धव भी वृन्दावनमें गुल्मलता, तृण हो जानेमें अपना परम सौभाग्य समझते हैं।[६] वृन्दावनमें भक्ति स्वयं मूर्तरुप धारण कर नृत्य करती है। हरिवंश पुराणमें ब्रह्म लोकसे ऊपर गोलोककी स्थितिका निर्देश है।[७] गोलोकधाम श्रीवृन्दावन वैभव स्वरूप है। भगवान्‌के धाम दो श्रेणियोंमें विभक्त हैं। इस विभागका मूल-सूत्र लीलागत वैशिष्ट्य है। उसमें-से देव-लीलाके उपयोगी सर्व-प्रधान धाम ही गोलोकधाम है। नर-लीलाके उपयोगी

---

१. ऋग्वेद १।१५४।६, २. वही १।२२।२०

३. श्रीमद्भगवद्गीता ८।२१

४. (क) भागवत १०।१३।५९-६१

(ख) नित्यं वृन्दावनं नाम ब्रह्माण्डोपरि संस्थितम् ।
पूर्णब्रह्मसुखैश्वर्यं नित्यमानन्दमव्ययम् ॥
बैकुण्ठादि तदंशांशं स्वयं वृन्दावनं भुवि ॥ - पद्मपुराण पाताल-खण्ड ३८।८-९

५. वही १०।३८।२६ ६. भागवत १०।४७।६१

७. हरिवंश पुराण, विष्णुपर्व १९।३१,३४

धाम द्वारका, मथुरा एवं गोकुल अथवा श्रीवृन्दावन ये त्रिविध हैं। बैकुण्ठ धाम चतुर्भुज नारायणका लीला-निकेतन है, किन्तु गोलोकधाम द्विभुज श्रीकृष्णकी नित्य विहार-भूमि है।[१]

धामोंका तारतम्य

कृष्णलोक :

स्वयं भगवान् श्रीकृष्णका धाम, जिसमें द्वारका, मथुरा और गोकुल सम्मिलित हैं 'कृष्णलोक' कहलाता है। गोकुल सर्वोपरि है, इसे श्वेतद्वीप भी कहते हैं। इसे वृन्दावन भी कहा जाता है। यहाँ श्रीकृष्ण स्वयंरूपसे तथा द्वारका, मथुरामें प्रकाश रूपसे विराजमान है–

कृष्ण लोक ख्याति।
द्वारका, मथुरा, गोकुल त्रिविधत्वे स्थिति ॥
सर्वोपरि श्रीगोकुल, व्रजलोक धाम।
श्रीगोलोक श्वेतद्वीप वृन्दावन धाम ॥[२]

द्वारका, मथुरामें चतुर्व्यूह रूपसे प्रसिद्ध है।[३]

परव्योम :

परव्योम धाम त्रिपाद विभूतिमय, चिन्मय, षडैश्वर्यपूर्ण, सनातन, अमृतस्वरूप, शाश्वत, नित्य और अनन्त है। कृष्णलोकके तलदेशमें स्थित परव्योमको महाबैकुण्ठ भी कहते हैं। राम, नृसिंह आदि अनन्त अवतारोंकी यहाँ स्थिति है।[४]

---

१. गौड़ीय-दर्शन

२. श्रीचैतन्यचरितामृत १।५।१३–१४

३. मथुरा द्वारकाय निजरुप प्रकाशिया। नानारुप विलसये चतुर्व्यूह है या ॥ वासुदेव संकर्षण प्रद्युम्नानिरुद्ध। सर्वचतुर्व्यूह अंशी तुरीय विशुद्ध ॥ - भागवत १।५।१६–२०

४. (क) प्रधान परव्योम्नोरन्तरे विरजा नदी। वेदांग स्वेद जनित स्तोयैः प्रस्राविता शुभा तस्याः पारे परव्योम त्रिपादभूतं सनातनम्। अमृतं शाश्वतं नित्यमनन्तंपरमं पदम्। - लघुभागवतामृत पूर्ण खण्ड १५।२४७-४८ धृत पद्मपुराण वचन

(ख) ब्रह्मसंहिता

सिद्धलोक :

अव्यक्त स्वरूप या निर्विशेष ब्रह्मका एक निर्विशेष धाम है, इसका नाम सिद्धलोक है। श्रीहरिके द्वारा मारे जानेपर दैत्य सायुज्य मुक्ति लाभ कर यहाँ पहुंचते हैं।

सिद्धलोकस्तु तमसः पारेयत्र वसन्ति हि।
सिद्धा ब्रह्मसुखे मग्ना दैत्याश्च हरिणा हताः ॥[1]

कारणार्णव :

प्राकृत ब्रह्माण्ड और परव्योमके मध्य विरजा नामकी नदी है। इसे कारण 'समुद्र' या 'विरजा' कहते हैं। कारणाब्धिशायी पुरुष, जो जगतके कारण है यहाँ शयन करते हैं। यहाँ माया-शक्तिका प्रवेश नहीं है।[2]

सभी भगवद्धाम सर्वव्यापक हैं तथापि इनकी स्थिति बाहर-भीतर, ऊपर-नीचे बतायी गयी है। तारतम्यकी दृष्टिसे ब्रह्माण्डसे ऊपर कारणार्णव, उससे ऊपर सिद्धलोक, उससे ऊपर बैकुण्ठ, उससे ऊपर कृष्णलोक और कृष्ण-लोकके अन्तर्मण्डलमें वृन्दावन अवस्थित है और उत्तरोत्तर इनकी महिमा अधिकसे-अधिक है।

प्रकाशभेद और नित्यत्व :

सभी धाम वृन्दावनके प्रकाश हैं। वस्तुत: कोई भेद न होनेपर भी श्रीकृष्णका प्रकाशभेद अथवा लीलाभेद होनेसे धामोंका प्रकाशभेद है। यहाँकी सभी वस्तुएँ नित्य और चिन्मय है, यहाँ मायिक वस्तुकी उत्पत्ति-स्थिति सम्भव नहीं है।[3] सभी वस्तुएँ ब्रह्मघन हैं।[4] ये धाम पूर्ण ब्रह्मके सुख और ऐश्वर्यसे सम्पन्न, आनन्दमय और अविनाशी है। परमसुखमय होनेसे नित्य-लीला प्रविष्ट भक्तोंके साथ दु:खका कोई संसर्ग नहीं है। भगवान् अपनी आनन्द प्रसारिणी शक्तियोंके सहित नित्य और व्यापक लीलाएँ करते रहते हैं। महाप्रलयके समय पृथ्वीके नष्ट होनेपर भी गोकुल नष्ट नहीं होता।

---

१. भक्तिरसामृत सिन्धु १।२।१३८ धृत ब्रह्माण्ड पुराण वचन
२. चैतन्य चरितामृत २।२०।२३०
३. बैकुण्ठेर पृथिव्यादि सकल चिन्मय।
मायिक भूतेर तिथि जन्म नाहि हय ॥ - चैतन्य चरितामृत १।५।४५
४. बृहद्भागवतामृत २।४।५०

धाम भगवानकी आधारशक्ति है। बल्लभ-सम्प्रदायमें व्यापि-बैकुण्ठका वर्णन है। नित्यताके सम्बन्धमें आचार्य विट्ठल कहते हैं–'व्रजं च विष्णु सखिवान पोर्णुते।'[1] कालके प्रभावसे अलग होनेके कारण यह परिणाम आदि विकारसे भी रहित है।

द्वारकाके लिये भागवतमें कहा ही है–भगवान् श्रीकृष्ण वहाँ अब भी सदा सर्वदा निवास करते हैं।[2] वृन्दावनमें प्रकट लीलामें जो विरहाभास होता है, उसका उद्धवने समाधान किया है 'भगवान् मुकुन्दकी बृन्दावनमें नित्य लीला विराजित है।[3] धाम आदिके सम्बन्धमें जो भी असंगतियाँ हैं उनका समाधानकारक सिद्धान्त 'प्रकाशभेद' है।[4] जैसे नेत्रेन्द्रिय गोलकमें अभिव्याप्त होकर अपना दर्शन आदि कार्य गोलकके द्वारा करवाती है, इसी प्रकार नित्य-लीला-स्थान गोकुल भी सर्वप्रत्यक्ष गोकुलमें सन्निहित रहकर इसीके द्वारा अपनी महिमा; नित्यता और प्रभावका परिचय देता है।

इस प्रकार लीलानायक श्रीकृष्ण पूर्ण पुरुषोत्तम, रस अथवा आनन्द-स्वरूप है। ब्रह्म ही अवतारी कृष्ण होकर लीलाके लिये भूतलपर आते हैं। वे भक्तोंके प्रेमके वशीभूत होकर विचरण करते हैं और विचित्र लीलाएँ करते हैं। एक ही अद्वितीय ब्रह्म एकाकी रमण नहीं करता। चराचर सृष्टि, प्रलय आदि भगवानकी लीला है। जीवोंपर अनुग्रह ही उनके अवतारका प्रयोजन है। लीलाका भी लीलानन्दके अतिरिक्त और कोई प्रयोजन नहीं है। गोलोकमें परब्रह्म श्रीकृष्ण नित्य आनन्द-लीलामें मग्न रहते हैं। वहाँ नित्य वृन्दावन, नित्य यमुना, नित्य गोपी और नित्य विहारका आनन्द रहता है। उनकी यह लीला अवतारी दशाकी लीला कही जाती है। अवतार दशामें उनका गोलोक व्रजमें पृथ्वीपर उतर आता है। वे गोपांगनाओंके साथ आनन्द-केलिये निमग्न रहते हैं। प्रयोजन-रहित यह 'अहैतुकीलीला' है। वह रमणशील, क्रीड़ाशील, रसात्मक रस शिरोमणि है, फिर भी नन्दनन्दन है। अनुपम सौन्दर्यशील, कोटिकामलावण्ययुक्त नराकृति होकर भी वेद-पुराण प्रतिपाद्य है। सर्वशास्त्र-शिरोमणि भागवतके नायक सर्वनायक शिरोमणि भगवत् शब्द वाच्य हैं। ★

---

१. विद्वन्मंडन पृष्ठ ६३, २. भागवत ११।३१।२०

३. चैतन्य सम्प्रदाय: सिद्धान्त और साहित्य पृष्ठ १५६ पर उद्धत 'पद्यावली' की श्लोक संख्या ३१२ क

४. लघुभागवतामृत, पूर्वखण्ड पृष्ठ १३

५. विद्वन्मंडन निष्कर्ष सहित, पृष्ठ ६१

पंचम स्तवक

प्रबन्ध-योजनाका स्वरूप

'वासुदेवः सर्वमिति'—भागवतकी प्रबन्ध योजनाका स्वरूप कुछ इस प्रकार निबद्ध है कि सभी पदोंका वाच्यार्थ और लक्ष्यार्थ श्रीकृष्ण ही हैं, सारे अर्थ 'श्रीकृष्ण' और उनके महत्वका ही अनुधावन करते हैं। श्रीमद्भागवत अनेकोंप्रकारसे भगवान् श्रीकृष्णकी पूर्णताका प्रतिपादन करते हुये अन्ततः उन्हींमें समा जाता है। भागवतका ज्ञान श्रीकृष्णका ज्ञान है और श्रीकृष्णका ज्ञान भागवत और कृष्णके सम्बन्धका ही नहीं अपितु उनकी लीलाका भी ज्ञान है। भागवत-भगवत्कीर्ति प्रतिपादक है। भागवतमें भगवानके अनेक अवतारोंको, उनकी लीलाओं तथा चरित्रोंको निमित्त बनाकर वेदव्यासने अद्वय ज्ञान और भक्तिको मनपर अंकित करनेका सफल प्रयत्न किया है।[1] 'आश्रय' तत्वके बोधके लिये आनुषंगिकरूपसे प्रसंगानुसार अन्य विषयोंका वर्णन है। प्रबन्ध योजनाके स्वरूपको कालगत प्रबन्ध, देशगत प्रबन्ध, स्थानगत प्रबन्ध आदि दृष्टिसे भी देखा जा सकता है। लीलाएँ उद्योगगत प्रबन्ध है। 'पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्णमेवावशिष्यते ....'वस्तुतः कृष्ण एव' यही है भागवतीय प्रबन्धका केन्द्रस्थ प्रयोजन। लीलाओंकी दृष्टिसे श्रीमद्भागवतमें श्रीकृष्ण की बाल्य, पौगण्ड एवं कैशोर लीला-वर्णनके माध्यमसे उत्तरोत्तर प्रेम-माधुरीका चरमोत्कर्ष प्रदर्शित किया गया है।

प्रबन्ध योजनामें संवादोंका महत्व

प्रत्यक्ष और शब्दका मिलन संवाद है।[2] संवादात्मक शास्त्र भागवतमें संवादोंके माध्यमसे ही तत्वका निरूपण है। श्रोता-वक्ता दोनोंके प्रश्नोत्तरके रूपमें संवाद हुए है और इन्हीं संवादोंमें दृष्टान्त, रूपक इतिहासकी दृष्टिसे अन्वय-व्यतिरेककी दृष्टिसे परतत्वका निरूपण हुआ है। त्रिकालज्ञ श्रीवेदव्यासने भागवतमें जो कुछ लिखा वह संवादोंसे व्यक्त हुआ; साथ ही श्रवण-

---

१. **भागवत धर्म : हरिभाऊ उपाध्याय, सस्ता साहित्य मण्डल, दिल्ली, द्वितीय संस्करण १९६२ पृष्ठ ६–७**

२. **श्रीकृष्ण लीलाओंपर शास्त्रीय प्रकाश : रमानाथ शास्त्री, विद्याविभाग नाथद्वारा १९४९ पृष्ठ ८**

महत्ताका प्रत्यक्ष फल भी अभिव्यक्त हुआ। भगवत्-प्राकट्यसे पूर्व ब्रह्मा-नारद, नारद-व्यास, कपिल-देवहूति, विदुर-मैत्रेय, शिव-प्रचेता, दक्षपुत्र-नारद, भरत-रहुगण, नारद-प्राचीनर्वाहि, नारद-चित्रकेतु, निमि-नवयोगेन्द्र तो श्रीकृष्ण-उद्धव सवाद आदि हैं। 'भविष्य' में शुक-परीक्षित; सूत-शौनक आदिके संवाद हुये हैं। संवादोंसे ही भगवान्, विशेष भक्त, महापुरुष एवं राजाओंकी जीवन-कथाका चित्रण है अथवा इन चित्रणोंमें संवाद प्रकाशित हुए हैं।

भागवतमें श्रीशुकने परीक्षितसे स्पष्ट रूपसे कहा है ये संवाद वाणीके वैभव मात्र नहीं है। इनमें परमार्थ तत्त्व भरा हुआ है। संवादोंके माध्यमसे कही गयी कथाएँ ज्ञान और वैराग्यका उपदेश करनेवाली है। नित्य-निरन्तर भगवानके दिव्य गुणोंको ही श्रवण करते रहना चाहिये—'तमेव नित्यं श्रृणुयादभीक्ष्णं कृष्णेऽमलां भक्तिमभीप्समानः।'[1]

भागवतके संवादोंसे ही श्रीकृष्ण-स्वरूपका ज्ञान भलीभाँति होता है। वक्ता स्वयं ही श्रीकृष्णके विषयमें इतना सब कुछ बताते हैं, पर श्रोताके पूछनेपर तो श्रीकृष्णका रहस्यात्मक स्वरूप खुल-खुल जाता है। बहिर्मुख प्रवृत्ति दूर हो श्रीकृष्णमें ही प्रवृत्त हो जाती है ऐसा है संवादोंका महत्व। भगवान् संवाद-कथा स्वरुप ही है; श्रवणकारी होनेपर त्रिभंग ललित श्यामसुन्दर कर्णके पथसे हृदयमें प्रवेश कर बाहर निकलना ही नहीं जानते हैं—

प्रविष्टः कर्णरन्ध्रेण स्वानां भावसरोरुहम्।
धुनोति शमलं कृष्णः सलिलस्य यथा शरत्॥[2]

श्रीमद्भागवतकी संवाद शैली :

भागवत शास्त्र संवादात्मक शैलीमें निबद्ध है। संवादका अर्थ 'एकमत्य' होता है, कोई वाद अथवा विवाद नहीं होता इसमें। भागवतीय संवादोंमें सभी पात्रोंने श्रीकृष्णके प्रति अपनी भक्ति-भावना व्यक्तकी है, चाहे वह तात्कालिक हो अथवा भूत और भविष्यभावी। नारदका संवाद है 'संसार सागरसे पार होनेके लिये केवल हरि-चर्चा ही नौका-रूप है।'[3] कुन्तीका संवाद है 'हे श्रीकृष्ण! हमें पद-पदपर विपत्तियाँ मिले, जिनसे हमको संसारसे छुड़ानेवाला दुर्लभ आपका दर्शन मिलता रहे।'[4] भीष्म कहते हैं, अर्जुनके मित्र श्रीकृष्णमें मेरी निष्काम भक्ति हो।[5] हस्तिनापुरकी

---

१. भागवत १२।३।१४–१५ २. वही २।८।५
३. भागवत १।६।२५, ४. वही १।८।२५, ५. वही १।९।३३

नारियोंके संवादोंमें कहा गया है 'ये श्रीकृष्ण वही साक्षात् परब्रह्म हैं। वास्तवमें इन्हींकी भक्तिसे अन्तःकरणकी पूर्ण शुद्धि हो सकती है, योगादिके द्वारा नहीं।'[1] जनपदवासी कहते हैं 'आपके (श्रीकृष्णके) चरणकमल संसारमें परम कल्याण चाहनेवालोंके लिये सर्वोत्तम आश्रय है।'[2] सूतजी कहते हैं 'यही तो भगवानकी भगवत्ता है कि वे प्रकृतिमें स्थित होकर भी उसके गुणोंसे कभी लिप्त नहीं होते।'[3] श्रीपरीक्षित कहते हैं—'चाहे जिस योनिमें जन्म लेना पड़े भगवान् श्रीकृष्णके चरणोंमें मेरा अनुराग हो।'[4] श्रीशुक कहते हैं 'निर्भयच्छुकोंको सर्वव्यापक श्रीहरिका ही श्रवण, कीर्तन और स्मरण करना चाहिये।'[5] शौनकादि ऋषि कहते हैं 'यह सूर्यनारायण उदय और अस्त होकर मनुष्योंकी आयुको वृथा नष्ट करते हैं उसमें उतना ही समय सफल है, जिसमें हरिचर्चा की गयी हो।' श्रीब्रह्मा कहते हैं 'भगवानकी लीलाका वर्णन और श्रवण करनेवालोंका चित्त मायासे कभी मोहित नहीं होता।'[7] श्रीविदुरका संवाद है, हरिगुण-कीर्तन विषय-वासनाको नष्ट कर देता है।'[8] देवगणोंका कथन है 'त्रिविध तापसे पीड़ित हम आपके चरणोंकी छायाका आश्रय ग्रहण करते हैं।'[9] इसी प्रकार मैत्रेय,[10] कपिल,[11] ऋषभ,[12] जड़भरत,[13] यमराज,[14] वृत्रासुर,[15] अंगिरा,[16] प्रहलाद,[17] गजेन्द्र,[18] बलि,[19] ययाति[20] वसुदेव, देवकी, यशोदा, यमलार्जुन, कालियनागपत्नियाँ, अक्रूर, कविमुनि,[21] हरिमुनि,[22] अन्तरिक्षमुनि,[23] प्रबुद्धमुनि[24] पिप्लायन[25] आविर्होत्र,[26] चमसमुनि,[27] कर भाजन मुनि,[28] उद्धव, पुरुरवा, मार्कण्डेय आदिने सवादात्मक शैलीमें अपनी भक्ति भावनाको अभिव्यक्त किया है। इनमें कुछ सिद्धान्त तो विस्तृत हैं और कुछ संक्षिप्त। सर्वप्रथम संवाद भगवान् और

---

१. भागवत १।१०।२३, २. वही १।११।६, ३. वही १।११।३८
४. वही १।१९।१६, ५. वही २।१।५ ६. वही २।३।१७
७. वही २।७।५२, ८. वहीं ३।५।११
९. भागवत ३।५।३, १०. वही ३।६।३७, ११. वही ३।२५।३४
१२. वही ५।५।१, १३. वही ५।१२।१६, १४. वही ६।३।२८
१५. वही ६।१२।२४, १६. वही ६।१५।२२, १७. वही ७।९।३०
१८. वही ८।३।२०, १९. वही ८।२२।५, २०. वही ९।१९।१६
२१. वही ११।२।३३ २२. वही ११।२।४५ २३. वही ११।३।३
२४. वही ११।३।३१, २५. वही ११।३।३५, २६. वही ११।३।४७
२७. वही ११।५।७, २८. वही ११।५।४१

ब्रह्माजीका कहा जा सकता है। प्रमुख संवाद शुक और परीक्षितका है— 'राज्ञा पृष्ठं शुकेनोक्तं श्रीमद्भागवतं परम् ।' क्रम रूपमें 'शौनक-सूत संवाद[1] परीक्षित शुक संवाद[2] और विदुर-मैत्रेय संवाद[3] है। यह तीनों ही संवाद 'व्यास उवाच' के अन्तर्गत है। विदुरजी प्रेमाभक्तिसे उत्थित अत्यन्त आविष्टचित्त होनेके कारण अपने प्रश्नोंके सम्पूर्ण उत्तर सुननेसे पहले ही चले गये।[4]

अधिवेशन और सभा :

श्री ब्रह्मोवाच 'इदं भागवतं नाम यन्मे भगवतोदितम् ।'[5] अर्थात् भगवानने मुझे जो उपदेश दिया था, वह यही भागवत है, इससे सिद्ध होता है कि सम्पूर्ण भागवत सर्वप्रथम भगवानके द्वारा ही अभिव्यक्त हुई। अतः इसे भावगतका 'प्रथम अधिवेशन' कहना समीचीन होगा। हाँ, यह अमानवीय अधिवेशन था। श्रीकण्ठमणि शास्त्री कहते हैं भागवत लोक दृष्टिसे एक 'शास्त्र' है, पौराणिकोंकी दृष्टिमें 'महापुराण' है, वेदान्तियोंकी दृष्टिमें 'परमहंस संहिता' है, भक्तोंकी दृष्टिमें 'सात्वत संहिता' है, तत्वज्ञोंकी दृष्टिमें 'समाधि भाषा' है और वैष्णवोंकी दृष्टिमें साक्षात् भगवानका प्रेममय स्वरूप। भागवतको कुछ भी कहा जाय, हर वैशिष्ट्यके पूर्व 'संवादात्मक अथवा अधिवेशनात्मक' शब्द आवश्यक है। तीन अधिवेशन भागवतमें वर्णित हैं—

१— श्रीमद्भागवत कीर्तन-सभाका पहला अधिवेशन हुआ था सरस्वतीके पश्चिम तटपर 'शम्याप्रास' नामक आश्रममें' जो बदरिकाश्रममें स्थित है। इस समय महामुनि श्रीव्यासजीने गुरूवर श्रीनारदजीके आदेशसे इस महाग्रन्थको प्रकाशित कर श्रीशुकदेवको अध्ययन कराया है।[6]

२— श्रीमद्भागवत सभाका द्वितीय अधिवेशन गंगाके तटपर 'शुकस्तल' नामक स्थानपर हुआ था। यहाँ श्रीशुकदेवने श्रीपरीक्षितको उग्रश्रवा

---

१. भागवत - प्रथम स्कन्धके आरम्भसे लेकर द्वादश स्कन्ध तक

२. वही - द्वितिय स्कन्धके आरम्भ से लेकर १२।६।७ तक

३. वही - तृतीय स्कन्धके अध्याय ५ सेलेकर चतुर्थ स्कन्धकी समाप्ति तक

५. जातंकभक्तेगोविन्देतेभ्यश्चचोपराम ह - भागवत १।१३।२

६. वही १।७।८

सूत आदि महानुभावों एवं बहुतसे ऋषियोंकी उपस्थितिमें एक सप्ताह तक भागवत-कथाका श्रवण कराया था।[१]

३– श्रीमद्‌भागवत सभाका तृतीय अधिवेशन गोमती तटस्थित नैमिषारण्यमें हुआ था। यहाँ श्रीसूत गोस्वामीने शौनकादि ऋषियोंके लिये श्रीमद्‌भागवतकी व्याख्या की।[२]

समयकी दृष्टिसे प्रथम सभा श्रीकृष्णके परमधामगमनके पश्चात् तीस वर्ष कलियुग बीत जानेपर भाद्रपद मासमें नवमी तिथिसे प्रारम्भ हुई, सप्त दिवस पर्यन्त चली,[३] इसके पश्चात् दो सौ वर्ष और व्यतीत हो जानेपर अर्थात् कलियुगी संवत् २३० आषाढ़ शुक्ल नवमीसे दूसरी सभा गोकर्ण और धुन्धकारी की हुई,[४] इसके पश्चात् तीस वर्ष और बीत जानेपर अर्थात् कलियुग संवत् २६० में सनत्कुमारादि द्वारा तीसरी सभा प्रवर्तित हुई।[५]

प्रबन्ध योजनामें गान :

धातुमातु समायुक्तं गीतमित्युच्यते वुधैः।' जहाँ वक्ता अपने हृदयकी अन्तरतम गुहामें कल्लोलित भावोंकी अभिव्यक्ति करता है, वह 'गीत' के नामसे अभिहित है। 'गीत' शब्दका अर्थ है 'गायन' - 'गान'। भागवतके गीतोंके आधारपर कहा जा सकता है कि जब अन्तरात्मा अपनी व्यथा, अन्तर्वेदना और अनुभूतिको अपने अन्दर संवरण नहीं कर पाती, धैर्यका बाँध टूट जाता है, तब अपने आप ही, किसीको सुनानेके लिये नहीं, जो उद्‌गार निकलते हैं, उनका नाम 'गीत' है। गीत संसारकी कटुताके अनुभवसे, ज्ञानसे, विरहसे, प्रेमसे, प्रेम करनेकी इच्छासे; विरहकी सम्भावनासे अथवा अन्य कारणोंसे भी हृदयसे निकल पड़ता है - एकान्तमें भी और लोगोंके सामने भी, किसीकी अपेक्षा न करके भी और किसीको सम्बोधित करके भी।

---

१. भागवत १।१९।५–१२   २. वही १।१।४

३. 'नवमीतो नमस्ये च कथारम्भं शुकोऽकरोत्। पद्मपुराण उत्तरखण्ड, भागवत माहात्मय ६।९४

४. परीक्षिच्छ्रवणान्ते च कलौ वर्षशतद्वये।
शुद्धे शुचौ नवम्यां च धेनुजोऽकथयत्कथाम्॥ वही ६।९५

५. तस्मादपि कलौ प्राप्ते त्रिंशद्वर्षागते सति।
ऊचुरुर्जे सितेपक्षे नवम्यां ब्रह्मणः सुताः॥ वही ६।९६

यह गान तत्वत: अपने हृदयमें छिपे आनन्द अथवा विरहकी अभिव्यक्ति है। सम्पूर्ण प्रतिबन्धोंके निवारणपूर्वक चित्तवृत्तिको अत्यन्त अन्तर्मुख कर गान रूपमें आनन्द अभिव्यक्त होता है। यथार्थमें तो चित्त एक अखण्ड समुद्र है, समुद्र उसे कहते हैं जिसमें सम्यक् उद्रेक हो, खूब तरंगे उठ रही हों, ज्वार आ रहा हो, किन्तु हो अद्वितीय, उसके अतिरिक्त और कोई वस्तु न हो। उस आनन्द, आह्लाद या प्रेमके समुद्र चित्तमें जो भिन्न-भिन्न तरंगोंका उदय होना या टकराव है, वही गान है।

भागवतीय गीत है - वेणुगीत,[1] प्रणयगीत[2], गोपीगीत[3], युगलगीत[4], भ्रमरगीत[5] - ये पंच प्रेमगीत हैं। इन गीतोंमें माननीय मनोभावोंका सहज एवं मनोरम प्रस्फुरण हुआ है। सौन्दर्यके प्रति ललक, अनुरागकी तीव्रता, विरहकी अनुभूति, प्रिय सान्निध्यसे प्रसूत गौरव और उसके दाक्षिण्यके कारण आविर्भूत गर्वकी हृदयहारिणी अभिव्यक्ति सचमुच श्लाघनीय है।

भिक्षुगीत[6], ऐलगीत[7] और भूमिगीत[8] निर्वेदपरक गीत है। भिक्षुगीतमें लोगोंसे अपमानित दीन-ब्राह्मण संसारसे निर्वेद प्राप्तकर आत्मोद्धार करता है। ऐलगीतमें उर्वशीके सम्मोहनमें भूला हुआ ऐल (पुरुरवा) अन्तमें निर्वेदको प्राप्त कर अपने आपको धिक्कारता है। 'भूमिगीत' में भूमि नश्वर राजाओंकी विजयाकांक्षापर तीव्र व्यंग्य करती हुई कहती है कि ये राजा लोग, जो मृत्युके हाथोंके खिलौने हैं, मुझे जीतना चाहते हैं, अपने जलके बुद्बुद् सदृश जीवन-पर विश्वास करते हैं और धोखा खाते हैं। इन गीतोंमें शान्तरसका परिपाक हुआ है।

इसके अतिरिक्त पुरन्ध्री गीत,[9] नारदगीत,[10] रुद्रगीत[11] और महिषीगीत[12] आदिकी भी नियोजना है। महिषीगीतमें महिषीगणोंका उपालम्भ तलस्पर्शी है। इस गीतमें संयोग-वियोग दोनों प्रकारकी भावनाओंके चित्रणमें कविने अपनी गहरी अनुभूति तथा गम्भीर मनोवैज्ञानिक भाव-

---

१. भागवत १०।२१।६ से २०,
२. ख वही १०।२९।३१ से ४१
३. वही १०।३१।१ से १९
४. वही १०।३५।२ से २५,
५. वही १०।४७।१२–२१,
६. वही ११।२३।४३–५८
७. वही ११।२६।७ से २४,
८. वही १२।३।१ से १३,
९. वही १।१०।२१ से ३०
१०. वही ४।१२।४१ से ४३,
११. वही ४।२४।३३ - ७९,
१२. वही १०।९०।१५-२७

विश्लेषणका पूर्ण परिचय दिया है । सम्पूर्ण गान कोमल तथा ललित भावनाओंके अक्षय स्रोत है, भारतीय साहित्य, सौन्दर्य तथा माधुर्यके उत्स हैं ।

जगौ कलं वामदृशां मनोहरम् :

रासपंचाध्यायीके इस तृतीय श्लोककी श्रीजीवगोस्वामीकृत 'वैष्णवतोषिणी' टीकामें 'अत्र श्लेषेण कामबीजं जगाविति रहस्यम्' अर्थात् अर्थान्तरमें कामबीजका गान किया, यह रहस्य है। कामबीज कृष्ण-मन्त्र रसराज-विग्रह श्रीकृष्णका स्वरूप है। सर्वाकर्षण हेतु कृष्ण ही स्वयं अपने मंत्र-स्वरूपका गान करते हैं। कृष्णही मंत्रमें चार प्रकारसे विद्यमान है—मन्त्रके कारण रूपमें, वर्ण समुदायरूपमेंअधिष्ठातृ देवता-रूपमें और आराध्य रूपमें। कामगायत्री है 'क्लीम् कामदेवाय विद्महे पुष्पबाणाय धीमहि तन्नोऽनंगः प्रचोदयात् ॥ भागवत स्वयं श्रीकृष्णस्वरूपा है, स्वयं कामगायत्री भी कृष्ण-स्वरूपा है।[१] कामगायत्रीकेअभावमें कृष्णके यथार्थ रूपका परिचय प्राप्त नहीं होता है। कामगायत्रीकी उपास्यरूप साध्य वस्तु है 'देवाधिदेव श्रृंगार रसराज स्वरूपसे अभिन्न अर्थात् अप्राकृत रसराज-श्रृंगारस्वरूप नन्दनन्दन श्रीकृष्ण।[२] साधक इसका आश्रय ग्रहण कर व्रजमण्डलमें परिकर रूप सेवायोग्य, शरीर प्राप्त करते हैं।[३] कामगायत्री मंत्रके कामका तात्पर्य है—कारूण्यामृत, तारूण्यामृत और लावण्यामृत। श्रीप्रबोधानन्दने वृन्दावनको स्पष्टतः कामबीजात्मक बताया है-बीजराजात्मक[४], मधुरतरमहा[५], कामबीज विलासात्मक[६], महाशुद्ध कामबीज[७]; महाबीज[८], यह सर्वसारसुखाकर है। वृन्दावनमें श्रीकृष्णने अपनेदिव्य उज्ज्वल रसके उद्दीपनकी पूरी सामग्री देखकर अपनी बाँसुरीपर व्रज-सुन्दरियोंके मनको हरण करनेवाली कामबीज 'क्लीं' की अस्पष्ट एवं मधुर तान छेड़ी।[९]

कलं-ककार लकार है, वामदृक् यह लुप्त विभक्तिक पद है अर्थात् चतुर्थस्वर दीर्घ ईकारसे युक्त करनेपर, बिन्दु अनुस्वारको जोड़नेपर कामबीज

---

१. कामगायत्री व्याख्या, श्लोक ७

२. मंत्रार्थ दीपिका श्लोक १०

३. गायत्री सा महामन्त्रः कामपूर्वाथ कथ्यते ।
साधका यां गृहीत्वैव जायन्ते व्रजमण्डले ॥ वही ९

४. वही २।९१, ५. वही ७।६५, ६. वही ७।८०

७. वही ९।१०१, ८. वही १२।९५, ९. वही १०।२९।३

'क्लीं' निकलता है। रासोल्लासतंत्रके राधा-कृष्णकी रति कामबीज स्वरूपसे वर्णित है यथा श्रीकृष्ण कामबीज आत्मक तथा श्रीराधा रतिबीजात्मिका है। पंचालंकार युक्त 'क्लीम्' एकाक्षर कामबीज है।[1] गौतमीयतंत्रमें इसका अर्थ इस प्रकार है—भगवानने क्लींकारसे विश्वकी सृष्टिकी है, ऐसा उपनिषत् भागमें कहा गया है। लकारसे पृथ्वी, ककारसे जल, ईकारसे अग्नि, नादसे वायु, बिन्दुसे आकाश उत्पन्न हुआ है। इस प्रकार यह मन्त्र पंचभूतात्मक भी है।

बृहद्गौतमीय तंत्रमें कहा है, ककारमें सच्चिदानन्द विग्रह परम-पुरुष श्रीकृष्ण हैं। ईकारका स्वरूप परमा प्रकृति, नित्यस्वरूपा, वृन्दावनेश्वरी श्रीराधिका हैं। लकारका स्वरूप दोनोंका आनन्दात्मक प्रेम सुख-पदार्थ है। नाद-बिन्दुसे चुम्बनानन्द रूप माधुर्य वस्तु कही जाती है।

सनत्कुमार संहितामें कहा है यह बीजाक्षर क्रमशः आम्र मुकुल, अशोक, मल्ली; माधवी, वकुल-कामके पंचपुष्पवाण स्वरुप है। पाँच रस भी पंचबाणके गुणस्वरुप हैं।[2]

'क्लं' का अर्थ है मधुर अस्फुट ध्वनि। यह गायक श्रीकृष्णकी वेणु-ध्वनि विशेष है। अनुरागवती गोपियोंको अस्फुट ध्वनिसे स्व-स्व नाममयत्व-का भ्रम होता है। सभी गोप सुन्दरियोंने अनुरागमय, संगीतमय आमन्त्रण श्रवण किया था। वेणुमाधुर्यसे व्रजबालाओंके मनका हरण करनेके कारण 'क्लीम्' यह सिद्ध होता है। यह पद लीला माधुर्यसे व्रजबालाओंका विवेक हरणके कारणसिद्ध हुआ है। लावण्यगुण-माधुर्यादिसे उन सबका सम्भोग-रसानन्द उद्दीपनके कारण इस पदका प्रयोग है। चित्त-कन्दर्प-रमण कामा-नन्द प्रकाशकारी श्रीकृष्ण अपने प्रेमियों किवा प्रेयसियोंके हृदयोंमें चित्तानन्द, कन्दर्पानन्द, रमणानन्द, कामानन्दके प्रकाशक हैं।[3] प्रेम-सौरभसे लुब्ध हुये भ्रमर-श्रीकृष्ण निरन्तर मधुपान करते हुये विभोर रहते हैं।

---

१. ग्रन्थरत्नषटकम् पृष्ठ १—२

२. बीजाक्षरं पंच पुष्पबाणतुल्यं क्रमात् श्रृणु।
ककारश्चाम्रमुकुलो लकारचाशोकः स्मृतः॥
ईकारो मल्लिकापुष्पं माधवी चार्द्ध चन्द्रकः।
बिन्दुश्च वकुलपुष्पमेते बाणाः स्युरेव च॥ - मंत्रार्थ दीपिका ८

३. ग्रन्थरत्नषटकम् पृष्ठ ५ से १०

भागवतमें जो भी है, सब कृष्ण ही हैं और है उनका लीला-वैचित्र्य। भागवतके पात्रोंका प्रेम व्यक्त हुआ है गीतोंमें। कृष्ण शब्द-विग्रह है। शब्द गीतोंमें प्रतिष्ठित हैं। गीत भी कृष्ण हैं, गीतोंके लक्ष्य भी कृष्ण, गायक भी कृष्ण। गान-भावका बीज है 'क्लीं।' जो कृष्णका स्वरुप है वही क्लींका स्वरूप इसलिये क्लीं भी आनन्दस्वरूप है। 'कलं वामदृशा'=क्लीं को हटा दिया जाय भागवतकी लीला-प्रबन्ध-योजना प्राणहीन हो जायेगी, फिर रास-लीला कहाँसे होगी ? वेणुमें किसका निःसरण होगा ? कृष्णके आनन्द रूपकी अभिव्यक्ति कैसे होगी ? जीवोंको परमानन्द किस प्रकार प्राप्त होगा ? सांसारिक अर्थमें सृष्टि लीला कैसे होगी ?

इस गानसे स्थावर-जंगम सभीमें चेतना उद्दीप्त हुई है, प्राण-शक्ति संचरित हुई है; आनन्द रस-धारा प्रवाहित हुई है। 'क्लीं' से प्रेरित श्रीशुकदेव परीक्षित को कथा श्रवणकरा रहे हैं, सृष्टिके विस्तारका वर्णन हो रहा है, कपिल देवहूतिको पंचभूतात्मक सांख्य तत्त्वका उपदेश कर रहे हैं, ध्रुव अल्पावस्थामें ही वन-गमन करते हैं, अजामिलका उद्धार होता है, भगवान् अनेकों प्रकारके अवतार धारण करते हैं, मोहिनी रुपसे अमृत वितरित करते हैं, प्रापंचिक लीलाको अदृश्य कर लेते हैं, फिर भी उद्धव, मार्कण्डेय उनका दर्शन करते हैं 'क्लीं' तो कृष्णके समान ही अनादि और अनन्त है। कलं-यह अस्फुट मधुर ध्वनि ईकार रूपी वामदृशा को स्नेहामंत्रण दे रही है कृष्णकी अप्रकट नित्यलीलामें आज भी। यही है लीला-चमत्कार अथच लीला-वैचित्र्य। यही है भागवतीय लीला प्रबन्धका केन्द्र-बिन्दु।

वेणुगीत :

वेणुमें भगवानके दो रूप उपलब्ध हैं—नामात्मक, रूपात्मक। वेणुके तीन अक्षर हैं=व+इ+अणु। 'व' का अर्थ है 'ब्रह्मसुख; 'ई' का अर्थ 'कामसुख', अणुका अर्थ है तुच्छ। इस प्रकार वेणु उसका नाम है जिसके आगे सांसारिक सुख एवं ब्रह्मसुख-आध्यात्मिक सुख भी तुच्छ हैं। इसमें सात छिद्र हैं। छः छिद्र भगवानके ऐश्वर्य, वीर्य, यश, ज्ञान, श्री, वैराग्यके द्योतक है। सप्तम छिद्र अप्राकृत प्रेमका ज्ञापक हैं। वेणुगीतके द्वारा भक्ति-मार्गकी स्थापना की गयी है।[1] यह गीत भागवतके बीस श्लोकोंमें वर्णित है। वेणु-गीत श्रीकृष्ण-लीलाका अंगी है। यह वेणुवादन बृन्दावनमें वत्सचारण लीलासे

१. भागवतके टीकाकार : डा० चतुर्वेदी पृष्ठ ३६८

प्रारम्भ हुआ था। श्रीकृष्ण वेणुको कटिभागमें सन्नद्ध रखते थे।[१] ब्रह्मा मोहन-लीलामें कृष्णको 'वेणु' भी बनना पड़ा था-'वेणुदलशिक्' ।[२] वेणुवादन-के साथ गायन भी प्रारम्भ हुआ ......तन्माधवो-वेणुमुदीरयन् वृतो........।[३] वेणुसर्वभूत मनोहर है।[४] कृष्णके वेणुगीतसे गोपियोंके कामका वशीभूत होने-का उल्लेख भी प्राप्त है—'वेणुगीतं स्मरोदयम्।'[५] सरिता, शैल, वन आदि वेणुरवसे प्राप्त रहते थे।[६] स्थावरोमें चेतनता तथा जंगमोंमें जड़त्व प्रकट होकर वेणुगीतसे सबमें विपपरीत धर्मोंका ही आचरण दीखता है।[७] श्रीकृष्ण वेणुवादन विनोद-परायण हैं।[८] वेणुगीतमें श्रीगोपांगनाओंकी आसक्तिका वर्णन है। 'वेणुरव' में 'रव' का 'र' अग्निबीज होनेसे उससे विप्रयोगात्मक उद्बुद्ध श्रृंगार रसका ग्रहण है और 'ब' अमृतबीज होनेसे उससे सम्प्रयोगात्मक उद्-बुद्ध श्रृंगाररस गृहीत होता है।

वस्तुतः वेणुगीतसे ही श्रीकृष्ण रसिक-शिरोमणि हैं, यही रसिक शिरोमणि गोपाल रासलीलामें रतिनागर हो गये हैं, वेणुवादनसे ही गोपियोंके प्रेमको स्थायित्व प्रदान किया है। वेणुगीतने इस प्रेममें रसात्मकता भर-भर दी है, संगीतने इस प्रेमको गुदगुदाया है। गोपियोंको वेणुगीत सुनने ही श्रीकृष्णकी मधुर-चेष्टा, प्रेमपूर्ण चितवन, भृकुटियोंके संकेत तथा स्मित मुस्कान आदि स्मरण हो जाते हैं। वेणुके गीत व्यापक हैं। सम्पूर्ण विश्वमें जितने प्रकारकी शब्द माधुरी है, वह समस्त वेणुगीतके एक स्वरमें ही निम-ज्जित हो जाती है।[९] गोपियोंने वेणुगीतकी महिमाका खुलकर बखान किया है।[१०] वेणुगीतमें नायकके अन्तरंग भावकी अभिव्यक्ति है।

---

१. बिभ्रद्वेणुं जठरपटयोः – भागवत १०।१३।११

२. वही १०।१३।१९ ३. वही १०।१५।२

४. वही 'इति वेणुरवं राजन् सर्वभूत मनोहरम्' १०।२१।६

५. वही १०।२१।३

६. भागवत १०।४७।४९ 'सरिच्छैलवनोद्देशा गावो वेणुरवा इमे——।'

७. बृहद्भागवतामृत १।७।१११–११२ सनातन कृपानुगा टीका

८. भक्तिसुधा : द्वितीय खण्ड पृष्ठ २३९

९. यावती निखिले लोके नादानामस्ति माधुरी।
तावती वंशिकानाद परमाणौ निमज्जति॥

१०. भागवत १०।२१।९,१०,२९,४० आदि।

युगलगीत :

वेणुगीत और युगलगीत सम्बद्ध है। युगलगीतमें वेणुगीतकी स्पष्ट झलक मिलती है। युगलगीत विप्रयोगात्मिका, भगवद्गुणात्मिका, पूर्णानन्दात्मिका आन्तर-लीला है। इससे भगवान् हृदयमें दर्शन-पथसे प्रविष्ट हो जाते हैं। इस दर्शन जन्य अनुरागकी परिपुष्टि तभी होती है, जब वह वाणी-द्वारा बाहर आकर पुनः श्रवणों-द्वारा अन्तरमें प्रविष्ट हो। भगवानका हृदयमें गमनागमन उन्हें नितान्त आत्मीय बना देता है और पुनः वे हृदयसे कहीं नहीं जा सकते। वह भक्तहृदयमें सम्यक् सुस्थित हो जाते हैं। वेणुनाद पुरस्सर यह गीत सर्वोत्तम और परमफलप्रद है। कीर्तन, जय, गुण, कथन और स्तोत्र आदिका अर्थ भावनासहित होना ही विशेष महत्व रखता है।

यह गीत कुल छब्बीस श्लोकोंमें है। चौबीस श्लोकोंमें गोपियोंका परस्पर वार्तालाप है जिससे वे श्रीकृष्णकी वंशीके प्रभाव[1] और श्रीकृष्णकी रूपमाधुरी[2] के प्रभावकी चर्चा करती हैं। श्रीकृष्णके गोचारणार्थ वन चले जानेपर उनका मन भी उनके साथ चला जाता और मनमें श्रीकृष्णका मनन और चिन्तन करती रहती, वाणीसे उनकी लीलाओंका गान करती रहतीं।[3]

अनेका चित्रकाव्य हैं युगलगीतमें।[4]

भ्रमरगीत :

संयोग-वर्णनके अतिरिक्त भागवतकारने गोपियोंका विरह-वर्णन भी किया है, जिसे 'भ्रमरगीत' कहा जाता है। यह भ्रमरगीत गोपियोंके वियोग कालका ही वर्णन नहीं है, अपितु श्रृंगार पक्षका वह विप्रलम्भ पक्ष है, जिसके बिना श्रृंगार रस अपूर्ण है और भक्तिरस विकलांग। भ्रमरगीतमें जहाँ गोपियोंके हृदयकी अवस्थाका चित्रण हुआ है, वहाँ ज्ञान और भक्तिका अद्भुत सामंजस्य है। गोपियोंके हृदयकी व्यथाका आधार गोपियोंका वह प्रेम है, जो भक्तिरसका स्थायीभाव है।

'उद्धव सन्देश' में श्रीकृष्ण कहते हैं 'वल्लव्यो मे मदात्मिकाः' अर्थात् वे गोपियाँ मेरी प्रियतमा एवं मदात्मिका है,[5] भ्रमरगीतमें श्रीकृष्णको भ्रमर-

---

१. भागवत १०।३५।२–३, २. वही १०।३५।२४–२५
३. भागवत १०।३५।१, ४. वही १०।३५।४–५, १२-१३ आदि
५. वही १०।४६।६,

के व्याजसे उपालम्भ देती हुई ये गोपियाँ जहाँ श्रीकृष्णको 'उत्तमश्लोक'[1] कहती हैं, वहाँ आर्यपुत्र कहकर भी सम्बोधित करती हैं।[2] भ्रमरगीतमें श्रीकृष्णके अवतार और लीलाओंका एक बार पुनः स्मरण किया है गोपियोंने। रामावतारमें बालि-वधको 'निर्दयता' समझ वे श्रीकृष्णको निर्दयी कहती हैं, शूर्पणखाका नासिका-कर्त्तन कृष्णकी स्त्रीवश्यता है, वामनावतारमें बलिको पातालमें डालनेका कारण 'कौवापन' है,[3] रासलीलामें 'न पारयेऽहं' आदि गीत गाकर उन गोपी रूपी हरिणियों को फंसा लेनेसे वे व्याघवत् है, [4]-फिर भी–फिर भी–ये गोपियाँ श्रीकृष्णके लीलामृतके एक-एक कणके रसास्वादकी बड़ी प्रशंसक हैं।[5] आत्म-विस्मृत होकर स्त्री-सुलभ लज्जाको भूलकर फूट-फूटकर रोती है।[6]

गोपियोंके भाव या मनोवृत्तिकी तदाकारता ऐसी थी कि श्रीकृष्ण तुल्य उद्धवको देखा, कृष्ण-उनमें कृष्ण होनेका भ्रम नहीं हुआ। भ्रमरके व्याज से कृष्णको 'मधुप' कहा है, मधुका पान करनेवाला मद्यप अब वह मधुपति (मद्योंका पति–मथुरा-पति) हो गया है। कितव है वह 'मधुप ! कितवबन्धो मास्पृशांघ्रि सपत्न्याः।'[7] 'काश्चन रामा, रमयतिरमणः - वह कितव किसी स्त्रीके साथ रमण कर रहा है, स्त्री सुलभ अति प्रिय उपालम्भ हैं यह। ज्ञानो-पदेष्टाऽद्धव प्रेमाभक्तिमें रंगकर मथुरा लौटे और प्रगाढ़ भक्तिका गान श्रीकृष्णके प्रति किया।

जब प्रेम अधिरुढ़ हो जाता है, तब उसमें एक दशा होती है 'मोहन'। मोहनमें उद्घूर्णा तथा चित्रजल्पका प्रकाश है। भ्रमरोन्मादिता, दिव्योन्मा-दिता गोपियोंमें चित्रजल्पकी दस अवस्थाएँ हैं–प्रजल्प,[8] परिजल्पित,[9]

---

१. भागवत १०।४७।१३ २. वही १०।४७।२१

३. भागवत १०।४७।१७, ४. वही १०।४७।१६,

५. यदनुचरितलीलाकर्णपीयूषविप्रुट् सकृदनविधूतद्वन्द्वधर्मा विनष्टाः।
सपदि गृहकुटुम्बं दीनमुत्सृज्य दीना बहव इह विहंगे भिक्षुचर्या चरन्ति ॥ वही १०।४७।१८

६. वही १०।४७।६-१०, ७. वही १०।४७।१२,

८. वही - अवज्ञामुद्राके द्वारा,

९. वही १०।४७।१३ भंगीपूवक,

विजल्प,[१] उज्ज्वल्प,[२] संजल्प,[३] अवजल्प,[४] अभिजल्पित,[५] आजल्प,[६] प्रतिजल्प,[७] सुजल्प।[८] यह भ्रममय वैचित्रीवृत्ति गोपी-प्रेमका गम्भीर रूप हैं। यह विश्व साहित्यका अद्वितीय उपालम्भ काव्य है। प्रेम अपनी चरम सीमा पर पहुंच गया है। इसमें प्रेम रूपासक्ति, तन्मयतासक्ति और परमविरहाशक्ति तीन रूपोंमें दृष्टिगोचर होता है। भ्रमरगीत सुदीर्घ विप्रलम्भ विरह की ज्वालामाला है।

गोपियों-द्वारा कृष्णके ज्ञान-सन्देशका न अनादर है, न विरोध है। इन्होंने तर्क-कुतर्क और वाद-विवाद भी नहीं किया है। ज्ञान-पक्षका न खण्डन है, न उपहास। भ्रमर-गीतमें प्रेमाभक्ति प्रश्रय है। भागवतकी सार्वत्रिक सामंजस्य नीतिके दर्शन होते हैं। मुकुन्दपदवी (भक्तिमार्ग) को श्रुति-विमृग्य बताया है। गोपी-प्रेम परम दुर्लभ पदार्थ है। उद्धवके मिलनसे गोपियोंका अनुराग अपनी चरमकक्षामें पहूँच गया। गोपी-प्रेमकी बाढ़में ज्ञानकी मंजूषा बह गयी। सनातन गोस्वामीके मतमें भ्रमरगीत उपनिषद्का सार है।

गोपिकागीत :

वास्वतमें विरह-भाव प्रेमकी परीक्षाका काल है। यह वह साधना है जिसमें प्रेमकी तपश्चर्या पूर्ण होती है। रासस्थलीमें ये विरहिणी गोपियाँ उस अन्यतमा गोपीसे मिलकर भगवानकी खोज करने लगी और सब मिलकर कृष्णके गुणोंका गान करने लगीं। यह 'गोपिकागीत' उनके विरहकी चरमावस्था है। इसमें गोपिकाओंके हृदयके वे उद्गार हैं, जिससे उनकी तन्मयता, ऐकान्तिकता और आत्मसमर्पण- के भाव फूटे पड़ते हैं। उनकी अन्तर्वेदना भी अश्रुओंके रूपमें प्रवाहित होने लगी है–

सुरतवर्धनं शोकनाशनं स्वरितवेणुना सुष्ठु चुम्बितम्।
इतररागविस्मारणं नृणां वितर वीर नस्तेऽधरामृतम्॥[९]

---

१. भागवत १०।४७।१४ मानमुद्रा,

२. वही १०।४७।१५, ३. वही १०।४७।१६ आक्षेपमुद्रा,

४. वही १०।४७।१७ ५. वही १०।४७।१८, ६. वही १०।४०।१९,

७. वही १०।४७।२० ८. वही १०।४७।२१

९. भागवत १०।३१।१४

अलंकारिकरसमय सिद्ध-क्रम इस गीतका साहित्यिक वैशिष्ट्य है। प्रत्येक श्लोकमें द्वितीयाक्षरकी आवृत्ति श्लोकके चारों चरणोंमें है। यथा 'य' काराक्षरकी आवृत्ति जयति, श्रयत, दयित तथा त्वयिमें है। इस प्रकार अन्य श्लोकोंमें भी यह क्रम है तथा प्रथमाक्षर एवं सप्तमाक्षरका साम्य चारों चरणों में है यथा जयतिके प्रथमाक्षर में ज, जन्मना व्रज द्वितीय चरणमें भी जकार है। कनक-मजरी छन्द है।

निर्वेदगीत :

पिंगला नामक वैश्याका निर्वेदगीत अति महत्वपूर्ण है।[1] धनीकी बाट जोहते-जोहते जब उसका चित्त व्याकुल हो गया, तब उसके चित्तमें वैराग्यकी भावना जाग्रत हुई और उसने एक गीत गायी, यही निर्वेद-गीतके नामसे प्रसिद्ध है–

आशा हि परमं दु.खं नैराश्यं परमं सुखं।
यथा संछिद्य कान्ताशां सुखं सुष्वाप पिंगला॥[2]

भागवतमें तेरह श्लोकोंमें यह गीत वर्णित है।[3]

गीतों और संवादोंका तारतम्य :

गीत समुदाय 'साध्य भाव पराकाष्ठा' और संवाद समुदाय 'साधन भावमें प्रवृत्ति' है। साध्य और साधन अंगी और अंग है। भगवान्‌के नाम-रूप-गुण-लीला आदिका गान प्रत्येक वह करता है जो श्रीकृष्णको जानता है अथवा जान जाता है। परमानन्द प्राप्तिका यह अभ्रान्त एवं अमोघ आश्वासन है। लीलाओंके स्मरण, अनुध्यान और भावनसे भक्त हृदयमें संगीतकी लोल-हिलोर उसी प्रकार उठती है जैसे मानसकी विमल जल-राशिपर चलता समीर उसमें अनन्त लहरियोंको उठाता जाता है। यह आत्मनिष्ठा और संगीतात्मकताकी सहज समन्विति है। तीव्र रागात्मक अनुभूति संगीतात्मक परिधान धारण कर 'संवाद' ही 'शुद्ध-गीत' बन गये। संगीतमें वस्तुके सृजन करनेकी ही नहीं, किन्तु लय करनेकी भी शक्ति है। गीतोंमें संवादोंका लय हो गया है।

---

१. भागवत 'निर्वेदः………… सुखावहः ११।८।२७
२. वही ११।८।४४
३. वही ११।८।३० से ४२

लीला-प्रबन्धमें श्रीकृष्ण :

सम्पूर्ण लीला भागवतमें श्रीकृष्णकी लीला है। भावगतके सभी प्रश्न और उत्तर अथवा जो कुछ भी है वह सब श्रीकृष्ण है, अथच उनकी लीला है। भागवतके मूलतत्व है 'श्रीकृष्ण'। भागवत आचार्योंके मतसे इस प्रसंगका वर्णन किया जाता है।

श्रीहितहरिवंशके अनुसार भागवतीय लीला-प्रबन्धमें श्रीकृष्ण तत्त्वकी सर्वथा स्वतन्त्र सत्ता है, यह तत्त्व सर्वथा मौलिक है। इसकी मौलिकता 'प्रेमी-रूप' में है जिसे अपने ऐश्वर्यका भान नहीं है।[1] अपने प्रेमीमयमें न उन्हें अपने सृष्टि-सृष्टा होनेका कुछ पता है, न सृष्टिके पालन आदिका ही ध्यान है, न उन्हें नारदादि भक्तों अथवा माता-पिता और सखाका स्मरण है और न ही अपनी भगवत्ताका आभास है।[2] तात्त्विक रूपमें ईश्वर होते हुये भी मुख्यता तथा एकान्त महत्ता प्राप्त है श्रीकृष्णके प्रेमी रूपको। इस रूपमें वह एकरस होकर नित्य विहारकी लीलामें लीन रहते हैं।[3]

निम्बार्क मतके आचार्य भागवतीय लीला-प्रबन्धके आधारपर श्रीकृष्ण-के रूपका प्रबन्ध इस प्रकार करते हैं कि ब्रह्म सगुण-साकार है, ब्रह्म 'हरि' या 'कृष्ण' नामसे अभिहित है।[4] कृष्ण व्यूहोंके अंगी हैं, परब्रह्म हैं, परम वरेण्य हैं, ध्येय हैं, रसनीय, भजनीय एवं यजनीय हैं।[5] शक्तिके अधिष्ठातृ हैं। जीवोंके मार्ग निर्देशनके लिये वे समय-समयपर अवतरित हुआ करते हैं। यद्यपि सर्वान्तिर्यामी श्रीकृष्ण लीला-प्रबन्धमें निर्गुण देखे जाते हैं, वहाँ तात्पर्य है कि वे सम्पूर्ण प्राकृत गुणोंसे अतीत हैं।

सखी सम्प्रदायमें पूर्ण रस-मूर्ति श्रीकृष्णका नित्यबिहारी रूप स्वतः सिद्ध सत्य है। प्रेमसागर नित्यबिहारी श्रीकृष्ण ऐश्वर्यमण्डित नहीं है। सृष्टि-लीला तो उनकी एक कलामात्रसे उत्पन्न हो जाती है। रसतत्व श्रीकृष्णकी लीला अचिन्त्यस्वरूपा, अतर्क्यप्रभावा है।[6]

---

१. हितहरिवंश : सम्प्रदाय और साहित्य पृष्ठ ८०

२. राधारससुधानिधि २३५

३. राधावल्लभ सम्प्रदाय : सिद्धान्त और साहित्य पृष्ठ २१७

४. दशश्लोकी ४,

५. दशश्लोकी ८

६. हिन्दी कृष्ण भक्तिकाव्यमें सखी सम्प्रदाय पृष्ठ २७४-७५

श्रीचैतन्य मतके आचार्योंका भागवत अध्ययन बहुत गम्भीर और सारगर्भित है। तदनुसार श्रीकृष्ण परब्रह्म हैं अथवा श्रीकृष्ण रूपमें परब्रह्मकी पूर्णाभिव्यक्ति है, वह ब्रह्मका परम मोहक और परमाह्लादक रूप है। इनमें शक्ति, शक्ति कार्यों, कल्याण-गुणों, सौन्दर्य, माधुर्य, भगवत्ता एवं ऐश्वर्यका पूर्णतम विकास है। ये स्वगत-सजातीय-विजातीय भेद-रहित और सच्चिदानन्दमय है। कृष्ण मूलावतारी हैं।[1] सशक्तिक अद्वयज्ञानतत्व, स्वयंसिद्ध आनन्दस्वरूप ब्रह्म श्रीकृष्ण रसतत्वसे अर्थात् आस्वाद्य-आस्वादक रुपसे नित्य विराजित हैं।[2] इनकी हितपरता अहैतुकी है। ये परिच्छिन्नता और अपरिच्छिन्नता दोनों विरुद्ध धर्मोंके युगपद् आश्रय हैं। माधुर्य उनकी भगवत्ताका सार है।

महाप्रभु वल्लभाचार्यके मतसे भागवतीय लीला-प्रबन्धमें श्रीकृष्णका प्रारम्भसे ही 'आश्रय' तत्त्वके रुपमें वर्णन किया है। इसीके निभ्रांत ज्ञानके लिये सर्गादि नौ विषयोंका विस्तृत वर्णन किया है। सम्पूर्ण चराचर जगतकी उत्पत्ति और प्रलय जिस तत्त्वसे प्रकाशित होते हैं वह परब्रह्म ही 'आश्रय' है।[3] अस्ति, भाति और प्रियरुपसे प्रतीत होनेवाले समस्त जगतका कारण होनेसे भगवान् सच्चिदानन्द हैं। सभी लीलाओंके अधिष्ठान होनेसे सर्वलीलात्मक है। अविच्छेद्य परम तत्व अनन्त अपने प्रेममें ही पागल अपने रूपपर आप ही सुधि भूल रहा है - इसीका नाम है भागवतीय कृष्ण।

---

१. श्रीकृष्णसन्दर्भ पृष्ठ ३५०, २. चैतन्य चरितामृत १।२।५३

३. भागवत ३।१०।७

लीला-प्रबन्धमें व्यूहका रूप[1]

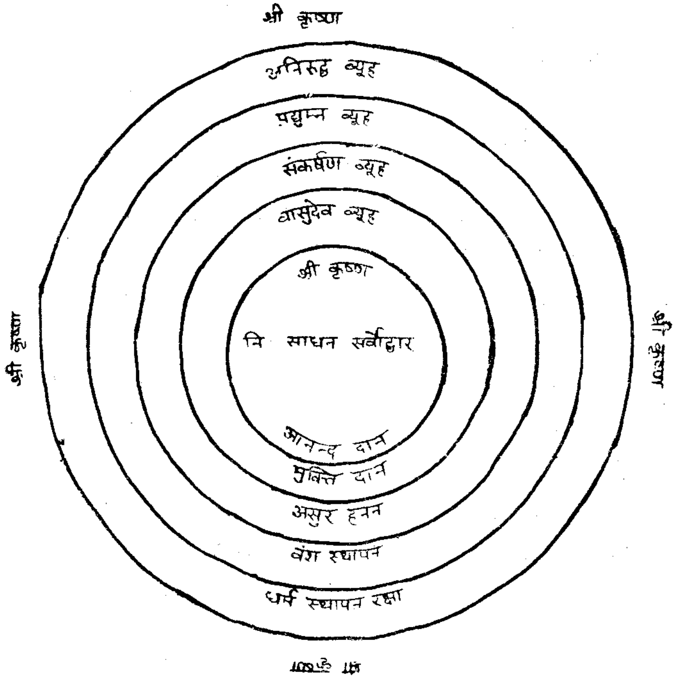

लीला-प्रबन्धमें श्रीकृष्ण और उनकी लीलाका रूप निम्न शीर्षकोंमें और भी स्पष्ट होगा—

वेद परकादि स्तुतियोंमें श्रीकृष्ण और उनके विभिन्न अवतारोंका स्मरण :

वेदादि स्तुतियोंसे सर्वाराध्य श्रीकृष्ण ही सबके आश्रय और प्रकाशक हैं। सभी स्तुतियोंमें जितने अवतारोंका वर्णन है, उन सबमें मूल अंशी अथवा सर्वावतारी श्रीकृष्ण हैं।

देवताओं द्वारा गर्भ-स्तुतिमें कहा गया है - प्रभो ! आपने जैसे अनेकों बार मत्स्य, हयग्रीव, कच्छप, नृसिंह, बराह, हंस, राम, परशुराम और वामन

**१. व्यूहका स्वरुप : परितो वारयन्ति परिवाराः 'व्यूहो परितस्तिष्ठ-त्यसौ व्यूहः।' नमो भगवते तस्मै वासुदेवाय धीमहि।
प्रद्युम्नायानिरुद्धाय नमः संकर्षणाय च॥ - कल्याण 'कृष्णांक' पृष्ठ ७५**

अवतार धारण करके हमलोगोंकी और तीनों लोकोंकी रक्षा की है - वैसे ही आप इस बार भी पृथ्वीका भार हरण कीजिये।[१]

श्रीब्रह्मा अपनी स्तुतिमें श्रीकृष्णसे कहते हैं - प्रभो ! आप सारे जगतके स्वामी और विधाता हैं। अजन्मा होनेपर भी आप देवता (वामन), ऋषि (परशुराम), मनुष्य (श्रीराम), तिर्यक (वाराह, कच्छप, नृसिंह), जलचर (मत्स्य) आदि योनियोंमें अवतार ग्रहण करते हैं।[२]

श्रीगर्गाचार्य श्रीव्रजराजको कहते हैं - तुम्हारे पुत्रके और भी बहुतसे नाम हैं तथा रूप भी अनेक हैं।[३] निदर्शन है कि श्रीकृष्ण ही सभी अवतारोंके कारण हैं।

'अशरीरी आपके शरीरमें अशक्य पराक्रमको देखकर आपके अवतारोंका पता चल जाता है - यह नलकूबर और मणिग्रीवने श्रीकृष्णसे कहा।[४] नग्नजित् श्रीकृष्णसे कहते हैं - 'आपने अपनी बनायी हुई मर्यादाका पालन करनेके लिये ही समय-समयपर अनेकों लीलावतार ग्रहण किये हैं।[५] श्रुतिस्तुतिमें श्रीकृष्णको हतारिगति-दायक कहकर परम भगवान् बताया है।[६] श्रीशुक अपनी स्तुतिमें कहते हैं 'ब्रह्मा, विष्णु, शिव-इन तीनों गुणावतारोंके आविर्भावमें सर्वावतारी श्रीकृष्णका कर्तृत्व है।[७] भीष्मजी कहते हैं श्रीकृष्ण सदा-सर्वदा अपने आनन्दमय स्वरूपमें स्थित रहते हुये ही कभी विहार करनेकी - लीला करनेकी इच्छासे प्रकृतिको स्वीकार कर लेते हैं, जिससे यह सृष्टि परम्परा चलती है।[८] इस स्तव-श्लोकमें श्रीकृष्णके पुरुषावतारका निदर्शन है। श्रीशुकने श्रीकृष्णको 'आदिपुरुष' कहा है। श्रीशुकदेवके ही शब्दोंमें—

भवभयमपहन्तुं ज्ञानविज्ञानसारं निगमकृदुपजह्रे भृंगवद् वेदसारम्।
अमृतमुदधितश्चापाययद् भृत्यवर्गान् पुरुषमृषभमाद्यं कृष्णसंज्ञं नतोऽस्मि ॥[९]

---

१. भागवत १०।२।४०, २. वही १०।१४।२०,
३. वही १०।८।१५, ४. वही १०।१०।३४
५. वही - यत्पादपंकजरजः शिरसा बिभर्ति श्रीरब्जजः सगिरिशः सहलोकपालैः। लीलातनूः स्वकृतसेतुपरीप्सयेशः काले दधत् स भगवान् मम केन तुष्येत् ॥ - १०।५८।३७
६. वही १०।८७।२३
७. भागवत ११।२६।७, १०।१४।१६ ८. वही १।६।२६
९. भागवत ११।२९।४९

श्रीकृष्ण परक ही सकल उपाख्यान :

'पुराणमाख्यानम्' के अनुसार भागवतमें विविध आख्यानों, भगवान-की लीलाओं, अवतारों तथा मन्वन्तरों एवं सूर्य चन्द्र वंशी राजाओंका वर्णन हुआ है ।[१]

यद्यपि श्रीमद्भागवत प्रकटमें बहु-कथा व्याप्त प्रतीत होती है, पर अपनी भावनासे विरुद्धकी शंका नहीं करनी चाहिये,[२] क्योंकि जैसे दायें-बायें चक्कर लगाती हुई गंगा समुद्रमें ही जाती है, ऐसे ही श्रीमद्भागवतकी कथा भी श्रीकृष्णगामिनी है इस प्रकार या प्रकारान्तरसे सम्पूर्ण भागवतका अभिप्राय श्रीकृष्ण-भक्ति करनेसे ही है–

स्वभावना विरोधस्तु नेह शक्यो मनागपि ।
यद्यप्येतद्बहुकथा संकुलं दृश्यते स्फुटम् ।।
सव्याप्त सव्यतो यान्तीत्यपि गंगाब्धिगायथा ।
श्रीमद्भागवती यापि कथैवं कृष्णगामिनी ।।[३]

श्रीशुक अपने अन्तिम उपदेशमें कहते है 'इस भागवत महापुराणमें बार-बार और सर्वत्र विश्वात्मा भगवान् श्रीहरिका ही संकीर्तन हुआ है ।[४] जो कुछ मैंने संक्षेपसे कहा है, वह सब उन्हींकी लीला-कथा है ।[५] सूतजीने कहा है कि प्राणियोंपर कृपा करके ही श्रीशुकने भगवतत्वको प्रकाशित करने-वाले इस महापुराणका विस्तार किया ।[६]

श्रीमद्भागवतके अनेक उपाख्यानोंमें श्रीकृष्ण ही परिनिष्ठित है यथा 'पुरंजनोपाख्यान'[७] एक मनोरंजक इतिहासका कथाके रूपमें वर्णित हुआ है,

---

१. 'अनन्तसन्देश' पत्रिका 'भागवतांक' नवम्बर १९७६, वर्ष ५, अंक ५-६ श्रीवेंकटेश देवस्थान, बम्बई

२. वेदे रामायणे चैव पुराणे भारते तथा ।
आदावन्ते च मध्ये च हरिः सर्वत्र गीयते ।। - हरिवंशपुराण

३. श्रेय 'भागवतांक' पृष्ठ १९७,

४. भागवत १२।५।१,

५. वही १२।४।३९ ६. वही १२।१२।६८

७. वही ४।२५ से २९,

देवर्षि नारदके मन्तव्यसे यह परोक्ष रूपसे अध्यात्मका वर्णन है।[1] श्रीहरि सम्पूर्ण देहधारियोंके आत्मा, नियामक और स्वतन्त्र-कारण हैं, अतः उनके चरणतल ही मनुष्योंके एकमात्र आश्रय है।[2]

भरत-रहुगण उपाख्यानमें 'भवाटवी' का वर्णन है।[3] इसके स्पष्टीकरणमें कहा गया है 'विशुद्ध परमार्थरुप अद्वितीय ज्ञान ही सत्य वस्तु है, उसीका नाम 'भगवान्' है और उसीको पण्डितजन 'वासुदेव' कहते है।[4]

सृष्टिके आदिसे ही सर्वाराध्य रूपमें कृष्णकी आराधना की गयी है। 'वेद्यवास्तव वस्तु' श्रीकृष्ण ही है। शौनकादि ऋषियोंके प्रश्न और सूतजीके उत्तर कृष्ण-विषयक ही हैं। प्रथम-स्कन्धमें ही अश्वत्थामाके ब्रह्मास्त्रसे भयभीत अर्जुनसे भगवान् श्रीकृष्णने प्रार्थना की।[5] कुन्ती उनको बार-बार प्रणाम करती है।[6] विराट् स्वरूपके आख्यानका वर्णन करते हुये श्रीकृष्णके ही निरन्तर स्मरणका विधान किया है।[7]

सती-उपाख्यानकी परकता भी श्रीकृष्णमयी है। श्रीशंकर कहते हैं श्रीकृष्ण ही प्रणम्य है, शुद्ध चित्तमें स्थित इन्द्रियातीत भगवान् वासुदेवको ही मैं नमस्कार कर लिया करता हूं।[8] ध्रुव-उपाख्यानमें ध्रुव जब नारदसे त्रिलोकीमें सर्वश्रेष्ठ अनधिष्ठित पदपर आरुढ़ होनेका उपाय पूछते हैं, तो नारदजी कहते हैं 'भगवान् वासुदेव ही वह उपाय है, तू उन्हींका भजन कर 'भगवान् वासुदेवस्तं भज तत्प्रणवमात्माना।'[9] पृथु-उपाख्यानमें तो यज्ञशालामें उपस्थित हुये भगवानको देखकर, उनकी लीला-गुणोंको सुननेके लिये दस हजार कान माँगने लगे - विधत्स्व कर्णायुतमेष मे वरः।[10] रुद्र-प्रचेता उपाख्यानमें महादेवजी कहते हैं 'जो भगवान् वासुदेवकी साक्षात्-शरण लेता है, वह मुझे परमप्रिय है भगवन्तं वासुदेवं प्रपन्नः स प्रिया हि मे।'[11] प्रियव्रत उपाख्यानमें गृहस्थाश्रम-अभिनिवेशी प्रियव्रतकी श्रीकृष्णमें अविचल भक्तिपर परीक्षितने शंका की है,

---

१. भागवत ४।२६।८४

२. वही ४।२६।५०, ३. वही ५।१३

४. वही ५।१२।११ ५. वही १।७।२१

६. वही १।८।२१, ७. वही २।१।५

८. वही 'सत्वे च तस्मिन् भगवान् वासुदेवो ह्यधोक्षजो मे नयसा विधीयते। ४।३।२३

९. वही ४।८।४०, १०. वही ४।२०।२६, ११. वही ४।२४।२८

तब कहा गया है– 'बाढ़मुक्तं भगवत उत्तमश्लौकस्य श्रीमच्चरणारविन्द-मकरन्दरस आवेशितचेतसो भागवतपरमहंसदयितकथां किंचिदन्तरायविहतां स्वां शिवतमां पदवीं न प्रायेण हिन्वन्ति ।'[1]

ऋषभ-उपाख्यानमें परम भागवत ऋषभ कहते हैं 'जब तक वासुदेवमें प्रीति नहीं होती, तब तक देह-बन्धन छूट नहीं सकता ।'[2] अजामिल उपाख्यानमें पापी अजामिलकी परम गतिका कारण है 'जिन्होंने अपने भगवद्-गुणानुरागी मन-मधुकरको भगवान् श्रीकृष्णके चरणारविन्द-मकरन्दका एक बार पान करा दिया, उन्होंने सारे प्रायश्चित कर लिये ।[3] वृत्रासुर उपाख्यान-में वृत्रासुरने भगवान्‌को प्रत्यक्ष अनुभव करते हुये प्रार्थना की–

अहं हरे तव पादैकमूलदासानुदासो भवितास्मि भूयः ।
मनः स्मरेतासुपतेगुणांस्ते गृणीत वाक् कर्म करोतु कायः ॥[4]

प्रह्लाद उपाख्यानमें नारद युधिष्ठिरसे कहते हैं–केवल एक ही गुण भगवान् श्रीकृष्णके चरणोंमें स्वाभाविक, जन्मजात प्रेम प्रह्लादकी महिमाको प्रकट करनेके लिये पर्याप्त है 'वासुदेवे भगवति यस्य नैसर्गिकी रतिः ।'[5] गजेन्द्र-मोक्ष उपाख्यानमें गजेन्द्रकी उक्ति है 'नारायण ! जगद्गुरो ! भगवन् ! आपको नमस्कार है 'नारायणाखिल गुरो भगवन् नमस्ते ।[6] अम्बरीष उपाख्यानमें श्रीशुकने बताया है कि अम्बरीषने अपने मनको श्रीकृष्णके चरणारविन्द युगलमें, वाणीको भगवद्गुणानुवर्णनमें, हाथोंको श्रीहरिमन्दिरके मार्जन-सेवनमें और अपने कानोंको भगवान् अच्युतकी मंगलमयी कथाके श्रवणमें लगा-रखा था ।[7] सूर्य-चन्द्र वंशके समस्त राजागण कृष्णका ही भजन करते हैं । निमि-नवयोगेन्द्र संवादात्मक उपाख्यानमें भी श्रीकृष्णकी परकता है–

इत्युच्युताङ्घ्रिं भजतोऽनुवृत्या भक्तिर्विरक्तिर्भगवत्प्रबोधः ।
भवन्ति वै भागवतस्य राजंस्ततः परां शान्तिमुपैति साक्षात् ॥[8]

इस प्रकार कृष्ण-चरित तथा उनकी भगवत्ता सारे स्कन्धोंमें पूर्णतया व्याप्त है और हम किसी भी पात्रका अध्ययन कृष्णके बिना नहीं कर सकते,

---

१. भागवत ५।१।५, २. वही ५।५।६
३. वही ६।१।१९, ६।२।१२, ६।३।२९
४. वही ६।११।२४, ५. वही ७।४।३६
६. वही ८।३।३२, ७. वही ९।४।१८,
८. वही ११।२।४३

क्योंकि सबके भावोंके आधार वे ही है। भगवान् वेदव्यासने यह वेदोंके समान भगवच्चरित्रसे परिपूर्ण भागवत नामका पुराण बनाया है 'इदं भागवतं नाम पुराणं ब्रह्मसम्मितम्।' उत्तमश्लोकचरितं चकार भगवानृषि:।'[1]

सनातन गोस्वामी श्रीकृष्ण लीलास्तवमें कहते हैं–

सर्वशास्त्राब्धि पीयूष सर्व वेदैक सत्फल,
सर्व सिद्धान्त रत्नाढ्यं सर्वलोकैक दृकप्रद।
सर्व भागवत-प्राण श्रीमद्भागवत प्रभो
कलि ध्वान्तोदितादित्य श्रीकृष्ण परिवर्तितः॥[2]

मधुसूदन सरस्वती अपनी भागवत व्याख्याका प्रारम्भसे ही इस प्रकार करते हैं - 'एवं च सर्वप्रियत्वेन परमानन्द रूप: सर्वज्ञ: सर्वशक्ति: सर्वमोहन: सर्वसुखप्रद: सर्वापराध-सहिष्णु: परम कारुणिको विदग्धतरश्च श्रीकृष्णो भक्ति-रसालम्बनत्वेन सम्पूर्ण ग्रन्थ प्रतिपाद्य इति ध्वनितम्।[3] श्रीसूतजीका अन्तिम वचन है मैं अब श्रीकृष्णको नमस्कार करके यह पुराण समाप्त करता हूं।'[4]

भागवतीय श्रीकृष्ण-लीलाका अन्य पुराणोंसे वैशिष्ट्य :

भागवत पुराण निर्माणसे पूर्व किसी भी पुराणमें श्रीकृष्ण-लीलाका सांगोपांग वर्णन नहीं हो सका, प्रमुख रूपसे श्रीकृष्ण-लीलाका वर्णन करना उन पुराणोंका प्रयोजन ही नहीं था। व्यास भी क्षुब्ध ही रहे, नारदजीकी सहमतिसे व्यासजीने श्रीकृष्ण-लीलामें 'बिखरे सूत्रों' को और उनकी सम्पूर्ण लीलाको भागवतमें सुचारु रूपसे सुव्यवस्थित पुष्ट और सम्गुंठन किया है। भागवतमें श्रीकृष्णके परब्रह्मत्वके साथ बाल, पौगण्ड, कैशोर, प्रौढ़ और अवतार लीलाओंका जो सांगोपांग क्रमिक, विस्तृत और मनोरम वर्णन श्रीमद्-भागवतमें है वह समस्त पुराणोंमें नहीं, विश्व साहित्यमें अद्वितीय है। भागवत श्रीकृष्ण-लीलाका आकार-ग्रन्थ है। श्रीकृष्ण-लीलामें गोपी-प्रेम, कृष्णका अलौकिक रूप-माधुर्य, वेणु-माधुर्य आदि तत्वोंका ऐसा अद्भुत चित्रण अन्यत्र अप्राप्य है–

राजन्ते तावदन्यानि पुराणनि सतां गणैः।
यावन्न दृश्यते साक्षाच्छीमद्भागवतं परम्॥[5]

---

१. तत्वदीपनिबन्धप्रकरण ३
२. श्रीकृष्ण लीला स्तव - ४१२-१३ (श्रीसनातन गोस्वामी)
३. मधुसूदन सरस्वती कृत भागवत १।१।१ की व्याख्या
४. भागवत १२।६।३५ ५. भागवत १२।१३।१४

भागवतीय लीलाओंके रस-सुधाका पान करके किसी और पुराण-शास्त्रमें व्यक्ति रम ही नहीं सकता। वस्तुतः जैसे नदियोंमें गंगा, देवताओंमें विष्णु और वैष्णवोंमें श्रीशंकरजी सर्वश्रेष्ठ हैं, वैसे ही पुराणोंमें श्रीमद्‌भागवत हैं। अथच जैसे सम्पूर्ण क्षेत्रोंमें काशी सर्वश्रेष्ठ है, वैसे ही पुराणोंमें भागवतका स्थान सर्वोच्च है।[1] पुराणतिलक श्रीमद्‌भागवतकी तुलनामें और कोई भी पुराण नहीं है।[2]

मत्स्य, मार्कण्डेय, भविष्य, भागवत, ब्रह्म, ब्रह्मवैवर्त, ब्रह्म, वायु, विष्णु, वामन, वाराह, अग्नि, नारद, पद्‌म, लिंग, गरुड़, कूर्म और स्कन्द इस प्रकार अष्टादश पुराण हैं और सभीमें भागवतकी परम श्रेष्ठता स्वीकार की गयी है--

अम्बरीष ! शुकप्रोक्तं नित्यं भागवतं श्रृणु।
पठस्व स्वमुखेनापि यदीच्छसिभवक्षयम्॥[3]

पुराण तीन प्रकारके हैं सात्विक, राजसिक, तामसिक। सात्विक् पुराण भी कभी ब्रह्मको सविशेष बताते हैं, कभी निर्विशेष। अतः निश्चित तत्त्वका प्रतिपादन करनेवाले पुराणकी अति आवश्यकता ज्ञात हुई, भागवत ऐसा ही पुराण है--

सर्ववेदेतिहासानां सारं सारं समुद्धृतम्।
स तु संश्रावयामास महाराजं परीक्षितम्॥[4]

भागवतमें सर्वशास्त्र प्रतिपाद्य भगवान् श्रीकृष्णके अवतार और अवतारी स्वरूपकी सुमधुर लीलाएँ हैं। मूल तत्त्व है श्रीकृष्ण--मूल=म+उ+उ+ल; म--ब्रह्मा, उ--विष्णु, उ--महेश यस्मिन् ल--लीयते--इति श्रीकृष्णः।[5] मूल तत्वकी लीलाओंका ही पद-पदपर प्रतिपादन करनेसे भागवत पुराण मुकुटमणि है। चैतन्य भागवतमें कहा गया है--भागवत नवनीतके समान है, जिसे शुकदेवने मथकर निकाला और परीक्षितने आस्वादन किया--

चारों वेद दधि भागवत नवनीत।
मथिलेन शुके, खाइलेन परीक्षित॥[6]

---

१. भागवत १२।१३।१५ से १७   २. वही १२।१३।१८,
३. तत्त्वं-सन्दर्भधृतपुराण वचन   ४. भागवत १।३।४२
५. संकलित : ऋषि श्रीलक्ष्मीनारायणके सौजन्यसे
६. चैतन्य-भागवत २।२१।१६,

अतिशय पूर्ण, पुराण सूर्य भागवतमें सत्यके सम्यक् रूपसे लीलाओंको प्रकाशित करनेकी जैसे शक्ति है, वैसी अन्य किसी पुराणमें नहीं है। इसमें वर्णित लीलाओंके द्वारा ज्ञानियोंकी जिज्ञासा पूर्ण होती है, सर्वसाधारणको पूर्णानन्दकी प्राप्ति होती है।[1] इस पुराणमें फलाभिसन्धान रूप कपटता वर्जित है। कृष्ण लीलाओंका पुनः पुनः कथन है, अभ्यास है और लीलाएँ अति मधुरिम है। इन लीलाओंमें 'प्रेम' ही परम पुरुषार्थ है। प्रेम-धर्मका विज्ञान है, लीला इस विज्ञानकी प्रयोगशाला है, जिसमें प्रेमका क्रमिक विकास होता है। प्रेम जीवका स्वाभाविक गुण है, कोई भी भक्त या तत्त्वविद् मोक्ष नहीं चाहते। जबकि अन्य पुराणोंमें मोक्ष ही पुरुषार्थ है। अन्य पुराणोंमें भगवच्चरणारविन्दाश्रित परमहंस भक्त कभी रमण नहीं करते।[2] भागवत पुराण अमल है।

संस्कृत साहित्यका नियम है कि 'लक्षणप्रमाणाभ्यां हि वस्तुसिद्धिः' अर्थात् लक्षण और प्रमाणोंसे ही किसी विषयकी सिद्धि होती है,[3] भगवान्के द्वारा उपदिष्ट होनेसे[4] और भगवानकी ही लीलाओंके वर्णनसे इस महा-पुराणका नाम 'भागवत' है। पुरातन सम्वादोंको ही वेदव्यासने भागवत-पुराणके रूपमें क्रमबद्ध किया है। इस भक्तिप्रधान पुराणकी लीलाओंमें रसकी मुख्यता है, ये श्रोता-पाठकोंके हृदयोंको सुस्वर छन्दोंके सुभोगसे आत्म विस्मृतिमें आनन्द-पयोनिधिमें निमग्न कर देती है, वे तन्मय हो जाते हैं। सर्गादि श्रीकृष्णकी दशों लीलाओंको अन्य पुराणोंकी तरह 'तत्त्व' के रूपमें नहीं, 'लीलाओं' के रूपमें सुरम्य वर्णन किया है, वह भी बहुत-बहुत सुन्दर रूपसे। साथ ही विशद रूपसे। लीला-सम्बन्धसे ही भागवत पुराण सम्राट है। भागवतमें तो 'पुराणविद्' शब्दका प्रयोग ही उन लोगोंके लिये किया है जो श्रीकृष्ण-लीलाका गान करते हैं। भागवतीय लीलाओंमें प्रभुता, मित्रता और सख्यता गुणका वैशिष्ट्य है, अन्य पुराणोंकी तुलनामें यह भी एक वैचित्रय है।[5] निष्कर्ष रूपमें—

---

१. भागवत १।५।४०,

२. वही १।५।१८ ३. पुराण दिग्दर्शन पृष्ठ १७६,

४. ब्रह्मणे भगवत्प्रोक्तम् - भागवत २।८।२८

५. वेदाः पुराणं काव्यं च प्रभुर्मित्रं प्रियेव च।
बोधयन्तीति ही प्राहुस्त्रिवृद्भागवतं पुनः ॥ —मुक्ताफल तथा हेमाद्रि-कारका वचन १।४।७

पाद्मब्रह्मगृहीत चामरयुगो वाराह संजीवितो।
ब्रह्माण्डेन धृतातपत्ररुचिर: स्कन्दादिभि: संस्तुत: ॥
श्रीमद्वैष्णवसेवितानुगमन: सर्वेप्सितार्थप्रद:।
श्रीमद्भागवताभिधो विजयते सम्राट पुराणप्रभु: ॥[१]

अर्थात् पुराण-सम्राट भागवतके समुपासक वैष्णव जन भोग और मोक्षकी भी उपेक्षा करके केवल भगवद्भक्तिकी ही कामना करते हैं। भागवतीय लीला प्रबन्ध योजनाका 'वैशिष्ट्य' ही भागवत पुराणका अन्य पुराणोंसे 'वैचित्र्य' है।

इतिहासकी कसौटीपर श्रीकृष्णके क्रम विकासकी दृष्टिसे भागवतीय दृष्टि :

इतिहास शुरू होता है 'वेदों' से। कहा जाता है कि वेदोंमें इतने देवताओंकी पूजाका विधान है कि 'कस्मै देवाय हविषा विधेम।' वेदों, उपनिषदों, पुराणों, महाभारतके पश्चात् निर्मित भागवतको वेदोंका, श्रुतियोंकाउपनिषदोंका सार-स्वरुप माना जाता है। भागवतके प्रतिपाद्य है परमदेव 'श्रीकृष्ण'। इस प्रकार ऐतिहासिक रूपमें श्रीकृष्ण ही आदिपुरुष हैं, प्रथमपुरुष हैं, सम्पूर्णपुरुष हैं। श्रुतिसाररूप भागवतके प्रतिपाद्य श्रीकृष्ण होनेसे वेद-वेदान्त आदिके प्रतिपाद्य भी श्रीकृष्ण ही ठहरते हैं। 'वेदज्ञ: ज्ञानचक्षु' श्रीगंगेश्वरानन्दने तो वेदोंमें श्रीमद्भागवतके प्रतिपाद्यके ही नहीं अपितु उसकी लीलाके भी मन्त्र प्रकटित किये हैं 'वेदोंमें। वस्तुत: वेदोंमें यत्र-तत्र सर्वत्र ही श्रीकृष्ण लीलाका वर्णन है। हाँ, यह वर्णन कहीं-कहीं 'मुख्या वृत्ति' का अवलम्बन करके किया गया है, तो कहीं-कहीं 'गौण-वृत्ति' का अवलम्बन करके जिन्हें क्रमश: अभिधा और लक्षणा कहा जाता है।[२] श्रीभक्तिविनोदठाकुर कहते हैं—

---

१. रासपंचाध्यायी : लक्ष्मणदत्त शास्त्री, – भूमिका : श्यामसुन्दर चतुर्वेदी द्वारा संकलित पृष्ठ ८ २. (क) ऋग्वेद–अपश्यं गोपामनिपद्यमानमा च परा च पथिभिश्चरन्तम् – १।२२।१६४-३१-श्रीकृष्ण लीलाकी नित्यताका प्रतिपादन (ख) यजुर्वेद माध्यन्दिनी शाखा-न्यूश्यसीत्यादौ विष्णो: परमं पदमवभाति भूरि–श्रीकृष्णके धामका नित्यत्व। (ग) ऋग्वेद - तां वां वास्तून्यश्मसि इत्यादि १।५४।६ श्रीकृष्णकी वास्तूलीला भूमि प्राप्तिके लिये कामना (घ) ऋक-१।२२।१७ मन्त्रमें वामनावतार, तैत्तिरीय आरण्यक १।१३।३१ तथा शतपथ ७।४।३।५ में कूर्मावतार, तैत्तिरीयक संहिता ७।१।५१, तैति० ब्राह्मण १।१।३।५, और शतपथ ब्राह्मण १४।१।२।११ में वाराहवतार, छान्दोग्योपनिषत् ३।१७, तैत्तिरीय आरण्यक१०।१-६एवं ऋग्वेद खिलसूक्तमें देवकीनन्दन वासुदेव-कृष्ण एवं राधाकी उक्ति है। श्रीकृष्ण महत्व प्रतिपादित मन्त्र है 'आ कृष्णेन रजसा वर्तमान: कृष्णेन रजसा द्यामृणोति सविता, कृष्ण रजांसि दधान–ऋग्वेद १।३।५१ में और भी यथा - कृष्णं तं एमरुशत: पुरोमाश्चरिष्णवर्चिर्वपुषामिदकम्। यद्प्रवीता दधतेह गर्भ सद्याश्चिज्जातोभवसी दुइत:।

अभिधावृत्तिका अवलम्बन कर 'श्यामाच्छवलं प्रपद्ये' इत्यादि मन्त्रोंमें तथा छान्दोग्योपनिषदके अन्तिम भागमें रसकी नित्यता तथा मुक्त जीवोंकी उनके अपने-अपने रसके अनुसार कृष्ण-सेवाका वर्णन किया। याज्ञवल्क्य-गार्गी और मैत्रेयीसंवादके प्रारम्भमें लक्षणावृत्ति द्वारा कृष्णलीलाका वर्णन है और अन्तमें मुख्य वृत्ति द्वारा अर्थात् अभिधावृत्ति द्वारा कृष्णकी श्रेष्ठता स्थापित की गयी है। वस्तुतः श्रीकृष्णका वर्णन करना ही वेदोंकी प्रतिज्ञा है,[1] वेदोंकी परोक्ष-वादिता प्रसिद्ध है। इसी बातको गोपियोंने इस प्रकार कहा है—

स वा अयं सख्यनुगीतसत्कथो वेदेषु गुह्येषु च गुह्यवादिभिः।
य एक ईशो जगदात्मलीलया सृजत्यवत्याति न तत्र सज्जते ॥[2]

भागवत गीताके सिद्धान्तोंका दृष्टान्त है, वहाँ अर्जुन कहते हैं—

परं ब्रह्म परं धाम पवित्रं परमं भवान्।
पुरुषं शाश्वतंदिव्यमादिदेवमजं विभुम् ॥[3]

स्वयं श्रीकृष्ण कहते हैं—

पिताहमस्य जगतो माता धाता पितामहः।[4]
मत्तः परतरं नान्यत्किंचिदस्ति धनंजय।[5]

श्रीमद्भागवतकी कथा महाभारतके प्रसंगसे प्रारम्भ होती है। महा-भारतमें नर-नारायण प्रसंगपर प्रकाश डाला गया है। वहाँ श्रीकृष्ण अर्जुनसे कहते हैं, तुम दुर्धष नर हो, मैं नारायण हरि हूं।[6] भागवतमें कृष्णका व्याप-क रूपसे पूर्ण विकास है। महाभारत, गीता और भागवतके कृष्णके रूपमें उत्तरोत्तर विकास है। भागवतके सूक्ष्म दृष्टिसे अध्ययन करनेपर कहा जा

---

१. जैवधर्म, द्वितीय खण्ड, १३ वां अध्याय पृष्ठ २७१

२. भागवत १।१०।२४, ३. गीता १०।१२ ४. वही ६।१७

५. (क) वही ७।७,
(ख) तमालश्यामलत्विषि श्रीयशोदास्तनन्धयो।
कृष्णनाम्नो रुढ़िरिति सर्वशास्त्रविनिर्णयः ॥ -
- नामकौमुदीकार

६. नरस्त्वमपि दुर्धर्षो हरिर्नारायणो ह्यहम्।
काले लोकमिमं प्राप्तौ नरनारायणावृषौ ॥
- महाभारत, उद्योगपर्व ९६,४६

सकता है कि श्रीकृष्णके जीवनकी घटनाओं एवं व्याहृतियोंके द्वारा प्रकटित उनके व्यक्तित्वको एक ऐतिहासिक महापुरुषके व्यक्तित्वके रूपमें ही नहीं देखा जा सकता। भागवतमें इसके अतिरिक्त उनके दिव्य जन्म और कर्मके तात्त्विक अवबोधको भगवत्-प्राप्ति और अपुनर्भवको हेतु कहा गया है।

श्रीमद्भागवतमें सब पुराणों, महाभारत, गीता तथा कृष्णसम्बन्धी अन्य सभी ग्रन्थोंमें दिये हुये भावोंका समन्वय है। श्रीमद्भागवतके कृष्ण पाण्डवोंके सखा हैं, जो कुरुक्षेत्र महायुद्धके नियामक थे और जिनका वीर-रूप महाभारतमें यत्र-तत्र बिखरा हुआ है। वे गीताके उपदेष्टा श्रीकृष्ण हैं, जो साधुओंके परित्राण, पापियोंके विनाश और धर्मकी स्थापनाके लिये प्रत्येक युगमें अपनेको प्रकट करते हैं तथा जो गीतामें भक्ति, ज्ञान और कर्मका सामंजस्य स्थापित कर निष्काम कर्मयोगीके रूपमें उपस्थित हुये हैं। मथुरा और द्वारकाके महावीर-महायोद्धा राज-राजेश्वर श्रीकृष्ण हैं तथा गोकुल, व्रज और वृन्दावनमें विहार करनेवाले नन्दनन्दन रसिक-शिरोमणि वे गोपाल श्रीकृष्ण भी हैं।[1] यह है भागवतीय दृष्टि; जिसमें अपने पूर्णतम विकासमें श्रीकृष्णमें ऐश्वर्य विस्मृत माधुर्यकी[2] भीनी-भीनी सुरभि सुरभित है।

द्वादश स्कन्ध और श्रीकृष्ण-लीला :

भगवान् श्रीकृष्णके द्वादशांग स्वरूप श्रीमद्भागवतके द्वादश स्कन्धोंमें ही श्रीकृष्ण 'स्वयं' की लीलाका स्मरण किया गया है। श्रीकृष्णकी लीलाके स्मरणसे ही द्वादश स्कन्धोंमें उनकी लीलासे सम्बन्धित अनेकों प्रसंग आये हैं। द्वादश स्कन्धोंमें श्रीकृष्ण-लीलाके स्थल इस प्रकार है संक्षेपतः प्रधानरूपसे—

प्रथम स्कन्ध :

श्रीनारदजी कहते हैं उस सत्संगमें उन लीलागान परायण महात्माओंके

---

१. सन्त्ववतारा बहवः पंकजनाभस्य सर्वतोभद्राः।
कृष्णादन्य को वा लतास्वपि प्रेमदो भवति ॥

— लघुभागवतामृत

२. महैश्वर्य द्योतने वाद्योतने च नरलीलत्वानतिक्रमे माधुर्यम्।
ऐश्वर्यन्तु नरलीलत्वस्थानपेक्षितत्वे सति ईश्वरत्वाविष्कारः॥

— रागवर्त्म चन्द्रिका, श्रीविश्वनाथ चक्रवर्ती कृत २।३-४

अनुग्रहसे मैं प्रतिदिन श्रीकृष्णकी मनोहर कथाएँ सुना करता।[१] परीक्षित भगवान् श्रीकृष्णके चरण-कमलोंकी सेवाको ही सर्वोपरि मानकर आमरण अनशनव्रत लेकर गंगा तटपर बैठ गये।[२] श्रीकृष्णका द्वारका गमन, कुन्ती और भीष्म द्वारा स्तुति और द्वारकामें श्रीकृष्णका राजोचित स्वागत आदि श्रीकृष्ण-लीलाके स्थल हैं।

द्वितीय स्कन्ध :

शौनकजी कहते हैं 'जिनके कानमें भगवान् श्रीकृष्णकी लीला-कथा कभी नहीं पड़ी, वह नर, पशु, कुत्ते, ग्रामसूकर, ऊंट और गधेसे भी गया बीता है।[३] श्रीकृष्णके विराट्स्वरूपका वर्णन, लीलावतारोंकी कथा द्वितीय स्कन्धके महत्वपूर्ण स्थल हैं।

तृतीय स्कन्ध :

विदुरजीके प्रश्नपर उद्धवजी श्रीकृष्णके चरणारविन्द-मकरन्दसुधासे सराबोर होकर दो घड़ी तक कुछ भी नहीं बोल सके। तीव्र भक्तियोगसे उसमें डूबकर वे आनन्दमग्न हो गये।[४] इस प्रकार उद्धव-द्वारा भगवान्की बाललीलाओंका वर्णन एवं अन्य लीला चरित्रोंका वर्णन इस स्कन्धमें किया है।

चतुर्थ स्कन्ध :

विदुरजी कहते हैं पृथु रूपसे सर्वेश्वर भगवान् श्रीकृष्णने ही अवतार ग्रहण किया था, अत: पुण्यकीर्ति श्रीहरिके उस पृथु-अवतारसे सम्बन्ध रखनेवाले जो और भी पवित्र चरित्र हैं, वे सभी आप मुझसे कहिये। मैं आपका और श्रीकृष्णचन्द्रका बड़ा अनुरक्त भक्त हूं।[५] इस प्रकार श्रीकृष्णकी लीला अभिव्यक्त हुई, विस्तृत हुई।

पंचम स्कन्ध :

श्रीशुकदेवका कथन है 'राजन्। भगवान् श्रीकृष्ण स्वयं पाण्डवलोगोंके और यदुवंशियोंके रक्षक, गुरु, इष्टदेव, सुहृद और कुलपति थे, यहाँ तक कि वे कभी-कभी आज्ञाकारी सेवक भी बन जाते थे। इसी प्रकार भगवान् दूसरे भक्तोंके भी अनेकों कार्य कर सकते हैं और उन्हें मुक्ति भी दे देते हैं, परन्तु

---

१. भागवत १।५।२६, २. वही १।१९।५
३. वही २।३।१५ से २४, ४. वही ३।२।४
५. वही ४।१७।६-७,

मुक्तिसे भी बढ़कर जो भक्तियोग है, उसे सहजमें नहीं देते।[१] यह भी है उनकी लीला।

षष्ठ स्कन्ध :

विश्वरुप द्वारा देवराज इन्द्रको प्रदत्त उपदेश 'नारायण कवच' सम्पूर्ण श्रीकृष्णपरक है 'मां केशवो गदया प्रातख्याद् गोविन्द आसंगवमात्तवेणुः।'[२] षष्ठ स्कन्धमें प्रधान रूपसे श्रीकृष्णकी नाम-लीलाका प्रभाव-वर्णन है।

सप्तम स्कन्ध :

नारदका युधिष्ठिरके प्रति कथन है 'बड़े-बड़े महापुरुष निरन्तर जिनको ढूँढ़ते रहते हैं, जो मायाके लेशसे रहित परम शान्त परमानन्दानुभवस्वरूप परब्रह्म परमात्मा है, वे ही तुम्हारे प्रिय, हितैषी, ममेरे भाई, पूज्य, आज्ञाकारी, गुरु और स्वयं आत्मा श्रीकृष्ण हैं।[३] युधिष्ठिर ! यही एकमात्र आराध्य देव है। प्राचीन कालमें बहुत बड़े मायासुरने जब रुद्रदेवकी कमनीय कीर्तिमें कलंक लगाना चाहा था, तब इन्हीं भगवान् श्रीकृष्णने फिरसे उनके यशकी रक्षा और विस्तार किया था। इसके बाद श्रीकृष्णकी यश-लीलाका विस्तार है।[४]

अष्टम स्कन्ध :

भगवान् अजितके द्वारा कालनेमिके निहत होनेपर भी उसका मोक्ष नहीं हुआ और इसने कंसके रूपमें द्वापरान्तमें जन्म लिया।[५] श्रीकृष्णके-द्वारा बध किये जानेपर कंसने मुक्ति-लाभ किया। इस प्रकार इस स्कन्धमें श्रीकृष्णके मोक्षदान और हतारिगतिदायक-गुण-लीलाका वर्णन है।

नवम स्कन्ध :

इसमें श्रीकृष्णके जन्म प्राकट्यसे परमधाम गमन तककी लीलाओंका संक्षेपतः वर्णन किया गया है श्रीशुकदेवके द्वारा ही।[६]

---

१. भागवत ५।६।१८

२. वही ६।८।२०, ३. वही ७।१०।४८ से ५१

४. एवं विधान्यस्य हरेः स्वमायया विडम्बमानस्य नृलोकमात्मनः।
वीर्याणि गीतान्यृषि मिर्जगद्गुरोर्लोकान् पुनानान्यपरं वदामि किम्॥
— वही ७।१०।७१

५. वही ८।१०।५६, ६. वही ९।२४।५५ से ६७

दशम स्कन्ध :

सम्पूर्ण स्कन्धमें श्रीकृष्णके वय: क्रमसे लीलाओंका विकास निबृत्त हुआ है।

एकादश स्कन्ध :

इसमें श्रीकृष्णकी उपदेश लीलाओंका वर्णन है–

एवमेतान् मयाऽऽदिष्टाननुतिष्ठन्ति मे पथः।
क्षेमं विन्दन्ति मत्स्थानं यद् ब्रह्म परमं विदुः ॥[1]

द्वादश स्कन्ध :

मायावी लीला करते हुये मार्कण्डेयजीको श्रीकृष्णने मायाका दर्शन कराया है। प्रलयके पश्चात् मार्कण्डेयने श्रीकृष्णके शिशुरूपको देखा–

चार्वङ्गुलिभ्यां पाणिभ्यामुन्नीय चरणाम्बुजम्।
मुखे निधाय विप्रेन्द्रो धायन्तं वीक्ष्य विस्मितः ॥[2]

साथ ही श्रीमद्भागवतकी विषय-सूची प्रस्तुत करते हुये श्रीकृष्णकी सम्पूर्ण लीलाओंका एक बार पुनः स्मरण किया है।

इस प्रकार भागवतके सभी स्कन्धोंमें श्रीकृष्णकी ही लीला है, कुछ प्रत्यक्ष रूपसे कुछ परोक्ष रूपसे। परब्रह्म श्रीकृष्ण अपने आधिभौतिक रूपमें जगत्, आध्यात्मिक रूपमें अक्षर-ब्रह्म और आधिदैविक रूपमें साक्षात् श्रीकृष्ण रूप हैं। गंगाके तीन रूप जलरूप, माहात्म्य रूप तथा साक्षात् देवी-रूपके समान।

दशम स्कन्ध : एक चिन्तन

श्रीमद्भागवतका फल दशम-स्कन्ध है। दशम-स्कन्धमें शुकदेवजी मानो पुरवहारमें खिल गये हैं।[3] इस स्कन्धमें आश्रयतत्व श्रीकृष्ण अपनी लीलाओंसे निखर-निखर गये हैं। नवम् स्कन्ध तककी लीलाएँ ज्ञान दृष्टिसे थी। और नैसर्गिक रूपसे पूर्णानन्द वाली बात स्पष्ट नहीं हो पा रही थी। परीक्षित कह बैठे शुकदेवसे–'हाँ, परब्रह्म श्रीकृष्ण ही है और वह समस्त प्राणियोंके जीवनदाता और सर्वात्मा हैं। आप तो उन लीलाओंको विस्तारसे

---

१. भागवत ११।२०।३७ २. वही १२।९।२५
३. भागवत विचार दोहन–अखण्डानन्दजी पृष्ठ १०–११

सुनाइये जो उन्होंने यदुवंशमें अवतीर्ण होकर की थी।'[1] दशम-स्कन्ध भगवानका उदय है और इसमें सर्व-प्रमुख निरोध-लीलाका वर्णन किया है। निरोधके पर्यायके रूपमें शयन, अनुशयन, लय, प्रलय, संस्था,[2] निर्गुण-भावकरण, स्वकीयों अथवा आत्मीयोंमें स्वविषयक भावका उत्पादन, व्यसन-सम्प्राप्ति, आसक्ति आदि शब्द प्रयुक्त होते हैं। निरोध-सर्गादि दस लीलाओंमें एक लीला विशेष है। यह लीला अन्य सभी प्रकारकी लीलाओंकी साधिका है। यथार्थमें तो यह अंगी-लीला है। निरोध शब्दका फलितार्थ है—'कृष्णका अनेक शक्तियोंके साथ प्रपंचमें क्रीड़ा करना।' निरोधका यौगिक अर्थ है भक्तोंकी प्रपंच विस्मृति पूर्वक लीला द्वारा भगवदासक्ति होना। निरोध अपने परम अर्थके रूपमें तो यह ध्वनित करता है कि जैसे भक्तका निरोध भगवानमें होता है वैसे ही भगवानका निरोध भक्तमें होता है। भगवान् भक्तके बिना एक क्षण भी नहीं रह सकते। पुष्टिमार्गीय भक्तोंके लिये निरोध लीला नित्य-लीलाके लिये उपाय भूत नवदेहका लाभ करवानेवाली प्रपंच लयकी 'सम्पादिका-स्थिति' नामकी अन्यतम लीला है। श्रीचैतन्य सम्प्रदाय मतानुयायी दशम स्कन्धको आश्रय स्कन्ध मानते हैं। इनके अनुसार भी गोपवेश श्रीकृष्ण पूर्णतम ईश्वर हैं। और इन्हींका वर्णन दशम-स्कन्धमें परानन्द रूपमें विस्तृति रूपसे है। भगवच्चर्चामें चित्त लगनेपर अपने आप समाधि लग जाती है, यह बात दशम स्कन्धके परम चिन्तनका सार है। चित्त वृत्तियोंका निरोध कर देते हैं श्रीकृष्ण अपनी लीलाओंकी हालाकी मादकतासे। और इसलिये इसे आसक्ति स्कन्ध भी कहते हैं। नवम स्कन्ध तक वर्णित लीलाओंके लिये श्रीकृष्ण कहते हैं—'मेरी सृष्टि आदि लीलाओंका चिन्तन करनेसे प्राप्त हुई भक्तिके द्वारा लौकिक एवं पारलौकिक सुखोंमें वैराग्य हो जानेपर मनुष्य सावधानतापूर्वक भक्ति प्रधान सरल उपायोंसे समाहित होकर मनोनिग्रहके लिये यत्न करेगा।[3]

निरोध तीन प्रकारका है—कारण, व्यापार और फल। कारण रूप निरोध भगवत्क्रीड़ाएँ हैं। यह भगवत्लीला प्रथम निरोध है। प्रपंच-विस्मृति पूर्वक भगवानमें दृढ़ आसक्ति होना व्यापार निरोध, यह मध्यम निरोध है। प्रपंच विलय अथच आनन्द स्वरूप प्राप्ति अथच भगवत् प्राप्ति फल-निरोध है; तृतीय निरोध है यह।[4] भगवत्क्रीड़ामें सर्वप्रमुख है रासलीला जिसमें श्रीकृष्णकी चतुःमाधुरीकी स्पष्ट रूपसे झलक है।

---

१. भागवत १०।१।३, २. वही १२।७।१७ ३. वही ३२५।२।६

४. श्रीमद्वल्लभाचार्य : व्यक्तित्व, सिद्धान्त और सन्देश, पृष्ठ ४

लीला प्रबन्धका उद्देश्य

आश्रय तत्वका निरूपण करना ही भागवतीय लीला-प्रबन्धका प्रधान उद्देश्य है। यह आश्रय-तत्व, अद्वितीय परमतत्व, स्वाभाविक अचिन्त्य शक्ति-सम्पन्न 'स्वयं भगवान' मत्स्यादि अवतार समूहके कारण हैं, इनके विभिन्नांश तत्वोंसे ही जीव और प्रधान प्रकृतिसे वह जगत् उत्पन्न हुआ है।[१] सर्गादि दसों लीलाओंमें इन तत्वोंका ही वर्णन है। पराकाष्ठा है भगवान् श्रीकृष्णातीत कुछ भी नहीं है। लीलाओंमें भी उत्तरोत्तर कार्य-कारण-भाव सम्बन्ध है। भागवतीय योजनाका चरम प्रयोजन है, प्रेम रसका विस्तार करना। भागवतमें प्रेम ही परम धर्म है। श्रीकृष्णके अवतारका मुख्य उद्देश्य भी 'प्रेमकी विस्तृति' है 'प्रेमरस विस्तारण रूपं तदवतार मुख्य प्रयोजनम्।'

प्रबन्ध योजनामें पूर्वापर विचार

पूर्वापर विचारका तात्पर्य है जिस शास्त्रमें दो वाक्योंका परस्पर विरोध हो, वहांपर उसके अन्यता वाक्यका अप्रामाव्य स्वीकार नहीं किया जा सकता। अतएव ऐसे स्थानमें जिस प्रकार दोनों वाक्योंका विरोध छूट जाय, ऐसे अर्थकी ही कल्पना करनो चाहिये।

भागवत शास्त्रके प्रथम स्कन्धका तीसरा अध्याय भगवानके सभी अवतारोंका सूचक होनेके कारण जन्मगुह्याध्याय नामसे प्रसिद्ध है। उन वाक्योंमें एक वाक्य है 'एते चांशकलाः पुंसः कृष्णस्तु भगवान् स्वयं।' यह वाक्य भागवत ग्रन्थका तात्पर्य निर्णायक भी है। इसे 'प्रतिज्ञा वाक्य' (जिस वाक्यसे साध्यनिर्देश किया जाता है, उसे प्रतिज्ञा वाक्य कहते हैं) भी कहा जाता है और इसीमें श्रीभागवतका मुख्यतम अभिप्राय है। यह वाक्य 'परिभाषा सूत्र' है।[२] श्रीकृष्ण-सन्दर्भमें परिभाषाका तात्पर्य है 'अनियमे नियम कारिणी' अर्थात् जो वाक्य अनियमित रूपसे कहे वाक्यों को किसी नियमसे श्रृंखलाबद्ध करते हैं, उसे परिभाषा कहते हैं। शास्त्रमें एक बार ही परिभाषाका वर्णन होता है, बार-बार नहीं। एक उक्तिसे ही करोड़ों वाक्य

---

१. एकमेव तत् परमतत्वं स्वाभाविकाचिन्त्या-शक्त्या सर्वदेव स्वरूप-तद्रूप-वैभव जीव-प्रधान रूपेण चतुर्धावतिष्ठते। —भगवत्सन्दर्भ १६

२. सूत्र लक्षणम् - स्वल्पाक्षरमसन्दिग्धं सारवद् विश्वतो मुखम्।
अस्तोभमनवद्यंच सूत्रं सूत्रविदो विदुः॥ दुर्गादास धृत कृष्णसन्दर्भ

शासित होते हैं। प्राचीन विद्वानोंका कथन है कि दीपक जिस प्रकार घरके एक कोनेमें स्थित रहकर भी सम्पूर्ण घरको प्रकाशित कर देता है, ठीक उसी प्रकार परिभाषा शास्त्रके एक कोनेमें स्थित रहकर भी सम्पूर्ण शास्त्रको प्रकाशित करती रहती है।[1] चक्रवर्ती राजा और उसके अनुचरवत्, परिभाषा-वाक्य ही राजा एवं अन्यवाक्य भृत्य स्थानीय है।

अन्य वाक्य जिनसे स्वयं भगवानके अंशत्वका बोध होता है, वे है 'तत्रांशेनावतीर्णस्य विष्णोर्वीर्याणि शंस नः।'[2] इससे स्वयं-भगवान्‌का ही प्रतिपादन होता है क्योंकि अन्वयार्थ है 'अंशसे' अर्थात् 'श्रीबलरामके साथ अवतीर्ण श्रीकृष्ण।' यहाँपर सह-अर्थमें तृतीया विभक्ति हुई है। दूसरा वाक्य है 'वभौ भूः पक्वसस्याढ्या कलाभ्यां नितरां हरेः।'[3] यथाश्रुत अर्थ है 'हरिके अंश श्रीराम-कृष्ण द्वारा पृथ्वी निरतिशय शोभायमान हो रही थी। भागवत-सम्मत अर्थ है 'हरिकी कला अर्थात् विभूतिरूपा पृथ्वी (आभ्यां—रामकृष्णाभ्यां) श्रीराम-कृष्ण द्वारा निरतिशय शोभायमान हो रही थी। अपिच - 'दिष्ट्याम्ब ते कुक्षिगतः परः पुमानंशेन साक्षाद् भगवान् भवाय नः'[4] यह उक्ति देवगणों द्वारा देवकीके प्रति है, इसका अर्थ किया जाता है 'साक्षात् भगवान् परमपुरुष हमारी श्रीवृद्धिके लिये अंश द्वारा आपके गर्भमें प्रकट हो रहे हैं जबकि अर्थकी वास्तविकता है कि जो मत्स्यादि अंशावतार रुपमें पूर्वमें हमारे मंगलके लिये आविर्भूत हुये थे, हे मातः अब वह साक्षात् स्वयं ही आपके कुक्षिगत हुये है। और भी 'जगन्मंगलमच्युतांश'[5] अर्थात् श्रीवासुदेव कर्तृक देवकीमें जन्ममंगल अच्युतका अंश समाविष्ट हुआ था। यहाँ श्रीकृष्ण अच्युत अंश, यह यथाश्रुत अर्थ है। वास्तवतार्थ है (सप्तम्यन्त अन्य पदार्थ बहुब्रीहि समाससे) अच्युत अंश समूह जिसमें, वह अच्युतांश अर्थात् श्रीकृष्ण जब अवतीर्ण हुये थे तो उनमें अंश समूहने प्रवेश किया, वही सर्वांशपूर्ण श्रीकृष्ण देवकीके गर्भसे प्रकट हुये थे। 'अच्युतांश' शब्दका यह अर्थ सुसंगत है, क्योंकि स्वयं-भगवान् जब अवतरित होते हैं, तब निखिल अंशावतार, गुणावतार आदि उनमें प्रविष्ट हो जाते हैं। श्रीकृष्णके परिपूर्ण स्वरूपको प्रकाशित करनेके लिये ही इस श्लोकके शेषार्द्धमें कहा है - 'दधार सर्वात्मकमात्मभूतं' अर्थात् देवकीने अपने हृदयमें स्वयं प्रादुर्भूत-सर्वाश्रय-सर्वमूल-स्वरूप भगवानको धारण किया।[6] अन्य वाक्य है—

---

१. श्रीकृष्ण-सन्दर्भ २६ अनुच्छेद

२. भागवत १०।१।२, ३. वही १०।२०।४८

४. भागवत १०।२।४१, ५. वही १०।२।१८ ६. वही १०।४३।२३

एतौ भगवतः साक्षाद्धरे नारायणस्य च ।
अवतीर्णाविहांशेन वसुदेवस्य वेश्मनि ॥[1]

रंगमंचपर बैठे हुये जनोंकी यह उक्ति सातिशय बोध सम्पन्न नहीं है। वाक्याधिष्ठात्री श्रीसरस्वती प्रतिपादित अर्थसे (सहार्थे तृतीया) - संर्वांशेन सह) श्रीवसुदेवके घरमें अवतरित हुए हैं, इस प्रकार अर्थ गोचर होता है। इसी प्रकार 'अथाहमंशभागेन देवक्याः पुत्रतां शुभे'[2] आदि वाक्य उस-उस प्रकरणमें स्थित होनेके कारण दुर्बल है। 'कृष्णस्तु भगवान् स्वयं' यह वाक्य श्रुतिरूप होनेके कारण प्रबल है। इस विषयमें 'श्रुतिलिंगवाक्य प्रकरणस्थानसमाख्यानां समवाये परदौर्बल्यमर्थविप्रकर्षात्' - यह न्याय ही प्रमाण है। अर्थात् जहाँपर 'श्रुति' एवं 'लिंग' आदि का संघर्ष उपस्थित हो जाय वहाँपर पूर्वपठित श्रुति आदिकी अपेक्षा परपठित लिंग आदि क्रमशः दुर्बल कहे जाते हैं।[3]

'कलया सितकृष्ण केशः'[4] का तात्पर्य है ब्रह्मा, विष्णु, शिवके नियन्ता श्रीकृष्ण सित-कृष्ण शब्दसे कहे जाते हैं। सित-कृष्ण शब्दसे बलराम और श्रीकृष्णके वर्णकी सूचना है। श्रीधरस्वामी अपनी टीकामें केशका अर्थ 'शोभा' निरूपित करते हैं।[5]

श्रीमद्भागवतमें श्रीकृष्णको भूमापुरुषके अंश रूपमें भी पाया जाता है। श्रीमहाकालपुरुषका वाक्य है—

द्विजात्मजा मे युवयोर्दिदृक्षुणा मयोपनीता भुवि धर्मगुप्तये
कलावतीर्णाववनेर्भरासुरान् हत्वेह भूयस्त्वरयेतमन्ति मे ॥[6]

यहाँपर कलावतीर्णका अर्थ है कलामें अवतीर्ण - सप्तमी - तत्पुरुष-समास। कलाका अर्थ है मायिक प्रपंच। अर्थ हुआ मायिक प्रपंचमें अवतीर्ण। मायिक प्रपंच भगवदंश है, उनकी एक पाद विभूति है। कलावतीर्णका एक अर्थ और है कलासे युक्त अवतीर्ण हुए।

अतःपर परमात्मा तो सच्चिदानन्दमय, व्यापक, अपरिच्छिन्न स्वरूप वाला कहा गया है और भाग-विभागकी कल्पना तो परिच्छिन्न वस्तुमें ही

---

१. भागवत १०।२।८ २. वही १०।२।६,
३. कल्याण वर्ष ५५, अंक २ फरवरी १६८१, पृष्ठ ४५५
४. भागवत ५. वही २।७।२६ श्रीधरी टीका
६. वही १०।८६।५६

सम्भव फिर इसहै, अंशांशीभाव और अनभव्यक्तिके तारतम्भका कारण है 'शक्तिर्व्यक्तिस्तथा व्यक्तिस्तारतम्भयस्य कारणम् ।' अन्य अवतारोंमें समस्त शक्तिका प्रकाश नहीं हो पाया है और श्रीकृष्णमें सभी शक्तियाँ प्रकट हो गयी है ।[1] स्वयं परिपूर्णतम तो भगवान् श्रीकृष्ण ही है, दूसरा नहीं है; क्योंकि श्रीकृष्णने एक कार्यके लिये अवतार लेकर अन्यान्य करोड़ों कार्योंका सम्पादन किया है । अत: चिन्मय परमेश्वरमें अंशाशीभावका भेद-विरुद्ध नहीं है ।

एक शंका है भागवतमें मंगलाचरणमें श्रीकृष्णं धीमहि' क्यों नहीं कहा गया । तत्रोक्त 'सत्यं परं धीमहि' का तात्पर्य श्रीकृष्णमें ही है ।[2] परब्रह्मके स्थलपर 'परं' पदकी योजना है ।

गर्गाचार्य द्वारा उक्त 'नारायण समो गुणैः' प्रसंगमें भी श्रीकृष्णके उत्कृष्टत्वमें ही तात्पर्य है । ब्रह्म-स्तुतिमें श्रीकृष्णको अनन्यसिद्ध नारायण कहा है 'नारायणस्त्वं न हि सर्वदेहिनाम् ।'[3] प्रबन्ध-नायक किसी भी स्थलमें भ्रम-स्थानीय नहीं है । अपने अवतार स्वरूपमें भी श्रीकृष्ण सर्वावतारी है । जीव-गोस्वामी ने श्रीमद्भागवतको पौर्वापर्य्यके अविरोधके साथ विचारणीय बताया है 'तदेवं परमनिः श्रेयस निश्चयाय श्रीभागवतमेव पौर्वापय्र्यांविरोधेन विचार्यते ।'[4]

अन्य प्रसंग है जैसे 'बलीसे छल ।' बलीने भगवानकी भूरि-भूरि प्रशंसा की है 'आप छिपे रूपसे अवश्य ही हम असुरोंको श्रेष्ठ शिक्षा दिया करते है ।'[5] स्वयं भगवान् कहते है 'मैंने मनमें छल रखकर धर्मका उपदेश किया है ।'[6] माखन-चोरी प्रसंग में कहा गया है 'हृत् चौर्यके व्याजसे परमानन्द प्राप्त कराया गया है गोपियोंको श्रीकृष्णके द्वारा ।'[7] परस्पर जुड़े हुये तारोंमें किसी एकपर स्वरलहरी उदय होते ही अन्य तार भी झंकृत हो उठते हैं । इसी प्रकार वात्सल्य प्रेमवती गोप-सुन्दरियोंके हृदयतन्तुपर नवनीत-हरण लीलाएँ

---

१. गर्ग संहिता, २. वही १०।२।२६, ३. वही १०।१४।१४

४. तत्वसन्दर्भ २७,

५. भागवत ८।२२।५ 'त्वं नूनयसुराणां नः पारोक्ष्यः परमोगुरुः ।

६. भागवत 'छलैरुक्तो मया धर्मो – ८।२२।३०

७. वही १०।८।२७

झंकृत हो उठीं ।[1] तस्काराणांपतये नमो नमः ।'[2] चीरहरण प्रसंगमें–'अप्सु वै वरुणः ।'[3]

पौराणिक स्वरूपके मूल-शब्द ही ऐसे है कि जिनका साद्यन्त पर्यालोचन करनेपर कोई वास्तविक जिज्ञासा उत्पन्न ही नहीं होती । इसलिये उक्त कथाके मुख्य श्रोता परीक्षितने इस विषयमें कुछ भी पूछनेकी आवश्यकता नहीं समझी । जरासन्ध युद्धमें रणछोड़ श्रीकृष्णके पलायन प्रसंगपर किसी प्रकारको शंका उनकी भगवत्ताके विषयमें नहीं है । लीलाधारी श्रीकृष्णने पलायन द्वारा द्रव, केलि एवं परिहास इन तीनों शब्दोंकी एकार्थकताका ही विस्तार किया है । 'द्रवकेलिपरिहासनायेकार्थतामित्यमपि प्रथयति स्म ।'[4]

एक प्रसंगपर विप्रतिपत्ति और है, वह है 'श्रीबलरामका गोपियोंके साथ विहार ।' नैतिकताका विकट प्रश्न है । कृष्ण-प्रेयसीवृन्दके लिये ही गोपी शब्द रूढ़ है । भागवतमें वर्णित है 'बलरामने रात्रिमें गोपियोंके साथ विहार किया ।'[5] यहाँपर बलरामकी प्रेयसियोंके लिये गोपी शब्द प्रयुक्त है । क्योंकि श्रीकृष्णकी गोपियाँ तो पूछ रही हैं 'क्या पुरस्त्रीजनवल्लभ श्रीकृष्ण सकुशल हैं ।'[6] कहती हैं हमारा उनके प्रति स्नेह अविच्छेद्य रूपमें वर्तमान है । और कहते-कहते ऐसी प्रेम-विभोर हो गयी कि वे श्रीकृष्णकी प्रेमभरी बातें और प्रेमालिगनका स्मरण करके रोने लगी ।'[7] श्रीबलरामने 'श्रीकृष्णके हृदयंगम सन्देश वाक्यों' से उन ब्रजगोपियोंको सान्त्वना दी । 'नानानुनय कोविद' में श्रीबलरामजीकी भगवत्तामें गौणता है ।[8] श्रीबलरामकी स्वयं-भगवत्तामें गोपियोंके साथ बलरामके विहारमें प्रमाण नहीं है । इस प्रकार बलरामने अपनी प्रेयसियोंके साथ ही विहार किया । श्रीकृष्ण प्रेयसी वृन्दके साथ कदापि नहीं ।

---

१. श्रीकृष्ण लीलाका चिन्तनः हनुमानप्रसाद पोद्दार, गीताप्रेस गोरखपुर सं० २०२८, पृष्ठ १५६

२. यजुर्वेद १३।२१

३. तैतिरीय १।६।५।६

४. उत्तरगोपाल चम्पू १४।६६

५. रामः क्षपासु भगवान् गोपीनां रतिमावहन् ।' भागवत १०।६५।१७

६. क्वचिदास्ते सुखं कृष्णः पुरस्त्रीजनवल्लभः वही १०।६५।६

७. भागवत १०।६५।१६, ८. वही १०।६५।१७,

भागवतकी स्वात्मविरोधिनी उक्तियोंके लिये कहा गया है 'इस प्रकार की बात पूर्वापर विचार न करनेवाले कोई-कोई ऋषि कहते हैं। अवश्य ही वे इस बातको भूल जाते हैं कि श्रीकृष्णके सम्बन्धमें ऐसा कहना उन्हीं वचनोंके विपरीत है। श्रीकृष्णमें विपरीत भावोंकी सम्भावना ही नहीं पूर्णतम होनेसे।[1]

प्रबन्धमें भाषा संगति :

वेदों-पुराणोंके कथानकको प्राचीन ऋषियोंने भाषा-तत्वके आधारपर तीन भागोंमें विभक्त करके[2] प्रबन्धके सुगठित सौष्ठवके सम्बन्धमें किसी विप्रतिपत्तिको निराश्रय कर दिया है। भागवत सन्दर्भमें भी ऐसा ही है यथा–

समाधि भाषा :

समाधिगम्य विषयोंको बिना रूपक आदिकी सहायताके स्पष्ट रूपमें वर्णन किया जाता है जैसे जीव, ईश्वर, प्रकृति इत्यादिके स्वरूपका वर्णन। जो बातें जाग्रत स्वप्न और सुषुप्ति तीनों अवस्थाओंमें भी प्रत्यक्ष न हो सकती हो और इन्द्रिय मन आदि भी जिन रहस्योंके अनुभव करनेमें समर्थन हों ऐसे समाधिगम्य अवाङ्मनसागोचर एवं लोकोत्तर तत्त्वोंको जहाँ नेति-नेति शब्दों द्वारा व्यक्त करनेका प्रयत्न किया गया हो, वह समाधि-भाषा कहलाती है।[3] यथा–

भगवानेक आसेदमग्र···· ···· ···· ···· ···· ।
···· ···· ···· ···· प्रोचुः प्रांजलयो विभुम् ॥[4]

उपर्युक्त उदाहरणसे निःसन्देह इस रहस्यको समाधि दशामें ही अनुभूत किया जा सकता है। जब हजार प्रयत्न करने पर भी कोई चतुर चितेरा इस दशाका चित्र नहीं खींच सकता, तब शाब्दिक चित्र-चित्रणकी दुरुहता तो स्पष्ट ही है। अतएव ऋषियोंने ऐसे सन्दर्भोंको समाधि भाषा विभागमें परिगणित किया है। भागवतका अधिकांश वर्णन समाधि भाषामें है।

---

१. भागवत १०।७७।३०

२. समाधि भाषा प्रथमा लौकिकीति तथा परा।
तृतीया परकीयेति शास्त्रभाषा त्रिधा स्मृता॥ भारद्वाज संहिता

३. पुराण दिग्दर्शन पृष्ठ १६१, ४. भागवत ३।५।२३-३७

लौकिकी भाषा :

समाधिगम्य विषयोंको ही जब रूपक अथवा लौकिक विषयोंके समान वर्णन किया जाता है, उसे लौकिकी भाषा कहते हैं। जैसे ब्रह्माका अपनी कन्यापर मुग्ध होना। अतः इस सन्दर्भोंमें धार्मिक गूढ़-रहस्यको प्रकट करनेके लिये लौकिक पद्धतिका अनुसरण जाता है, ऐसे तात्पर्य प्रधान आलंकारिक वर्णन लौकिक भाषामें ही निषद्ध होते हैं यथा-पुरंजनोपाख्यान।[1] कहा गया है जीव ही पुरंजन है, ईश्वर उसका अज्ञात मित्र है। अन्य भी यथा—

> **सुपर्णावेतौ सदृशौ सखायौ .... ।**
> **............................ यः स तु नित्यमुक्तः ॥[2]**

उपर्युक्त उदाहरणमें लौकिक-व्यवहार शैलीसे जीव-ब्रह्म सम्बन्धी रहस्य प्रकट किया गया है। इसी प्रकार भागवतमें अनेकों गहन तत्त्व लौकिकी भाषा द्वारा प्रकट किये गये हैं।

परकीया भाषा :

यह वह भाषा है, जिसके द्वारा धर्म संस्थापनके लिये किसी भी लोक-कल्प अथवा व्यक्तिकी यथार्थ कथा कही गयी हो। जो सन्दर्भ प्रत्यक्षमें अटपटे प्रतीत होते हों और जो बातें न कभी देखीं, न सुनीं - ऐसी लोकोत्तर एवं असम्भव सी जँचनेवाली भाषा द्वारा जहाँ गूढ़तम वैज्ञानिक सिद्धान्तका निरूपण हो, वह परकीया भाषा है।[3]

समाधि भाषामें तो अर्थ गाम्भीर्यके कारण लोकोत्तरता लक्षित होती है, परन्तु परकीया भाषामें अर्थसंगति ठीक बैठ जानेपर भी असम्भवताभासके कारण तादृश पदार्थकी विद्यमानतामें सन्देहाभास खड़ा हो जाता है, यही उक्त दोनों भाषाओंका पार्थक्य है। इसी प्रकार लौकिकी और परकीया या दोनों भाषाओंमें रूपकालंकारका समान समावेश होते हुये भी लौकिकी भाषामें तो लोक प्रसिद्ध घटनाओंका चित्रण होता है, परन्तु परकीया भाषामें सर्वथा-लोकोत्तर घटनाओंका उल्लेख पाया जाता है। परकीया भाषा भागवतमें यथा—

> **तत्र गोमिथुनं राजा हन्यमानमनाथवत् ।**
> **दण्डहस्तं च वृषालं ददृशे नृपलांछनम् ॥[4]**

---

१. भागवत ४।२७।२८, २. वही ११।११।६-७

३. पुराण दिग्दर्शन पृष्ठ २६१

४. भागवत १।१७।१

यहाँ असम्भवाभासोपलक्षित रूपक होनेके कारण परकीया भाषा है। इस प्रकार भाषा संगतिसे प्रबन्ध सौष्ठव सुव्यवस्थित है।

कला-पक्षसे तो भागवतकी समास-प्रधान सक्षिप्त कथन शैली और आलंकारिका अद्भुत है। इसमें काव्य, भाषा और शैलीमें सरलता और स्पष्टताके स्थानपर आलंकारिक प्रयोगों, प्रतीक-विधान और व्यंजनाके गूढ़ साधनोंको अधिक महत्व है। श्रीमद्भागवतमें केवल पद्य रचना ही नहीं है, अनेक स्कन्धोंके अत्यन्त प्रौढ़ ललित और प्रवाहपूर्ण गद्य भागवतकी भाषाको एक नया रुप प्रदान करते हैं।[1] गद्य काव्यकी समस्त पदावली और अनुप्रासका सौन्दर्य दृष्टव्य है। भागवतकी भाषा अन्य सभी पुराणोंमें प्रौढ़, दुरुह, संक्षिप्त और अलंकारिक काव्यमयी ललित गतिसे पूर्ण ललित भाषा है।[2] जहाँ भागवतकी स्तुतियाँ हैं, वहाँ भाषा विचित्र रुपसे परिवर्तित हो जाती है, ऐसे स्थल अनेक हैं। ये स्तुतियाँ इतिवृत्तात्मक मरुभूमिमें एक मनोहारी-शादूल भूमिखण्डका कार्य करती है।[3]

भागवत प्रबन्ध योजनामें भागवतकारने ईश्वरको निर्गुण, निरपेक्ष, अकर्त्ता, अचक्षु, अपाणिपाद, अकाम कहते हुये भी उस अप्रकटको प्रकट कर दिया है। लीलाओंकी ऐसी सुन्दर योजनासे प्रत्येक स्कन्धके प्रत्येक अध्यायमें ही ऐसा आभास होता है कि नहीं, उसमें निर्गुणत्व है ही नहीं।

भागवतकारका उद्देश्य रहा है प्रत्येक जीवको परम श्रीकृष्णकी रास-लीलाका अनुभव हो। आनन्द हो 'भागवतम् रसमालयम्' ही भागवतकी प्रबन्ध योजनाका सुनिश्चित, असंदिग्ध स्वरुप है।

---

१. भागवत ५।१।२२ २. वही १।६।४० ३. वही १।८।४३

षष्ठ स्तवक

भक्ति-प्रीति-आसक्ति

भागवतकारने कृष्ण-भक्तिके माहात्म्यसे प्रेरित होकर ही इस ग्रन्थका प्रणयन किया था। भागवतमें वर्णित सभी पात्र किसी न किसी रूप अथवा प्रकारके भक्त ही हैं। कथाका सम्पूर्ण प्रबन्ध भक्तिके बिन्दुपर केन्द्रस्थ है। सम्पूर्ण कथा-वर्णन भक्तिको ही प्रतिपादित करता सा प्रतीत होता है। भगवान् और भक्त ही जिसके प्रतिपाद्य हैं, उस ग्रन्थमें दोनोंके मध्यकी कड़ी 'भक्ति' का तो वर्णन होगा ही। भक्ति–प्रीति और आसक्ति रूप ही है अथवा तीनों एकार्थक ही हैं तत्त्वतः। भक्ति तथा अन्तःकरणकी एकरुपता प्रीति है–'सा त्वस्मिन् परम प्रेमरुपा।'[1] आसक्ति प्रीतिका गहनतम और विशालतम रूप है। 'आसक्ति' और 'श्याम' एक रूप है और इसीमें भागवतका लक्ष्य है।[2]

श्रीकृष्ण-लीलाकी परम परिणति : भक्ति सिद्धान्तकी पीठिका :

भागवतका लीलात्मक दर्शन आनन्द और रसमूलक है। भगवान् श्रीकृष्णकी ह्लादिनी शक्तिसे ही लीलाका विलास होता है। भक्तिको विशद एवं सर्वोत्तम रसरूपमें प्रतिष्ठित करनेवाली श्रीकृष्णकी लीलाएँ ही हैं। जब सूतजी भागवतकी कथाका शुभारम्भ करने लगे, तभी उन्होंने स्पष्ट कर दिया कि मनुष्योंके लिये सर्वश्रेष्ठ कर्तव्य है - 'भगवत्लीलाओंका श्रवण'।[3]

परीक्षित श्रीशुकसे कहते हैं अपने भक्तोंकी समस्त अभिलाषाएँ पूर्ण करनेवाले भगवान् श्रीकृष्णकी लीलाएँ मुझे विस्तारसे सुनाइये - मेरी बहुत श्रद्धा है।[4] तब श्रीशुकने कहा - 'भगवानके लीला-रसके रसिक राजर्षे! तुम्हारा निश्चय अति सुन्दर और आदरणीय है, क्योंकि सबके हृदयाराध्य

---

१. नारदभक्तिसूत्र २

२. He stays day & night within our eyes painted black by collirium O Friend, it is due to this that the body of our dearest is dark in colour : Gopi's love for Sri Krishna : Hanuman Pd. Poddar P. 25.

३. भागवत १।२।८, ४. वही १०।२।१३

श्रीकृष्णकी लीला-कथा श्रवणमें तुम्हें सहज एवं सुदृढ़ प्रीति प्राप्त हो गयी है।[१] श्रीकृष्णकी जितनी भी लीलाएँ हैं वे सब प्रायः अलौकिक हैं और आध्यात्मिक अर्थमें है। प्रत्येक लीलाकी फलश्रुतिमें भक्ति-प्राप्ति ही स्थापित की गयी है। परीक्षितकी उक्ति है, भगवानकी लीला श्रवणसे भगवानके चरणोंमें भक्ति और उनके भक्तजनोंसे प्रेम भी प्राप्त हो जाता है।[२]

भक्ति-सिद्धान्तकी परिपुष्टिके लिये अनेकों लीलाओंका और कथाओंका वाचन हुआ है। कपिल-द्वारा जब माताको सांख्यका उपदेश दिया गया, तब उस वृत्तान्तके अन्तमें यही कहा गया 'कपिलदेवका मत अध्यात्मका गूढ़ रहस्य है, इसके श्रवणसे शीघ्र ही श्रीहरिके चरणारविन्दोंको प्राप्त कर लिया जाता है।[३] भक्तिकी पुष्टिके लिये वास्तव वस्तुके ज्ञानकी जिज्ञासा शान्त करनेके लिये भगवानके स्थूल रूपका वर्णन भी पंचम स्कन्धमें किया गया। श्रीशुक कहते हैं—परीक्षित ! मैंने तुमसे पृथ्वी, उसके अन्तर्गत द्वीप, वर्ष, नदी, पर्वत, आकाश, समुद्र, पाताल, दिशा, नरक, ज्योतिर्गण और लोकोंकी स्थितिका वर्णन किया। यही भगवानका अति अद्भुत स्थूल रूप है।[४] यह रागात्मिका भक्तिका पूर्व-पक्ष साधनरूप है।

इसी प्रकार श्रीसूतजीके मुखसे कृष्ण-कथा श्रवण रूप कृपा प्राप्त करते ही शौनकादि ऋषियोंमें भक्ति सिद्धान्तकी मूल-भित्ति श्रद्धाका उदय हो उठा और कहने लगे 'और सुनाइये, हम बड़ी श्रद्धाके साथ सुनना चाहते हैं।'[५] भागवतके उपक्रममें ही कहा गया है कि जब तक कोई सकामकर्म, अर्थ, काम और मोक्षको कूड़े-करकटकी भाँति फेंक नहीं देता, तब तक वह श्रीमद्भागवतको हृदयंगम नहीं कर सकता। भागवत केवल भगवद्भक्तिको विषय करती है। शुद्धभक्तिमें स्थित होनेपर ही लीलाओंके यथार्थ रूपका आस्वादन हो सकता है। श्रीकृष्ण सर्वाकर्षक हैं, परन्तु भक्ति श्रीकृष्णाकर्षिणी है। भागवतमें श्रीकृष्णने स्वयं इस सत्यको स्वीकार किया है।[६] अतः श्रीकृष्ण लीलाओंकी परम परिणति 'भक्ति' में ही परिणत है। भक्ति-सिद्धान्तकी पीठिकाके तीन स्तर हैं—१. श्रवण, २. कीर्तन और ३. स्मरण।[७]

---

१. भागवत १०।१।१५, २. वही १०।२।२, ३. वही ३।३३।३७
४. वही ५।२६।४०, ५. वही १।१२।३
६. भागवत - न साधयति मां योगो न सांख्यं धर्म उद्धव।
न स्वाध्यायस्तपस्त्यागो यथा भक्तिर्ममोर्जिता॥ ११।१४।२०
७. भागवत २।२।३६, २।१।५

भक्तिका स्वरूप और भेद :

स्वरूप :

अन्य कामनाओंसे रहित, ज्ञान-कर्मादिसे अनावृत्त, तथा अनुकूल-भावसे श्रीकृष्णका जो अनुशीलन है, वह 'भक्ति' है अथवा भक्तिका स्वरूप है।[१] जिस प्रकार गंगाका प्रवाह अखण्डरूपसे समुद्रकी ओर बहता रहता है, उसी प्रकार भगवानके गुणोंके श्रवणमात्रसे मनकी गतिका तैलधारावत् अविच्छिन्न रूपसे सर्वान्तर्यामीके प्रति हो जाना तथा निष्काम और अनन्य प्रेम होना ही भक्तिका स्वरूप है। ऐसे निष्काम भक्त, भगवानकी सेवाको छोड़कर सालोक्य, सार्ष्टि,सामीप्य,सारूप्य और सायुज्य मोक्ष तक नहीं चाहते।[२] अहैतुकी और अव्यवहिता भक्ति क्लेशोंके नाश करनेवाली तथा कल्याणोंको प्रदान करने वाली है, मुक्तिको तुच्छ बना देनेवाली एवं अतिशय कठिनतासे प्राप्त होनेवाली है, वह सान्द्रानन्द विशेषात्मा है अर्थात् असमोर्ध्व आनन्दसे परिपूर्ण है और श्रीकृष्णको अपनी ओर आकृष्ट करनेवाली है—

क्लेशघ्नी शुभदा मोक्षलघुताकृत सुदुर्लभा ।
सान्द्रानन्द विशेषात्मा श्रीकृष्णाकर्षिणी च सा ॥[३]

---

१. भक्ति-रसामृत-सिन्धु : श्रीमद्रुपगोस्वामी—
अन्याभिलाषिताशून्यं ज्ञानकर्माद्यनावृतम् ।
आनुकूल्येन कृष्णानुशीलनं भक्तिरुत्तमा ॥
सर्वोपाधिविनिर्मुक्तं तत्परत्वेन निर्मलम् ।
हृषीकेन हृषीकेशसेवनं भक्ति रुच्यते ॥ - पूर्वविभाग, सामान्य भक्ति लहरी १।११-१२

२. भागवत ३।२९।११-१४

३. (क) भक्तिरसामृतसिन्धु १।१७
(ख) तुलनीय - त्वत्कथामृतपाथोधौ विहरन्तो महामुदः ।
कुर्वन्ति कृतिनः केचिच्चतुर्वर्गं तृणोपमम् ॥
भागवत १०।८८।११
(ग) भक्तिरेव परमः पुरुषार्थो मोक्षस्यापुरुषार्थत्वादिति तु भागवताः ।
- श्लोककी श्रीधरकृत भावार्थदीपिका टीका
भक्तिमीमांसा - पराभक्तिसूत्र ७७

जैसे एक व्यक्तिका प्रेम किसी दूसरे व्यक्तिके प्रेमसे नहीं मिल सकता, वैसे ही एक व्यक्तिकी भक्ति भी दूसरेकी भक्तिसे नहीं मिल सकती। भक्ति स्वयं अनुभवकी वस्तु है और अपने सर्वोत्कृष्ट रूपमें जीवनकी सर्वोत्तम सुन्दरतम उपलब्धि है। यह भक्ति मोक्षसे भी गरीयसी है।[१]

भज सेवायाम् (भ्वा०उ०अ०) धातुसे पाणिनिके सूत्र 'स्त्रियां क्तिन्'[२] के अनुसार 'क्तिन्' प्रत्ययसे 'भक्ति' शब्द निष्पन्न होता है। 'भज' धातु सेवा करनेके अर्थमें प्रयुक्त होती है। इस प्रकार 'भज' धातुमें 'क्तिन्' स्त्री प्रत्ययके योगसे निष्पन्न 'भक्ति' शब्दका अर्थ होता है 'तत्परतापूर्वक सेवा करना।' इस सेवामें भगवानके प्रति चरम अनुराग रहता है। 'सा परानुरक्तिरीश्वरे।'[३] इसका स्वरूप ही 'प्रेमरूप' है। 'सा त्वस्मिन् परमप्रेमरूपा।'[४] भागवतमें भी कहा है–'जिसका चित्त एकमात्र भगवानमें ही लग गया है, ऐसे मनुष्यकी वेदविहित कर्मोंमें लगी हुई तथा विषयोंका ज्ञान करानेवाली (कर्मेन्द्रिय एवं ज्ञानेन्द्रिय) दोनों प्रकारकी इन्द्रियोंकी जो सत्वमूर्ति श्रीहरिके प्रति स्वाभाविकी प्रवृत्ति है, वही भगवानकी अहेतुकी भक्ति है।[५] अद्वैतसिद्धिकार मधुसूदन सरस्वती द्रवित हुये चित्तकी भगवानमें तन्मयता रूप धारावाहिक वृत्ति अथवा सविकल्पवृत्तिको भक्ति कहते हैं।'[६] भक्ति मनका एक उल्लास विशेष है–यह मत है भक्तिमीमांसाकारका–'भक्ति र्मनसः उल्लासविशेषः।'[७] अलंकार सम्प्रदायकी मान्यताके अनुसार भक्ति एक भाव है–'भाव एवैयमित्येकं।'[८] भावका स्वरूप है 'शुद्ध-सत्व'।[९] भागवतमें कहा है सत्व, रजस और तम इन तीनों मायिक गुणोंसे निवृत्त हो जानेपर ही साधकमें भक्तिकी अनुवृत्ति होती है।[१०] जबकि श्रीविश्वनाथ चक्रवर्ती कहते हैं, भक्तिके हृदयमें जाग्रत होनेका कोई हेतु नहीं है। यह तो अहेतुकी, परम स्वतन्त्रता और स्वेच्छामयी है।[११] साथ ही अमृत रूप और अनिवर्चनीय प्रेमस्वरूप है,[१२] गुण-रहित, कामना-

---

१. भागवत ११।१४।१४, ३।१५।४८, ५।६।१८

२. अष्टाधायी पाणिनि ३।३।६४, ३. शाण्डिल्यभक्तिसूत्र १।१।२

४. नारदभक्तिसूत्र २, ५. भागवत ३।२५।३२-३३,

६. भक्तिरसायन १।३, ७. पराभक्तिसूत्र १।१।२

८. काव्य प्रकाश ४।४८ ९. भक्ति-रसामृत-सिन्धु १।३।१

१०. भागवत ११।२५।३३ ११. भागवत १०।२०।८ 'यदृच्छया मत्कथादौ (टीका)

१२. 'अनिवर्चनीय प्रेमस्वरुपम् नारदभक्तिसूत्र ५१

रहित, अविच्छिन्न रूपसे प्रतिक्षण वर्धनशील और सूक्ष्मतर अनुभवरूपा है।[1] यह भक्ति भगवानकी ही शक्ति है अतः आनन्दरूपा है, क्योंकि यह भगवान की ह्लादिनी शक्तिकी वृत्ति है।[2]

भक्तिमें भी मूर्धन्य और वरेण्य है 'कृष्ण-भक्ति'। इसका केन्द्रबिन्दु है एकनिष्ठ प्रेम, सर्वभावेन-सर्वात्मना समर्पण, अनन्य आश्रय। लौकिक-वैदिक-मर्यादाएँ एकान्त, अदम्य और अजस्र प्रेमकी बाढ़में आप्लावित हो जाती हैं।[3] अस्तु, भक्ति कृष्णाविषयिणी रति है और भक्तिका स्वरूप है 'कृष्ण-रति।'

भेद :

भागवतमें अनेक भेदोपभेदों द्वारा भक्तितत्वका सर्वांगीण, निरूपण हुआ है। कहीं उसे निर्गुणाभक्ति, त्रिविधा (सात्विक, राजस, तामस) भक्ति, चतुर्विधा भक्ति, पचविधा भक्ति, षड्विधा भक्ति, नवधा-भक्ति और वही चौषठ प्रकारके रूपमें विभक्त किया गया है।

निर्गुणा भक्ति :

श्रीभगवान् कहते हैं 'अविच्छिन्न रूपसे निष्काम और अनन्य प्रेम होना ही निर्गुण भक्ति है–

मद्गुण श्रुतिमात्रेण मयि सर्वगुहाशये।
मनोगतिरविच्छिन्ना यथा गंगाम्भसोऽम्बुधौ।
लक्षणं भक्तियोगस्य निर्गुणस्य ह्युदाहृतम्।
अहैतुक्यव्यवहिता या भक्तिः पुरुषोत्तमे॥[4]

गजेन्द्र, शौनक, ध्रुव और सनकादि अपने-अपने भावोंको छोड़कर निर्गुण हो गये हैं।[5] श्रीकृष्ण सुखैकतात्पर्य-सेवा ही इनका लक्ष्य है। इस

---

१. 'गुणरहित कामनारहितं प्रतिक्षणवर्धमानविच्छिन्नं सूक्ष्मतरं अनुभवरूपम्।' - नारदभक्तिसूत्र ५४

२. प्रीति सन्दर्भ - जीवगोस्वामी ६५

३. श्रीमद्वल्लभाचार्य, व्यक्तित्व, सिद्धान्त और सन्देश : प्राक्कथन : डा० गजानन शर्मा, पृष्ठ ८३

४. भागवत ३।२९।११-१२

५. भागवत ३।१५।४६, ३।२५।३४, ३।२९।१३, ४।२०।२४, ५।१४।४४ ६।११।२५

भक्तिमें विशुद्ध चिन्मय सुखकी सत्तामात्रका आस्वादन होता है, उसकी अनन्त रस-वैचित्रीका नहीं ।

त्रिविधा सगुण भक्ति :

साधकोंके भावके अनुमार सगुण भक्तिका अनेक प्रकारसे प्रकाश होता है, क्योंकि स्वभाव और गुणोंके भेदसे मनुष्योंके भाव में भी विभिन्नता आ जाती है ।[1] यह तीन प्रकारकी है–

१) सात्विक :

जो व्यक्ति पापोंका क्षय करनेके लिये, परमात्माको अर्पण करनेके लिए और पूजन करना मेरा कर्तव्य है - इस बुद्धिसे भेदभावसे पूजन करता है, वह सात्विक भक्ति है ।[2]

२) राजस

जो पुरुष विषय, यश और ऐश्वर्यकी कामनासे प्रतिभादिमें भाव-पूजन करता है, उसे राजसी भक्ति कहते हैं ।[3]

३) तामस

जो भेददर्शी क्रोधी पुरुष हृदयमें हिंसा, दम्भ अथवा मात्सर्यका भाव रखकर अर्चन पूजन करता है, वह तामस भक्ति है ।[4]

पंचविधा भक्ति :

इसके अनुसार भगवानमें किसी प्रकार भी मन लगाना चाहिये। तत्सम्बन्धी पांच भाव है– १. सुदृढ़ वैर, वैरहीन भक्तिभाव, भय, स्नेह और काम ।[5] शिशुपालादि राजाओंने सुदृढ़-वैरसे, नारदने भक्ति-भावसे, कंसने भयसे, युधिष्ठिरादि और यदुवंशियोंने स्नेहसे और गोपियोंने कामसे भगवानमें मन लगाया था ।[6]

षड्विधा भक्ति :

षड्विधा भक्तिके अनुसार भगवानकी सेवाके छः अंग है– नमस्कार, स्तुति, समस्त-कर्मोका समर्पण, सेवा-पूजा, चरण-कमलोंका चिन्तन और लीला-

---

१. भागवत ३।२९।७

२. भागवत ३।२९।१०, ३. वही ३।२९।९,

४. वही ३।२९।८ ५. वही ७।१।२५, ६. वही ७।१।३०

कथाका श्रवण ।[1] भागवतके कई पात्रोंने इसी क्रमसे भक्तिको प्राप्त किया है, यह श्रोताओंके लिये भी परमोपदेश है ।

नवधा भक्ति :

अन्य प्रकारसे नौ भेदोंसे भी भागवतमें भक्तिका वर्णन है । ये नौ भेद हैं–भगवानके गुण-लीला-नाम आदिका श्रवण, उन्हींका कीर्तन, उनके रूप-नाम आदिका स्मरण, उनके चरणोंकी सेवा, पूजा-अर्चा, वन्दन, दास्य, सख्य और आत्मनिवेदन ।[2]

सम्पूर्ण सार रूपमें भक्ति तीन स्तरकी है–साधन, भाव और प्रेम ।[3] श्रीजीवगोस्वामी मुख्य रूपसे दो ही स्तर मानते हैं। तदनुसार है साधन-भक्ति और साध्य-भक्ति । साधन-भक्ति साध्य-भक्तिकी अपरिपक्वावस्था है ।

साधन भक्ति : वैधी और रागानुगा भक्तिः

कृतिसाध्या भवेत् साध्यभावा सा साधनाभिधा ।
नित्यसिद्धस्य भावस्य प्राकट्यं हृदि साध्यता ।।[4]

अर्थात् जो भक्ति इन्द्रियोंकी प्रेरणा या व्यापारसे साधित होती है और जिसके द्वारा भावभक्तिकी सिद्धि या प्राप्ति होती है, उसे साधन-भक्ति कहते हैं । नित्यसिद्ध भावका हृदयमें प्रकट होना ही भक्तिकी साध्यता है । इस साधन-भक्तिको श्रीमद्भागवतमें श्रीदेवर्षि नारदने परिपाटीसे अथवा चतुरतापूर्वक प्रकारान्तरसे इस प्रकार कहा है 'तस्मात्केनाप्युपायेन मनः कृष्णे निवेशयेत् ।'[5] अर्थात् किसी न किसी उपायसे मनको भगवान् श्रीकृष्णमें तन्मय कर देना चाहिये । साधन सिद्ध हैं मार्कण्डेय मुनि ।[6] भगवत्-सेवा ही भक्तिका सार है । जब श्रवण, कीर्तनादि अनुष्ठानों द्वारा भगवानकी प्रेम-सेवाकी प्राप्ति होती है, तब उन्हें साधन भक्ति कहते हैं । साधनका अर्थ किसी कार्य-विशेषमें इन्द्रियोंका लगाना होता है । सन्तप्रवर अम्बरीषने अपना सब कुछ (ज्ञानेन्द्रिय,

---

१. भागवत ७।६।५०

२. वही ७।५।२३–२४

३. भक्तिरसामृत सिन्धु – सा भक्तिः साधनं भावः प्रेमा चेति त्रिधोदिता ।। १।२।१

४. भागवत १।१।२ ५. वही ७।१।३१ उत्तरार्द्ध

६. तस्यैवं युंजतश्चित्तं तपस्वाध्यायसंयमैः – वही १२।८।३२

कर्मेन्द्रिय, संकल्प, संवेदन और विचार) भगवान् श्रीकृष्णमें ही निवेशित कर रखा था। भक्तका स्वरूपानुबन्धित्कर्तव्य कृष्ण-प्रेम ही है। रसशेखर श्रीकृष्ण-की उपासना ही भक्तिका चरम साध्य है।

यह साधन भक्ति दो प्रकार की है–[१]

१. वैधी   २. रागानुगा

वैधी भक्ति :

जब राग अथवा रागानुगा भक्ति भगवत्सेवाके बिना केवल और गुरू अथवा शास्त्रकी आज्ञाके बलपर भगवत्सेवामें प्रवृत्ति होती है, उसे 'वैधी भक्ति' कहते हैं।[२] आचार्य वल्लभ इस प्रकारकी भक्तिको मर्यादा-भक्ति कहते हैं। उनके अनुसार प्रभुके माहात्म्य-ज्ञानयुक्त निरूपाधि भक्ति ही मार्यादा-भक्ति है। वह मार्यादा-भक्ति नारद और रुपगोस्वामीकी वैधी भक्ति-के समकक्ष है। शाण्डिल्य इसे गौणी-भक्ति कहते हैं।[४] गौणी भक्तिमें इष्टके प्रति आसक्ति इतनी प्रबल होती है कि साधन रूप भगवानको पा जानेपर भी साध्यरूप विषयोंकी ही उत्कण्ठा बनी रहती है। श्रीशुकदेव कहते है– 'अभय पदकी प्राप्तिके लिये भगवान्की लीलाओंका ही श्रवण, स्मरण और कीर्तन करना चाहिये।'[५] चतुर्थ योगीश्वर प्रबुद्ध कहते है 'सब श्रीकृष्णका स्मरण करे और एक-दूसरेको स्मरण करावें। इस प्रकार साधन-भक्तिका अनुष्ठान करते-करते प्रेम-भक्तिका उदय हो जाता है और वे प्रेमाद्रेकसे पुलकित-शरीर धारण करते हैं।[६] ध्रुव,[७] गजराज[८] वैधी भक्तिके दृष्टान्त है। यदि भक्तिमें शास्त्रोक्त मर्यादाकी ही प्रबलता हो और आरम्भमें वही भक्तिमें प्रवृत्तिका

---

१. वैधी रागानुगाचेति सा द्विधा साधनाभिधा। – भक्तिरसामृतसिन्धु १।२।५

२. यत्र रागानवाप्तत्वात् प्रवृत्ति रुपजायते।
शासने नैव शास्त्रस्य सा वैधी भक्ति रुच्यते॥ - भक्तिरसामृतसिन्धु १।२।६

३. भक्तिरसामृत सिन्धु   ४. शाण्डिल्य भक्तिसूत्र २०

५. भागवत २।१।५, ११।२७, ४६

६. भागवत ११।३।३१   ७. वही ४।८।११

८. वही ८।२।३

कारण हो तो इसे 'मर्यादा मार्ग' भी कहते है।[1] अम्बरीषकी विधि भक्ति निष्काम है।

रागानुगा भक्ति :

वैधी और रागानुगाके मध्यमें रागानुगा ही श्रेष्ठ है। पात्र विशेषसे ही भक्तिका वैशिष्ट्य होता है। इष्टमें स्वाभाविकी जो एक प्रेममयी तृष्णा है, उसके कारण इष्टमें परमाविष्टता या आवेश हुआ करता है। उस प्रेममयी तृष्णाका नाम है 'राग'। इष्ट वस्तुमें बलवती तीव्र तृष्णाका होना रागका 'स्वरूप लक्षण' है और इष्ट वस्तुमें परम आवेश होना रागका 'तटस्थ लक्षण' है। रागमयी भक्तिको 'रागात्मिका भक्ति' कहते हैं।[2] यह व्रजवासी जनोंमें सुस्पष्ट भावसे विराजमान है। इस रागात्मिका भक्तिका जो अनुगमन या अनुसरण करती है, उसे 'रागानुगा भक्ति' कहते हैं–

विराजन्तीमभिव्यक्तं व्रजवासिजनादिषु।
रागात्मिकामनुसृता या सा रागानुगोच्यते ॥[3]

रागात्मिका भक्ति है परम-स्वतन्त्र और अन्य निरपेक्षा। प्रभावमें तो यह श्रीकृष्णसे भी अधिक गरीयसी है। कृष्ण-विरहमें गोपियाँ कृष्णका अनुगमन करती करती उनके मिलनकी आशासे अभिसार करतीं, तन्मय होकर अपने आपको भी भूल जाती है,[4] कृष्णको भी भूल जातीं।[5] रागमयी भक्ति हृदयकी रसरूपता है। इष्टके प्रति प्रगाढ़ तृष्णा एवं सान्द्र रसावेशमें ही रागात्मिकता संपुष्ट होती है। व्रजवासी जनके भावके प्रति लोलुप व्यक्ति ही इसके अधिकारी है।

---

१. शास्त्रोक्त्या प्रबलया तत्तन्मर्यादयाऽन्विता।
वैधी भक्तिरियं कैश्चिन्मर्यादा मार्ग उच्यते ॥ भक्तिरसामृतसिन्धु १।२।२६९

२. (क) भक्तिरसामृतसिन्धु १।२।२७१–२७२
(ख) चैतन्य चरितामृत २।२२।८६

३. वही १।२।२७०

४. भागवत १०।३९।१४–१५

५. वही 'तदात्मिका.......असावहं.......कृष्णविहारविभ्रमाः' १०।३०।२–३

अहैतुकी अनुरागमयी रागानुगा भक्ति कामरूपा, सम्बन्ध रुपा भेदसे दो प्रकारकी हैं।[1] यद्यपि कामरूपामें भी सम्बन्ध विशेष है ही, तथापि वैशिष्ट्यकी अपेक्षासे ही पार्थक्य है – 'सा कामरुपा सम्बन्धरूपा चेति भवेद्द्विधा।'[2]

सम्बन्ध रूपा :

श्रीकृष्णके प्रति पितृत्व आदिका अभिमान होना अर्थात् मैं श्रीकृष्णका पिता हूँ, माता हूँ, सखा या दास हूँ - इस प्रकार मानना ही सम्बन्ध रूपा भक्ति है–

सम्बन्ध रूपा गोविन्दे पितृत्वाद्यभिमानिता।
अत्रोपलक्षणतया वृष्णीनां वल्लवा मताः॥[3]

'सम्बन्धाद् वृष्णयः' यादवगणोंने सम्बन्धसे श्रीकृष्णको प्राप्त किया है।[4] यहाँ वृष्णियोंके उपलक्षण होनेसे श्रीनन्दादि गोप गोपियोंकी सम्बन्ध-रूपा भक्ति मानी गयी है, क्योंकि इनमें ऐश्वर्यज्ञान न होनेसे रागरूप विशेष प्रेमकी प्रधानता है–

यदैश्वर्यज्ञानशून्यत्वादेषां रागे प्रधानता।[5]

सम्बन्धनुगा-दास्य, सख्य, वात्सल्य एवं मधुर भेदसे चार प्रकार हैं। माता-पिता,[6] गोप और गोपियाँ इसके विषय हैं:–

तं नागभोगपरिवीतमदृष्टचेष्टमालोक्य तत्प्रियसखाः पशुपा भृशार्ताः।
कृष्णेर्पितात्मसुहृदर्थकलत्रकामा दुःखानुशोकभयमूढधियो निपेतुः॥[7]

कामरूपा :

काम सबसे अधिक प्रबल राग है, 'काम' शब्दसे केवल कृष्ण-सेवाकी तीव्रलालसामयी प्रेमाविष्टता ही अभिप्रेत है। कामरूपा भक्ति सम्भोग-तृष्णाको अपनी सारूप्य-प्राप्ति करा देती है। इसमें केवल श्रीकृष्णके सुखके लिये ही उद्यम किया जाता है–

---

१. भक्तिरसामृतसिन्धु १।२।२७३
२. वही १।२।२८८ ३. वही ७।१।३०
४. भक्तिरसामृत सिन्धु १।२।२८८
५. भागवत १०।१६।२०–२१. ६. वही १०।१६।१०

सा कामरूपा सम्भोगतृष्णां या नयति स्वताम् ।
यदस्यां कृष्णसौख्यार्थमेव केवलमुद्यमः ॥[१]

यह केवल व्रजदेवियोंमें अत्यन्त प्रसिद्ध रूपसे विद्यमान रहती है। इनका यह विशेष प्रेम किसी अनिवर्चनीय माधुरीको प्राप्तकर उस-उस प्रकारकी काम-क्रीड़ाओंका कारण बन जाता है। रसवेत्ता विद्वानोंने उस प्रेम विशेष को 'काम' शब्दसे अभिहित किया है। तन्त्रमें कहा गया है कि गोपियोंका प्रेम ही 'काम' नामसे प्रसिद्ध है।[२]

श्रीकृष्णके प्रिय उद्धव आदि भी कामरूपा भक्तिकी प्रार्थना करते रहते हैं किन्तु काम-प्राया रति कुब्जामें (आंशिक) मानी जाती है—[३]

ततोरूपगुणौदार्यसम्पन्ना प्राह केशवम् ।
उत्तरीयान्तमाकृष्य स्मयन्ती जातहृच्छया ॥[४]

गोपियाँ कृष्णके प्रेममय महाभावमें स्थित हैं। कुब्जा काम-प्राया है—
"एताः परं तनुभृतो भुवि गोपवध्वो गोविन्द एव निखिलात्मनि रूढ़भावाः ।"[५]
गोपियोंका यही प्रेम 'कामाख्य' है।

इसके भी दो भेद हैं— सम्भोगेच्छामयी तथा तद्भावेच्छामयी।
चित्घन असमोर्द्ध (काम) नित्यपरिकर गोपांगनाओंके केलि क्रीड़ानुगमन और उनके प्रेममाधुर्यके संधानित करनेकी इच्छासे ही सम्भोगेच्छामयी और तद्भावेच्छात्मिका कही गयी है।

सम्भोगेच्छामयी :

यह केलि-तात्पर्यमयी होती है। 'केलि' का अर्थ क्रीड़ासे है। व्रजदेवियोंके साथ कृष्णकी अप्राकृत क्रीड़ाको ही 'सम्भोग' कहते हैं—

केलितात्पर्यवत्येव सम्भोगेच्छामयी भवेत् ।
तद्भावेच्छात्मिका तासां भावमाधुर्यकामिता ॥[६]

१. भक्तिरसामृतसिन्धु १।२।२८३
२. प्रेमेव गोपरामाणां काम इत्यगमत् प्रथाम् । १।२।२८५ भक्तिरसामृतसिन्धु
३. भागवत १।२।२८६–२८७ ४. वही १०।४२।६
५. भक्तिरसामृतसिन्धु १।२।२९९ ६. वही

तद्भावेच्छामयी :

हमसे दोनों (राधा-कृष्ण) सुखी बनें, इस इच्छावालेको तद्भावेच्छामयी भक्ति कहते है 'मत्तोऽनयोः सुखं भूयादिति तत्तद्भावेच्छामयीति।' उन-उन भावके प्रति लालसा होती है। इस भक्तिमें भावमाधुर्यास्वादनकी कामना रहती है–[1]

श्रीमूर्तेर्माधुरी वीक्ष्य तत्तल्लीलां निशम्भ वा।
तद्भावकाङ्क्षिणो ये स्युस्तेषु निशम्य वा॥[2]

'युक्त आकर्षणमें जो सौन्दर्य-माधुर्य है, वह तो उज्ज्वल श्रृंगारका ही परिणाम होता है। उथच व्रज यूथेश्वरियोंका कृष्णके प्रति जो मधुर भाव होता है, उस मधुर भावके प्रति कामना ही तद्भावेच्छा है।[3]

श्रीजीवगोस्वामीने भक्तिसन्दर्भमें कहा है कि रागानुगाका नामान्तर है अविहिता। भक्तिमीमांसाकार कहते हैं - त्वं पद लक्ष्य (अज्ञानोपहित चैतन्य-ईश्वर) में रागात्मिका वृत्ति अपरा भक्ति है।[4] यह भागवत सिद्धान्तके अनुकूल है, ऐसा नहीं जान पड़ता।

कर्म, ज्ञान और योगकी भक्तिपर निर्भरता :

भगवान् श्रीकृष्ण द्वारा एकादशवें स्कन्धमें कर्म-ज्ञान और योगका निरूपण किया गया है परन्तु इनकी प्रवृत्तिका अन्तिम लक्ष्य स्थिर नहीं है अतः श्रीकृष्ण-भक्ति का आधार लेकर इनको पूर्णता प्राप्त हो सकती है। भक्ति एक भाव ही तो है। कर्म, ज्ञान और योग तीनों ही भक्तिकी उपलब्धिके लिये साधन बनते हैं। कर्म विभागका अन्तिम उद्देश्य मुक्ति है इसी प्रकार योग विभाग और ज्ञान विभागका अन्तिम लक्ष्य मुक्ति है। भक्ति विभागका चरम उद्देश्य प्रेम-भक्ति है। जीवोंको सिद्धसत्ताका विवेचन करने पर ऐसा दृढ़ निश्चय होता है कि भक्ति ही साधन है तथा भक्ति ही साध्य है। कर्म और ज्ञान अन्तिम साध्य और साधन नहीं है, बल्कि मध्यवर्ती साध्य-साधन है।[5] स्पष्ट है कि भागवतका प्रतिपाद्य 'कृष्ण-भक्ति' है। इस ग्रन्थमें कहा गया है

---

१. भक्ति रसामृत सिन्धु २. जैव-धर्म पृष्ठ ४५०
३. जैव-धर्म पृष्ठ ४५०
४. पराभक्तिसूत्र 'त्वम्पदलक्ष्ये रागात्मिकाऽपरा' ४
५. जैव-धर्म १२ अध्याय पृष्ठ २४५

समस्तकी परिसमाप्ति श्रीकृष्णमें ही है–

> वासुदेवपरा वेदा वासुदेवपरा मखाः ।
> वासुदेवपरा योगा वासुदेवपरा क्रियाः ।।[१]

कर्मकी निर्भरता :

कर्मोंकी गांठ बड़ी कड़ी है । निष्काम कर्म-ज्ञान भी मिश्रा-भक्ति है, शुद्धा-भक्ति नहीं । कर्मके सम्यक् त्यागका भी भक्तिसे समन्वित भक्तिआधार ही है,प्राण नहीं । यह केवलाभक्तिका प्रथम सोपान है । भगवदर्पण करना भक्तिका लक्ष्य है कर्मका नहीं कर्मोंका त्याग भी तब तक नहीं करना चाहिये, जब तक केवला-भक्ति या आत्यन्तिकी श्रद्धा न जन्मे । जीवका परमधर्म है 'कृष्ण-भक्ति' - 'स वै पुंसां परो धर्मो यतो भक्तिरधोक्षजे ।'[२] कर्मका महत्व ही भक्तिके साधनरूप-में है, स्वतन्त्र रूपमेंनहीं । तदतिरिक्त कर्म भी वही है जिससे श्रीहरि प्रसन्न हों 'तत्कर्म हरितोषं यत्'[३] और श्रीहरिकी प्रसन्नतामें ही कर्मकी सिद्धि है 'स्वनुष्ठि-तस्य धर्मस्य संसिद्धिर्हरितोषणम् ।'[४] अत: भगवानकी लीला-कथामें प्रेम ही श्रेय-स्कर है ।[५] कर्म-बन्धन क्षीण हो जानेपर परम भक्तियोग प्राप्त होता है ।[६] और यही परम पुरुषार्थ है । अन्य पुरुषार्थ इसीसे सिद्ध हो जाते हैं ।[७] कृष्ण-भक्ति करनेपर और कुछ करनेकी आवश्यकता ही नहीं रह जाती ।[८]

ज्ञानकी निर्भरता :

भागवत-प्रवर्तक श्रीब्रह्माजी कहते हैं– 'भगवन् आपकी भक्ति सब प्रकारके कल्याणका मूलस्रोत उद्गम है । जो लोग उसे छोड़कर केवल ज्ञानकी प्राप्तिके लिये श्रम उठाते और दुःख भोगते हैं, उनको बस क्लेश-ही-क्लेश हाथ लगता है और कुछ नहीं, जैसे थोथी भूसी कूटनेवालेको केवल श्रम ही मिलता है, चावल नहीं ।[९] श्रीधरस्वामिने तो इस श्लोककी टीकामें स्पष्ट लिखा है– 'भक्ति बिना ज्ञानं तु न सिद्धयेत् ।'[१०] श्रीमद्भागवतमें तृतीय, चतुर्थ, सप्तम, द्वादश स्कन्धोंमें जहाँ कहीं भी ज्ञानका प्रसंग आया है वहाँ बड़ी युक्ति और

---

१. भागवत १।२।२८ २. भागवत १।२।६ पूर्वार्द्ध
३. भागवत ४।२९।४९ ४. भागवत १।२।१३ उत्तरार्द्ध
५. भागवत १।२।१५, ६. वही १।२।२१
७. वही ३।२९।१३-१४ ८. वही ५।६।१७,
९. वही ११।५।४१, ४।३१।१४, १०. वही १०।१४।४

अनुभवकी भाषामें निर्गुण तत्वका विवेचन हुआ है। ज्ञानकी अन्तरंग साधनामें श्रवण, मनन, निदिध्यासनको विशेष स्थान देनेपर भी 'न तत्रोपायसहस्राणाम्'[१] इत्यादि कहकर भक्तिको ही मुख्य करना है। परमतत्वज्ञानी वीतरागी शुकदेव भी परम भक्त हुए हैं।

योगकी निर्भरता :

श्रीकृष्णकी उक्ति है "जो योगी इस प्रकार तीव्र ध्यानयोगके द्वारा मुझमें ही अपने चित्तका संयम करता है, उसके चित्तसे वस्तुकी अनेकता, तत्-सम्बन्धी ज्ञान और उनकी प्राप्तिके लिये होनेवाले कर्मोंका भ्रम शीघ्र ही निवृत्त हो जाता है।"[२] इस प्रकार योगी योगसे भगवानके आंशिक अंश अन्तर्यामी परमात्माको प्राप्त करते हुए मोक्षका पथ प्रशस्त करता है। भगवान-के सम्यक् रूपकी प्राप्ति उसे नहीं होती है।

अतः कर्म, ज्ञान और योग फलकी प्राप्तिके लिये भक्तिकी अपेक्षा रखते हैं–'भक्तिमुखनिरीक्षक-कर्म-योग-ज्ञान।'[३] भक्ति बिना तो कर्मी, ज्ञानी और योगी सभी अशान्त रहते हैं–

कृष्ण-भक्त निष्काम अतएव शान्त।
भुक्ति-मुक्ति सिद्धिकामी सकलि अशान्त॥[४]

भगवान् श्रीकृष्ण उद्धवसे कहते हैं, कर्म, तपस्या, ज्ञान, वैराग्य, योग, दानादि अनुष्ठानोंका फल मेरे भक्त मेरी भक्तिके प्रभावसे अनायास प्राप्त करते हैं। कर्म, ज्ञान, योगकी अपूर्णता और भक्तिपर आश्रयता इस प्रकार स्पष्ट हो जाती है–

न तपोभिर्नवेदैश्च न ज्ञानेनापि कर्मणा।
हरिर्हि साध्यते भक्त्या प्रमाणं तत्रगोपिकाः॥[५]

भक्त्या तुष्यति माधव :

अनर्थोंकी शान्तिका साक्षात् साधन है - भगवानका भक्तियोग।'[६] सभी कार्योंको भगवदर्पण कर भगवानके विरहमें परम व्याकुल होना ही भक्ति

---

१. भागवत   २. वही १०।१४।४६
३. चैतन्यचरितामृत २।२२।१४   ४. वही २।१९।२३१
५. वही ११।२०।३२   ६. भागवत १।७।६

है ।[१] यह स्वयं फलरूपा है ।[२] और है प्रेमरूपा ।[३] अतः भक्ति ही प्रेमी माधव की प्रसन्नता का कारण है । प्रेमरसास्वादक माधव किसी अन्य विधिसे सन्तुष्ट होते ही नहीं है । अपने जीवनकालमें वह अपने भक्तोंपर ही प्रसन्न हुए हैं । भक्तिके विषय माधव भी अपने भक्तोंके भक्त है और भक्ति का मूल भी भक्ति है ।[४]

भक्तिका प्रारम्भ होता है 'सेवा' से । यह सेवा भगवद्-भक्त-सेवा[५] और भगवत्-सेवा[६] दो प्रकारकी है । इसके बाद स्वयं-श्रीकृष्ण और उनके भक्तोंकी दयाका पात्र होनेपर[७] भागवत धर्मोंमें श्रद्धा होती है ।[८] तत्पश्चात् भगवद्गुण श्रवण करनेसे भगवानमें रति होती है[९] और रतिसे ही श्रीकृष्ण-की प्राप्ति होती है । प्रह्लाद भगवानकी दयाके पात्र हुए हैं ।

भक्तिके नवनिधि प्रकारोंके भक्तोंमें भगवानकी प्रसन्नताका संकेत भागवतमें है–

१. श्रवण :

'श्रवणं नामचरितगुणादीनां श्रुतिर्भवेत् ।'[१०] अर्थात् श्रीभगवानके नाम, चरित्र[११] तथा गुणादि[१२] का कानोंसे स्पर्श होना श्रवण है । भागवतके प्रमुख श्रोता परीक्षितकी श्रवण-भक्तिसे श्रीकृष्णकी प्रसन्नताका विवेचन हुआ है ।[१३]

---

१. नारदस्तु तदर्पिता खिलाचारता तद्विस्मरणे परमव्याकुलतेति ।'
नारदभक्तिसूत्र १९

२. "…. …. …. स्वयं फलरुपतेति …. ….' वही ३०

३. अनिवर्चनीय प्रेमस्वरुपम् । मूकास्वादनवत् । - वही ५१-५२

४. …….. भक्त्या साधन भक्त्या संजातया प्रेमलक्षणाभक्त्या ।
- भागवत ११।३।३१ भावार्थ दीपिनी

५. भागवत ५।५।२, ६. वही ११।१२।१५,

७. वही ११।११।२९, ८. वही १।२।१६,

९. वही १०।९०।४९-५०, ३।२५।२५

१०. भक्तिरसामृतसिन्धु १।२।१७०, ११. भागवत ४।२९।४०,

१२. वही १२।३।१५ १३. भागवत २।१।१५ धृत तत्त्वसन्दर्भ

२. कीर्तन :

'नामलीलागुणादीनामुच्चैर्भाषा तु कीर्तनम् ।'[१] अर्थात् श्रीभगवानके नामलीला तथा गुणादिकको ऊंचे स्वरसे वर्णन करना 'कीर्तन' कहलाता है ।[२] श्रीशुकदेवने सम्पूर्ण भागवतका कीर्तन किया है ।

३. स्मरण :

'यथा कथंचिन्मनसा सम्बन्धः स्मृतिरुच्यते ।'[३] अर्थात् जिस किसी प्रकारसे मनके साथ श्रीकृष्णका सम्बन्ध होना स्मरण है । स्मरणमें प्रह्लाद प्रसिद्ध है ।

पाद-सेवन :

अपने समस्त कर्मोंको भगवानमें अर्पण कर देना[४] और उनके चरण-कमलोंकी कभी भी विस्मृति न होना पाद-सेवन है ।[५] पाद-सेवनकी पराकाष्ठा श्रीलक्ष्मीमें है ।

पूजन-अर्चन :

भूत-शुद्धि तथा मातृका-न्यासादि पूर्वांगोंको सम्पादन करके मन्त्रों द्वारा पूजन सम्बन्धी उपचारों या विधियोंका सम्पादन करना 'अर्चन' कहलाता है ।[६] प्रमुख अर्चक हैं पृथु ।

वन्दन :

श्रीभगवानके रूप, गुण और लीला तथा सेवा आदिका सम्यक् प्रकारसे हृदयसे चिन्तन वन्दन कहलाता है ।[७] वन्दनामें अक्रूर प्रसिद्ध हैं ।

---

१. भक्तिरसामृत सिन्धु १।२।१४५

२. भागवत १।५।२२, १२।१२।५०

३. (क) भक्तिरसामृतसिन्धु १।२।१७५ (ख) भागवत १२।१२।५४

४. भक्तिरसामृतसिन्धु १।२।१८३

५. भागवत १०।७३।१५, ४।२१।३१-३२

६. (क) भक्तिरसामृतसिन्धु १।२।१३७
(ख) भागवत ११।२७।७, (ग) बृहदारण्यकोपनिषत् १।४८।२।४।५

७. भागवत ११।६।७

दास्य :

'दास्यं कर्मार्पणं तस्य कैंकर्यमपि द्विविधमीरितम् ।'[1] अर्थात् अपने समस्त कर्मोंका श्रीभगवानको अर्पण कर देना एक प्रकारका 'दास्य' है तथा सर्वथा उनके प्रति दास-भाव रखना अर्थात् "मैं श्रीभगवानका दास हूं"–ऐसा भाव होना दूसरे प्रकारका 'दास्य' कहलाता है ।[2] श्रीरामभक्त हनुमानका 'दास्य' भाव प्रसिद्ध है ।

सख्य :

'विश्वासो मित्रवृत्तिश्च सख्यं द्विविधमीरितम् ।'[3] सख्य दो प्रकारका है– (१) विश्वास तथा (२) मित्रवृत्ति । अर्जुनमें परम 'सख्य' है ।

आत्मनिवेदन :

आत्म-निवेदनमें 'आत्म' शब्दके दो प्रकारके अर्थ पण्डितजन करते हैं । कोई तो अहन्ताके आश्रय देही (शरीरमें रहनेवाले जीवात्मा) को 'आत्म' कहते हैं और कोई ममताके आश्रय देहको आत्म शब्दसे ग्रहण करते हैं । इन दोनों अर्थात् देही और देह दोनोंका ही समर्पण आत्म-निवेदनमें आता है–

अर्थो द्विधात्मऽऽत्मशब्दस्य पण्डितैरुपपाद्यते ।
देह्यहंताऽऽस्पदं कैश्चिद्देहं कैश्चिन्ममत्वभाक् ॥[4]

आत्मनिवेदनके 'बलि' महाराज उदाहरण हैं । महामहिम अम्बरीषमें तो नवधा-भक्ति साक्षात् विराजती है ।

श्रीकृष्ण-लीला प्रीति

विवर्द्धमान रानागुगा वृत्ति 'प्रीति' में पर्यवसित होती है । प्रीति ह्लादिनी प्रधान शुद्धसत्वकी ही वृत्ति विशेष है । यह हार्द प्रीति भगवानके प्रति अविच्छेद स्वाभाविक अनुरक्ति परानुरक्ति ही है । भागवती-प्रीति स्वभावतः उष्ण होते हुए भी अत्यन्त प्रबल आनन्द-स्वरूपा होती है ।[5] यह

---

१. (क) भक्तिरसामृतसिन्धु १।२।१८३
   (ख) भागवत १०।१२।११
२. भक्तिरसामृतसिन्धु १।२।१८३
३. भागवत १०।१४।३२
४. (क) भक्तिरसामृतसिन्धु १।२।१८५
   (ख) भागवत ११।२८।३४
५. भक्तिरसामृतसिन्धु १।३।२१२

प्रीति प्राप्त, अप्राप्त और नष्टमें भी रहती है। श्रीकृष्ण-लीलामें श्रोतागणोंके द्रवीभूत अन्तःकरणपर श्रीकृष्ण विषयक प्रीति क्रम-भावको प्राप्त करके उदीप्त होती है। श्रीकृष्ण स्वयं प्रीतिस्वरूप है। लीला रसमें डूबे लोगोंको श्रीकृष्ण सन्निधान, अन्तरंगता और प्रत्यक्षता अभिवृद्धित होती चली जाती है, लीला 'विषय' से वे श्रीकृष्ण-प्रीति-पीयुषमें गोते लगाते हैं। चिन्मय रतिकी उत्कृष्ट अवस्थाका नाम ही प्रीति है।

प्रीति : तटस्थ लक्षण

एकमात्र कृष्ण-सुखेच्छा ही प्रीतिका मुख्य लक्षण है। इसमें कोई उपाधि नहीं रहती। उपाधि रहना आभासका चिन्ह या लक्षण है। श्रीकृष्णकी सेवा करनेकी वासना, उसका स्वाभाविक धर्म है। वृत्रासुर तो कहता है "मैं आपको छोड़कर स्वर्ग, ब्रह्मलोक, भूमण्डलका साम्राज्य, रसातलका एकछत्र राज्य, योगकी सिद्धियाँ—यहाँ तक कि मोक्ष भी नहीं चाहता।"[१] इस प्रकार कृष्ण-सुखके अलावा उसमें कोई वासना नहीं रहती। चित्तका द्रवीभूत होना, उसके हृदयमें भगवद्दर्शनकी तीव्र उत्कण्ठा जाग उठना ही प्रीतिका स्वरूप है। चित्तकी शुद्धि होनेपर उसे किसी प्रकारकी लोकापेक्षा नहीं रहती।[२] उसके हृदयमें सभी सद्गुणोंका स्वाभाविक समावेश हो जाता है।[३] इस प्रीतिकी माधुरी भी असीम, मधुर और आनन्दमयी है।

स्वरूप लक्षण :

स्वरूप-शक्तिकी वृत्ति होनेके कारण भगवत्-प्रीति नित्य है। स्वरूप लक्षणकी दृष्टिसे भगवत्-प्रीति ह्लादिनीकी वृत्ति विशेष है, भगवानके प्रीति-विधानकी स्व-सुख वासना-रहित गंगाधाराके समान अविच्छिन्न और बलवती इच्छा है। प्रीतिके दो आलम्बन- आश्रय और विशेषकी मनोस्थितिका वर्णन इस प्रकार है—

न सो रमण ना हम रमणी।
दुहुं मन मनोभव पेषल जानि॥[४]

---

१. भागवत ६।११।२४—२५

२. भागवत — एवंव्रतः स्वप्रियनामकीर्त्या जातानुरागो द्रुतचित्त उच्चैः।
हसत्यथो रौदिति रौति गायत्युन्मादवन्नृत्यति लोकबाह्यः॥
११।२।७०

३. वही ५।१८।१२

४. चैतन्य चरितामृत २।८।१५३

सार-रूपमें यह ह्लादिनीकी घनीभूत अवस्था 'ह्लादिनीका सार'[1] है। इसमें मिलन और विरह दोनों ही आनन्दमय है।

प्रीतिका आविर्भाव

प्रीतिसे ही प्रीतिका उदय होता है। अपनी उदयावस्थामें ही भगवत्-चरणोंमें अनुरक्तिके कारण यह अन्यासक्तिको हटा देती है। श्रीशुक, उद्धव, विदुर आदि सभीको भगवत्-चरणोंमें रतिसे भगवान् श्रीकृष्णके प्रति उनके हृदयमें प्रीतिका आविर्भाव हुआ है। योगी और ज्ञानियोंकी जो परमात्मा और ब्रह्मके प्रति अनुरक्ति है, वह वास्तविक प्रीति नहीं, प्रीतिका आभास मात्र है, उसकी छबि मात्र है। क्योंकि प्रीति तो अपने स्वरुपसे नित्य हैं। प्रियव्रतमें प्रीतिका आवेश था, लेकिन अन्य विषयोंमें भी अभिनिवेश था।[2] भागवतकारका लक्ष्य प्रीतिके सम्यक् आविर्भावमें ही है। भागवतमें कहा गया है कि इसमें किसी प्रकारका सन्देह नहीं कि जिनका चित्त पुण्यकीर्ति श्रीहरिके चरणोंकी शीतल छायाका आश्रय लेकर शान्त हो गया है, उन महापुरुषोंकी कुटुम्बादिमें भी कभी आसक्ति नहीं हो सकती।[3]

प्रीतिके विभिन्न स्तर :

अनुरागमय भागवत ग्रन्थके अनुरागियोंके श्रीकृष्ण-प्रीति सम्बन्धसे विभिन्न स्तर है। प्रीतिका प्रीत्यांकुर है रति। रति ही गाढ़ताको प्राप्तकर क्रमशः प्रेम, स्नेह, मान, प्रणय, राग, अनुराग, भाव और महाभावकी अवस्थाको प्राप्त होती है ठीक वैसे जैसे गन्नेका बीज क्रमशः गन्ना, रस, गुड़, खांड़, शक्कर, चीनी, मिसरी और उत्तम मिसरी हो जाता है।[4] प्रेमादिमें यथोत्तरमें दीप्तिकी विशिष्टता रहती है।

प्रेम :

आनन्द ही प्रेमका स्वभाव है। सम्भ्रम प्रीति ह्रासकी शंकासे रहित होकर बद्धमूल 'प्रेम' कहलाती है। इस प्रेममें विह्वल रहनेवाले उद्धव प्रमुख हैं। यह प्रेम पौढ़, मध्य एवं मन्द भेदसे तीन प्रकारका होता है।

---

१. भागवत १।४।५६ २. वही ५।१।२

३. वही ५।१।३

४. 'एतेषां प्रवरः श्रीमानुद्धवः प्रेमविक्लवः।' – भक्तिरसामृत सिन्धु प्रीति भक्ति रसाख्या – द्वितीय लहरी कारिका ३१

स्नेह :

प्रेम गाढ़ता प्राप्तकर जब चित्तको द्रवीभूत करता है, तब उसे 'स्नेह' कहते हैं। इस स्नेहमें क्षणकालका भी विच्छेद सहन नहीं होता है। यह स्नेह स्वरूपसे दो प्रकारका होता है धृत एवं मधु।[1]

मान :

स्नेह जब उत्कृष्टता प्राप्तिके कारण नवीन-माधुर्यका अनुभव कराता है तथा जो स्वयं कौटिल्य धारण करता है, वह मान कहलाता है।[2] यह मान दो प्रकारका है—उदात्त एवं ललित। प्रीतिका कौटिल्य श्रीकृष्णको आनन्दित करता है। प्रीतिकी गति स्वभावतः कुटिल है—'अहेरिव गतिः प्रेमाः स्वभाव कुटिला भवेत्।'[3] परस्पर अनुरक्त तथा एकत्र अवस्थित नायक-नायिकाके अपने अभिमत आलिंगन तथा दर्शनादि निरोधकारी भाव मान कहे जाते हैं।

प्रणय :

'मानो दधानो विश्रम्भं प्रणयं प्रोच्यते बुधैः।' अर्थात् मान यदि विस्रम्भ धारण करता है तो पण्डितजन उसे प्रणय कहते हैं। विस्रम्भ शब्दका अर्थ है 'विश्वास' अथवा सम्भ्रराहित्य। श्रीजीवगोस्वामीनेकहा है—'विस्रम्भः प्रियजनेन सह स्वस्याभेदमनन्' अर्थात् प्रियजनोंके साथ अपना अभेद-ज्ञान ही है 'विस्रम्भ।'[4] इस अवस्थामें रोषादि रस-स्वभावसे होते हैं। मैत्र एवं संख्य रूपसे प्रणय दो प्रकारका है।

राग :

स्नेह गाढ़ता प्राप्तकर जब ऐसी अवस्थाको प्राप्त करता है जिसमें दुःख भी (श्रीकृष्ण सम्बन्ध लेशके कारण अर्थात् कृष्ण साक्षात्कार कृष्ण तुल्य-स्फुरण अथवा कृष्ण-कृपा प्राप्त होनेपर) परम सुखमय प्रतीत होता है (तथा

---

१. स घृतं मधु चेत्युक्तः स्नेहो द्वेधो स्वरूपतः। उज्ज्वल नीलमणि पृष्ठ ४७२

२. स्नेहस्तूत्कृष्टतावाप्तया माधुर्यं मानयन्नवम्।
यो धारयत्क्षक्षिण्यं स मान इति कीर्त्यते॥ — उज्ज्वल नीलमणि पृष्ठ ४७७

३. वही, मान, ४२　　४. वही १०।३०।३७

श्रीकृष्णके सम्बन्धके अभावमें सुख भी परम दुःख लगता है) और प्रयोजन होनेपर अपने प्राण विनाशके द्वारा भी श्रीकृष्णकी प्रीति विधान की जाती है, उस अवस्थाको राग कहा जाता है। यह राग नीलिमा तथा रक्तिमा भेदसे दो प्रकारका है।

अनुराग :

जो राग स्वयं नवीन-नवीन होकर भी प्रीतिके वशीभूत प्रियजनको निरन्तर अनुभव करते हुये भी नव-नव अर्थात् अननुरूप भूत रूप प्राप्त करता है, वह अनुराग कहा जाता है। वह अननुभूत कहींपर एकांशसे और कहींपर सर्वांशसे होता है–

सदानुभूतमपि यः कुर्यान्नवनवं प्रियम्।
रागो भवन्नवनवः सोऽनुराग इतीर्यते॥[1]

भाव :

अनुराग यदि यावत् आश्रयवृत्ति होकर अपने द्वारा संवेदन योग्यताको अर्थात् अपनी भावोन्मुखता दशाको प्राप्त होकर प्रकाशित होता है, तो वह भाव कहा जाता है–

अनुरागः स्वसंवेद्यदशां प्राप्य प्रकाशितः।
यावदाश्रय वृत्तिश्चेद्भाव इत्यभिधीयते॥[2]

महाभाव :

महाभाव व्रजदेवियोंका संवेद्य है। अन्यत्र यह सर्वत्र सर्व प्रकारसे दुर्लभ है। मुकुन्दकी महिषियोंमें भी अति दुर्लभ है।[3] समस्त उत्कर्षतामें

---

१. (क) स्नेह सः रागो येन स्यात् सुखं दुःखमपिस्फुटम्।
तत्सम्बन्धलवेऽप्यत्र प्रीतिः प्राण व्ययैरपि॥
–भक्तिरसामृत सिन्धु - प्रीतिभक्ति रसाख्या
द्वितीय लहरी, कारिका ८७

(ख) भागवत १।११।९

२. उज्ज्वल नीलमणि पृष्ठ ५००–१

३. मुकुन्दमहिषीवृन्दैंप्यसावति दुर्लभः।
व्रजदेव्येकसंवेद्यो महाभावख्ययोच्यते॥ - उज्ज्वल नीलमणि
पृष्ठ ५०९

परमावधि रूप यह भाव यहाँ महाभाव परपर्यायरूप है। अलौकिक प्रेम विशेषोंसे महाभावसे कोई अधिक आस्वादनीय वस्तु नहीं है। यह महाभाव मनके साथ तादात्म्य प्राप्त कर लेता है। रूढ़, अधिरूढ़ भेदसे यह महाभाव दो प्रकारका है।

प्रीतिके इन स्तरोंके वर्णनसे नित्य सिद्ध भावुकों और प्रेमियोंका वर्णन करना इस शोधका प्रयोजन नहीं है। प्रीतिका सम्पूर्ण पर्यावरण इसी आधारपर निर्मित किया है कि भागवतकारका प्रयोजन सम्मुख आये। जब मनुष्य लीला-प्रधान भागवतमें वर्णित भगवानके लीला शरीरोंसे किये हुये अद्भुत पराक्रम उनके अनुपम गुण और चरित्रोंको श्रवण करके अत्यन्त आनन्दके उद्रेकसे मनुष्यका रोम-रोम खिल उठता है, आँसुओंके मारे कण्ठ गद्गद हो जाता है और वह संकोच छोड़कर जोर-जोरसे गाने-चिल्लाने और नाचने लगता है, जिस समय वह ग्रहग्रस्त पागलकी तरह कभी हँसता है, कभी करुण-क्रन्दन करने लगता है, कभी ध्यान करता है तो कभी भगवद्-भावसे लोगोंकी वन्दना करने लगता है, जब वह भगवानमें ही तन्मय हो जाता है, बार-बार लम्बी सांस खींचता है और संकोच छोड़कर 'हरे! जगत्पते॥ नारायण॥!' कहकर पुकारने लगता है—तब भक्तियोगके महान् प्रभावसे उसके सारे बन्धन कट जाते हैं और भगवद्भाव की ही भावना करते-करते उसका हृदय भी तदाकार-भगवन्मय हो जाता है। उस समय उसके जन्म-मृत्युके बीजोंका खजाना हो जल जाता है और वह पुरुष श्रीभगवानको प्राप्त कर लेता है।[1]

प्रेम और काम :

भगवान् श्रीकृष्णकी लीलाओंमें 'काम' शब्दका प्रयोग कई स्थलोंपर है। आधुनिक जड़वादी इसे 'Sex' ही समझते हैं, जिससे श्रीकृष्णकी लीलाओं-का वास्तविक अर्थ ही नष्ट हो जाता है। एस०के०दे आदि श्रीकृष्णकी मधुर लीलाओंमें 'काम' के विलास आलिंगन, चुम्बन आदि पढ़कर श्रीकृष्ण और गोपियोंको प्राकृत नायक और नायिका ही समझते हैं। इन लीलाओंको अभद्र और अनैतिक समझते हुये कामोन्माद और कामुकताका नंगा नाच भी मान बैठे हैं। यह घोर विडम्बना ही हैं।

---

१. भागवत ७।७।३४

जो भगवान् है, उनमें प्राकृतत्वका आरोप ही निराधार है। विरक्त वक्ता-श्रोतागणोंके मध्यमें 'काम' कैसा ? हां 'काम' है परन्तु अप्राकृत है। यह निजेन्द्रिय-तर्पणकी कुत्सित काम-वासना नहीं है। यह, विशुद्ध प्रेम है, जो निर्मल भास्कर है, काम तो निविड़ अन्धकार है–

अतएव कामे प्रेमे बहुत अन्तर।
काम अन्धतमः प्रेम निर्मल भास्कर ॥[1]

भागवतमें 'काम' का वर्णन करनेके लिये कोई अन्य भाषा तो आ नहीं सकती। अलौकिक, अप्राकृत भावकी अभिव्यक्ति होगी तो शब्दोंमें ही। अत: भागवतमें वर्णित मधुर लीलाओंको प्राकृत लीला समझनेका अधिकार जब ब्रह्मविदोंको ही नहीं है तो साधारण मनुष्योंकी बात ही क्या। गोपियाँ और कृष्णके परस्पर आलिंगन, चुम्बन भी 'प्रेम' के प्रकाश हैं, कामके नहीं। काम आत्मसुखाभिलाषी है, गोपियोंका प्रेम कृष्ण-सुखाभिलाषी–

आत्मेन्द्रिय प्रीति इच्छा तारे बलि काम।
कृष्णेन्द्रिय प्रीति इच्छा धरे प्रेम नाम ॥[2]

गोपियोंके प्रेम और काममें पूर्ण तादात्म्य है। शरीरका जो विशिष्ट सम्बन्ध (सुखादिरूप) है, तद्विषयक उत्कट इच्छा होना ही 'काम' है। इससे पृथक् गोपियोंका काम अपने उज्ज्वलतम रूपमें प्रेम है। प्रेम श्रीकृष्णके स्वरूपकी ही वृत्ति है।[3] भावभक्तिका परिपाक ही प्रेम है जो सूर्यका उष:काल है। भावकी सान्द्रता और चित्तकी अतिशय कोमलता और ममत्व ही प्रेम है, यह भक्तिका सर्वोच्च सोपान है।[4] कामका उर्जस्वित रूप है आनन्द। कृष्ण प्रेमानन्द अत्यन्त प्रबल है। सुतरां संवेदक और संवेद्यका पार्थक्य और निगूढ़ सम्बन्ध एक अपूर्व अवस्थामें पहुँचा देता है।[5] प्रेम उदात्त, आह्लादकारी और तत्सुखित्वकी भावनासे आप्लावित है। जो स्वर्ण है वह तो स्वर्ण ही है, कसौटीपर खरा उतरेगा। भागवत भक्ति प्रेमपरा है। श्रीकृष्णकी केलि-लीलाएँ प्राकृत-काम-रोगसे मुक्ति पानेके लिये एक महौषधि है, यह रास-

---

१. चैतन्य चरितामृत १।४।१४७

२. वही १।४।१४१

३. चिच्छक्तिसार वृत्तिः प्रेमैव - रागवर्त्म चन्द्रिका ६

४. 'भावः स एव सान्द्रात्मा बुधैः प्रेमा निगद्यते।' भक्तिरसामृतसिन्धु ४।१

५. जैव धर्म, द्वितीय अध्याय पृष्ठ २०

लीलाके अन्तमें स्पष्ट कर ही दिया है।[1] विशुद्ध चित्तको नित्य ही इन लीलाओंसे उर्जस्व आनन्द मिलेगा।[2]

प्रेमऋणी और प्रेमरसास्वादक श्रीकृष्ण :

श्रीकृष्णको सर्वान्तर, परमसन्निहित प्रत्यगात्मा कहा गया है। प्रेममें व्यवधान सहनकी क्षमता नहीं होती। इसलिये दूरमें या व्यवहितमें स्वाभाविक, प्रेम नहीं होता। रमणीय केलिसुख द्वारा एवं अतिशय प्रेमरसपूर्वक वचनोंसे व्रजमें श्रीकृष्णके केलि-सुखका सर्वमनोरमत्व तथा अतिशय प्रेम-दायित्व दर्शित होता है। श्रीकृष्णावतारका प्रधान कारण है, विविध लीला-रसोंकी रचनाके द्वारा अपने प्रेमी भक्तोंको आनन्दित करना, उनके विशुद्ध प्रेमरसास्वादनके द्वारा सुखी होकर उन्हे प्रेमरसास्वादन कराकर सुखी करना—नानालीला रसरचनया मन्दयिष्यन् स्वभक्तान्।'[3] अपने अन्तरंग प्रेमी भक्तोंके साथ उन्होंने प्रेममयी लीलाएँ की है। उज्ज्वलतम श्रृंगार-रसके शिरोमणि श्रीकृष्ण अपने प्रेमियोंके प्रेमके उऋण रूपसे ऋणी है—

न पारयेऽहं निरवद्यसंयुजां स्वसाधुकृत्यं विबुधायुषापि वः।
या माभजन् दुर्जरगेहश्रृंखलाः संवृश्च्य तद् वः प्रतियातु साधुना॥[4]

गोपियोंके ही नहीं, श्रीकृष्ण अपनी पत्नी रुक्मिणीके भी परम ऋणी हैं, उनके प्रेमका अभिनन्दन करते हैं—

इतस्त्वयाऽऽत्मलभने सुविविक्तमन्त्रः प्रस्थापितो मयि चिरायति शून्यमेतत्।
मत्वा जिहास इदमंगमनन्ययोग्यं तिष्ठेत तत्वधि वयं प्रतिनन्दयामः॥[5]

सखाओंके साथ भी तो वह ऐसे ही हैं—

---

१. विक्रीडितं व्रजवधुभिरिदं च विष्णोः। श्रद्धान्वितोऽनुश्रृणुयादथ वर्णयेद् यः। भक्ति परां भगवति प्रतिलभ्य कामं। हृद्रोगमाश्वपहिनोत्यचिरेण धीरः॥ – भागवत १०।३३।४०

२. भागवत ११।१।४०

३. राधा माधव चिन्तन : हनुमान प्रसाद पोद्दार, मोतीलाल जालान, गीताप्रेस गोरखपुर, तीसरा संस्करण सं० २०३६

४. भागवत १०।३०।२२, ५. वही १०।६०।५७

सख्युः प्रियस्य विप्रर्षेरंगसंगतिनिर्वृतः।
प्रीतो व्यमुंचदब्बिन्दून् नेत्राभ्यां पुष्करेक्षणः ॥[1]

भागवतमें संकेतित प्रेयसियोंके साथ प्रेमाश्रय श्रीकृष्ण प्रेमरसास्वादन इस प्रकार करते हैं–

राग–रति–प्रेम–श्रेणी–समानता–प्राप्ति–प्रेयसिवृन्द
मंदिष्ठा-समर्था[2]-मधुवत्–उत्तम-कौस्तुभमणि-दुर्लभ-श्रीराधा
कुसुमिका-समंजसा[3]-घृतवत्-मध्यम-चिन्तामणि-सुदुर्लभा-अष्ट प्रधान गोपी
शिरीषा-साधारणी[4]-लाक्षावत्-अधम-मणि-अतिसुलभा-कुब्जा

व्रजमें केवल प्रेम ही :

श्री ब्रह्मा अपनी स्तुतिमें कहते हैं–'सर्वात्मना श्रीकृष्ण ! इस ब्रज-भूमिके किसी वनमें और विशेष करके गोकुलमें किसी भी योनिमें जन्म हो जाय, यही हमारे लिये बड़े सौभाग्यकी बात होगी। क्योंकि यहाँ जन्म हो जानेपर आपके किसी-न-किसी प्रेमीके चरणोंकी धूल अपने ऊपर पड़ ही जायेगी। प्रभो ! आपके प्रेमी व्रजवासियोंका सम्पूर्ण जीवन आपका ही जीवन है। आप ही उनके जीवनके एकमात्र सर्वस्व हैं। इसलिये उनके चरणोंकी धूलिको तो श्रुतियाँ भी अनादिकालसे अब तक ढूंढ़ ही रही है।[5]

इस जगतमें जो स्नेह नामका पदार्थ है, वह यही श्रीकृष्ण हैं और व्रजमें ही विराजमान हैं। यशोदामें उत्कृष्ट रूपसे विराजमान हैं, अन्य सभी कृष्णको ही अपना मानते हैं।[6] माधुर्यका एकमात्र स्थान श्रीवृन्दावन है। यहाँके लोग श्रीकृष्णको अपना सखा, पुत्र, प्रेमी समझते है, ऐश्वर्यमय श्रीकृष्णको कोई जानता भी नहीं है।[7] प्रेममें विनिमय होता ही नहीं, यह

---

१. भागवत १०।८०।१९, २. वहीं १०।४८।६,
३. वही १०।६१।४, ४. वही १०।४७।५८
५. भागवत १०।१४।३४
६. सर्वा एवाखिलं कर्म जानन्ते।' बृहद्गणोद्देशदीपिकायाम् १२५
७. "............तत्र केवलैश्वर्य्यानुभाविना" स्थानं वैकुण्ठम्, माधुर्यमिश्रैश्वर्य्यानुभविनां महावैकुण्ठ परव्योम, गोलोकम, ऐश्वर्य-मिश्र माधुर्यानुभाविनां पुरद्वयम केवल माधुर्य्यानुभाविनां तु श्रीवृन्दावनम्।
–श्रीकृष्ण-सन्दर्भ अनु० ११६

भागवतका सिद्धान्त है। श्रीब्रह्मा कहते हैं-जिन्होंने अपने घर, धन, स्वजन, प्रिय, शरीर, पुत्र, प्राण और मन–सब कुछ आपके ही चरणोंमें समर्पित कर दिया है, जिनका सब कुछ आपके ही लिये है, उन ब्रजवासियोंको भी वही फल देकर आप कैसे उऋण हो सकते हैं।[1]

ब्रजवासियोंने श्रीकृष्णके लिए अपना स्वार्थ प्रेमानलमें स्वाहा कर दिया। भगवान् श्रीकृष्णके परम-पुनीत-प्रेम चरित्रमें ब्रज-लीला मुख्य है। ब्रज-लीलामें अव्यक्त और परम दुर्लभ प्रेमने व्यक्तरूपधारण किया है जो प्रेम-पथ घोर स्वार्थान्धकारसे परिच्छिन्न है, वही उसके कारण दृश्यमान हो गया है। ब्रज-लीला पवित्र-प्रेमकी लीला है। प्रेम-यज्ञका यह मूर्तिमान, अपूर्व और अनुपम अभिनय केवल मनोरंजनके लिये नहीं हुआ था, यह संसारके कल्याणार्थ हुआ था, इसके द्वारा भगवान्‌को सर्वसाधारणके सामने प्रेमका सच्चा और शुद्ध आदर्श उपस्थित करना था। ब्रजलीला किंवा प्रेमलीलाके सूत्रधार भगवान् श्रीकृष्णके प्रति केवल जीव-समुदाय ही आकृष्ट नहीं था[2] अपितु पशु-पक्षी, लता, वृक्ष, गिरि, कन्दरा, सरिता, सरोवर, कूप, तड़ाग सभीको उन सर्वात्मनामें पूर्ण आकर्षण था, अनूठा अनुराग था।[3]

प्रेम-विवर्त-विलास :

प्रेम-सिद्धान्तमें विवर्त्तवादका प्रयोग किया जाता है, प्रेममें आकृतिको विवर्त ही मानते हैं। प्रेम तत्व है, धातु है, उसमें मिलने और बिछुड़नेवाली जो आकृतियाँ है उन्हें 'विवर्त' कहते हैं। सम्भोगकी चरम अवस्था विवर्तका विलास है। रतिसे लेकर महाभाव पर्यन्त समस्त भावोंके उद्‌गममें उल्लसित भाव मादन-भाव हैं। प्रेम-विवर्त मादन-महाभावकी भी चरम अवस्था है। यह ह्लादिनीका चरमसाररूप है। जिसका शुकदेव स्पष्ट रूपसे नाम नहीं ले सके, बस राधिकामें ही यह विराजमान है।[4]

---

१. भागवत ७।१४।३५

२. धारयन्त्यतिकृच्छ्रेण प्रायः प्राणान् कथंचन्।
प्रत्यागमनसंदेशैर्बल्लव्यो मे मदात्मिकाः ॥ –भागवत १०।४६।६

३. वही १०।१५।८

४. सर्वभावोद्‌गमोल्लासी मादनो यं परात्परः।
राजते ह्लादिनीसारो राधायमेव यः सदा ॥ –उज्ज्वल नीलमणि पृष्ठ ५५३

'विवर्त' शब्दका मुख्य अर्थ श्रीजीवगोस्वामीने 'परिपाक' किया है। विश्वनाथ चक्रवर्तीके अनुसार इसका अर्थ है 'विपरीत'। विवर्तका 'भ्रम' अर्थ साधारणतः सभी जानते है। प्रेम-विलास विवर्तके सन्दर्भमें इन तीनों अर्थोकी पूरी सार्थकता है। इसके बिलासकी कभी उपरति नहीं होती, कभी तुष्टि नहीं होती, प्रशान्ति नहीं होती। उत्कण्ठा ही वर्द्धित होती चली जाती है। केलि-विलासकी ही चेतना रहती है, विस्मृत हो जाता है कौन रमण है और कौन रमणी। शेष रहती है विविड़तम तन्मयता 'दुहुं मन मनोभव पेषल मानि।' ऐक्यका आभास होते हुये भी पार्थक्यका अस्तित्व नित्य है।[1] इसको कविकर्ण-पूरके शब्दोंमें 'परैक्य' कहा जा सकता है। इसमें एक विलक्षण चमत्कारित्व और आकर्षण है, अनन्त भाव है, अनन्त तृष्णा है। यह सर्वापेक्षा गुरुतम है, पर है गौरव-वर्णित–

राधिकार प्रेम गुरु आमि शिष्य नट।[2]

अनिर्वचनीय यह प्रेम-विवर्त संयोगमें ही उत्पन्न होता है। इसके नित्य-लीला-रूपी विलास हजारों प्रकारसे होते है। कामशास्त्रमें वर्णित बारह और चौसठ संख्याको छोड़कर इस बिलासमें हजारों प्रकारके आलिंगन और चुम्बन होते है। अखिल संभोग-संयोग होते हैं। विप्रलम्भमें प्रकाश-भेद होता है। इसकी गति अत्यन्तरूपसे मदनके लिए भी दुर्गम है अर्थात् कामका वहाँ प्रवेश नहीं है।[3]

रसराज श्रीकृष्णकी रसके पूर्णतम आस्वादनकी साध पूरी होती है– प्रेम-विलासकी चरम अवस्था 'विवर्त' विलासमें। श्रृंगार रसरूपी निगुण शिल्पी राधा-कृष्णके चित्तरुपी दो लाक्षा-खण्डोंको द्रवीभूत कर एक-एक कर

---

१. राधा कृष्ण ऐछे सदा एकइ स्वरूप।
लीलारस आस्वादिते धरे दुइ रूप॥ –चैतन्य चरितामृत १।४।८५

२. वही १।४।१६८

३. मादनस्य गतिः सुष्ठु मदनस्येव दुर्गमा।
न निर्वक्तुं भवेच्छम्या तेनासौ मुनिनाप्यलम्॥ –उज्ज्वल नीलमणि पृष्ठ ५५७

देता है और प्रचुर नवानुराग सिन्दूर द्वारा अनुरंजित कर उन्हें एक अनिवर्चनीय, अथाह आनन्दाम्बुधिमें निमज्जित कर देता है।[1]

पुरुषार्थ : धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष

महाभारतमें पुरुषार्थ-चतुष्ट्यका वर्णन करके बादरायणकी क्षुब्धता बनी रही, तब भागवतमें दशम स्कन्धमें आश्रय-लीलाका वर्णन करके एकादश स्कन्धमें पुनः धर्मादिका वर्णन किस प्रयोजनसे किया - एक अहम् प्रश्न है। भागवतके पात्र जो श्रीकृष्णके अतिरिक्त किसी वस्तुको जानते ही नहीं, अकैतव प्रेम करने है उनसे। नित्य रूप, असीमित आनन्द रूप श्रीकृष्णकी असीम और अनित्य पुरुषार्थसे प्राप्ति कैसी ? सर्वश्रेष्ठ काम्य वस्तु है श्रीकृष्ण; अतः सर्वश्रेष्ठ पुरुषार्थ भी वही हैं। अर्थ और कामकी तो कोई पुरुषार्थता ही नहीं है। ये धर्मसे मोक्ष-प्राप्तिके साधन-मात्र हैं। धर्मके लिये तो भागवतमें स्पष्ट रूपसे कहा है कि यदि धर्म भगवत्-कथादिमें रति न जन्मा सके, तो वह श्रममात्र ही है—

धर्मः स्वनुष्ठितः पुंसां विष्वक्सेनकथासु यः।
नोत्पादयेद् यदि रतिं श्रम एव हि केवलम्॥[2]

श्रीभगवान् भी कहते हैं जिनकी मेरी चरणोंमें भक्ति उत्पन्न नहीं हुई है, उन्हींके लिये पुरुषार्थ-चतुष्ट्यका विधान है। भक्तके लिये तो न तो इन पुरुषार्थोंका स्मरण रहता है, न कोई अस्तित्व है और न समय

तावत् कर्माणि कुर्वीत न निर्विद्येत यावता।
मत्कथा श्रवणादौ वा श्रद्धा यावन्न जायते॥[3]

भगवत्कथा और भगवद्-भक्तिके माहात्म्यमें कहा गया है - धर्मका फल है मोक्ष। उसकी सार्थकता अर्थ-प्राप्तिमें नहीं है। अर्थ केवल धर्मके लिये है। भोग-विलास उसका फल नहीं है। अपने-अपने वर्ण तथा आश्रमके अनुसार

---

१. राधाया भवतश्च चित्तजतुनी स्वेदैर्विलाप्य क्रमाद् -
युंजन्नद्रिनिकुंज कुंजरपते निर्धूत भेद भ्रमम्।
चित्राय स्वयमन्वरंजयदिह ब्रह्माण्ड हर्म्योदरे
भूयोभिर्नवरागहिंगुल भरैः श्रृंगार कारुः कृति॥ —उज्ज्वल नीलमणि स्थायि प्रकरण १५३

२. भागवत १।२।८, ३. वही १०।२०।९

मनुष्य जो धर्मका अनुष्ठान करते हैं, उसकी पूर्ण सिद्धि इसीमें है कि भगवान् प्रसन्न हों,[1] और भगवानके चरणोंमें भक्तिभाव प्राप्त कर लें।[2]

सायुज्य, सालोक्य, सारूप्य, सार्ष्टि और सामीप्य-रूप मोक्षका तिरस्कार भक्तों द्वारा नित्य ही होता है, पूर्व प्रसंगोंमें स्पष्ट कर ही दिया है। भगवानका साक्षात्कार होनेपर तो ध्रुवने यही कहा था—

त्वत् साक्षात्कारणाह्लाद विशुद्धाब्धिस्थितस्य मे।
सुखानि गोष्पदायन्ते ब्रह्मण्यपि जगद्गुरो ॥[3]

अर्थात् हे जगद्गुरो, तुम्हारा साक्षात्कार जनित आनन्द समुद्रके समान है जिसकी तुलनामें ब्रह्मानन्द 'गोष्पद' के समान है। मोक्ष तो कैतवोंमें प्रधान कैतव है।

परम पुरुषार्थ : प्रेम

पंचम पुरुषार्थ प्रेमानन्दामृत सिन्धु।
ब्रह्मादि आनन्द जार नहे एक बिन्दु ॥[4]

हृदयमें अकैतव प्रेमका होना अति दुर्लभ है। रतिका अंकुर यदि उत्पन्न भी हो जाय तब भी इस पुरुषार्थकी प्राप्ति महादुर्लभ है। भागवतमें तो इस प्रेमके कारण सारी अनेकताएँ स्वाभाविक ही एकताके रूपमें परिणत हैं। भागवतीय लीला-प्रबन्धका केन्द्र ही 'प्रेम' को परम पुरुषार्थ मानना है—प्रेमा पुमर्थो महान्। इस पुरुषार्थकी प्राप्ति हुई है एकमात्र गोपियोंको। भागवत प्रबन्धका फल इसी भावके प्रति लालसा है कि गोपियोंकी चरणरेणु प्राप्त हो—

आसामहो चरणरेणुजुषामहं स्यां, वृन्दावने किमपि गुल्म लतौषधीनाम्।
या दुस्त्यजं स्वजनमार्यपथंच हित्वा, भेजुर्मुकुन्दपदवीं श्रुतिभिर्विमृग्याम् ॥[5]

भगवान् श्रीकृष्णमें भी गोपियों वाला प्रेम नहीं है, तभी तो उन्होंने गोपियोंसे कहा है 'मेरे प्रेममें दोष मत निकालो—मासूयितुं मार्हथ तत् प्रियं प्रियाः।'[6] प्रेमके परम-पुरुषार्थके रूपमें ही मात्र गोपियाँ ही प्रमाण है—प्रमाणं

---

१. वही १।२।१३, २. वही ६।३।२२ ३. हरिभक्ति सुधोदय १४।३६
४. चैतन्य चरितामृत १।७।८५, ५. भागवत १०।४७।६१
६. वही १०।३२।२२

तत्र गोपिका: ।' ये भगवानकी निगूढ़ प्रेम-भाजन हैं । चीरहरण प्रसंगमें भी श्रीकृष्णने कुमारियोंसे छल भरी बातें कीं, उनका लज्जा-संकोच छुड़ाया, हँसीकी और उन्हें कठपुतलियोंके समान नचाया, यहाँ तक कि उनके वस्त्र तक हर लिये, फिर भी वे उनसे रुष्ट नहीं हुई, उनकी इन चेष्टाओंको दोष नहीं माना, बल्कि अपने प्रियतमके संगसे वे और भी प्रसन्न हुई, और भी ।[१] एक विद्वानके अनुसार–

Prema, in its instrinsic nature is itself a dense, consolidated and ecstatic bliss or ananda. Prema once owakened never ceases even if there be strong grounds of a break or cessation. prema Possesses the supreme power to attract Even Sri Krsna, who is the all-attractor.[२]

परमतम पुरुषार्थ : व्रजका कान्ता प्रेम

व्रजका कान्ता प्रेम 'साध्यकी अवधि' है ।[३] गोपियोंने भगवान् श्रीकृष्णका रस-पान सर्वेन्द्रियोंसे किया है और यह योग्यता केवल व्रजकी स्त्रियोंमें ही है, गोपोंमें नहीं है । भागवत रसिकों द्वारा व्रजमें कान्ता-भावसे श्रीकृष्णकी सुखैक-तात्पर्यमयी प्रेम-सेवा ही सर्वसाध्यसार है । यह भाव अप्राकृत है, जड़ीय नहीं । लीला-शक्तिके द्वारा विभावित परम शुद्ध रूप गोपी शरीर चिद्-भावनामय है । व्रजरति-निष्ठ रागानुगा मार्गके निष्किचन वैष्णव साधकोंका आस्वाद्य विषय है । गोपियों द्वारा दैन्य-भावसे आत्मसमर्पण हुआ है । ये व्रज-कान्ताएँ अच्युत, शुद्ध निर्हेतुक भगवत्प्रेमका सच्ची और पूर्ण आदर्श हैं । रासलीला स्त्रीभावकी प्राप्ति है । स्त्रीभाव परमानन्दरुपता है । व्रजकी गोपियाँ धन्य हैं । भगवान् तो गोपियोंके भाग्यमें ही बदे हैं । धन्या व्रजस्त्रिय उरुक्रम चित्तयाना: ।[४]

---

१. भागवत १०।२२।२१

२. Sri Caitanya's concept of Devine love In 'Sovrenier' Bhajan Ashram, Calcutta-8. 21st Oct.,83 by Dr. Swami B. H. Bon Maharaj.

३. चैतन्य चरितामृत २।८।६५–एइ साध्यावधि सुनिश्चय–प्रभु कहे

४. भागवत १०।४४।१४–१५

इन गोपियोंने भगवानकी इस प्रतिज्ञाको भी झूठला दिया है कि ये यथा मां भजन्ते तांस्तथैव भजाम्यहम्।[1] श्रीकृष्ण इनके प्रेमके ऋणी हैं।

प्रेम वही है 'यथा व्रजगोपिकानां।' नारदसूत्रमें कहते हैं–'अतएव तद्भावाद् वल्लवीनाम्।' भावलोकके कान्तदर्शी आचार्योंकी घोषणा है–

स्त्रिय एव हि तं पातु शक्तास्तासु ततः पुमान्।
अतो हि भगवान् कृष्णः स्त्रीषुरेमे ह्यहर्निशम्॥[2]

इस भावकी प्राप्तिमें कोई व्यवधान नहीं रहता। श्रीपुरुषोत्तम-रसकी योग्यता ही वस्तुतः गोपीभाव है–

If thy soul is to go into higher blessedness, it must become a woman, yes, however mainly thou mayest be among-man. –(Newman)[3]

यह डिमडिमनाद ही वैष्णवोंका लक्ष्य है।

आसक्ति :

मुक्ति पर्यन्त पुरुषार्थकी आकांक्षाका सर्वतोभावेन परित्यागकर जब भगवच्चरणारविन्दोंमें प्रगाढ़ रुचि परिपक्व दशामें उपस्थित होती है तब उसे आसक्ति कहते हैं। वीरराघव इसे 'प्रपत्ति' भी कहते हैं।[4] रुचि प्रगाढ़ होनपर आसक्तिका रूप धारण करती है। आसक्तिकी अवस्थामें चित्त भजनमें उतना आसक्त नहीं रहता, जितना भजनीय विषय श्रीभगवानमें आसक्त होता है। आसक्तिका प्रधान विषय भगवान् है। आसक्तिमें चित्त ऐसा निर्मल हो जाता है कि उसमें प्रतिबिम्बित होनेवाले भगवान् सहसा दीखते हुये-से जान पड़ते हैं।[5]

आसक्तिकी अवस्थामें भगवान् भक्तके हृदय और मस्तिष्कपर इस तरह छा जाते हैं कि भक्तका हाव-भाव, बोल-चाल, आहार-विहार सभी तो असंलग्न और असंबत ही प्रतीत होता है। ऐसी ही है उसके भगवत्-प्रेम

---

१. भगवद्गीता ४।१२ २. सुबोधिनी १०।२६।४ भाष्य
३. श्रीमद्वल्लभ : दर्शन एवं भक्ति सिद्धान्त : प्रतिभा व्यास : श्रीवल्लभ प्रकाशन अलीगढ़ १९७८, पृष्ठ ५९–६०
४. भागवत-चन्द्र-चन्द्रिका ७।५।२३–२४
५. माधुर्य-कादम्बिनी, विश्वनाथ चक्रवर्ती ६।१

प्राप्तिकी तीव्र उत्कण्ठा। कर्मी, वेदान्ती, मीमांसक कोई भी उसके भावको समझनेमें अक्षम है। भक्त कह उठते हैं 'आह ! इससे तो महासार वस्तुको प्राप्त कर लिया।'[1]

भागवतकी विभिन्न लीलाओंमें यह आसक्तिके भेद इस प्रकार संकेतित हैं–

१– वेणुगीत (अध्याय २१) रूपासक्ति, तन्मयतासक्ति
२– चीरहरण (अध्याय २२) तन्मयतासक्ति
३– रासलीला (रासपंचाध्याय) रुपासक्ति, गुणमाहात्म्यासक्ति, स्मरणासक्ति, दास्यासक्ति, सख्यासक्ति, आत्मनिवेदनासक्ति, तन्मयतासक्ति, परमविरहासक्ति।
४– युगलगीत लीला (अध्याय ३५) रूपासक्ति और तन्मयतासक्ति
५– कृष्ण-बलरामका मथुरा गमन (अध्याय ३९) रूपासक्ति, तन्मयतासक्ति, परमविरहासक्ति
६– उद्धवकी व्रजयात्रा (अध्याय ४६) तन्मयता एवं परमविरहासक्ति
७– उद्धव-गोपी संवाद एवं भ्रमरगीत(अध्याय ४०) रुपासक्ति, तन्मयतासक्ति, परमविरहासक्ति।

भक्तोंमें यह आसक्ति इस प्रकार है–

१– गुणमाहात्म्यासक्ति : नारद, शुकदेव, सूत, शौनक, परीक्षित, पृथु, जनमेजय आदि।
२– रुपासक्ति : ऋषि, व्रजगोपिका
३– पूजासक्ति : पृथु, अम्बरीष, भरत
४– स्मरणाशक्ति : प्रह्लाद, ध्रुव, सनकादि
५– दास्यासक्ति : अक्रूर, विदुर
६– सख्यासक्ति : अर्जुन, उद्धव, श्रीदामा
७– कान्तासक्ति : प्रधान अष्ट महिषी
८– वात्सल्यासक्ति : कश्यप, नन्द, यशोदा, वसुदेव, देवकी
९– निवेदनासक्ति : बलि, शिवि, अम्बरीष
१०– तन्मयतासक्ति : शुकदेव, सनकादि
११– परमविरहासक्ति : अर्जुन, उद्धव, व्रजनारी

1. माधुर्य कादम्बिनी ६।२

पूर्वोल्लिखित प्रसंगोंमें इन भक्तोंका और भक्तहृदयविहारिणी इस आसक्ति रूप लीलाका निरूपण हो चुका है।

प्रेमरससरोबारी गोपियोंमें यह आसक्ति इस प्रकारसे है–

१– गुणमाहात्म्यासक्ति

गोपियोंने विभिन्न प्रकारसे कृष्णके असमोर्द्ध रूपका, स्मितका, वाणीका, लीला और उसके माहात्म्यका गुणगान किया है। श्रीकृष्णके गुणोंपर न्यौछावर हैं ये गोपियां–

दृष्टो वः कच्चिदश्वत्थ प्लक्ष न्यग्रोध नो मनः।
नन्दसूनुर्गतो हृत्वा प्रेमहासावलोकनैः ॥[1]

२– रूपासक्ति

रूपके प्रति तो ये गोपियां इतनी आसक्त हैं कि निमेष बाधाको विधाताकी मूर्खता बताती हैं–

अटति यद् भवानह्नि काननं त्रुटिर्युगायते त्वामपश्यताम्।
कुटिलकुन्तलं श्रीमुखं च ते जड उदीक्षतां पक्ष्मकृद् दृशाम ॥[2]

३– पूजासक्ति

हरिनियों द्वारा अपने कमलनेत्रोंको श्रीकृष्णके चरणोंमें निछावर हुई देखकर गोपियां कहती हैं–

धन्याः स्म मूढमयोऽपि हरिण्य एता या नन्दनन्दनमुपात्तविचित्रवेषम्।
आकर्ण्य वेणुरणितं सहकृष्णसाराः पूजां दधुर्विरचितां प्रणयावलोकैः ॥[3]

४– स्मरणासक्ति

श्रीकृष्णके चरण-कमल ही गोपियोंके एकमात्र अवलम्बन है, वेउन्हें एक क्षणके लिए भी नहीं भूलना चाहती–

आहुश्च ते नलिननाम पदारविन्दं योगेश्वरैर्हृदि विचिन्त्यमगाधबोधैः।
संसारकूपपतितोत्तरणावलम्बं गेहं जुषामपि मनस्युदियात् सदा नः ॥[4]

---

१. भागवत १०।३०।५ २. वही १०।३१।१५
३. वही १०।२१।११, ४. वही १०।८२।४९

५– दास्यासक्ति

गोपियोंका दैन्य निवेदन है–'हमें अपनी दासीकेरूपमें स्वीकार कर लो, हमें अपनी सेवाका अवसर दो–

तन्नः प्रसीद वृजिनार्दन ते ङ्घ्रिमूलं प्राप्ता विसृज्य वसतीस्त्वदुपासनाशाः।
त्वत्सुन्दरस्मितनिरीक्षणतीव्रकामतप्तात्मनां पुरुषभूषण देहि दास्यम् ॥[१]

६– सख्यासक्ति

गोपियाँ अपने सखा श्रीकृष्णके वियोगमें अचेत हो जाती हैं, पुकारा करती है–

हा नाथ रमण प्रेष्ठ क्वासि क्वासि महाभुज।
दास्यास्ते कृपणाया मे सखे दर्शय संनिधिम् ॥[२]

७– कान्तासक्ति

गोपियों द्वारा कात्यायनी पूजामेंसंकल्प था 'नन्दनन्दन श्यामसुन्दर ही हमारे पति हों–

नन्दगोपसुत देवि पतिं मे कुरु ते नमः।
....................भूयनन्दसुतः पतिः ॥[३]

८– वात्सल्यासक्ति

पूतनाके उरस्थलपर निर्भीक खेलते हुये श्रीकृष्णको उठानेके लिये झटपट वहां पहुँच गयीं–

बालं च तस्या उरसि क्रीडन्तमकुतोभयम्।
गोप्यस्तूर्णं समभ्येत्य जगृहुर्जातसम्भ्रमाः ॥[४]

९– आत्मनिवेदनासक्ति

प्रेमविह्वला गोपियां कह रही हैं–'हम केवल तुम्हारे ही चरणोंमें प्रेम करती है, हमारा त्याग मत करो–

मैवं विभोऽर्हति भवान् गदितुं नृशंसं संत्यज्य सर्वविषयांस्तव पादमूलम्।
भक्ता भजस्व दुरवग्रह मा त्यजास्मान् देवो यथादि पुरुषो भजते मुमुक्षून् ॥[५]

---

१. भागवत १०।२९।३८,   २. वही १०।३०।४१
३. वही १०।२२।४–५,   ४. वही १०।६।१२,
५. वही १०।२९।३१

१०- तन्मयतासक्ति

वृन्दावन विहारी श्रीकृष्णकी लीलाओंका गोपियां प्रतिदिन आपसमें वर्णन करतीं और तन्मय हो जातीं, भगवानकी लीलायें उनके हृदयमें स्फुरित होने लगतीं—

एवंविधा भगवतो या वृन्दावनचारिणः
वर्णयन्त्यो मिथो गोप्यः क्रीडास्तन्मयतां ययुः ॥[१]

११- परमविरहासक्ति

गोपियोंकी विरह व्यथित वाणी है—

अहो विधातस्तव न क्वचिद् दया संयोज्य मैत्र्या प्रणयेन देहिनः ।
तांश्चाकृतार्थान् वियुनङ्क्ष्यपार्थकं विक्रीडितं तेऽर्भकचेष्टितं यथा ॥[२]

यह है कृष्ण-आसक्तिकी झांकी जो भागवतीय प्रेमका अत्युत्कर्षक रूप है । प्रेम महाधन है ।[३]

भागवतमें वर्णित सभी तत्व अपने अन्तिम रूपमें भक्तिमें परिणत होते हैं । भक्ति शब्दके भजन, सेवा, आश्रय, प्रीति आदि कई अर्थ है । लीलापरायण, लीला-प्रेमी ये भक्त, अनन्यभक्त, रजके कण-कणमें अपने उपास्यका दर्शन करते हैं, पृथ्वी, नक्षत्र और समुद्र सभीको प्रभुका शरीर (अंग-प्रत्यंग) मानकर प्रणाम करते है,[४] कहीं भी विशिष्ट सौन्दर्यका दर्शन कर भगवद्भावनामें विह्वल हो जाते हैं—

यत्र पश्यति सौन्द्र्य्यं करयोश्चरणादिषु ।
तत्र स्मृत्वा हरे रूपं विमुह्यत् यः स भक्तिमान् ॥[५]

मोक्षका तिरस्कार कर ये भक्त श्रीकृष्णके किसी भी भावमें तन्मय हो जाते हैं ।[६] भगवान् भी उसके पीछे-पीछे इसलिये फिरते हैं कि सर्वाधारताके कारण मुझमें रहनेवाले सभी कल्मष अन्यन्य भक्तके चरणोंकी रजके स्पर्शसे शान्त हों और मैं पवित्र बन जाऊं—

---

१. भागवत १०।२२।२०, २. वही १०।३६।१६
३. चैतन्य चरितामृत २।२०।१०६—१०
४. भागवत ११।२।४१ ५. भक्ति रहस्य ६।२२
६. भागवत ३।२६।११—१३

निरपेक्षं मुनिं शान्तं निर्वैरं समदर्शिनम् ।
अनुव्रजाम्यहं नित्यं पूयेयेत्यंघ्रिरेणुभिः ॥[1]

ऐसा है भागवतीय भक्ति-प्रीति और आसक्तिका सिद्धान्त । यही त्रिवेणी श्रीमद्‌भागवत में अजस्र रुपेण प्रवाहिता है—लीलाओंका इतना सुन्दर, आह्लादकारी सगम और कहाँ मिलेगा लहरें रूपी अनेक कथाएँ उत्थित हो रहीं हैं—जहाँ आनन्द है-निरतिशयानन्द और इसी आनन्द रूप श्रीकृष्णसे भागवतीय लीलाकी विकीर्णता सुबद्ध है, सुनियोजित है-यही भागवताकारका वैदग्ध है और है चातुर्य-चमत्कारित्व ।

१. भागवत ११।१४।१६

सप्तम स्तवक

लीला-रस और आनन्द

जिन्हें सुकृत ब्रह्म कहा गया है, वे परब्रह्म परमपुरुष भगवान् श्रीकृष्ण रसस्वरुप ही हैं 'रसो वै सः।' जीव इस रस-स्वरूप परब्रह्मको प्राप्तकर आनन्दित होता है। भगवान् ही जीवोंको आनन्द प्रदान करते हैं। हृदयाकाश-में आनन्द-स्वरूप ब्रह्म नहीं होते तो कौन जीवित रह सकता।[1] आनन्द स्वयं मूलतत्त्वका मौलिक स्वरूप है। वस्तुतः आनन्द ही मूलतत्व है। कहा गया है 'आनन्दो ब्रह्मेति व्यजानात्।'[2]

आनन्दस्वरुप और रसस्वरुप भगवानकी लीलाएँ भी इस परिधिमें समाविष्ट है। फलतः ये लीलाएँ भी रसस्वरुपा और आनन्दस्वरूपा हैं। भागवतीय प्रबन्ध योजनाका स्वरूप भी रसस्वरूप और आनन्दस्वरूप है। इसके प्रतिपाद्य भगवान् श्रीकृष्ण रस-समूह हैं 'स एव रसानां रसत्तम,।'[3] अतः लीलाएँ भी तद्‌भावमयी हैं। भागवतके श्रोताओं और वक्ताओंको भी 'रसिकाः भावुकाः' कहा है। इनकी विशेषता है ये परमानन्दमें ही रहते हैं। लीलाओंसे प्रत्यक्ष ही रसास्वादनका संकेत भागवतमें है। इसमें निवृत्त-तृष्ण शुकदेवको भी रस मिला, यह भागवतीय प्रबन्धके परमरसात्मक होनेका प्रमाण है। रससे बढ़कर आनन्दकी कल्पना नहीं है। रस परमानन्दताके आवृत्त होनेसे अल्पा- नन्द एवं साकांक्ष हो जाता है।

---

१. यद्वै तत् सुकृतम् रसो वै सः। रसं ह्येवायं लब्धवानन्दी भवति को ह्येवान्यात् कः प्राण्यात्।

यदेष आकाश आनन्दो न स्यात्। एष ह्येवा नन्दयति॥ श्वेतश्वेतरोपनिषत् २।७

२. तैत्तिरीयोपनिषत् ३।६

३. छान्दोग्योपनिषत् १।१।२

रस विचार :

नाट्य-शास्त्रके प्रणेता भरत मुनिने अपने ग्रन्थमें केवल आठ रसोंको ही मान्यता दी।[१] परम्पराकी परिपाटीसे इन्होंने भक्तिको रस नहीं माना। अथच मम्मटने भी भक्तिको (देवादि विषयक रति) रस नहीं माना, इसे भाव ही माना।[२] धनंजयने भी भक्तिको व्यभिचारी भाव माना।[३] पण्डित-राज जगन्नाथने भक्तिको स्थायी अनुराग तो माना, पर रस तक नहीं पहुँच सके। यही स्थिति साहित्यदर्पणकार विश्वनाथके साथ रही। उन्होंने भी इसे भाव ही माना। हाँ ! वत्सल रसकी स्थापना की।[४] मोक्ष तो पुरुषार्थ है, अतः रस नहीं हो सकता। किन्तु भक्ति तो भाव है, यदि भक्तिमें भावकी उत्कर्षता है, तो रसमें भी भावका अत्युकर्ष रूपसे स्थायित्व है। जो रस है उसका लीलादर्शन भी रसमूलक है किंवा उसमें परिपूर्ण रसत्व है। भक्ति चिद्विषयक भाव है, प्राकृत अथवा जड़ीय नहीं। लौकिक भाव रसजनक नहीं है। भगवद्-रस ही शाश्वत है। लौकिक भाव सुखरूप नहीं है, अतः उनमें चिन्मय, नित्य और शाश्वत स्वरुप रस हो भी किस विधि सकता है। भक्तिमय रस ही भक्तिरस है, रस है। काव्य सम्प्रदायके आचार्य अप्राकृत रसका प्राकृतमें अभिनिवेश करते ही क्यों ? भक्तिरसका सन्धान काव्य-शास्त्र-में होना ही नहीं चाहिये,[५] भगवद्रस प्रतिपादक उपनिषदोंका अवलम्बन ही श्रेयस्कर है जो कहते हैं 'रसो वै सः'[६] भागवत इसी श्रुतिका विस्तार है। यह भक्तिको विशद एवं सर्वोत्तम रस रूपमें प्रतिष्ठित करनेवाला पूर्ण महाग्रन्थ

---

१. भागवत विचार दोहन, स्वामी अखण्डानन्द सरस्वती, सत्साहित्य प्रकाशन ट्रस्ट, बम्बई–६, पृष्ठ १८

२. शृंगार हास्य करुण रौद्रवीर भयानकाः ।
बीभत्साद्भुतसंज्ञौ चेत्यष्टौ नाट्ये रसाः स्मृताः ॥ –नाट्यशास्त्र ६।१६

३. काव्यप्रकाश ४।३५–३६

४. दशरुपक ४।८३

५. साहित्य दर्पण ३।२६०

६. भगवान् परमानन्दस्वरुपः स्वयमेव हि ।
मनोगतस्तराकारो रसतामेतिपुष्कलम् ॥ –भक्तिरसायन १।१०

७. चैतन्य-सम्प्रदाय : सिद्धान्त और साहित्य : डा० वंसल, विनोद पुस्तक मन्दिर, आगरा १९८०,पृष्ठ ११८

है। यहाँ शुद्ध रस है। कारण भी रस रूप है और कार्य भी। स्वयं-भगवान् कहते हैं–मेरा भक्त भक्ति रसमें विभिन्न संचारी भावोंको व्यक्त करता है–

वाग् गद्‌गदा द्रवते यस्य चित्तं रुदत्यभीक्ष्णं हसति क्वचिच्च।
विलज्ज उद्‌गायति नृत्यते च मद्‌भक्तियुक्तो भुवनं पुनाति ॥[1]

यह समस्त विकार भावके बिना उदित नहीं हो सकते। अतः रसास्वादनका परिचय मिलता है एवं रसका चिन्मयत्व, अप्राकृतत्व, नित्यत्व सिद्ध होता है। रसशास्त्रवेत्ता श्रीकृष्णको रसाश्रय मानते हैं। रसका एक ही नाम है 'अखिल रसामृमूर्ति परब्रह्म श्रीकृष्ण'। वत्सल सख्यादि नाम रससे जुड़े हुए हैं, ये नाम रसमें नहीं है। यथार्थमें तो इसका पर्यवसान श्रीकृष्णमें ही है।

रसकी सिद्धि अनुभूतिमें है, कथनमें नहीं। अतः रस अनुभवैकवेद्य है, इसका निरूपण नहीं किया जा सकता।[2] रसकी पूर्ण वृत्तियाँ रसामृतसिन्धुमें ही उठती है और इसके तीन नाम हैं–भक्त और भागवत एवं भगवान।

रसका स्वरूप और सामग्री :

रसात्मक चेतना मानवकी परम चेतना है, यह जागतिक नहीं है। मधुर-भक्ति ही रसाचार्योकी दृष्टिमें रस है। 'रस' शब्द वाच्य होनेके कारण ही यह राग-स्वरूप है।[3] देवादि विषयक भाव रति है, किन्तु श्रीकृष्ण तो परब्रह्म है और उनसे सम्बन्धित होनेसे ही परमभाव 'रस स्वरुप' है–

नवरसमिलितं वा केवलं वा पुमर्थं।
परममिह मुकुन्दे भक्तियोगं वदन्ति ॥[4]

स्वयंप्रकाश एवं अनन्त आनन्दस्वरूप भगवानसे सम्बन्धित सभी पदार्थ भी तद्‌रूप हैं। उनमें जड़ता अथवा चेतनताका भेदाभाव है–वे सबके

१. भागवत १०।१४।२४
२. सिद्धान्त रहस्यम्–महाप्रभु वल्लभाचार्य : हिन्दी व्याख्या : डा० गोवर्धननाथ शुक्ला, वल्लभ शोध संस्थान, अलीगढ़ १६७८ पृष्ठ ३६
३. द्वेषप्रतिपक्षभावाद्रसशब्दाच्चरागः। शाण्डिल्यभक्तिसूत्र ६
४. भक्तिरसायन : मधुसूदन १।१

सब एकरस हैं।[१] श्रीविश्वनाथ चक्रवर्तीपादने कहा है–'ह्लादिनी शक्तिकी सारभूता लक्ष्मी आदिकी भाँति इन रसोंकी मूर्तिमानता सगत है। इस प्रकार रस परब्रह्मकी अभिव्यक्तिका ही नाम है, वह चैतन्य चमत्कार रूप है–

आनन्दः सहजस्तस्य व्यज्यते स कदाचन।
व्यक्तिः सा तस्य चैतन्यचमत्कार रसाह्वया॥[२]

यह चतुवर्ग रूप फलके आस्वादसे भी बढ़कर चमत्कार उत्पन्न करता है–

चतुवर्गफलास्वादमप्यतिक्रम्य तद्विदाम।
काव्यामृतरसेनान्तश्चमत्कारो वितन्यते॥[३]

इसी परिपूर्ण, परम रसका पान करनेके लिये भक्तजन सुखलेश वर्जित वैशेषिक प्रतिपादित मोक्षकी अपेक्षा वृन्दावनके सरस निकुंजोंमें शृगाल बनकर जीवन व्यतीत करना अच्छा समझते हैं–

वरं वृन्दावने रम्ये शृगालत्वं वृणोम्यहम्।
वैशेषिकोक्तमोक्षात्तु सुखलेशाविवर्जितात्॥[४]

काव्यका प्राण ही रस है। जो 'रस' है, वह स्वयं 'ब्रह्म' है, स्वयं ब्रह्म है, स्वयं 'वह' क्योंकि 'वह' स्वयं 'रस' है।[५] श्रीकृष्ण ही रसनीय है।[६] रस आस्वाद्य है। विषयगत अर्थात् काव्य-सौन्दर्यका आस्वाद ही रसका स्वरुप है। इसमें अद्‌भुत चमत्कारित्व है–

रसो सारश्चमत्कारो यं विना न रसो रसः।
तच्चमत्कारसारत्वे सर्वत्रैवाद्‌भुतो रसः॥[६]

भरतमुनिने रसकी अभिव्यक्तिका लक्षण सूत्ररूपसे किया है–'विभावानुभाव व्यभिचारिसंयोगाद्रसनिष्पत्तिः।' भक्तिरसायनकार कहते हैं–

---

१. सत्यज्ञानानन्तान्दमात्रैकरसमूर्तयः – भागवत १०।१३।५४ पूर्वार्द्ध
२. अग्निपुराण ३३९।२
३. वक्रोक्ति जीवितम् : कुन्तक १।५
४. सर्वसिद्धान्तसंग्रह पृष्ठ २८
५. कृष्णो वै हरिः परमं देवतम्, तं ध्यायेत तं रसेत्–श्रीसर्वेश्वरका रसोपासना अंक श्रीधाम, वृन्दावन, वर्ष २५ अंक १–३ पृष्ठ ४३
६. अलंकार कौस्तुभ ६।५।७

विभावैरनुभावैश्च व्यभिचारिभिप्युत ।
स्थायी भावः सुखत्वेन व्यज्यमानो रसः स्मृतः ॥[1]

और स्पष्ट करते है कि काव्यके अर्थमें रहनेवाले इत्यादि स्थायीभाव लौकिक हैं और रसानुभाविता सामाजिकोंमें रहनेवाले ही वे ही स्थायीभाव समानविषयक होनेपर भी अलौकिक होते हैं।[2] कारण, कार्य एवं सहकारी रूपसे लोकमें जो रस निष्पत्ति होती है, सामग्री कही जाती है, वही विभावादि है। कारणको विभाव, कार्यको अनुभाव एवं सहकारि भावको व्यभिचारी भाव कहा जाता है। कृष्ण रति है। वही स्थायी भाव रूपी रति विभाव, अनुभाव, सात्विक तथा व्यभिचारी भावोंसे मिलनेपर रसत्वको प्राप्त होती है।

विभाव :

जिसके द्वारा रति विभावित, आस्वादित अथवा तरंगायित होती है, उसे विभाव कहते हैं। श्रीकृष्ण-भक्ति रसके विषय हैं और भक्त आश्रय है। भागवत-भक्ति रसका विभाव-आलम्बन और उद्दीपन नामक दो भेदोंमें विभक्त है।

आलम्बन :

इस रसके आलम्बन श्रीकृष्ण हैं, जो स्वयं रस ही हैं। कृष्ण 'नायकानां शिरोरत्नं' है और स्वयं भगवान् है। साहित्य-शास्त्रोक्त नायकोंके चार भेदोंको कृष्णमें भी माना गया है। धीरललित विशेष स्पष्ट रूपसे कृष्णमें है, किन्तु लीला विशेषशाली होनेके कारण निर्दोष स्वयं भगवान् कृष्णमें धीरोद्धत गुण भी माना गया है।[3]

उद्दीपन :

श्रीकृष्ण एवं उनकी प्रिया-गणके गुण, नाम, चरित्र तथा भूषण सम्बन्धी तटस्थ वस्तुओंको उद्दीपन कहते हैं। इस रसमें नायक-नायिकाके

---

१. (क) भक्तिरसायन : मधुसूदन सरस्वती ३।२
   (ख) विभावैरनुभावैश्च सात्विकैर्व्यभिचारिभिः ।
   आनीयमानः स्वाद्यत्वं स्थायी भावो रसः स्मृतः ॥ - दशरूपक४।१

२. भक्तिरसायन ३।४

३. अष्टादश महादोषैः रहिता भगवत्तनुः ।
सर्वैश्वर्यमयी सत्यविज्ञानानन्दरूपिणी ॥ भक्तिरसामृतसिन्धुमें उद्धृत वैष्णव तन्त्रका वचन, पृष्ठ १६८

परस्पर विषय-आश्रय-भावके कारण परस्परके गुणादिक परस्परके उद्दीपन होते हैं।[१] इस रसमें प्रमुख रूपसे श्रीकृष्णके गुण-समूह ही उद्दीपक रूपसे कहे जाते हैं। इसके साथ ही रस-धाम वृन्दावनकी लता, प्रसून, भ्रमरावलि निविड़-निकुंज, चन्द्रज्योत्सना, श्रीयमुनाकी तरल तरंगें और त्रिविध समीरादि रससम्पत्ति भी इस रसके उद्दीपन है। संक्षेपतः रति आदि भावोंके उद्बोधक 'विभाव' ही है।[२]

अनुभाव :

भक्तके चित्तमें अवस्थित कृष्ण-रतिको देखा नहीं जा सकता; परन्तु कृष्णरतिके आविर्भूत होनेपर उसके देहादिमें और आचरणमें कुछ लक्षण प्रकाशित होते हैं जो इसके परिचायक होते हैं - जैसे नृत्य, विलुण्ठन, गीत, चीत्कार, हुंकार, दीर्घश्वास, अट्टहास्य, अश्रु, कम्प, स्वेद, पुलक, स्तम्भादि इन्हें अनुभाव कहते है।[३] नृत्यादिकी प्रवृत्ति बुद्धिपूर्विका है। अनुभाव दो प्रकारके हैं - उद्भास्वर और सात्विक। अनुभाव वाचिक भी होते हैं।

उद्भास्वर :

भाव-विशिष्ट जनके शरीरमें जो प्रकाशित होता है, वह उद्भास्वर कहा जाता है।[४] जम्हाई, निश्वास आदि उद्भास्वर हैं। वाचिक रूपमें आलाप,[५] विलाप[६] आदि भी उद्भास्वर है।

सात्विक :

सत्त्व (कृष्ण सम्बन्धी भावोंसे आक्रान्त चित्त) से जो भाव उत्पन्न होते है, उनको सात्विक भाव कहा जाता है। अभिव्यक्तिकी उज्ज्वलताके

---

१. उद्दीपनविभावा हरेस्तदीयप्रियाणां च।
कथिता गुणनामचरित्रमण्डन सम्बन्धिनतटस्थाश्च॥ उज्ज्वल नीलमणि पृष्ठ २८०

२. रत्याद्युद्बोधिका लोके विभावाः काव्यनाट्ययोः॥ साहित्य दर्पण ३।२९

३. भक्तिरसामृत सिन्धु २।२।१

४. उद्भासते स्वधाम्नीति प्रोक्ता उद्भास्वरा वुधैः। उज्ज्वल नीलमणि पृष्ठ ३४९

५. भागवत १०।२९।४०,   ६. वही १०।४७।४७

तारतम्यानुसार प्रत्येक सात्विक भावकी चार अवस्थाएँ है- धूमायित, ज्वलित, दीप्त और उद्दीप्त ।[1] सुद्दीप्त चरम अवस्था है जिसमें सभी सात्विक भाव एक साथ सुष्ठुरुपसे उद्दीप्त होते है । यह श्रीकृष्णकी परमप्रियतमा 'राधा' में ही है जो महाभाववती है । ये सात्विक भाव आठ प्रकारके है - स्तम्भ,[2] स्वेद, रोमांच, स्वरभेद,[3] कम्पन, विवर्णता, अश्रुनिपात[4] और मूर्च्छा ।[5]

रोमांच जैसे-

तं काचिन्नेत्ररन्ध्रेण हृदिकृत्य निमील्य च ।
पुलकांगयुपगुह्यास्ते योगीवानन्दसम्प्लुता ।।[6]

व्यभिचारी भाव :

अभिमुख्येन स्थायीभावके साथ संचरणशील होनेके कारण व्यभिचारी भाव कहे जाते है । ये व्यभिचारी भाव स्थायीभाव रूप अमृतार्णवमें लहरोंके सदृश उन्मज्जित और निमज्जित होते हैं, लहरोंके सदृश उसको बढ़ाते और तद्रूपताको प्राप्त होते है ।[7] ये व्यभिचारी भाव भावकी गतिको संचारित करते है, इसलिये इन्हें संचारी भाव कहते है । ये तैंतीस है जैसे - विषाद,[8] दैन्य,[9] मोह,[10] अमर्ष[11] आदि । श्रीकृष्णकी प्रेयसियोंके नित्य सिद्धत्वके कारण 'मृति' का होना असम्भव है ।

स्थायीभाव :

जो भाव प्रेमकी सब क्षणिक अभिव्यक्तियोंको और प्रेमके विरुद्ध भावोंको दबाकर निरन्तर उत्तम राजाके समान शोभित होता है, वह स्थायी भाव कहलाता है । श्रीकृष्ण विषयक रति ही स्थायी भाव कही जाती है ।[12] रति, प्रेम, स्नेहसे महाभाव पर्यन्त कृष्णभक्ति-रसके स्थायीभाव है । रतिके प्रादुर्भाव होनेको लोक रीतिसे कारण समूह कहते है । अभियोगसे, विषयसे,

---

१. भक्तिरसामृतसिन्धु २।३।२८, २. भागवत १०।१३।५-६
३. वही १०।१३।६४, १०।३६।५६-५७ ४. वही १०।६०।२३
५. वही १०।३६।१५ ६. भागवत १०।३२।८,
७. भक्तिरसामृत सिन्धु २।४।१-३ ८. भागवत १०।२१।७,
९. भागवत १०।२६।३८ १०. भागवत १०।२१।१२,
११. भागवत १०।६०।४४
१२. चैतन्य चरितामृत मध्य लीला, १६।१५४-५५,

सम्बन्धसे, अभिमानसे, तदीय विशेषसे, उपमा एवं स्वभावसे वह रति आविर्भूत होती है। पूर्व-पूर्वसे पर-पर उत्तम है—

सा तदीयविशेषेभ्यः उपमातः स्वभावतः।
रतिराविर्भवेदेषामुत्तमत्वं यथोत्तरम् ॥[1]

निष्कर्षतः जिन भावोंके मिलनेसे रति आस्वादन योग्यताको प्राप्त करके भक्ति-रसमें परिणत हो जाती है और जो भाव इस भक्ति-रसमें नित्य ही प्रधान भावसे विराजमान हैं, वे भक्तिरसके स्थायीभाव है। स्थायीभाव ही है रसका मूल। विभाव है रसका हेतु। अनुभाव और सात्विक भाव है रसके कार्य। संचारी या व्यभिचारी भाव है रसके सहाय। स्थायीभावोंसे विभाव, अनुभाव, सात्विक एवं व्यभिचारी भाव आकर मिलनेसे कृष्ण भक्ति-रस अपूर्व अमृत तुल्य आस्वादनको प्राप्त होता है।[2] 'कृष्ण रति' का विकास या प्रकाश बारह स्थायीभावोंमें होता है जिनमें पांच मुख्या रतिके अन्तर्गत और सात गौणी-रतिके अन्तर्गत है।

रसाब्धि श्रीकृष्ण सम्पूर्ण रसोंके आलम्बन :

गोकुलमें लिया हुआ भगवानका अवतार, रसावतार है। यहाँकी लीलाओं का प्रयोजन भक्तोंको भगवद्-स्वरूपका, लीलारूपका रसास्वादन कराना है। भावानुकूल आराध्य ब्रजराज रसाब्धि श्रीकृष्ण अपने रसस्वरूपमें सम्पूर्ण रसोंके आलम्बन है। उनकी लीला माधुरीमें विभिन्न रसोंके दर्शन होते है। पूर्णावतारी श्रीकृष्णके अनेक अवतारोंमें भी रस-वैविध्य अभिव्यक्त है। श्रीकृष्णके भक्तोंकी भक्ति-रतिमें भी विविध रसोंका स्फुरण है। यथा—

१. उज्ज्वल नीलमणि पृष्ठ ४३३

२. भक्तिरसामृतसिन्धु २।५।१–२

भागवतमें कृष्ण और रस

रस	वर्ण	विविध अवतार	रसाधिकी लीला	भागवतके श्लोक संख्या
शान्त	श्वेत	कपिल	कंस बधके बाद देवकी-वसुदेवसे क्षमा-प्रार्थना श्रीकृष्णका अप्रकट होना	१०।४५।२ से ९, ११।३१।६
दास्य	चितकबरा	माधव	बलराम सेवा, गुरजन-सेवा, आदि	१०।१५।१४, १०।४५।३२
सख्य	अरुण	उपेन्द्र	सखाओंके साथ खेलना	१०।१५।१५
वात्सल्य	शोष	नृसिंह	अनिरुद्ध, ऊषा-मिलन	१०।६३।२
माधुर्य	श्याम	नन्दनन्दन	रासलीला	१०।३३।३
हास्य	कपोत	बलराम	गोपियोंके उलाहनेपर उन्हींको उल्टा चोर बनाना	१०।८।२९ से ३१
अद्भुत	पीत	कूर्म	विराट् रूप दिखाना, गोवर्द्धन-धारण	१०।८।३७ से ४४ १०।२५।१९
वीर	गौर	कल्की	गजके दाँत उखाड़ना, मथुराके वीरोंका हनन	१०।४४।३९ १०।४४।२७
करुण	धूम्र	राघव	सुदामापर करुणा	१०।८१।३४
रौद्र	रक्त	भार्गव	कंसका केश पकड़ पृथ्वीपर गिरा देना	१०।४४।३९
भयानक	कृष्ण	वराह	कालिय-मर्दन	१०।१६।२६
बीभत्स	नील	मत्स्य	पूतना-वध	१०।६।१३

प्रेम परिपुष्ट होकर रसमय बनता है। श्रीकृष्णके विविध अवतारोंमें उनकी प्रेमाधीनता और रसमयता प्रकट होती है। ये विभिन्न अवतार लीलायें अमृतसे भी मधुर और मादक हैं।[1] कृष्ण अवतारकी लीलाओंमें यही सब कुछ 'परम' है।

१. भागवत १०।८७।२१

सामान्य रस और मधुर रस :

रसकी स्वप्रकाशता तथा अखण्डता सिद्ध है। साक्षात् कृष्णानुभवके कारण भक्तोंको कुछ अपूर्व प्रौढ़ आनन्दका चमत्कार रस रूपमें अनुभव होता है। मुख्य भक्ति-रसके पांच भेद इस प्रकार हैं—शान्ति, प्रीति, प्रेयान्, वात्सल्य तथा मधुर। सामान्य रस जो भावसे विभावित अथवा अभिव्यक्त है, जैसे शान्त, प्रीति, प्रेयान् और वात्सल्य। परन्तु मधुर-रस सिद्ध है, स्वयंसिद्ध है। इसीमें रसास्वादनकी पूर्णयोग्यता है।

१. शान्त भक्ति रस :

श्रीजीवगोस्वामिपादने प्रीतिसन्दर्भमें शान्त-भक्ति रसका दूसरा नाम 'ज्ञानभक्तिरस' कहा है। आत्माकी स्वरुपभूत आनन्दमें तन्मयताका होना ही 'शम' है। शम प्रधान भक्तोंमें ममताकी गन्धसे रहित कृष्णके प्रति परमात्म-रूपसे उत्पन्न रति 'शान्त रति' कहलाती है। शमवानोंका आस्वाद-विषय 'शान्त भक्तिरस' है। शान्त स्थायीभावके दो भेद हैं—समा और सान्द्रा। शान्त भक्तिरस दो प्रकारका है-परोक्षात्मक एवं साक्षात्कारात्मक। शांतजनोंके भी दो भेद हैं—आत्माराम और तापस।

शान्त रतिके नराकृति परब्रह्म चतुर्भुज नारायण विषयालम्बन हैं और आश्रयालम्बन है सनकादिक आदि भगवन्निष्ठ भक्त।[१] अनुभाव है नासिकाग्रमें दृष्टि, निरपेक्ष, निर्मम और निरहंकार रहना। प्रलयको छोड़कर रोमांच, स्वेद, कम्प आदि सात्विक भाव हैं। संचारी भाव है निर्वेद, धृति, यति, हर्ष, आवेग आदि। स्थायीभाव है निर्वेद और किसीके अनुसार 'धृति'। शान्त रति निर्विकार है।

२. दास्य भक्ति रस:

श्रीपाद श्रीधरस्वामिने इस भक्तिरसको स्पष्ट रूपसे रसोत्तम कहकर वर्णन किया है, कंसके रंगस्थलमें श्रीकृष्णके अवस्थान वर्णन-प्रसंगमें इन्होंने इसे 'सप्रेम भक्ति' कहकर वर्णन किया है।[२] नामकौमुदीकार इसे स्थायी रति मानते हैं। आत्मोचित-विभावादि द्वारा भक्तिचित्तमें आस्वादनीयता प्राप्त करनेपर इसको 'प्रीतभक्तिरस' अथवा 'दास्यभक्तिरस' कहा जाता है।[३] भगवानपर अखण्ड विश्वास करनेवाला इस रसका भक्त सर्वात्माके चरणोंमें

---

१. भागवत ३।१५।४३, ३।१।१८ २. भागवत १०।४७।४७ श्रीधरी टीका
२. भक्तिरसामृत सिन्धु २।५।२३

ही उन्हींके अप्रतिहत ऐश्वर्य ज्ञानसे अन्तरंग और बहिरंग सम्पूर्ण जीवन समर्पित एवं नमित करता है। इसके दो वर्ग है-

१) सम्भ्रम प्रीति रस :

सम्भ्रम जनित दास्यमें साधक भगवानके अनन्त ऐश्वर्य प्रभाव, महत्व, शक्ति, प्रतिष्ठा, गुणोंका आधिक्य और चरित्रकी अलौकिकता जानकर अपने सेव्यके रूपमें प्रभुका वरण कर उनकी सेवाके रसमें ही अपनेको डुबो लेता है।[1] सम्भ्रम प्रीति ही उत्तरोत्तर बढ़ती हुई प्रेम, स्नेह और रागका रूप धारण करती है।[2] अकस्मात् भगवानके मिलनेसे जो आदरभावपूर्वक सम्भ्रम प्रेम है वह - सम्भ्रम प्रीति है। ह्रासकी शंकासे रहित होकर यह बद्धमूल प्रेम कहलाती है।

२) गौरव प्रीति-रस :

लाल्याभिमानी अर्थात् स्वयंको कृष्णका कृपापात्र माननेवालोंमें कृष्णके प्रति गौरव-प्रधान प्रीति होती है। इस प्रीतिमें भक्त व्यक्तिगत सम्बन्धकी दृष्टिसे स्वयंको हीन समझता है।

दास्य-रसके श्रीहरि और उनके कृपापात्र ही आलम्बन है। द्वारकापुरींमें उद्धव, दारुक, श्रुतदेव आदि पार्षद भक्त हैं।[3] कौरवोंमें भीष्म, विदुरादि पार्षद भक्त हैं। इनमें प्रेमविह्वल श्रीउद्धव प्रमुख हैं। हर्ष, गर्व, धृति, जाड्य,[4] उन्माद आदि इसके व्यभिचारी भाव हैं। इस रसमें सभी सात्विक भावोंका प्रकाश होता है। स्थायीभाव है 'स्नेह'

३) प्रेयोभक्तिरस : सख्यभक्तिरस :

श्रीजीवगोस्वामी इसे 'मैत्रीमय रस' कहते हैं। बराबरीके कारण विश्रम्भात्मक रति ही सख्य रति कहलाती है। सख्य रति क्रमशः प्रणय, प्रेम, स्नेह और राग तक वर्धित होती है। श्रीकृष्णके वयस्य कभी-कभी रूप, वेश, गुण आदिमें ये श्रीकृष्णके समान ही हो जाते हैं। श्रीकृष्ण इन सखाओंके जीवन हैं, प्राण हैं। वनमें, गोष्ठमें, जलमें निःसंदेह ये सखा सेवाके लिये तैयार हैं। सख्य-रसमें ऐश्वर्यका भाव नहीं होता। आनन्दके आँसू, हर्षकी गाढ़ता आदि स्वाभाविक ही रहते हैं।

---

१. भागवत १०।८५।३८, १०।८६।३८, २. भागवत १०।३८।६

३. वही १।१४।३२ से ३८ ४. वही ७।४।३७,

श्रीकृष्णके मिलन होनेसे पहले पाण्डवोंकी विशेष करके अर्जुनकी उत्कण्ठित अवस्था प्रसिद्ध है। मिलनके पश्चातका वियोग भी पाण्डवोंके जीवनमें बहुत ही सुस्पष्ट रूपसे वर्णित हुआ है। मथुरा गमनपर भी व्रजके ग्वाल-बालोंका वियोग मर्मस्पर्शी है। ग्वाल-बालोंकी यह विरहावस्था लीलाके अनुसार है, अन्तर्लीलामें तो श्रीकृष्णके साथ कभी वियोग होता ही नहीं।[1]

सख्य रसमें विदग्ध, बुद्धिमान, बलीयान् प्रभृति गुणोंसे युक्त श्रीकृष्ण ही विषयालम्बन है। सख्य सेवा परायण भावमय श्रीकृष्णके सखा ही आश्रयालम्बन है।[2] सखा, सुहृत्सखा[3], प्रियसखा और प्रियनर्म सखा चार प्रकारके हैं।[4] उद्दीपन हैं श्रीकृष्णका रूप, श्रृंग; वेणु, शंख एवं विनोद और पराक्रमादि उनके गुण। अनुभाव हैं बाहुयुद्ध, कन्दुक, केलि, द्युतकेलि एवं श्रीकृष्णके साथ एकत्र शयन, उपवेशन, नृत्य, गानादि। व्यभिचारी है उग्रता, भय, आलस्यको छोड़कर सभी। इसमें सभी सात्विक भावोंका प्रकाश हैं। स्थायीभाव है 'सख्य रति'।

४ वत्सल भक्ति-रस :

वात्सल्य अर्थात् अनुग्रहमयी रति नामक स्थायीभाव विभावादि द्वारा पुष्टि लाभ करनेपर उसे 'वत्सल भक्ति रस' कहा जाता है।[5] वात्सल्य रसका मूर्तिमान दर्शन होता है जननी यशोदामें। यशोदा वत्सल रसकी अभिव्यक्ति नहीं, उसकी जननी हैं, नन्दरानीके स्तनोंसे स्नेहाधिक्यके कारण दूधका क्षरण होता रहता है।[6]

भगवानका संयोग इस रसमें तीन प्रकारका माना गया है—सिद्धि, तुष्टि[7] और स्थिति। वात्सल्य रस प्रतीतिकी अपेक्षा किये बिना ज्योंका त्यों रहता है। इसका विकास भी रागकी सीमा तक होता है।[8]

---

१. प्रोक्तेयं विरहावस्था स्पष्टलीलानुसारतः।
   कृष्णेन विप्रयोगः स्यान्न जातु व्रजवासिनाम्॥ - भागवत ३।३।१२८

२. भक्तिरसामृत सिन्धु ३।३।२,

३. भागवत १०।१२।११, १०।२३।११, २।५।५६

४. वही १०।१५।१८

५. भक्तिरसामृतसिन्धु ३।४।१,

६. भागवत १०।१३।२२,

७. वही १।११।२६

८. वही १०।१।३४, १०।४।१२, १०।४।१७, १०।५।१८, १०।८।१४, १०।४५।१३, १०।४६।३, १०।८२।३६,

वत्सलभक्तिरस[1] में श्रीकृष्णको विषयालम्बन तथा श्रीकृष्णके गुरुवर्ग-को आश्रयालम्बन कहते हैं।[2] गुरुवर्ग है व्रजेश्वर नन्द और नन्दरानी, रोहिणादि, वे सब गोपियाँ जिनके पुत्रोंका ब्रह्माने हरण किया था, देवकी, कुन्ती, वसुदेव और सान्दीपनी प्रभृति। यशोदा सर्वश्रेष्ठ हैं।[3]

वात्सल्य रसके उद्दीपन हैं श्रीकृष्णके कौमारादि आयु, रूप, वेश, शैशव चापल्य, मधुर-वाक्य, मन्द-हास्य और क्रीड़ादि। इसके अनुभाव है शिरोघ्राण,[4] हस्त द्वारा अंग-मार्जन, आर्शीवाद, लालन-दानादि। साधारण कार्य है चिबुक-स्पर्श चुम्बन, आलिंगन, नामग्रहणपूर्वक आह्वान आदि। व्यभिचारी भाव है अपस्मार और वे सभी व्यभिचारीभाव जो प्रीतभक्तिरसमें होते हैं। इसके सात्विक भाव है स्तम्भादि अष्टसात्विक भाव और स्तन्य-क्षरण। इस रसका स्थायीभाव है अनुकम्पा करनेवालोंकी अनुकम्पनीयके प्रति भयादि विरहित वात्सल्य रति। संकर्षणमें सख्य,[5] वात्सल्य[6] और प्रीति[7] तीनोंका सम्मिश्रण है।

मधुर भक्ति रस :

अपने अनुरूप विभावादिकके द्वारा सद्भक्तों अर्थात् जिनको श्रीकृष्ण विषयक कान्ता-रतिका स्पर्श प्राप्त हुआ है, उनके हृदयमें पुष्टिको प्राप्त कर मधुरा-रति 'मधुर भक्ति रस' के नामसे अभिहित है। मधुर रसको अलौकिक श्रृंगार 'श्रृंगारमेव रसनाद्रसमामनामः'[8]; उज्ज्वल और शुचि रस आदि भी कहते हैं। लौकिक श्रृंगारभक्ति भावापन्न मधुर रसका स्थानापन्न नहीं हो सकती। वस्तुतः भक्ति-रसका भाववाचक उज्ज्वल वेषात्मक यही मधुररस है जिसे पराभक्तिरस भी कहते हैं। प्रगाढ़ रागात्मक सम्बन्धोद्भूत प्रेमाभक्तिका चरम अनुष्ठान ही मधुरा भक्ति है। यह 'भक्तिरस सम्राट' है। सम्पन्नता,

---

१. भागवत १०।६।४३, २. वही १०।८।४५, १०।६।२०

३. वही १०।६।३, १०।४६।२८, ४. वही १०।१३।३३

५. भागवत १०।१५।१५, ६. वही १०।१५।१४,

७. वही १०।१३।३७

८. रससिद्धान्त : डा० नगेन्द्र पृष्ठ २५७ नेशनल पब्लिशिंग हाउस, दिल्ली, तृतीय संस्करण १९७४

विततांगता एवं रसरूपताकी दृष्टिसे यह रसराज है।[1] यह मधुररस तलरहित अपार समुद्र रूप है, जिसका तल स्पर्श नहीं किया जा सकता–

अतलत्वादपारत्वादाप्तो सौ दुर्व्विगाहताम् ।
स्पृष्टः परं तटस्थेन रसाब्धिर्मधुरो मया ॥[2]

यह मधुर रस शाश्वत है, आत्माका प्रगाढ़तम धर्म है, यह चिज्जगत्‌की वस्तु है, उसके विभावादि सभी अक्षुण्ण और दिव्य हैं, चिन्मय हैं। यह 'कान्तारस' है।

रसिक चूड़ामणि श्रीकृष्ण और उनकी वल्लभाएँ मधुर रसकी आलम्बन है।[3] प्रेयसीगण आश्रयालम्बन है। नायक शिरोमणि श्रीकृष्णके धीरोदात्त आदि चार परम्परागत और पति एवं उपपति रूपसे दो भेद है। इनमें भी उपपति श्रेष्ठ है, क्योंकि श्रृंगार भावका परमोत्कर्ष इसी भावमें है।[4] धीरोदात्तादि चार प्रकारके आलम्बन कृष्ण पूर्णतम, पूर्णतर एवं पूर्ण भेदसे बारह प्रकारके हैं। वे बारह पति एवं उपपति भेदसे चौबीस प्रकारसे हुये। पुनः चौबीस प्रकार अनुकूल, दक्षिण, शठ एवं धृष्ट इन चार भेदोंसे छियानवे प्रकारके हैं।

कृष्ण वल्लभाओंके दो भेद हैं–स्वकीया और परकीया। परकीयाके भी दो भेद हैं– कन्यका और परोढ़ा। इनका व्रजराजके व्रजमें निवास है। इन दोनोंके ही मुग्धा, मध्या और प्रगल्भा नामक परम्परागत तीन भेद हैं। मानावस्थाके अनुसार अन्तिम दोके धीरा, अधीरा और धीराधीरा तीन भेद हैं। पुनः परिस्थिति और अवस्थानुसारी भेदोंमें अभिसारिका, वासकसज्जा, उत्कंठिता, विप्रलब्धा, खण्डिता, कलहान्तरिता, प्रोषित-भर्तृका और भर्तृका नामक आठ भेदोंमें बांट दिया गया है।

---

१. (क) सबको केशवदास हरि नायक है 'श्रृंगार' संकलित
(ख) श्रृंगाररस सर्वस्व शिखिपिच्छविभूषणम् ।
अंगीकृत नराकार आश्रये भुवनाश्रयम् ॥ उ०नी०म० नायक २२

२. उज्ज्वल नीलमणि पृष्ठ १

३. अस्मिन्नालम्बनाः प्रोक्ताः कृष्णस्तस्य च वल्लभाः । उज्वल नीलमणि पृष्ठ ६

४. अत्रैव परमोत्कर्षः श्रृंगारस्य प्रतिष्ठितः । वही पृष्ठ १२

नायक श्रीकृष्णकी दूतियाँ दो प्रकारकी है– स्वयं दूती और आप्त दूती। स्वयं दूती है नायिकाके प्रति कृष्णके कटाक्ष और वंशीध्वनि। आप्त दूती स्नेहवती और वाक्य प्रयोगमें निपुण है। श्रीकृष्णकी वल्लभाओंमें श्रीराधा महाभाव स्वरुपा सर्वोत्तमा है। ये मधुर रसकी श्रेष्ठतम आश्रय हैं। ये नित्य सहचरी ह्लादिनी महाशक्ति हैं। ये परकीया भावकी चरमावधि है।[1]

इस रसके उद्दीपन हैं कृष्ण और उनकी वल्लभाओंके रूप, लावण्य, मार्दव, यौवन आदि कायिक रूपसे। तटस्थ उद्दीपन है - वृन्दावन, यमुना, मेघ, पूर्णचन्द्र आदि। अनुभाव हैं भाव, हाव तथा हेला, कान्ति, लीला आदि अलंकार रूपसे, जृम्भा, निःश्वास आदि उद्भास्वर और आलाप-विलाप आदि वाचिक। स्तम्भादि अष्ट सात्विक भाव हैं। उग्रता और आलस्यको छोड़कर समस्त व्यभिचारी भावसन्धि, भावशाबल्य तथा भावशान्तिकी भी व्यभिचारी भावोंके अन्तर्गत स्थिति है। मधुरा रति ही इसका स्थायीभाव है। यह साधारणी, समंजसा और समर्था–तीन भेदोंमें विभक्त है। साधारणी गाढ़ नहीं है, सम्भोगेच्छा ही कारण रूप है, समंजसामें सम्भोगेच्छा पृथकसे प्रतीयमान है। समर्था तादातम्य प्राप्त रति है।[2]

मधुर रसके भेद :

साधारणतः मधुर रसके दो भेद हैं– सम्भोग और विप्रलम्भ। सम्भोग आनुकूल्यमय दर्शन एवं आलिंगन, चुम्बनादिके निषेवण द्वारा नायक-नायिका-का उल्लास बर्द्धनकारी भाव है।[3] इसकी विलास-क्रीड़ा है - रभसवार्ता, रास-

---

१. आश्रयालम्बन नायिका आहि राधिका चारु।
ब्रज वधुवनि की मुकुटमणि नित्य प्रकाश अपार॥
स्वरुप शक्ति आह्लादिनी कृष्णमयी रस-रुप।
अंशीजु सर्व सुलक्षनी सर्व शक्तिमय स्तूप॥
रसनि अवधि श्री राधिका कोन नायिका तूल।
वहु प्रकाश रस भेद कौ सब प्रकाश की मूल॥ - चैतन्य सम्प्रदाय : सिद्धान्त और साहित्यमें उद्धृत पृष्ठ १४६-४७

२. स्वस्वरुपात्तदीयाद्वा जाता यत् किंचिदन्वयात्।
समर्था सर्वविस्मारिगन्धा सान्द्रतमा मता॥ उज्ज्वलनीलमणि स्थायी प्रकरण २

३. वही १०।६०।४८

क्रीड़ा, यमुनाजलकेलि, चीरहरण, संस्पर्श, संप्रयोग, नखदान, निधुवन रमण, बिम्बाधर सुधापान आदि। यह संक्षिप्त, संकीर्ण, सम्पन्न तथा समृद्धिमान इत्यादि भेदसे अनेकों प्रकारका है।

प्रथम मिलनसे पूर्व अथवा मिलनोपरान्त नायक-नायिकाकी युक्त व अयुक्त अवस्थामें एक-दूसरेके अभीष्ट आलिंगन-चुम्बनादिका अप्राप्तिमें प्रबल उत्कण्ठावशत: जो भाव प्रकटित होता है, उसे 'विप्रलम्भ' कहते हैं। यह चार प्रकारका है, पूर्वराग[1] मान, प्रवास और प्रेमवैचित्य।

गौण भक्ति रस :

रस विवेचकोंके अनुसार हास्य, अद्भुत, वीर, करुण, रौद्र, भयानक और वीभत्स गौण भक्ति रस माने गये हैं। इनका मुख्य पांच रसोंमें अन्तर्भाव हो जाता है। श्रीकृष्ण सम्बन्धसे ये रसकी कोटिमें ही आते है। ये सब कृष्ण रतिके विवर्त है। वस्तुत: कृष्ण रतिके एकत्वसे मूलत: ये सभी सम्बन्धित हैं। निष्कर्षत: वे ही रस उत्कृष्ट कोटिके हैं, जिनके श्रीकृष्ण साक्षात् विभावादि हों। श्रीरूपगोस्वामी प्रथम पाँच प्रकारके ही भक्तिरस मानते हैं।[2] इनमें भी मधुर-रस ही अंगी है और सभी रस उसके ही अंग हैं। उद्बुध-उद्वेलित उभय-विध संप्रयोगात्मक-विप्रयोगात्मक श्रृंगाररससार समुद्रसे प्रादुर्भूत निर्मल निष्कलंक पूर्णचन्द्र और उसकी चाँदनी ही श्रीराधासर्वेश्वर हैं।

रस-वैचित्र्य :

'न हि रसादृते कश्चिदर्थ: प्रवर्तते' भरतमुनिके इस वचनके अनुसार रसके बिना किसी भी अर्थ अथवा विषयका प्रवर्त्तन, आरम्भ या आविष्कार सम्भव नहीं है। जो परब्रह्म हैं वह रस रुपमें सर्वत्र विद्यमान हैं—आपो ज्योती रसो मृतं ब्रह्म, स एव ब्रह्मरूपो भर्गो रस: तृणवृक्षौषध्यादिषु स्थावरेषु च स एव रसरूपेण वसतीत्यर्थ: वही जल है, वही ज्योति है, वही रस है, वृक्षोंमें औषधियोंमें, तृणादिकोंमें वही रसरूपमें समाविष्ट है। अग्निपुराणमें परब्रह्म-की आनन्दाभिव्यक्ति, चैतन्य, चमत्कार अथवा रस नामसे अभिहित की गयी है। इसी आनन्द रूप ब्रह्मका प्रथम विकार अहंकार माना गया है, इस अहंकार या ममतासे रति उद्भूत होती है। यही रति व्यभिचार्यादिकोंसे परिपुष्ट होकर श्रृंगार रस कहलाती है।

---

१. भक्तिरसामृतसिन्धु, उत्तरविभाग ७।६

२. अग्निपुराण ६-३३- १८

श्रृंगार रसकी परिभाषासे इसकी स्वाभाविकता, पवित्रता, सामाजिक धार्मिक महत्ताका प्रतिपादन होता है। 'श्रृंग कामोद्रेक मृच्छतीति, ऋतौ कर्मण्यच्' अर्थात् जो कामारम्भ या उसके उद्रेक, वृद्धिमें सहायक हो। यह काम ब्रह्मके हृदयसे उद्भूत हुआ है 'कामस्तु ब्रह्मणो हृदयाज्जातः।' काम और श्रृंगारका अन्योन्याश्रय सम्बन्ध है। गीतामें 'धर्मा विरुद्धो भूतेषु कामोस्मि भरतर्षभ' कहकर कामकी पवित्रता दिखायी गयी है।[1] करुणा-वरुणालय कृष्ण ही सच्चिदानन्दात्मक बृहत् परब्रह्म है। ये ही श्रुतियोंके एकमात्र तत्व तथा मधुरसके आलम्बन हैं।

रस अपरिमित, अलौकिक, आनन्दमय, चिन्मय वस्तु है। श्रीकृष्ण ही रसस्वरूपसे परमतम आस्वाद्य और रसिकरुपसे परमतम आस्वादक हैं। क्रम-सन्दर्भकार श्रीजीवगोस्वामीने रसका सम्पूर्ण वैचित्र्य दशम स्कन्धके मध्य-वर्ती श्लोकमें बताया है। बारहों रसकी सिद्धि इसी श्लोकमें हुई है। आश्रय-आचार्य हैं श्रीकृष्ण

मल्लानामशनिर्नृणां नरवरः स्त्रीणां स्मरो मूर्तिमान्
गोपानां स्वजनोऽसतां क्षितिभुजां शास्ता स्वपित्रोः शिशुः।
मृत्युर्भोजपतेर्विराड्विदुषां तत्वं परं योगिनां
वृष्णीनां परदेवतेति विदितो रंग गतः साग्रजः॥[2]

रस	स्थायी भाव	श्लोकके पद
रौद्र	क्रोध	मल्लानाम्
अद्भुत	विस्मय	नृणां
श्रृंगार	रति	स्त्रीणाम्
हास्य	हास	गोपानाम्
सख्य	मैत्री	
वीर	उत्साह	असतांक्षितिभुजां
करुण	शोक	स्वपित्रोः शिशुः
वत्सल	वात्सल्य	
भयानक	भय	भोजपतेः
वीभत्स	जुगुप्सा	अविदुषां
शान्त	शान्ति	योगिनाम्
भक्ति	प्रेम	वृष्णीनाम्[3]

१. गीता ७।११ २. भागवत १०।४३।१७

३. वही १०।४३।४७ पर क्रमसन्दर्भ टीका

इस प्रकार रस वैचित्रीके लिये श्रीकृष्ण अपनी स्वरूप-शक्तिसे अनन्त परिकरों को प्रकट कर उनके प्रीतिरसका आस्वादन करते हैं। जिस स्वरूपमें जिस प्रकारकी रसवैचित्री होती है, उसके परिकरोंमें उस रसवैचित्रीके अनुरुप ही प्रीतिकी अभिव्यक्ति होती है। प्रत्येक भगवत्-स्वरुप अपने परिकरोंके माध्यमसे अपने स्वरूप-शक्त्यानन्दका अनुभव करते हैं।

रसिकशेखर श्रीकृष्णके जितने भी कार्य हैं, वे सब उनके रससमुद्रके अच्छवासके कारण और उसकी अभिवृद्धिके लिये हैं। सम्पूर्ण कार्योंका न कोई उद्देश्य है और न अन्य कारण। स्वयं आनन्दित होते हैं और भक्तोंको आनन्दित करते हैं। श्रीकृष्ण 'रस' के विषय भी हैं, आश्रय भी, आलम्बन भी उद्दीपन भी।[1] यही है भागवतीय श्रीकृष्णका रस वैचित्र्य: मादक और मधुर।

रसकी प्रकाश-लीला

शौनकादि ऋषियोंका कथन है : पुण्यकीर्ति भगवानकी लीला सुननेसे हमें कभी भी तृप्ति नहीं हो सकती, क्योंकि रसज्ञ श्रोताओंको पद-पदपर भगवानकी लीलाओंमें नये-नये रसका अनुभव होता है।[2] रसके विषय हैं श्रीकृष्ण और भक्त हैं आश्रय जातीय। भक्तोंके प्रेमके अनुरुप ही भगवान् अपनी लीलाओंको प्रकाशित करते हैं। सामान्य रस-शास्त्रोंमें शान्त-रस श्रेष्ठ और श्रृंगार रसको हेय माना गया है, किन्तु श्रीमद्भागवतमें श्रृंगार रस ही सर्वश्रेष्ठ है। श्रीरूपगोस्वामीने भी श्रीमद्भागवतके इस रस-सिद्धान्तकी पुष्टि की है।

श्रीकृष्णकी लीलाओंमें जन्म-लीलासे बाल-लीला तक वात्सल्य रस है, आश्रय है देवकी-वसुदेव, नन्द-यशोदा तथा व्रजकी गोप-गोपियां। पौगण्ड एवं कौमार कालमें सखाओं सहित वत्सचारण तथा गोचारण लीलामें सख्य-रसका आस्वादन हुआ है। इसी अवस्थामें ब्रह्मा, इन्द्र, वरुण आदि देवताओं तथा व्रजके दास्य रसके सेवक-गणोंसे सेवित होकर दास्य रसका आस्वादन किया-कराया है। देवताओं, दुर्वासा, नारद आदि ज्ञानियोंके विषय-स्वरूप होकर

---

१. नाना भक्तेर रसामृत नाना विध हय।
सेइ सब रसामृतेर विषय आश्रय॥—चैतन्य चरितामृत २।८।१११

२. भागवत १।१।१९

शान्त रसका विषय बने हैं। कैशोर कालमें कृष्णने इन समस्त रसोंका आश्रय होते हुये गोपियों सहित महाचमत्कारमय माधुर्यके पराकाष्ठा युक्त मधुररस-काआस्वादन किया है।

अनवतार रूपमें ब्रह्म रुपमें शान्तरसका प्रकाश, सदाशिव लोकमें शान्त और दास्यका आंशिक प्रकाश, बैकुण्ठमें शान्त, दास्य और सख्यका सामान्य प्रकाश माना गया है।

द्वारकामें भी शान्त, दास्य, सख्य, वात्सल्य तथा मधुर रस है तो सही किन्तु सम्भ्रम भावसे समाच्छादित है। वस्तुतः द्वारकामें मधुर रस है ही नहीं, यदि है भी तो दास-भावसे आवृत्त है। दास्य भावसे मधुर रसकी पुष्टि नहीं होती है। भागवतके कई स्थानोंसे ऐसा ही स्पष्ट है। मथुरामें भी ऐश्वर्य-भाव होनेसे मधुर रस बाधित है, स्वाभाविक नहीं है। अपनी लीलाओंके प्रकाशसे तो विषय श्रीकृष्णका मधुर-रस वृन्दावनमें ही पूर्णतम रूपसे प्रकाशित है।[1] इसका सविस्तार विवेचन भक्तिरसामृतसिन्, उज्ज्वलनीलमणिधु, वृहद्भाग-वतामृत, सिद्धान्तरत्नम्, षढ सन्दर्भ आदि ग्रन्थोंमें एवं श्रील विश्वनाथ चक्रवर्ति आदिने अपनी टीकाओंमें विवेचित किया है।

परकीया रस और जार भाव :

आत्म और पर ये दो तत्व हैं। आत्मनिष्ठ धर्मको आत्मरामता कहते हैं उसमें रसका पृथक् कोई सहाय नहीं होता। श्री कृष्णका आत्मरूपता-धर्म नित्य होनेपर भी उनमें परारामता धर्म भी उसी प्रकार नित्य है। विरुद्ध धर्मसमूह परमपुरुष कृष्णसे एक ही समय एक साथ अवस्थित होते हैं, यह परतत्वका स्वाभाविक धर्म है। कृष्णलीलाके एक केन्द्रमें आत्मरामता अव-स्थित है और उसके विपरीत केन्द्रमें परारामता अपनी पूर्ण पराकाष्ठामें विसजित रहती है। परारामताकी यह पराकाष्ठा ही 'पारकीय भाव' है। नायक और नायिका परस्पर 'पर' नायक नायिकामें परस्पर वैवाहिक सम्बन्धका न होना 'पर' भाव है। होनेपर भी जब रागके द्वारा वे मिलित होते हैं, तब जो अद्भुत रस होता है, उसे 'पारकीय रस' कहते हैं।

---

१. वैकुण्ठावपि सोदरात्मजावृता द्वारावती साप्रिया
यत्रश्री शतनिन्दि पट्ट महिषीवृन्दैः प्रभु खेलति,
ततोऽपि मथुरा श्रेष्ठा यत्र हरे जन्मतो
यत्र श्रीव्रज एव राजतितरां तामेव नित्यं भजे ।। स्तवावलि, रचित
श्रील रघुनाथ दास गोस्वामी

आत्मरामतासे लेकर पारकीय मधुर रस तककी विस्तृत सीमा है। आत्मरामताकी ओर खिचनेसे रसकी क्रमशः शुष्कता होती जाती है। परकीयताकी ओर जितना खींचा जाय-वह उतना ही प्रफुल्लताको प्राप्त होता है।[1] जार भावका सुदृढ़ और नित्य होना परमावश्यक है।

रस और भाव :

भावनाका पथ अतिक्रमण करके सत्व द्वारा उज्ज्वल चित्त जब प्रगाढ़ चमत्कारी आनन्दकी आस्वादनीयता प्राप्त करता है, वह रस है और अनन्य बुद्धिसे भावनाकी वस्तुका गाढ़ संस्कारों द्वारा जो मनमें चिन्तन किया जाता है, उसको भाव कहते हैं।[2] यह विवेचन परकीया रस और जार-भावकी आधारावनि है। भाव और रसका यह भेद उसी प्रकार है जैसे योगपथमें ध्यान और समाधिका भेद है। ध्यान अंग है और समाधि अंगी, इसी प्रकार भाव अंग है और रस अंगी प्रधान है। श्रीमुकुन्ददास गोस्वामिपादने कहा है– रस स्थायिभाव जात अति स्वादु है, किन्तु भाव गाढ़ संस्कारसे जात स्थायी स्वादु है। रसका भावसे अनिवार्य सम्बन्ध है। भाव बिना रस नहीं और रस बिना भाव नहीं।[3] रस सूर्य है तो रसरूप सूर्यका अंश शुद्धसत्व विशेष रूप तत्व ही 'भाव' है। भावको 'प्रेमाकुंर', ह्लादिनीका सार अंश और रसका पहला चित्र कहा जा सकता है। रसके मूलस्त्रोतके रूपमें कृष्ण भावके मूलस्त्रोतसे सदैव परिरम्भित है, आलिंगित है। रसका मूल और उसकी घनीभूत मूर्ति हैं श्रीकृष्ण, भावका मूल और उसकी घनीभूत मूर्ति हैं श्रीराधा।

भावसमूह अभिसम्पन्न होकर रसरूपताको प्राप्त करता है।

लीला-रसकी उत्कृष्टता : परकीया रस

'रसस्तु परकीयायाम्' प्रसिद्ध ही है यह उक्ति। भरतमुनि जैसे प्राकृत-रसके मर्मज्ञ व्यक्तियोंने भी परकीया-रसको स्वकीया-रससे श्रेष्ठ माना है। भागवतके भक्ति-रसकी चरम विशिष्टता, अद्वितीय विचित्रता, श्रेष्ठ उत्कृष्टता कृष्ण रति स्थायीभाव मूलक परकीया रस है। ब्रजांगनाओंकी इसी रससे महिमा है। यह रस निवृत्युनपयोगि, दुरुह एवं रहस्यपूर्ण है, साधारण बुद्धि

---

१. जैव धर्म ३१ अध्याय पृष्ठ ५८८-५८९

२. भक्तिरसामृतसिन्धु २।४।१३२-३३

१. न भावहीनोऽस्ति रसो न भावो रसवर्जितः।
परस्परकृतासिद्धिरनयोर्रसभावयोः ॥ नाट्यशास्त्र ६।३७

वेद्य नहीं है। यह अनुपम निवृत्तिमार्ग है, अतएव रसका चरमोत्कर्ष 'उपपति' में स्थापन किया है, पतिमें नहीं। ये उपपति है निखिल नायक चूड़ामणि व्रजेन्द्रनन्दन श्रीकृष्ण। श्रीकृष्ण और उनकी अभिसारिकाओंमें प्रेममयी तृष्णासे युक्त अनुराग नित्य है। इनकी परस्पर तृष्णा कभी शान्त नहीं होती। ऐसा भावमाधुर्य परमममतामयी मधुरातिमधुरा, अलौकिका, दिव्यरसवर्षिणी, उज्ज्वला, परमास्वाद्या पारकीय लीलामें ही सम्भव हो सका है। परम रसका परिपाक (परकीया रस) क्रम-लीलामें ही है। यह रस केवल व्रजकी ही वस्तु है। यह है रसका विवेचन, रासलीला प्रमाण है। 'रसानां समूहो रासः।'

श्रीरूपगोस्वामीके अनुसार परकीया नायिका वे हैं, जो केवल अन्तरंग रागके कारण श्रीकृष्णको अपने आपको समर्पण कर देती हैं और जिनका राग इतना प्रबल है कि वे विवाह प्रक्रियात्मक किसी बाह्य धर्मकी अपेक्षा नहीं रखतीं।[1] परकीया दो प्रकारकी है - परोढ़ा एवं कन्यका।[2] परोढ़ा वे हैं, जो नायककी विवाहिता पत्नी न होकर अन्य किसीकी परिणीता हैं और कन्यका वे हैं, जो न नायककी विवाहिता है, न अन्य किसीकी। दोनोंही श्रीकृष्णको अपना प्रियतम मानती है जो लौकिक दृष्टिसे इनके उपपति ही हैं। सन्दर्भ-वैशिष्ट्यसे स्वकीया हैं परव्योममें लक्ष्मीगण, द्वारकामें महिषीगण।

अलंकार-कौस्तुभकार कविकर्णपूर कहते है अप्राकृत परकीया रसमें परोढ़ा रमणीकी रति ही सर्वोत्तम कही जाती है।[3] रासलीलामें जो गोपियाँ सम्मिलित हुई थीं, उनमें वे परोढ़ा भी थीं, जो अपने पतियोंके वारण करने पर भी उन्हें छोड़कर आयी थीं। ये श्रीकृष्णकी विवाहिता नहीं थीं। मुख्य बात तो यह है कि इधर अंग-संगसे ये नायिकायें रासमें भाग ले रही है, अपने-अपने गृहोंमें उनके पति भी उन्हें अपने निकट जान रहे हैं-

"मन्यमानाः स्वपार्श्वस्थान् स्वान्-स्वान् दारान् व्रजोकसः।"[4]

ऐसे प्रसंगोंसे जिस प्रकार हम परकीया रसको अलौकिक मानते चले आ रहे हैं उसी प्रकार इन गोपियोंको भी अलौकिक मानना ही पड़ेगा।

---

१. उज्ज्वल नीलमणि स्थायी प्रकरण ५३, २. वही श्रीहरिप्रिया १९

३. अप्राकृते परोढ़ारमणी रतिदेव सर्वोत्तमतया भूयसी श्रूयते।
न तस्यामनौचित्यप्रवर्तितत्वं अलौकिकं तु सिद्धे भूषणामिति न्यायात्॥
- अलंकार कौस्तुभ

४. भागवत १०।३३।३८

उज्ज्वलनीलमणिकार कहते है– 'पतिके साथ व्रजदेवियोंका संगम होता ही नहीं ।'[१] तथापि ये पुत्रवती हैं–इसे भी यदि स्वीकार किया जाय,[२] तोभी तथ्य यह है कि अवरुद्धसौरत श्रीकृष्णसे व्रजदेवियोंके पुत्र होते ही नहीं, यदि पुत्र होने लगेंगे तो यह रसमय आनन्द प्राकृत और सीमित हो जायेगा, रासका भी वैशिष्ट्य समाप्त हो जायेगा । अतः गोपियोंके हृदय-भाव-रसकी प्रधानता माननी पड़ेगी । यह तो रही परोढ़ाकी बात । कन्यका भी अपने पिता-भाईयों-से निवारित हुई थीं···· ता वार्यमाणाः······ पितृभिर्भ्रातृबन्धुभिः ।'[३] इन कुमारिकाओंके द्वारा चीरहरणमें श्रीकृष्ण-रूपमें वर-प्राप्तिके लिये व्रत किया गया था । क्या रासलीलाके पश्चात् भी ये कुमारिकायें ही रहीं ? श्रीकृष्णकी रासवल्लभायें नित्य सिद्ध हैं, अतः उनका यही रूप स्वीकार करना चाहिये । ममताके प्राधान्यसे परोढ़ा एवं उपपतिमें ही आस्वदनाधिक्य है ।[४] पति-पत्नी भावमें वैचित्री न होनेसे रसका उत्कर्ष नहीं है । परकीया लीला-रस परम-करूण लीला पुरुषोत्तमका निज शक्तिके साथ है । विलास मर्यादाका नाम भी नहीं है यहाँ ।

स्वकीयाकी समंजसा रति अनुरागान्ता है । इसमें समृद्धिमान् सम्भोग-का कथन रस-नियसि-आस्वादनके लिये निर्णीत नहीं है । परकीयाकी समर्था रति भावान्ता है । 'वैशिष्ट पात्रवैशिष्ट्याद्रतिदेषोपगच्छति' अतः समर्था रति स्थायिभावापन्न समृद्धिमान् सम्भोगमें ही रस-निर्यास है । रसशास्त्रमें सम्भोगविधान रात्रिमें है, अतः परकीया रसकी परिणति रात्रिमें ही हुई है । रास-क्रीड़ा रुप सुखसम्भोग और मनोरम केलि रसके लिये परकीयात्वकी आवश्यकता है ।

---

१. न जातु व्रजदेवीनां पतिभिः सह संगमः इति - उज्ज्वलनीलमणि श्रीहरिप्रिया ३२

२. क्रन्दन्ति वत्सा बालाश्च तान् पाययत दुह्यत ।। भागवत १०।२६।२२ उत्तरार्द्ध

३. वही १०।२६।८ पूर्वार्द्ध

४. अनन्यशरणा स्वीया पणहार्य्या पणांगणा ।
अस्यास्तु केवलप्रेम तंनेषा रागिणी मतेति ।। - स्वकीयात्वनिरास विचारः तथा परकीयात्वनिरुपणम् : श्रीविश्वनाथ चक्रवर्ति पृष्ठः २४, श्रीगदाधर गौर हरिप्रेस, वृन्दावन गौरांगाब्द ४६४

कुछ लोग अप्रकटावस्थामें इसी भावको स्वकीय मान लेते हैं फिर तो परकीय भावकी नित्यता ही समाप्त हो जायेगी। परकीया लीला रस नित्य है, तभी लीलाका उत्कर्ष है 'प्रकटाप्रकटे परकीयायाः सद्भावेन नित्यत्वात्।'[1] यहाँ ऐश्वर्य और माधुर्य भी परकीय भाव सम्बन्धमें भावाष्टि है। श्याम रूप ही 'पर' रूप है। भागवत (पारमहंस्य संहिता) में अलौकिक परमावेश रूप परकीय रसका परिवेषण परमोपादेय रूपसे हुआ है—

परकीया भावे अति रसेर उल्लास।

व्रज विना इहार अन्यत्र नाहि वास॥[2]

भावकी उत्कृष्टता : जार-भाव :

श्रीकृष्ण और गोपियोंका पारस्परिक अकैतव निविड़ ममता-स्वादनका परिवेषण भागवतीय व्रजलीलाके माध्यमसे हुआ है। भाव है 'जार'। जहाँ शुद्ध रसिकता है, रसिक-रसिकायें हैं वहाँ भाव भी अपने शुद्ध और विवृत्त रूपमें आलोकित होता है। श्रीमद्भागवतसे पूर्व ऋग्वेद और उपनिषदोंमें भी 'जार' शब्दका प्रयोग हुआ है। यथा कुछ मन्त्र हैं 'जारः कनीनां पतिर्जनीनाम्'[3] जार आ सतीम्। जारः पारदारिकः[4] जारः उपपतिः[5] 'गच्छन् जारो न योषितम्'[6] 'प्रिया न जारो अभिगीत इन्दुः'[7] 'यन्त्वा भ्रातापति भूत्वा-भूत्वा जारपेनिपद्यते'[8] 'स य एवमेतद् वामदेव्यं'[9]। और भी—

जनीनां जायानां कृत विवाहानां पतिः भर्ता
दार जारौ कर्त्तरिणि शुक च।.... जारयतीति[10]

इन मंत्रोंसे 'जार' शब्दका अर्थ सुस्पष्ट है। रस-भावकी विशेषताके लिये कहा गया है—

बहुवार्यते यतः खलु यत्र प्रच्छन्नकामुकत्वंच।

या च मिथो दुर्लभता सा मन्मथस्य परमा रतिः॥

---

१. स्वकीयात्व निरास-परकीयात्व निरूपणम पृष्ठ ५०
२. चैतन्य चरितामृत १।४।४२
३. ऋग्वेद, अष्टक सूक्त १।१२।६६,
४. ऋग्वेद १।२०।१३४।३,
५. वही, अष्टम, ६।५५।४-५,
६. वही ६।३८।४,
७. वही ६।६६।२३
८. वही १०।१६२।५,
९. छान्दोग्योपनिषत् २।१३।२
१०. अष्टाध्यायी ३।३।२०-७

लघुत्वमत्र यत् प्रोक्तं तत्तु प्राकृतनायके ।
न कृष्णे रसनिर्यासस्वादार्थमवतारिणि ।।[१]

अर्थात् बहुबाधा, प्रच्छन्न कामुकता एवं परस्पर मिलनकी जहाँ सुदुर्लभता होती है वहाँपर कन्दर्पकी परमारति मानी गयी है। उपपतिकी लघुता प्राकृत नायकमें प्रयोज्यहै, कृष्णमें नहीं; क्योंकि वह रस-निर्यास आस्वादनके लिये सपरिकर अवतीर्ण होते हैं।

भागवतमें वर्णित ही है अभिसारके समय गोप-नारियोंको स्वजनोंसे बाधा प्राप्त हुई थी, फिर भी वे लोकलज्जाको न मानकर कृष्ण-प्रीतिके उद्देश्यसे प्रवृत्त हुई हैं। भावकी उत्कर्षताका विधान श्रीकृष्ण स्वयं इस प्रकार करते हैं–

मत्कामा रमणं जारमस्वरुपविदोऽबलाः ।
ब्रह्म मां परमं प्रापुः संगाच्छतसहस्रशः ।।[२]

श्रीकृष्ण गोप-रमणियोंको आर्य-पथके उल्लंघन करनेपर रासस्थलीसे प्रत्यावर्तनके लिए उपदेश देते हैं–

अस्वर्ग्यमयशस्यं च फल्गु कृच्छ्रं भयावहम् ।
जुगुप्सितं च सर्वत्र औपपत्यं कुलस्त्रियाः ।।[३]

लेकिन गोपियोंका भाव अति प्रगाढ़ है। श्रीकृष्णको निरुत्तर सा करती हुई कहती हैं–

---

१. **उज्ज्वल नीलमणि पृष्ठ १३**

तुलनीय – **वामता दुर्लभत्वंच स्त्रीणां या च निवारणम् ।**
तदेव पंचवाणस्य मन्ये परममायुधम् ।। - वहीहरिप्रिया-
प्रकरण ३।२०

और भी – **यत्र निषेध विशेषःसुदुर्लभत्वंच यन्मृगाक्षीणाम् ।**
तत्रैव नागरांच निर्भरमासज्जते हृदयम् ।।
अतः किम्वान्यद्यदतस्तस्यामिदमेव महामुनिः ।
जगौ पारमहंसांच संहितायां स्वयं शुकः ।। - वही ३।२३
विष्णुगुप्तसंहितासे

२. भागवत ११।१२।१३, ३. वही १०।२६।२६,२२,२४,२५

यत्पत्यपत्यसुहृदामनुवृत्तिरंग स्त्रीणां स्वधर्म इति धर्मविदा त्वयोक्तम् ।
अस्त्वेवमेतदुपदेशपदे त्वयीशे प्रेष्ठो भवास्तनुभृतां किल बन्धुरात्मा ॥[1]

उद्धव-प्रसंगमें तो विरह-विह्वला गोपियोंने श्रीकृष्णको 'आर्यपुत्र' कहा है।[2] परीक्षितकी शंकाके प्रसंग बिना भी भावका उत्कर्ष-निरुपण अपूर्ण रह जायेगा। परीक्षित अवरुद्धसौरत[3] श्रीकृष्णपर 'परदाराभिमर्शन' का आरोप लगाते हैं–

स कथं धर्मसेतुनां वक्ता कर्ताभिरक्षिता ।
प्रतीपमाचरद् ब्रह्मन् परदाराभिमर्शनम् ॥[4]

यह शंका अनवद्य जार भावका पोषण ही करती है। इस भावसे 'काम-विकार' नष्ट हो जाता है, योगेश्वरेश्वर श्रीकृष्णके चरणोंमें परा भाव उत्पन्न होता है–

विक्रीड़ितं व्रजवधूभिरिदं च विष्णोः श्रद्धान्वितोऽनुश्रृणुयादथ वर्णयेद् यः ।
भक्तिं परां भगवति प्रतिलभ्य कामं हृद्रोगमाश्वपहिनोत्यचिरेण धीरः ॥[5]

'रमण' के अवसरपर गोपियोंका श्रीकृष्णके प्रति किसी भी अंशमें 'ब्रह्म' भाव नहीं था 'तमेव परमात्मानं जारबुद्धयापि संगताः'[6] अर्थात् वे जार भावसे ही मिलीं। उनकी निर्भीक, स्पष्टोक्ति है त्रिलोकमें कौन ऐसी स्त्री है जो आर्य मर्यादासे विचलित न हो जाय, कुल-कानिको त्यागकर श्रीकृष्णमें अनुरक्त न हो जाय।[7] अतः उनका यह जार भाव स्वीयात्वसे दृढ़ है। व्रज-गोपोंने तो अपनी पत्नियोंको स्वपार्श्व ही जाना।[8] व्रजके प्रकट-प्रकाशकी तो बात ही क्या, अप्रकट प्रकाशमें भी जार भाव है, अति मधुरतम है, अति प्रगाढ़ है। श्रीकृष्ण गोपियोंके प्रेम-वशीभूत ही नहीं हुये, पराजित भी हुये।

---

१. भागवत १०।२६।३२,१०,३१,१६,१०,४७,१६

२. वही 'अपि बत मधुपुर्यामार्यपुत्रोऽधुना स्ते - १०।४७।२१

३. द्वितीयात्यन्तसंयोगे श्रृंगाररसाश्रयाः शब्दि प्रसिद्धाः काव्येषु याः कथास्ताः सिधेव इति एवमप्यात्मान्येवावरुद्धः सौरतश्चरमधातुर्मतुस्खलितो यस्येति काम जयोक्तिः ॥

४. भागवत १०।३३।२८ श्रीधरी

५. वही १०।३३।२८ ६. वही १०।३३।४०

७. वही १०।२६।११ ८. वही १०।२६।४०

उपपतो भावोत्कर्षः' श्रीकृष्णका व्रजमें औपपत्य नित्य है। समृद्धिमान सम्भोग-के लिये यही भाव आवश्यक है। यह भाव उन्माद भी नहीं, दिव्यानुभूति ही नहीं परम विशुद्ध 'जार भाव' है।

तत्वतः यह जार भाव-जरयति आत्म विज्ञानं निःश्रेयसम्' से ख्यात है। यह जार भाव अलौकिक है। वह तो जरयति अविद्या तत्कार्यात्मकं प्रपंच यः सजारः है।' जरयत्याशु या कोशं निगीर्णमनलो यथा' की तरह अथवा 'ज्ञानाग्निः सर्वकर्माणि भस्मसाते कुरुते र्जुन' की तरह यह तो प्राणमय, मय, मनोमय, विज्ञानमय एवं आनन्दमय पंचकोषोंको जलानेवाला जार है। उत्तप्त वियोगाग्निसे समस्त तापोंको दग्ध करनेवाला जार है। गोपियोंके विषयसे ही जार भाव भावोत्कर्षकोप्राप्त हुआ है।

कहीं पर 'रस' शब्दका अर्थ आनन्द है 'आनन्दरुपममृतं यद्विभाति' अर्थात् आनन्द स्वरुप ब्रह्म अमृत-रससे अखण्ड रूपमें प्रकाशित हो रहा है। ब्रह्म रस रूप है और रस ब्रह्मस्वरुप है 'रसो वै सः, ब्रह्म वै रसः'। यह रसस्वरुप ब्रह्म श्रीकृष्ण ही है।[१] इनकी लीला रसमयी है और रस लीलामय है। लीलाके बिना रस प्रकट नहीं होता। लीलासे लीलाधारी रस उत्पन्न करता है। लीला रस-युक्त ही रस ब्रह्म है–

तस्माल्लीला रसमयी रसो लीलामयः स्मृतः।
तादात्म्यादेव रूपत्वाल्लीला ब्रह्ममम्यभगवत् ॥[३]

रस-ब्रह्मका आस्वादन उन्हीं भक्तोंको होता है, जिनके श्रीकृष्णके चरण-कमल ही सर्वस्व है। पुष्कल रसतापत्ति परमानन्दघन विग्रह श्रीकृष्णके मनोगत होनेपर ही होती है। प्रेमाभक्ति ही लीलारसमय माधुर्यमय आनन्द है। रस है आनन्दका घनीभूत भाव।

निष्कर्षतः 'आनन्द ब्रह्म' केवल आनन्दरुप है पर आनन्दका आस्वादन करना या कराना रसके-मूर्तस्वरुप रसराज श्रीकृष्णकी रसिकता है। आनन्द

---

१. भागवत १०।३३।३८

२. कृषिर्भूवाचकः शब्दोणश्च निवृत्तिवाचकः।
तयोरैक्यं परं ब्रह्म कृष्ण इत्यभिधीयते ॥ गोपाल तापनी

३. श्रीसर्वेश्वरका रसोपासना अंक पृष्ठ १९३ में संकलित

४. वृहद्भागवतामृत २।२।१७७-१८०

ब्रह्म निरीह है, वह विचित्र मधुर लीलाहीन है। उसके कोई इच्छा नहीं है। भक्तोंके मनको भी वह हरण नहीं कर सकता। ऐसा स्वरुप है-वह निसंग है-उपासकोंके संगसे रहित है, निर्विकार है अर्थात् उसका चित्त कभी द्रवीभूत नहीं होता। अपने श्रीविग्रह वैभवको प्रकट करनेमें भी वह असमर्थ है, भगवत्ताहीन है। वृहद्भागवतामृतमें कहा है—

अहो तत्परमानन्दरसाब्धेर्महिमाद्भुतः।
ब्रह्मानन्दस्तुलां नार्हेद्यत्कणार्द्धांशकेन च ॥[1]

अर्थात् परमानन्द रस-ब्रह्मकी महिमा अद्भुत है। उस आनन्दकी एक बूंदके अर्धांशके साथ भी ब्रह्मानन्द सुखकी तुलना नहीं की जा सकती।

पूर्णानन्द :

आनन्द ब्रह्म है। आनन्द ब्रह्मसे ही ये सब प्राणी उत्पन्न होते हैं, उत्पन्न होनेपर आनन्दके द्वारा ही जीवित रहते हैं और इस आनन्द-ब्रह्मके प्रति ही गति करते हुये अन्तमें प्रयाण करते समय आनन्दमें ही समा जाते हैं।[2] ब्रह्मानन्दका महासमुद्र जब उच्छलित होता है, तभी वह उच्छलित रस सृष्टिके रूपमें व्यक्त होता है। सृष्टिके नाना नाम एवं रुप उस परमानन्द महोदधिके अनन्त रसबिन्दु हैं। 'रासलीला ही पूर्णानन्द है, यह आनन्दभूमा है, अल्पताका भाव है ही नहीं—

यो वै भूमा तत् सुखं नाल्पे सुखमस्ति भूमैवसुखम्।
यत्र नान्यत् पश्यति नान्यच्छृणोति, नान्यद्विजानाति स भूमा ॥
अथ यत्रान्यत्पश्यत्यन्यच्छृणोत्यन्यद्विजानाति तदल्पम्।
अथ यो वै भूमा तदमृतम् अथ यदल्पं तन्मर्त्यम् ॥[1]

पूर्णानन्दकी तरंगका उद्वेलन रसिकोंके साथ बैठकर भागवत कथा-पानसे होता है। परब्रह्मात्मक गोपेशतनय श्रीकृष्णकी प्राप्ति पूर्णानन्द है।

---

१. भागवत २।१।५१

२. आनन्दो ब्रह्मेति व्यजानात्। आनन्दाद्ध्येव खल्विमानि भूतानि जायन्ते।
आनन्देन जातानि जीवन्ति। आनन्दं प्रयन्त्यभिसंविशन्ति।
— तैत्तिरीयोपनिषत् ३।६।१

१. छान्दोग्योपनिषत् ७।२३।२४

मानव मनकी उदात्त प्रवृत्तिका यह विकास सृष्टिके आध्यात्मिक इतिहासका सबसे मंजुल, मनोहारी और महामधुर सर्वथा रससिद्ध अध्याय है। पूर्णानन्द परब्रह्मका ही वाचक है। यह अनुभवसिद्ध मानुष-आनन्दसे आरम्भ करके मानुषगन्धर्व, देवगन्धर्व, पितृ-चिश्लोक, आजानदेव, कर्मदेव, देव, इन्द्र, बृहस्पति, प्रजापति एवं ब्रह्मके आनन्दसे उत्तरोत्तर क्रमशः सौ-सौ गुना पूर्णानन्द है अथवा यह अगणितानन्द है।[1]

ह्लादिनीकी आनन्दधारा

स्वरूप-शक्तिकी लीला प्रवृत्ति उसकी ह्लादिनी शक्तिकी आनन्दधाराका उत्स है। बाल, पौगण्ड, कैशोर किसी भी अवस्थामें अन्यान्य रसधाराओंके रूपमें यह आनन्द प्रवाहित हो रहा है। श्रीप्रबोधानन्द सरस्वतीने एक स्थानपर उद्गीरित किया है कि श्रीकृष्ण कहीं अति सुन्दर छोटी-छोटी प्रेम-वल्लियोंका सिचन कर रहे हैं, कहीं मयूर-मयूरीको ताण्डव-नृत्य सिखा रहे हैं, कहीं नवागत दासी द्वारा प्रदर्शित सुन्दर कलाका दर्शन कर रहे हैं।[2] यही नहीं, वे किसी समय अतिशय रति-क्रीड़ासे कामकी अपूर्तिवश, निजेच्छासे श्रीवृन्दावनमें उदित तीव्र उन्मद रसाकृति होते हुये भी अनन्त नवीन लता-गृहोंमें अनन्त भावोंसे अपने शोभित विग्रह प्रकट करते हैं एवं अनन्त कामरसविलासी (किशोरीजूके साथ) युगल रूपमें अनन्त विहार करते हैं—

अहो भाग्यमहो भाग्यं नन्दगोपव्रजौकसाम्।
यन्मित्रं परमानन्दं पूर्णं ब्रह्म सनातनम्॥[3]

अनन्त, अगणित, अविरल धाराओंके रूपमें अखण्ड आनन्दका रस विकीरित हो रहा है, रास-मण्डलमें। देश-कालकी परिच्छिन्नता नहीं है इसमें, ठहराव नहीं है, अनित्यता नहीं है, गति-ही-गति है। रासके मध्यमें जो विरह है, वह मेघका विद्युतसे खेल है, एक प्रकारका क्रीड़ा-रस है—

शृणु सखि ! कौतुकमेकं नन्दनिकेतांगने मया दृष्टम्।
गोधूलिधूसरितांगो नृत्यति वेदान्तसिद्धान्तः॥

प्राचीन उक्ति

---

१. (क) तैत्तिरीय उपनिषत् २।८
(ख) बृहदारण्यकोपनिषद् ४।३।३३

२. वृन्दावन महिमामृतम्, द्वितीय शतकम्, श्लोक ८३

३. भागवत १०।१४।३२

जिस किसी भक्तको ह्लादिनीकी आनन्दधाराकी एक भी बूंद मिल गयी तब आनन्दोन्मत्त हुये उसके प्राण गाने लग जाते हैं—

निगमतरोः प्रतिशाखं मृगितं, मिलितं न तत्परं ब्रह्म ।
मिलितं मिलितमिदानीं, गोपवधूटीपटांचले नद्धम् ।।

प्राचीन उक्ति

गोपसुन्दरीके आंचलसे सन्नद्ध होकर परब्रह्मका अवस्थित होना ह्लादिनीकी आनदधारा है । गौरवर्णा गोपसुन्दरि आनन्दके रंगमें इस प्रकार रंग जाती है कि वह 'श्यामा' हो जाती है—

आनन्द की आह्लादिनी श्यामा ।
आह्लादिनी के आनन्द श्याम ।।

अस्तु, रसकी पूर्ण वृत्तियाँ रसामृतसिन्धुमें ही उठती हैं । मधुर भक्ति वास्तविक रस 'भक्तिरसराज' है । 'चमत्कार प्राण' आनन्द रस हो सकता है । जहाँ रस है, वहाँ ब्रह्म विद्यमान है; क्योंकि वह ब्रह्म रस है, और जहाँ-जहाँ रस है, वहाँ-बहाँ वही है । इसे प्राप्तकर मनुष्य सिद्ध हो जाता है, अमर हो जाता है और तृप्त हो जाता है ।[1] वह असनासक्त हो जाता है 'न रमते नोत्साही भवति ।'[2] रस ब्रह्मके विरहमेंपरम व्याकुलता हो जाती है 'तद्विस्मरणे परमव्याकुलतेति ।'[3] श्रीमद्भागवतमें व्रजदेवियोंकी स्वाभाविक जीवनचर्या है—'या दोहनेऽवहनने मथनोपलेप प्रेङ्खेङ्खनार्भरुदितोक्षणमार्जनादौ । गायन्ति चैनमनुरक्तधियोऽश्रुकण्ठयो, धन्याव्रजस्त्रिय उरुक्रमचित्तयानाः ।।[4]यह है लीला-रस ।

पूर्ण-आनन्द प्रसंगमें लीला ब्रह्मका अविच्छेद्य धर्म है, दोनोंमें अभिन्न धर्म-धर्मी भाव है, 'लीलाविशिष्टमेव शुद्धं परब्रह्म न कदाचित् तद्रहितमित्यर्थ'[5] । ब्रह्म 'सैन्धव' वत् रसघन है, पूर्णानन्द है ।[6] यह पूर्णानन्द लीला-

---

१. यंल्लब्ध्वा पुमान् सिद्धो भवति, अमृतो भवति, तृप्तो भवति । नारद-भक्ति सूत्र ४

२. वही सूत्र ५ ३. वही सूत्र १९ ४. भागवत १०।४४।१५

५. अणुभाष्य ४।४।१

६. वही – स यथा सैन्धवघनो नन्तरो बाह्यः कृत्स्नो रसघन एव वा—पूर्णानन्दावाद् भगवतस्तत्सम्बन्धेन तदानन्दमनुभवतीत्यर्थः ।" ४।४।६

विशिष्ट 'रसघनव 'ब्रह्म' लीलासे लीलाके लिये लीला-विग्रह ही भक्तों द्वारा संवेद्य होता है–

पूर्णानन्दात्मकं पुरुषोत्तमस्वरूपं फलरुपं प्राप्य उक्तरीत्या तेन सह सर्वकामाशनमेव मनोवाग्विषयानन्दवेदनं तद्वान भगवतीति ।।[1] इस प्रकार यह है लीला-आनन्द ।

यही रसात्मकता है, यही अति आनन्दात्मकता है तथा यही लीलात्मकता है । त्र्यरूपेण भागवत रससिद्धिका विज्ञान है ।

१. वही १।१।११

उपसंहार

श्रीमद्भागवतं पुण्यमायुरारोग्यपुष्टिदम् ।
पठनाच्छ्रवणाद् वापि सर्वपापैः प्रमुच्यते ।।
मत्कथावाचकं नित्यं मत्कथाश्रवणे रतम् ।
मत्कथाप्रीतमनसं नाहं त्यक्ष्यामि तं नरम् ।।[1]

श्रीमद्भागवत साक्षात् भगवानका स्वरूप है । ग्रन्थप्रणयनकर्ता भगवान के कलावतार योगिराज व्यासजीका जन्म इस वर्तमान चतुर्युगीके तीसरे युग द्वापरमें महर्षि पराशरके द्वारा वसु-कन्या सत्यवतीके गर्भसे हुआ । वेदोक्त चातुर्होत्र कर्म लोगोंका हृदय शुद्ध करने वाला है । इस दृष्टिसे यज्ञोंका विस्तार करनेके लिए उन्होंने एक ही वेदके चार विभाग कर दिये—ऋक्, यजुः, साम और अथर्व । इतिहास और पुराणोंको पाँचवा वेद कहा जाता है । स्त्री, शूद्र और पतित द्विजाति तीनों ही वेद श्रवणके अधिकारी नहीं हैं, अतः उनके कल्याणार्थ महामुनि व्यासजीने बड़ी कृपा करके महाभारत इतिहासकी रचना की । यद्यपि व्यासजी इस प्रकार अपनी पूरी शक्तिसे सदा-सर्वदा प्राणियोंके कल्याणमें ही लगे रहे, तथापि उनके हृदयको सन्तोष नहीं हुआ । सरस्वती नदीके तीरपर बैठे हुए धर्मवेत्ता खिन्नमन वाले व्यासजीको नारदजीने कुछ इस प्रकार कहा "व्यासजी ! आपने भगवानके निर्मल यशका गान प्रायः नहीं किया । मेरी ऐसी मान्यता है कि जिससे भगवान् सन्तुष्ट नहीं होते, वह शास्त्र या ज्ञान अधूरा है । आपने धर्म आदि पुरुषार्थोंका जैसा निरूपण किया, भगवान् श्रीकृष्णकी महिमाका वैसा निरूपण नहीं किया । जिस वाणीसे-चाहे वह इस भाव अलंकारादिसे युक्त ही क्यों न हो—जगतको पवित्र करनेवाले भगवान् श्रीकृष्णके यशका कभी गान नहीं होता, वह तो कौओंके लिए उच्छिष्ट फेंकनेके स्थानके समान अपवित्र मानी जाती है । मानसरोवर के कमनीय कमलवनमें बिहरनेवाले हंसोंकी भाँति ब्रह्मधाममें विहार करनेवाले भगवच्चरणारविन्दाश्रित परमहंस भक्त कभी उसमें रमण नहीं करते । अतः आप अचिन्त्य शक्ति भगवान श्रीकृष्णकी लीलाओंका वर्णन कीजिये । विद्वानोंने इस बातका निरूपण किया है कि मनुष्यकी तपस्या, वेदाध्ययन, यज्ञानुष्ठान,

---

१. स्कन्द पुराण, विष्णु खण्ड, मार्गशीर्ष माहात्म्य अध्याय १६ श्लोक १८, २४

स्वाध्याय, ज्ञान और दानका एकमात्र प्रयोजन यही है कि पुण्यकीर्ति श्रीकृष्ण-के गुणों और लीलाओंका वर्णन किया जाय ।" इस प्रकार श्रीनारदजीके उपदेशानुसार व्यास मुनिने भागवत-संहिताका प्रकाश किया और पुनरावृत्ति करके इसे निवृत्ति परायण पुत्र श्रीशुकदेवजीको पढ़ाया ।

जिस समय श्रीशुकदेवजीका यज्ञोपवीत-संस्कार भी नहीं हुआ था, सुतरां लौकिक वैदिक कर्मोंके अनुष्ठानका अवसर भी नहीं आया था, उन्हें अकेले ही सन्यास लेनेके उद्देश्यसे जाते देखकर उनके पिता व्यासजी विरहसे कातर होकर पुकारने लगे—हा पुत्र ! हा पुत्र ! उस समय तन्मय होनेके कारण श्रीशुकदेवजीकी ओरसे वृक्षोंने उत्तर दिया था । श्रीमद्भागवत अत्यन्त गोपनीय रहस्यात्मक पुराण है । यह भगवत्स्वरूप का अनुभव कराने वाला और समस्त वेदोंका सार है । संसारमें फँसे हुये जो लोग इस घोर अज्ञानान्धकारसे पार जाना चाहते हैं, उनके लिए आध्यात्मिक तत्वोंको प्रकाशित करनेवाला यह एक अद्वितीय दीपक है । वास्तवमें उन्हींपर करुणा करके बड़े-बड़े मुनियोंके आचार्य शुकदेवजीने इसका वर्णन किया । श्रीशुकदेवजी महाराज अपने आत्मानन्दमें ही निमग्न थे । इस ब्रह्मानन्द स्थितिसे उनकी भेद दृष्टि सर्वथा निवृत्त हो चुकी थी । फिर भी मुरलीमनोहर श्यामसुन्दरकी मधुमयी, मंगल-मयी मनोहारिणी लीलाओंने उनकी वृत्तियोंको अपनी ओर आकर्षित कर लिया और उन्होंने जगतके प्राणियोंपर भी कृपा करके भगवत्तत्वको प्रकाशित करनेवाले इस महापुराणका विस्तार किया ।

श्रीमद्भागवत श्रीकृष्ण रूप ही है 'तेनेयं वाङ्मयी मूर्ति, प्रत्यक्षा वर्तते हरेः ।' जैसे श्रीकृष्ण पूर्ण पुरुष हैं वैसे ही श्रीमद्भागवत पूर्ण पुराण है एवं जैसे श्रीकृष्ण पूर्णरूपेण निर्दोष है, वैसे ही श्रीमद्भागवत पूर्णरूपेण निर्दोष है । श्रीमद्भागवतमें स्वयं भगवानकी लीला-कथाओंका वर्णन है । इस ग्रन्थमें संशय-नास्तिक्य-निर्गुण-क्लीव-पुरुष मिथुन-स्वकीय-पारकीय विलासका क्रमशः उत्तरोत्तर उत्कर्ष वर्णन है । भागवतके हृदय दशम स्कन्धमें श्रीकृष्णकी लीला-कथाओंका वर्णन है । परन्तु उसके पहले नौ स्कन्धोंकी रचना की प्रबन्ध-योजनाका प्रमुख आधार क्या है—इसमें गूढ़ रहस्य है । श्रीमद्भागवतका मुख्य प्रतिपाद्य विषय है 'कृष्ण-लीला ।' अतः श्रीकृष्णकी लीला-कथाओंको पढ़कर कोई अपराध पंकमें निमज्जित न हो जाय तथा श्रद्धालु व्यक्ति पहले भगवत्-तत्व, शक्ति तत्व, जीव तत्व, जगत् तत्व, भक्ति तत्व और इनमें पारस्परिक सम्बन्ध ज्ञानको जानकर श्रीकृष्णकी लीला-कथाओंके श्रवणका अधिकारी हो सके, इसीलिये पहले नौ स्कन्धोंमें संशय नास्तिक्य-निर्गुण-क्लीव पुरुष मिथुन

और स्वकीय इन विषयोंका विस्तृत विवेचन प्रस्तुत करके अन्तमें अप्राकृत पारकीय विलासका वर्णन दसवें स्कन्धके गोपी-गीत आदि स्थानोंमें किया गया है।

पतिसुतान्वयभ्रातृ बान्धवानतिविलङ्घ्य तेऽन्त्यच्युतागताः।
गतिविदस्तवोद्गीतमोहिताः कितवयोषितः कस्त्यजेन्निशि ॥

भागवत ग्रन्थ भगवत्-कथामय है। भागवतकारकी कुछ ऐसी योजना बन गयी कि ग्रन्थ संवादात्मक शैलीका हो गया। प्रमाणिक रूपसे श्रीशुकमुनि ने प्रायोपवेशी परीक्षितको भागवत-कथा सुनायी थी। इस परम्परामें भाव-स्पन्दन और दार्शनिक चिन्तनका प्रतिष्ठापन हुआ, वेदान्तके चिन्तन-क्षितिजको नूतन आलोक दिया गया सुतरां नवधा भक्तिमें मधुर या उज्ज्वल शृंगारको आचरणकी सम्पूर्ण गरिमामें अधिष्ठित कर दिया, भक्तिका अभिनव शृंगार प्रकाशित हुआ। विविध भाव भक्तिमें रस निर्यासकारी, रसोत्कर्षिणी, प्रेम-प्रकर्षिणी भूमिकायें उपस्थित हुई। नित्य विहारके विधायक विविध तत्त्व राधा-कृष्ण वृन्दावन सहचरी-मंजरीका रसप्लुत मनोमुग्धधारी सरस कथन हुआ। वात्सल्य, सख्य और मधुर शृंगार सम्बन्धी प्रचुर भाव-गीतियोंका गान हुआ। क्या साहित्य, क्या संगीत और क्या शिल्प सभी कलाओंकी समुचित उन्नति हुई। भागवत रचनासे पहले तो भागवतकारके मनको इतना उत्कर्ष वर्णन छू तक नहीं सका था।

भागवत लीलाने परीक्षितके मनके पार्थिव तत्त्वोंको इतना परिष्कृत त १। रसपुंजीभूत किया कि वे महोज्ज्वल सुन्दरता एवं शिवताकी ओर अग-णित सहृदय चित्त प्रवृत्त होकर संसारके मायाजालसे निवृत्त हो गये।

मुक्तावस्थामें भी यह भागवत रस आस्वाद्य है—

आलयं-लयमभिव्याप्य.......... । रस ही आनन्द है। आनन्द-स्वरूप रस ही अक्षय पदार्थ है। रस नित्य वस्तु है। रस अनादि और अनन्त है। रस सामग्रीका योजना-सम्मिलन भी नित्य है। प्रेमको लाभ करके जीव जिस रसको प्राप्त करता है, वह रस प्रेमतत्वके साथ नित्य ही अवस्थित है। चिद् वस्तु (भगवान्) जहाँ हैं, रस वहीं है। चिद् रसका स्वरूप आनन्द है। रस तत्वके निरूपणमें वाक्यकी लक्षणा-वृत्तिकी सहायता लेनेकी आवश्यकता नहीं होती। अभिधा वृत्ति द्वारा ही वह कार्य सम्पन्न हो जाता है। यदि ऐसी बात नहीं होती तो श्रीमद्भागवत ग्रन्थ परम रसको पूर्णतः श्रीकृष्ण-लीलाके रूपमें वर्णन नहीं करते। भगवानके साथ जीवके नित्य सम्बन्धका आविष्कार ही

रसोदय है। भागवतके श्रीकृष्ण रस समुद्र हैं 'स एव रसानां रसत्तमः।' लीलाएँ उस रस सागरकी तरंगे हैं। भागवतके श्रोताओं और वक्ताओंको भी रसिकाः भावुकाः कहा है। इनकी विशेषता है कि ये परमानन्दमें रहते हैं। लीलाओंसे प्रत्यक्ष ही रसास्वादनका संकेत भागवतमें है। इसमें निवृत-तृष्ण शुकदेवको भी रस मिला, यह भागवतीय प्रबन्धके परमरसात्मक होनेका प्रमाण है। जहाँ रस ही रस है वहाँ प्रबन्धके आधारपर, अथवा योजनाके किसी भी विधापर किसी सिद्धान्तको ठहरा सकना नितान्त असम्भव ही प्रतीत होता है।

रसकी सिद्धि अनुभव करनेमें है, कहनेमें नहीं। रस अनुभवसे ही जाना जाता है, इसका निरूपण करनेमें तो मूककी ही विजय हो सकती है। रसकी पूर्ण भावनायें रसामृत संगममें ही उठती हैं इस संगममें मिलन है— भगवान् भक्त और भागवतका।

अहो विष्णुरंशी विधिशिवजयोदर्पशमको।
यदाज्ञो जाद्या जगदुदयरक्षालयकृतः।
यदीयाभाया मोहयति विधि मुख्यानपि सुरान्।
स कृष्णो वर्ण्यः स्यात् कथमहह मादृङ्नरवशो॥

ऐसा रूप है श्रीकृष्णका। इनकी लीलामें इयता और इत्थंपरताका बंधन सर्वथा-सर्वथा नहीं है। वस्तुतः लीला तत्व अति दुखगाह्य एवं अपरिमेय है। पृथ्वीका एक-एक परमाणु, आकाशके हिमकण तथा ग्रह-नक्षत्र गिने जा सकते हैं, परन्तु भगवानके अनन्त स्वरूपके अनन्त गुणों सुतरां लीलाओंको नहीं गिना जा सकता। लीला अनिवर्चनीय स्वरूपा है। उसकी अनिवर्च-नीयता ही उसका लीलापन है। लीलासे भिन्न किसी अन्य शब्द द्वारा लीला-का वहन नहीं हो सकता। लीलाके अर्थकी अभिव्यंजिका लीला ही है। परमतत्व भगवान् श्रीकृष्ण अघटघटनापरीयशी अपनी लीला-शक्तिके साथ भागवत-शास्त्र प्रांगणमें प्रकट हुये हैं। विश्व-प्रपंचादि कृष्णेतर लीलामें पारमेश्वर्य प्रकटित है, परन्तु कृष्ण-लीलामें तो ऐश्वर्यका गोपन है परम गोपन यही तो माधुर्यका प्रकटन है।

बिना किसी प्रयोजनके क्रीड़ा विहारकी प्रवृत्ति ही लीला है। अपने एक प्रकाशसे भगवान् क्रीडन्निव-क्रीड़ा करते हुये-से असंख्य बार सृष्टि और संहार किया करते हैं। भागवतके उत्तरलित हृदय सागरकी सुमधुरिम भाव लहरियां हैं लीलाएँ। लीलाके अर्थके सम्बन्धमें भागवतका निर्णय है कि

रसत्व और भावत्व ही लीलाओंकी चरमोत्तमता है। इसके अतिरिक्त भागवतमें जो कुछ भी है, वह उस परब्रह्मकी विभूति है विलास है अथवा माया है प्रकाश है। एकत्र श्रीकृष्णकी लीलाओंका मुख्य प्रयोजन है सर्वोद्धार एवं दुर्गम तत्वका लीलाओं द्वारा अवबोध कराते हुये साधनाका आदर्श स्थापित करना। यह कहना अधिक उचित होगा कि श्रीकृष्णने जब अवतार ग्रहण करके लीलायें की तो उनका तात्कालिक और आवश्यक प्रयोजन था—साधु परित्राण और दुष्कृत विनाश अथवा अधर्मोन्मूलन एवं धर्म संस्थापन। इस अवतारमें रासलीलाको केवल अवतार लीला नहीं कहा जा सकता है, क्योंकि यह लीला निरन्तर प्रवाहमान है, सृष्टिसे पहले भी, प्रलयके बाद भी, वर्तमान कालमें भी। रासलीला पुरुषोत्तम-रमण है, भगवद्भोगरूप है, इसकी उपलब्धिके लिए पूतना-वधसे लेकर ब्रह्मह्रद-स्नान तककी लीलाओंका परस्पर कारण-कार्य भाव है। पूतना, तृणावर्त आदि असुरोंके नाशकी लीलाएँ स्वतन्त्र अर्थ और महत्वका निर्वाह करती हुई भी कारण-कार्य श्रृंखलारूपमें पुरुषोत्तमरमण अथवा भगवद्भजनरूपी फलसंज्ञक भगवन्निरोधके ब्रह्मानन्दसे भी उत्कृष्ट परमफलकी सिद्धिमें पर्यवसित होती है। इन लीलाओंका अन्तिम प्रयोजन साधक जीवोंके हृदयमें नित्यसिद्ध कृष्ण-प्रेम प्रकटित करना है।

भागवत सन्निहित अवतार प्रसंगसे निष्कर्ष प्रामाणिक ही है कि श्रीकृष्ण स्वयं-भगवान् हैं, सर्वावतारी हैं अर्थात् सभी अवतारोंके मूल हैं। इससे रहित भागवतके श्रीकृष्णकी लीलाओंके प्रबन्धपर चिन्तन दिङ्निर्णय यन्त्रसे रहित व्योमयान है। प्रबन्धकी संगतिके प्रश्नपर ऐतिहासिक, सामाजिक राजनीतिक, अथिक आदि तात्कालिक समस्याओंके लिए समाधान अन्वेषणका आग्रह लेकर अनर्गल कल्पनायें करते हुये संगतियाँ बिठाना अपने निर्णयोंके फ्रेममें सत्यके चित्रको ठीक बिठानेका हठ करना है। फ्रेम छोटा है तो चित्रको काटकर छोटा कर दिया जाय, भले हो चित्रित व्यक्तिका उत्तमांग ही कट जाय। ऐसी मनमानी कल्पनाओंसे प्रबन्ध-संगति बैठ नहीं सकती। ऐसा मत है डा० जगदीश भारद्वाजका। सुतरां लीलाओंकी लौकिक संगति भी नहीं दिखायी जा सकती, जैसे गोवर्धन धारण, कालिय-मर्दन आदि। इसी प्रकार भागवतमें सभी वर्णनोंके लौकिक संगठन नहीं दिखाये जा सकते। उदाहरणार्थ भागवतका भूगोल प्रायः अलौकिक है। सम्पूर्ण पृथ्वीको भारतवर्ष बताकर भी सब वर्णनसूक्ष्म जगतका है। अन्यथा इस पृथ्वीके लिए यह नहीं कहा जा सकता कि—'त्रेतायुगसमः कालो वर्तते।'[1] इससे स्पष्ट है भागवतके भूगोल

---

१. भागवत ५।१०।१२

आदि वर्णन लौकिक-अलौकिक दोनोंसे सम्मिलित हैं। श्रीकृष्णकी लीलाएँ भी लौकिक-अलौकिक दोनों हैं। वर्तमान भौगोलिक सीमाओं वाला वृन्दावन भी अनन्त सीमाओंमें वृन्दावनका एक उपलक्षणमात्र है।

भागवत और भगवानका आश्रिय-आश्रय भाव सम्बन्ध है। ऐतिहासिक सन्दर्भमें भागवतके श्रीकृष्णका स्पष्ट इतिहासबद्ध रूप हमारे क्षितिजपर अंकित नहीं किया जा सकता। ऐतिहासिक प्रामाण्य बहुत ही सीमित महत्व रखता है और हमारी समग्र सांस्कृतिक चेतनामें इस प्रामाण्यका मूल्य नगण्य है। भगवान् श्रीकृष्ण एक सनातन लीला पुरुषके रूपमें विराजमान हैं और इसी रूपके वे हमारी वर्तमान संस्कृतिमें निरन्तर विवर्तमान हैं। देवकीगर्भ-सम्भूत, महापराक्रमी, कंस-निकन्दन, भवभयभंजन, खलदल गंजन, शोचविमोचन, राजीवलोचन, भयार्त्तभयहारी, लीलावपुधारी भगवान् श्रीकृष्ण मुरारिकी लीलाओंको दो भागोंमें विभाजित किया जा सकता है। दोनों ही उनके स्वरूप लोकोत्तर मानक स्थापित करते हैं।

१. गोलोकीय २. भुलोकीय

श्रीकृष्णके पराक्रम के भी स्थूलतः तीन स्पष्ट रूप हैं—

१. **स्थलीय**—यह भी दो प्रकारसे है—

(क) **सैन्यसहित**—जैसे कंसके श्वसुर जरासन्धपर आक्रमण, तीन करोड़ सेनाके साथ कालयवनके आघातको सहन करना आदि।

(ख) **सैन्यरहित—जैसे** दानवी पूतना, शकटासुर, तृणावर्त, अघासुर, बकासुर, व्योमासुर, प्रलम्बासुर, केशी आदि दुर्दान्तोंका बध।

२. **आकाशीय**—शाल्व आदिका बध आकाशमें हुआ था।

३. **जलीय**—सागर सन्तरण कोई आसान खेल नहीं। इस पराक्रममें कालिय-मर्दन, पंचजन नामक दानवका बध आदि है। यतोकृष्ण स्ततो जयः।

अपने अन्य प्रकाशोंमें लीला करते हुये ही श्रीकृष्णमें 'भयानां भयम्' भीषणं भीषणानाम्' किंवा गतिः प्राणिनाम्, पावनं पावनानाम्' में एक साथ दोनों स्वरूपोंका निर्वाह है। मुरली सतत् मधुरिमा उड़ेल रही है और सुदर्शन चक्र 'परित्राणाय साधूनां विनाशाय च दुष्कृताम् तथा धर्मसंस्थापनार्थाय

असुरोंका संहार करता है। सुदर्शनका रौद्र रूप मुरली-माधुरीमें लेशमात्र भी व्याघात नहीं पहुंचाता और मुरली-माधुरी चक्रकी अवरोधिका नहीं बनती। चक्र मुरलीसे विमोहित हो कर्मच्युत बन सकता था और मुरली सुदर्शनसे आतंकित हो सकती थी, परन्तु ऐसा नहीं होता, दोनोंमें मैत्री हैं। दोनों एक-दूसरेके परिपूरक हैं, साधक हैं, बाधक नहीं। महारासमें मुरलीकी स्वर-माधुरी और रणांगणमें पांचजन्यका महामन्द्र घोष जैसे एक ही प्रक्रियाके दो स्वरूप हैं। अन्तर है तो यह कि मुरली प्राण-संचार करती है और पांचजन्य प्राणहरण करता है। दोनों ही प्रक्रियायें ऐश्वर्यमयी हैं, पराक्रम पूर्ण हैं। दोनों मिलकर माधुर्य और ऐश्वर्यका सुष्ठु समन्वय प्रस्तुत करती है। यह समन्वयीकरण ज्ञानी-विज्ञानियों, ऋषि-महर्षियों, चिन्तकों-दार्शनिकों के लिए चुनौती है। प्रज्ञा जहाँ चकित थकित है और वाणी एकदम मूक निस्पन्द। सृष्टि-स्थिति-संहार शक्तियां तो श्रीकृष्णके प्रकाशके अधीन रहकर स्वयं ही अपना कार्य करती है आनन्दस्वरूप श्रीकृष्णमें कभी कोई विकृति नहीं आती। यही है कृष्ण-लीलाओंकी संगति।

कथा शिल्प विधानमें उत्तरोत्तर उत्कण्ठाका संचार करनेवाली निरन्तर उत्कण्ठा वृद्धि करनेवाली भगवल्लीलाकी प्रणालीका समर्थन अथवा प्रतिपादन किया गया है। परब्रह्म श्रीकृष्णकी दशों लीलाओंको भागवतमें कथा-रूपमें व्यक्त किया है। अवतारोंकी कथाओंका वर्णन कुछ इस प्रकारका है कि अन्य अवतार गौण हो जाते हैं, क्योंकि गुणोंकी दृष्टिसे श्रीकृष्ण अवतार सर्वाधिक गुणवान है। भागवतीय कथा-न्यास भागवत-शास्त्रीय ढंगका ही है, अधिकांश कथाओंमें अलौकिकताका पुट है। भागवत ग्रन्थ सिंहावलोकन शैली-का ग्रन्थ है, इसकी प्रत्येक कथा उसी अंश तक वर्णित है जिस अंश तक कि वह श्रीकृष्णकी महिमाको बढ़ानेसे सम्बन्ध रखती है 'तत्कथ्यतां महाभाग यदि कृष्णकथा श्रयम्।' यह नहीं कहा जा सकता कि अमुक अध्याय अथवा प्रकरणमें ही भगवान् श्रीकृष्णकी लीला है अथवा कथा है, भागवतमें जो भी है, वह सब श्रीकृष्णकी लीला-कथा है। प्रथम स्कन्धमें भीष्मके द्वारा श्रीकृष्ण-स्तवन तत्पश्चात् श्रीकृष्णका द्वारकागमन, यदुकुल संहार और स्वयं भगवान्-का तिरोधान व्यक्त हुआ है, फिर जैसे कि सम्पूर्ण भागवत Flash Back में है–

> राजंस्त्वयाभि पृष्ठानां सुहृदां नः सुहृत्पुरे।
> विप्रशापविमूढ़ानां निध्नतां मुष्टिभिर्मिथः॥
> वारुणीं मदिरां पीत्वा मदोन्मथित चेतसाम्।
> अजानतामिवान्योन्यं चतुः पंचावशेषिताः॥

यह है एक दृश्य जो अर्जुनने युधिष्ठिरके प्रति कहा है प्रथम स्कन्धमें। पश्चात् इस दृश्यका साङ्गोपांग वर्णन श्रीशुक मुनिको परीक्षितके प्रति व्यक्त किया है, इस बीच श्रीकृष्णके वैभव-विलास, कीर्ति-प्रकाश, विराट्-स्वरूप आदिका वर्णन उनके प्रथितमहत्वका है। भागवतमें एक लीला-कथामें दूसरी लीला-कथाका अंकुर निहित रहता है अग्रिम प्रसंगोंमें किंवा प्रश्नोंमें कथाका विस्तार किया जाता है साहित्यकी आधुनिक विधाके भी ऐसे प्रयोग उत्तम-कोटिके माने गये हैं।

श्रीमद्भागवत अनेकों प्रकारसे भगवान् श्रीकृष्णकी पूर्णताका प्रतिपादन करते हुए अन्ततः उन्हींमें समा जाता है, भागवतका ज्ञान श्रीकृष्णकाज्ञान है और श्रीकृष्णका ज्ञान भागवत और कृष्णके सम्बन्धका नहीं अपितु उनकी लीलाका ज्ञान है। भागवतमें संवाद समुदायके साथ ही गीतोंका भी समुदाय है। संवाद साधन है और गीत साध्य। भागवतमें रागकी तीव्र अनुभूति ही संगीतके परिधान धारण कर गीत बन गयी, गीतों में संवादोंका लय हो गया। एक सुन्दर प्रबन्ध सहज ही निबद्ध हो गया। इनसे कथानककी गतिमें कोई व्याघात उत्पन्न नहीं होता। प्रश्नात्मक शैली प्रमविष्णु होनेपर भी कथाप्रवाह अवरुद्ध नहीं होने पाया है।

भाषा, शैली, रीति, वृत्ति, गुण, अलंकार, छन्द आदिका भी प्रबन्धमें महत्व है। इसीके द्वारा काव्यके बाह्य सौन्दर्यको काव्यकी कसौटीपर परीक्षित किया जाता है। यदि रस काव्यकी आत्मा है, तो भाषा आदि सौन्दर्य-वर्धक तत्व। भागवतमें समाधि, लौकिकी और परकीया भाषाका सुसंगत प्रयोग हुआ है। समाधि भाषाका प्रयोग प्रमुख रूपसे किया गया है। भागवतमें केवल पद्य रचना ही नहीं है, अनेक स्कन्धोंके अत्यन्त प्रौढ़ ललित और प्रवाहपूर्ण गद्यभागवत पुराणोंसे प्रौढ़ा दुरुह, संक्षिप्त, आलंकारिक और ललित गतिमय है। जहाँ भागवतकी स्तुतियां हैं, वहाँ भाषा विचित्र रूपसे परिवर्तित हो जाती है। व्यंजनाके गूढ़ साधन हैं वहां अलंकारिक प्रयोग भी सुन्दर हैं। अलंकारोंका बाहुल्य प्रयोग होनेपर भी इनकी विशेषता यह रही है कि ये अलंकार कविता-कामिनी सौन्दर्य-वर्धक तत्व बनकर स्वयं ही उपस्थित हुए हैं। कविने अलंकारोंको अलंकार ही रहने दिया है, उन्हें अलंकार्य नहीं बनाया है। छन्दोंकी संगीतावकता भी प्रशंसनीय है।

श्रीमद्भागवतमें महापुराणके सर्ग, विसर्ग, स्थान, पोषण, उति, मन्वन्तर, ईशानुकथा, निरोध, मुक्ति और आश्रय दशों लक्षणोंका सुचारू,

सुव्यवस्थित, सुगठित, सुयोजनात्मक, सुप्रबन्धात्मक संगठन है। श्रीशुक, विदुर, मैत्रेयादि विशुद्धचित्त विवेकीगण इस पुराणके दशम पदार्थ अर्थात् आश्रय तत्वकी विशुद्धि अथवा तत्वज्ञानके लिए अन्य नौ लक्षणोंकी कहींपर श्रुतिसे अथवा भगवानकी स्तुति करते हुये साक्षात् सम्बन्धसे कहींपर उपाख्यानों द्वारा तात्पर्यसे और कहीं परम्परा सम्बन्धसे आश्रय तत्वका निरूपण करते हैं। आश्रय तत्वके विशुद्ध वर्णनके लिए ही सर्गादिका वर्णन है। भूगोल, खगोल, विराट् ब्रह्माण्डका वर्णन भी भगवानके स्थूलरूपका निरूपण है, यह सब भगवानकी स्थूल लीला है 'स्थूले भगवतो रूपे मनः संधारयेद् धिया।'

यद्यपि सर्ग संहारका मूल वर्णन श्रुतियोंमें उपलब्ध है तथापि उसका सुस्पष्ट और सविस्तार वर्णन पुराणोंमें ही प्राप्त होता है, श्रीमद्भागवतमें तो पूर्ण और प्राञ्जल वर्णन है जो आश्रय तत्वके निरूपणमें परम आधार सिद्ध होता है–

दशमस्य विशुद्धयर्थंयनवानामिह लक्षणम्।
वर्णयन्ति महात्मानः श्रुतेनार्थेन चाञ्जसा॥

भागवत अध्यात्म विषयक है। पारमहंसी संहिता भागवतके प्रणयिताका भागवत प्रबन्ध प्रस्तुत करनेका उपक्रम है–

किं वा भागवता धर्मा न प्रायेण निरूपितः।
प्रियाः परमहंसानां त एव ह्यच्युतप्रियाः॥

और उपसंहार है–

अत्रानुवर्ण्यतेऽभीक्ष्णं विश्वात्मा भगवान् हरिः।
....
अर्चतो यच्च मे साक्षादनादिनिधनो हरिः।

भागवतका सम्पूर्ण वर्णन श्रीकृष्णको लक्ष्य करके ही मुख्य प्रतिपाद्य विषय कथावस्तु है। आधिकारिक कथावस्तु है श्रीकृष्णका चरित वर्णन जिनमें उनकी स्थूल लीलायें, रूप, गुण, धाम आदि आ जाते हैं। प्रासंगिक कथावस्तुमें श्रीकृष्णकी अवतार कथायें हैं जैसे श्रीनृसिंह द्वारा हिरण्यकशिपु वध, श्रीराम द्वारा रावण-वध आदि। अस्तु, काव्यशैलियोंके रूपमें विविध आख्यान और इतिवृत्तात्मक शैलीमें उपाख्यान प्रयुक्त है। श्रीकृष्णके रूप-वर्णन और लीला-माधुरी आदि वर्णनके अवसरपर भागवतकारका दर्शन तिरो-

हित हो जाता है। इस प्रकार वर्णनकी चित्रात्मकता, भावोंकी कोमल व्यंजना, अनुभावोंमें मनोरम विधान, घटनाओंकी भावुकतापूर्ण कल्पना, प्रकृतिके स्वाभाविक चित्रण, अलंकारोंके संतुलित प्रयोग और भाषाके यथा-प्रसंग संयोजनसे भागवतमें उन सत्काव्योचित गुणोंका समावेश हो गया है, जो किसी भी रचनाके लिए गौरवका विषय बनकर उसे स्थायी साहित्यकी श्रेणीमें रख सकते हैं।

श्रीकृष्णकी लीलायें आध्यात्मिक अर्थमें हैं। उनमें अध्यात्मका गूढ़ रहस्य निहित है। भागवतकारने कृष्ण-भक्तिके माहात्म्य उन्हें नारदजीसे प्राप्त किया था। भागवतके सभी पात्र किसी न किसी रूप अथवा प्रकारके भक्त ही हैं। कथाका सम्पूर्ण प्रबन्ध भक्तिके बिन्दुपर केन्द्रस्थ है। अखिल कथा वर्णन नितान्त रूपमें भक्तिकी महत्ता ही प्रतिपादित करता प्रतीत होता है। भगवान् और भक्तके गठबन्धनकी कड़ी है भक्ति। श्रीकृष्णकी लीलायें भक्तिको विशद एवं सर्वोत्तम रस-रूपमें प्रतिष्ठित करती हैं। शुद्ध भक्तिमें स्थित होनेपर ही लीलाओंके यथार्थ रूपका आस्वादन हो सकता है। श्रीकृष्ण सर्वाकर्षक हैं, परन्तु भक्ति श्रीकृष्णाकर्षिणी है। भागवतमें श्रीकृष्णने स्वयं इस सत्यको स्वीकार किया है। भक्तके हृदयमें भगवान्के प्रति प्रेम होता है जो भागवतानुसार परम पुरुषार्थ है। एक विद्वानकी उक्ति है–

Prema possesses the supreme power to attract even Sri Krishna, who is the all attractor.

परमतम पुरुषार्थ है–व्रजका कान्ता-प्रेम। श्रीपुरुषोत्तम रमणकी योग्यता ही वस्तुत: गोपीभाव है–If thy soul is to go into higher spiritual blessedness, it must become a woman, yes, how-ever mainly thou mayest be among man.

निष्कर्षत: प्रस्थान-चतुष्टयके नामसे विख्यात भागवत भक्ति रसका आधार ग्रन्थ एवं धर्मका रसात्मक स्वरूप उपस्थित करनेवाला शास्त्रीय ग्रन्थ है। यह भारतीय वैदुष्यका चरमशिखर है, जिसमें नैष्कर्म्य भक्तिका प्रतिपादन तथा भगवानकी चिन्मय लीलाका चिन्मय संकल्प एवं दिव्य विहार का वर्णन करते हुये प्रेमित्व भावनाका शास्त्रीय एवं व्यावहारिक रूप प्रस्तुत किया गया है, इसमें ब्रह्मविषयक जिन तीन बातोंका प्राधान्य प्रदर्शित किया गया है, वे हैं–अधिष्ठानता, सापेक्षिकता और निरपेक्षिता और इनके तीन

रूपों—आध्यात्मिक, आधिदैविक एवं आधिभौतिककी भी व्यंजना हुई है। यह सिद्ध किया गया कि श्रीकृष्ण ही परमब्रह्म, परमात्मा एवं भगवान हैं। इसके वर्ण्यविषयमें अवलोकनसे ज्ञात होता है कि प्रेमलक्षण भक्तिकी प्रतिष्ठा करना ही भागवतकारकी योजना रही होगी, जो पूर्ण रूपसे सफल हुई है। भक्तोंको जैसा स्नेह श्रीकृष्णसे है, वैसा ही श्रीमद्भागवतसे भी। भक्तोंके संसार-में जिस प्रकार श्रीकृष्ण आराधित हैं, उसी प्रकार श्रीमद्भागवत भी आरा-धित रहेंगे।

परिशिष्ट

आधुनिक सन्दर्भमें श्रीकृष्णकी गुण-लीलाएँ एक ऐसी धरोहर है जो मानवजातिके नैतिक पतनमें एक महान क्रान्ति ला सकती है। प्रत्येक व्यक्ति अपने जीवनमें यथार्थ और वास्तविक आनन्दकी प्राप्ति करना चाहता है; परन्तु आज तो आनन्द शब्दके अर्थ ही बदल गये हैं, अर्थ बदलनेपर आनन्दके वास्तविक स्वरूपकी प्राप्ति किसीको भी नहीं हो पा रही है। भागवतका निर्माण प्रधानतः कलियुगके जीवोंके लिए हुआ है। अतः प्रबन्ध योजनाकी पुष्टिके लिए परिशिष्टका योग किया गया है।

चीरहरण और महारास : कृष्ण-लीला विमर्श

चीरहरण और महारास लीलाएँ विवादास्पद है। इसलिये ये लीलाएँ पुनः उठायी गयी हैं, ऐसा नहीं है। निर्विवाद रूपसे दोनों ही लीलाएँ परम विलक्षण है। कितने ही अनुभवी इन लीलाओंकी स्मृतिमें डूबकर अपना सर्वस्व हार गये। परिशिष्टके माध्यमसे इन लीलाओंका विस्तार-भयसे अति संक्षेपमें मण्डन किया जायेगा। 'लीला' लौकिक दृष्टिकी औचित्यपरता अथवा अनौचित्यपरताकी सीमासे अतीतता' का ही नाम है।

चीरहरण :

चीरहरण तात्त्विक एवं मार्मिक है। यह अनावृत रूपसे गोपियोंका आवरण भंग है। भागवत विहित श्रृंगार-रसके प्रतिपादनके लिए इस लीला-का होना बहुत आवश्यक है, क्योंकि यह रासलीलाकी पृष्ठावनि है किंवा आधारभूमि है। गोपियोंके वस्त्रोंको भगवान् द्वारा उठा ले जाना और फिर नीमके वृक्षपर जा बैठना वस्तुतः वस्त्र-संस्कारकी ही लीला है। जीव एवं ईश्वरके बीचमें एक आवरण, एक पदार्थ, शास्त्रीय धर्म-कर्मका, जन्म-जन्म-के संचित संस्कारोंका अथवा केवल अज्ञानका, इस आवरणको निरावरण कर देना ही चीरहरण है। वेदान्तकी यह प्रक्रिया है कि अज्ञानवृत्त आवरणका अनावरण होनेपर ही आत्मा-ब्रह्मकी अद्वितीयताका साक्षात्कार होता है, प्रयास करना पड़ता है जीवको, परन्तु भक्ति सिद्धान्तमें तो भगवान् स्वयं आकर आवरण भंग करते हैं। भक्तका न प्राकृत शरीर रहता है, न प्राकृत वासना। वस्त्रोंका त्याग अहं भावका त्याग है। त्याग भावके पश्चात् अंजलि-को मूर्धासे लगाया गया है शुचिस्मिता गोपियों द्वारा। अंजलि क्रिया शक्तिका

प्रतीक है और मूर्छा ज्ञान शक्तिका, दोनोंके द्वारा श्रीकृष्णको नमस्कार किया गया है। यह लीला भगवत्सम्बन्ध प्रयोजक संस्कार है। रसस्वरूप भगवान् रागकी कमनीयताके मूल हैं। भक्तिका अर्थ निष्कामता अथवा निवृत्ति नहीं, रागात्मिकताके कारण उसमें सकामता और प्रवृत्तिपरता ही है। चीरहरणसे 'काम-संस्कार' हुआ है।[1] भगवान् और भक्तके मध्य व्यवधान-परका दूरीकरण हुआ है। इस लीलाकी फलसे साक्षात् सम्बद्धता है, परम फल है रासमें भगवद्रमण।

इस लीलाको इन्हीं शब्दों और इन्हीं अर्थोंमें समझना होगा। इस लीलाके वास्तविक स्वरूपकी पहचानके लिए प्राकृतत्वको क्षीण और अप्राकृतत्वका उपचय करना होगा। आनन्द-रमणकी प्राप्तिके लिए कामका संस्कार करना पड़ेगा, भक्ति मार्गमें अपने लक्ष्यकी प्राप्तिकेलिए सभी वासनाओंको समूल नष्ट करना होगा, तभी जिसे जीवनका अलौकिक आनन्द कहते हैं, प्राप्त हो सकेगा।

यह तथ्य भी ध्यानमें रखा जा सकता है कि इस समय श्रीकृष्णकी आयु ६ वर्ष थी और व्रजबालाओंकी उनके सम अथवा १ वर्षसे कम। उनके भाई भी इन कुमारियोंके साथ थे। इस प्रकार यह नितान्त कामातीत लीला है भौतिक दृष्टिसे भी।[2]

महारास

रास शब्दका मूल है 'रस'। रासनं रासते त्रेतिका भावेऽधिकरणे वा घञ्' इस शब्दसे भाव या अधिकरण अर्थमें का प्रत्यय करनेपर रास शब्द निष्पन्न होता है, रास प्रेमतत्वका विकास है। श्रीचैतन्यमहाप्रभुके अनुसार सच्चिदानन्दानुभव विग्रही हरिका प्रेमात्मा व्रजवासियोंके साथ प्रेमानुभव ही रास है। श्रीपाद सनातनगोस्वामीके अनुसार ह्लादिनी शक्तिकी विलासरूपा काम-विकार-वर्जिता परम प्रेममयी रिरिंसा ही रास है। वक्तृबोद्धव्यकी दृष्टिसे भागवतमें रासके वक्ता हैं परमपवित्र तपोमूर्ति, महायोगी, समदर्शी, विकल्पशून्य, एकान्तमति, प्रच्छन्नभाव मूढ़वत् विचरणशील, भगवदीय श्रीशुकदेव। बोद्धव्य विचार करनेपर इस कथाके श्रोता महाराज परीक्षित हैं, जिन्होंने जन्म लेते ही समुपस्थित जन समुदायमें गर्भदृष्ट मनमोहिनीमूर्ति श्रीकृष्णको खोजना आरम्भ कर दिया था। रास बिना प्रश्नका उत्तर है।

---

१. सुबोधिनी १०।२१।१ २. नन्द-नन्दन 'चक्रजी' पृष्ठ ५४५

महाराज सर्वात्मभाव है। जहाँ श्रोता एवं वक्ता दोनों ही परम मुक्त हैं श्रोता जहाँ मुमुर्षु अवस्थायें प्रायोपवेशन पर हो, जहाँ सहस्त्रों तत्त्वज्ञानी, ब्रह्मज्ञानी उपस्थित हों, वहाँ कामुकतापूर्ण अश्लिल प्रसंगका वर्णन सवर्था असंभव है।

रासलीला यौगिक शब्द है और परमहंस-संहिता भागवतकी कामजयी लीला है। जिसमें रास और लीला दो शब्द सम्मिलित हैं। ऐसा माना जाता है 'रास' शब्द श्रीकृष्ण द्वारा व्रज-गोपिकाओंके साथ किये गये 'नृत्त' अथवा 'नृत्य' का वाचक है और लीला शब्द श्रीकृष्णकी बाल-क्रीड़ाओंका द्योतक है।[१] रस-रूप कृष्ण (परब्रह्म) की रसात्मक लीला रासलीला है। रासलीलाकी सूचना हमें प्रथम एवं द्वितीय स्कन्धमें ही मिल जाती है।[२] गोपियाँ भी तन्मनस्का, तदालापा, तद्विचेष्टा और तदात्मिका है।

फलकी दृष्टिसे रासलीलाका प्रयोजन है जीवोंका कल्याण। सांसारिक जीव श्रृंगार और प्रेमके पथपर चलता हुआ केवल 'काम' में ही अपने भोग विलासकी इतिश्री समझ बैठता है, जिसके परिणामस्वरूप संसारके आवागमनके बन्धनमें पुनः पुनः फंसता होता है। इस लीला द्वारा वह काम विजयकी भावना पोषित करके काम-जय रूप फलको प्राप्त करता है। श्रीकृष्ण और गोपीगणके उत्कृष्ट प्रेमको अपने लिए उपास्य मानकर चलनेसे काम-जय रूप फल-प्राप्ति सम्भव है। इस प्रकार रासलीला फलात्मक निरोध रसराजरूपी सुरतरूके प्रत्यंग व्याप्त मधुर सारकी चरम परिणति है, रसानन्द है भगवद्-रमण है और है अप्राकृत रसमय शरीर द्वारा रसमय भोग-दिव्य अर्थमें। ललित-आनन्द शक्तिका विस्तार है और रसमय श्रीकृष्णके रसयिता और रसनीय रूपोंके रसास्वादकी लीला ही साहित्यिक दृष्टिसे यह श्रृंगार रसका सर्वोत्तम विलास है। नृत्य आनन्दातिशयकी अभिव्यक्ति है, आनन्द रतिका कारण है।

रासलीला द्वारा प्रयुक्त है 'भगवानसे रति-आत्मक सम्बन्धके परम-सान्द्रता युक्त मधुर भावका आदर्श।' गोपालतापनी उपनिषदमें महारासके

---

१. रस वृन्दावन-व्रज रासलीला विशेषांक, श्रीराधा-माधव संकीर्तन मण्डल, दिल्ली नवम्बर, दिसम्बर, १९८०

२. (क) ललित गति विलास..............भागवत १।९।४०

(ख) क्रीडन् वने निशि....................वही २।७।३२

सम्बन्धमें लिखा है 'योहि वै कामेन कामान् कामयते स कामी भवति, यो हि वै त्वकामेन कामान् कामयते सो अकामो भवति।' सच तो यह है कि जो अत्यन्त विषयी है, श्रृंगार रसाकृष्ट है उनको भी अपनी ओर खींचनेके लिए भगवानने रासलीला की।[1] भक्तिमार्गकी अनुगामिनी गोपियोंके साथ यह रमण गोपियोंके परा भक्ति योगका अप्राकृत परिणाम था। कुत्सित विचारोंसे किंचित उच्चतर स्तरपर रासकी भक्ति-भावना प्रेम (काम) का रूपान्तर[2] अथवा उदात्तीकरण है ऐसा कभी नहीं है, क्योंकि रूपान्तर अथवा उदात्तीकरण मनका है, मूल प्रवृतिका है अथवा ज्ञानेन्द्रियजन्य है। मन जड़ है। आत्मा नैसर्गिक रूपसे सुखरूप है, आनन्दरूप है। अध्यात्ममें 'काम' के सम्बन्धमें फ्रायडके सिद्धान्तकी स्थापना करनेवाले क्यों स्मरण नहीं रखते। फ्रायडका सिद्धान्त मनोविश्लेषणात्मक[1] है और भागवतमें मन इन्द्रिय स्वरूप है। ऐसी तुलना भ्रान्तपूर्ण और त्रुटिपूर्ण है। हृदय चित स्वरूप है–हमें हमेशा स्मरण रखना होगा। गोपियाँ प्राकृत सम्भोगसे अतीत थीं और उनके अन्त:करणमें विराजमान थे स्वयं-भगवान्। अप्राकृत विषयमें प्राकृत विचार लाना ही अज्ञानताका परिचायक है।

भागवतका अनुपम लालित्य, अनूठा साहित्य, ज्ञान, विराग एवं भक्तिकी त्रिवेणी-दर्शन सब कुछ रासलीला स्थलपर किये जाते हैं।[2] यहाँपर विषय-

---

१. अति विषयिणः श्रृंगाररसाकृष्णापि।
स्वाभिमुखीकर्तुं तादृशीर्लीलाश्चकार॥ संकलित

2. (a) Conversion is the mechanism through which repressed every connected wtth the frustration of basis drives is changed (converted) into the functional syptoms of bodily disease Bown, J. F. Ibid P. 171.

(b) Sublimation is the transformation of an instirct into something useful--Richard W. Nice–A Hand book of Abnormal Psychology P. 8.

1. Psychoanalysis is.................. a technique which investigates the dynamics of the unconscious and conscious mental life of the individual. Brown : Psychodynanes of Abnormal Behanour P. 155.

२. भागवत

चर्चाका वर्णन मानना सर्वथा असंगत है। विद्वान लोग भागवतमें अश्लीलता-की चर्चा तो क्या लोक-चर्चाकी कल्पना भी मानना स्वीकार नहीं करते। श्रीकृष्णके रासलीलामें श्रीशुक द्वारा प्रदत्त विशेषण बड़े ही उपयुक्त हैं—

योगेश्वरेण कृष्णेन	**(भागवत १०।३३।३)**
भगवान्देवकी सुतः	**(भागवत १०।३३।७)**
समं भगवता ननृतुः	**(भागवत १०।३३।१६)**
रेमे रमेशो	**(भागवत १०।३३।७)**
रेमे स भगवान्	**(भागवत १०।३३।२०)**

भागवतके सुप्रसिद्ध टीकाकार श्रीधरस्वामीके अनुसार यह लीला कामदेवका गर्व नष्ट करनेके हेतु की गयी थी—

ब्रह्मादि जय संरुढ़ि दर्पकन्दर्प दर्पहा।
जयति श्रीपतिर्गोपी रासमण्डल मण्डनः ॥[1]

श्रीजीवगोस्वामी कहते हैं रासपंचाध्यायीके पांच अध्याय भगवानके पांच प्राण तुल्य हैं तथा इस लीलाके प्राकट्य सर्वातिशायी प्रेमवती ब्रजसुन्दरियों-की मनोरथ मूर्ति है। धनपतिने रासलीलाकी निवृत्तिपरक व्याख्या भी की है—

निवृत्ति मार्ग संसक्त चेतसां विदुषां मुदे।
व्यक्ती करोम्यहं संस्वत्त कृष्ण प्रसीदतः ॥[2]

रसात्मक-कार्यके अत्यन्त गूढ़ भावका प्रकटीकरण है रासलीला। प्रत्येक गोपीमें आनन्दको आनन्दकी परिपूर्णताके रूपमें आलिंगित किया। यह आनन्द अविरत अभिनवताको अभिव्यंजित करनेवाला आरम्भ और अन्त रहित नित्य है। इस आनन्दमें अपूर्व नृत्य, गीत, आलिंगन, चुम्बन आदि भावोंका परिचय विद्यमान है। रासलीलामें शब्दोंकी अभिधा, लक्षणा और व्यंजना सभी शक्तियां शरद्की कुंजोंकी भांति फलवती हो जाती हैं। महा-रासके पांचों अध्यायोंको यदि भागवतमें-से निकाल भी दिया जाय तो क्रम प्रभावित नहीं होता। यह अप्राकृत लीला है, जैसे ही परीक्षितने शंका प्रकट की शुकदेवजीने यह वर्णन समाप्त कर दिया।

---

१. भागवत १०।२९—भावार्थ दीपिकाकार कृत मंगलाचरण

२. वही १०।२९।१ गूढ़ार्थ दीपिका

अस्तु, अगणितानन्द अथवा अतिरोहितानन्द श्रीकृष्णका परात्पर रूप है। भक्तिरसराट् श्रृंगार रस ही रसाधार है रासलीलाका। श्रीमद्भागवतमें श्रीकृष्णकी यह प्रेमकी प्रत्यक्ष रासलीला एक उच्च दार्शनिक धरातलपर स्थित अत्यन्तरंग लीला है जो श्रीकृष्णको भी विमुग्ध करती है।

The BHP offers a supernatural explanation .... Krshna divides himsels into as many Krshna's as there are Gopis so that each girl can hold his hand.

जो सुकृती परम भागवत कहे जाते हैं, वही रासलीलाका अर्थ समझते हैं और अन्तवर्तीय आनन्दका अनुभव कर मनुष्य-जीवनका चरम-परम लाभ उठाते हैं। अस्तु, महारास भक्ति और श्रृंगारका अद्भुत संयोग है–यही पर्याप्त है, हाँ आधुनिक विरोधों और भावनाओंके प्रत्युत्तरमें। इसे प्राकृत विज्ञानसे नहीं, शुद्ध अन्तःकरणसे जाना जाता है। जब भक्ति-कमल किसी हृदय-सरोवरमें खिल जाता है, श्रीकृष्णरूपी भ्रमर उसकी ओर आकर्षित हो जाता है।[२] उसमें ऐसा रस होता है जब भक्त और भगवान दोनों नाचते हैं–दोनोंका प्रेम ही इष्ट है, प्रेम ही सम्राट है।

---

1. VIRHA BHAKTI–The early history of Krshna devotion in south India–Oxford University Press, Oxford, New York 1983 P. 504.

२. अनुव्रजाम्यहं नित्यं पूयेयेत्यंघिरेणुभिः –भागवत ११।१४।१६

वर्तमान परिस्थितियोंमें श्रीकृष्णका आह्वान

आजसे पाँच हजार वर्ष पूर्व इस धरतीपर एक अत्यन्त अलौकिक और अद्भुत प्रसंग उपस्थित हुआ था। वह यह कि धर्म, न्याय और नीतिके लिए आजीवन लड़नेवाले एक अलौकिक और उत्कृष्ट प्रतापी व्यक्तिने भारतमें जन्म लिया था। यह व्यक्ति ही सर्वजन-स्वजन श्रीकृष्ण है। कालका पुरुषार्थ प्रत्येक वस्तुमें-से रस खींच लेनेका है 'कालः पिबति तद्रसम्।' परन्तु कालका पुरुषार्थ जहाँ असफल हुआ, काल जहाँ पराभूत हुआ, जिसमें-से वह रस ही नहीं समाप्त कर सका, ऐसा महान् उदात्त और उत्कृष्ट जीवन श्रीकृष्णका है। पाँच हजार वर्षोंसे श्रीकृष्णकी लीलाका वर्णन सतत होता ही रहा है।

गुणोंके संग्रहालय श्रीकृष्ण निःस्वार्थ जीवनकी आदर्श मूर्ति हैं। पराक्रम, बुद्धि औरनिःस्पृहता—ये तीनों गुण विश्वमें प्राणिमात्रको आकर्षित करनेवाले हैं—इन तीनों गुणोंका एक ही समयावच्छेद मेल श्रीकृष्णमें हुआ है। उत्कृष्ट त्रिवेणी-संगमस्थली कृष्णके जीवनमें है। आजके प्राणियोंमें इन तीनों गुणोंका अभाव है, निःस्पृहता तो नगण्य सी ही है औरपराक्रम एवं बुद्धि यदि है भी तो सदुपयोग नहीं है, हमें श्रीकृष्णके इन गुणोंको अपने जीवनमें ढालना होगा। बलात्कार, हत्या, चोरी-डकैती जैसे नृशंस कृत्योंको समूल नष्ट करना होगा—बुद्धि और पराक्रमसे। श्रीकृष्णके जीवनका मुख्य हेतु मात्र धर्म-रक्षण ही था, अब तो धर्मका लोप प्रायः हो गया है।

भगवान् श्रीकृष्णका दिव्य जीवन, मुमुक्षुको मुक्ति, संशयात्माको निश्चय, निराशको उत्साह, निर्धनको आधार, दुर्जनको दण्ड और सज्जनको सम्मान तथा आनन्द देनेवाला है। किसी भी दृष्टिसे कृष्णका चरित्र कल्याण-प्रद ही है।

श्रीकृष्णका जगद्गुरु रूप भी चिरन्तन कालके लिए है। श्रीकृष्णने संसारके प्रपंचसे हारी-थकी, दुःखी मानव जातिको नवजीवनका सन्देश दिया है। प्रशान्त मानवताके मार्गदर्शक थे वे और हैं। आज भी श्रीकृष्ण अपने वचनोंसे दुःखी मानव-जातिके दुःखको आत्मिक संदेश दे रहे हैं। पर कितने

लोग उनके वचनोंको पढ़ अथवा सुन पाते हैं.............. ? आज भी उनका जीवन हमारे जीवनका आनन्द बना हुआ है।

भौतिकवादसे भोगवाद बढ़ता ही रहा है, उसे रोकनेके लिए किसी तात्विक अधिष्ठानपर आधारित धर्म चाहिये। आज यान्त्रिक शक्तिका युग है, उसका ही साम्राज्य व्यावहारिक जीवनके प्रत्येक क्षेत्रमें फैला हुआ है, परन्तु क्या यह यंत्रशक्ति हतोत्साह मानव-जातिके लिए प्रेरणा-स्रोत बन सकती है ? यांत्रिक युगने मानवको भी यंत्रवत् बना दिया है Mechanical Psychology निर्माण की है।मानव भी चाहे जितनी भौतिक प्रवृत्ति साध ले परन्तु जीवनमें कर्म प्रवृत्त होनेकी प्रेरणा कौन देगा ? जगतमें आज दुःख, त्रास और यातनाओंका ताण्डव नृत्य चल रहा है। इस त्रस्त मानव जातिको यातनाओंका सामना करनेकी प्रेरणा कौन देगा ? क्लेश, दुःख और अविश्वास-के अनेक बादलोंको चीरकर व्याप्त अज्ञानके अंधकारको दूर कर पवित्र, शान्त और प्रेमका वातावरण निर्माण कैसे करेंगे ? कौन-सा मार्ग अपनाया जायेगा ! श्रीकृष्णकी शरण हैं, आश्रय हैं।

यंत्रका सम्बन्ध जड़ मानवके साथ है अर्थात् मानवके शरीरके साथ है। वे मानवकी लोलुपताको बढ़ाते हैं, उसे दीन-हीन और कंगाल बना डालते हैं। उसे सुखके, भूतके पीछे दौड़ाते हैं परन्तु सच्चा सुख क्या है, यह वे बता नहीं सकते। श्रीकृष्णका जीवन इस यांत्रिक विध्वंसात्मक शक्तिके सामने एक बड़ा आश्वासन है। यदि विज्ञानके कारण जगत् बिल्कुल निकट आ गया है तो हम जगतके सुख-दुःखसे अलग नहीं रह सकते। समग्र विश्वकी एकता यंत्र-शक्तिपर टिक नहीं सकती। इस एकताके लिए 'वासुदेवः सर्वमिति' का पाठ किये बिना काम चलेगा नहीं। श्रीकृष्ण मात्र भारतकी भूमिमें ही नहीं अपितु जगतके गोलेपर सुदर्शन चक्र धारण किये खड़े हैं। सुदर्शन चक्र तो परमाणु विस्फोटसे भी ज्यादा क्रान्तिकारी रहा है। विश्वको जो आज एक वैश्विक धर्मकी तृषा है, उसके लिए श्रीकृष्णका उपदेश-जल हमारे पास है। सम्पूर्ण जगतकी विकट समस्याओंके एकमात्र वही हल हैं। समस्त मानवताके गुरूके रूपमें श्रीकृष्णकी वन्दना ही अभीष्ट है।

श्रीकृष्णने बचपनसे ही जगतके उत्थानका कार्य अपने हाथमें ले लिया था, दीन-दुःखियोंके साथी थे। दुर्बल मानवोंपर होनेवाले अन्यायको वे सह नहीं सकते थे। श्रीकृष्णका समग्र जीवन, जीव-मात्रको श्रेष्ठ जीवन जीनेके पुरुषार्थमें सहायक रूप बनने वाला है, हमें यही सब आदर्श अपनाने होंगे।

नेताओंको श्रीकृष्णके समान निष्पाप, निर्लोभ, स्वार्थहीन और पवित्र होना पड़ेगा। श्रीकृष्णके इन्हीं गुणोंने उन्हें जनताका हृदय-सम्राट बना दिया था। प्रत्येक व्यक्तिको आदर्श-समाज-सेवक व समाज-प्रेमी बनना होगा। गोपालके रूपमें श्रीकृष्ण भारतीय संस्कृतिके वाहक हैं, गायके महत्वको कौन नहीं जानता। श्रीकृष्णसे हमें निरन्तर वर्धमान रहनेकी प्रेरणा मिलती है, उनके जीवनमें कृत-विचारों और संकल्पोंमें हमें वर्तमान परिस्थितियोंको सुधारनेके नये आयाम और अवसर प्राप्त होते हैं, जिनसे सम्पूर्ण पशुत्व, स्वार्थलिप्सा, रावणत्व, परद्रोहित्व आदिको दूर किया जा सकता है।

विश्व-बन्धुत्वके उच्च विचार रखनेवाले और मानवताकी बधशाला खोलनेवाले जगतके सच्चे नेता या मार्गदर्शक कदापि नहीं बन सकते। जो अपने जीवन द्वारा जगतको उपदेश देता है वही सच्चा नेता है। श्रीकृष्णने जो कुछ कहा, करके दिखाया, इसीलिये वे हमारे महान् नेता हैं। श्रीकृष्णके समयमें भी कंस था, शिशुपाल आदि थे, परन्तु आत्मिक विकाससे सम्पूर्ण राक्षसत्व जड़ और निर्जीव हो गया, समूल नाश किया था श्रीकृष्णने। आज विश्वको श्रीकृष्णकी, उनके विचारों और आदर्शोंको, संकल्पोंकी आवश्यकता है, उन्होंने जीवन जीकर बताया, इसलिये वे महान दृष्टा हैं। श्रीकृष्णका जीवन-सिद्धान्त सर्वकालीन है। वर्तमान परिस्थितियोंमें जो संकट उभर रहा है और यदि हम सच्चे हृदयसे उस संकटमें बचना और बचाना चाहते हैं तो एकमात्र श्रीकृष्णका ही आह्वान करना होगा।

सर्वमार्गेषु नष्टेषु कलो च खलधर्मिणी
पाखण्ड प्रचुरे लोके कृष्ण एव गतिर्मम।

म्लेच्छाक्रान्तेषु देशेषु पापैकनिलयेषुच।
सत्पीड़ाव्यग्र लोकेषु कृष्ण एव गतिर्मम॥[1]

अर्थात् कोई मार्ग न रह जानेपर अतिशय निरुपाय स्थितिमें, खल धर्मकी व्यापकतामें, पाखण्ड धार्मिक दम्भ प्रदर्शनादिकी प्रचुरतामें श्रीकृष्ण ही एकमात्र मेरे शरण्य हैं। विदेशी आक्रान्ताओंसे राष्ट्रके अभिभूत हो जानेपर पाप कर्मोंकी अतिव्याप्तिपर सज्जनोंके पीड़ित और त्रस्त होनेपर कृष्ण ही मेरे शरण्य हैं।

---

१. श्रीमद्वल्लभाचार्य : व्यक्तित्व, सिद्धान्त और सन्देश, पृष्ठ १६३ लेख 'आचार्य वल्लभकी समाजको देन : डा० गोवर्धननाथ शुक्ल।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

१. अग्नि-पुराण, महर्षि वेदव्यास
२. अचिन्त्य भेदाभेद सिद्धान्त, डा० प्रियाशरण वृन्दावन
३. अथर्ववेद
४. अमरकोष, श्रीअमर सिंह—चौखम्बा वाराणसी
५. अलंकार कौस्तुभ, कवि कर्णपुर, विश्वनाथ चक्रवर्ती, कलकत्ता
६. अवतार मीमांसा, स्वामी कार्ष्णि गोपालदास
७. अष्टाध्यायी पणिनि, ब्रह्मदत्त जिज्ञासु, सोनीपत
८. आनन्द वृन्दावन चम्पू, कवि कर्णपुर, वृन्दावन
९. आत्म विलास, अमृत वाग्मवाचार्य, पं० हरिभानुदत्त शास्त्री
१०. ऐतरेयोपनिषद्, श्रीआनन्द गिरि
११. उज्जवल नीलमणि, श्रीरूप गोस्वामी, बाबा कृष्णदास
१२. ऐश्वर्य कादम्बिनी, श्रीविश्वनाथ चक्रवर्ती, 'वृन्दावन'
१३. ऋग्वेद, श्रीदामोदर सातवलेकर, सूरत
१४. कठोपनिषत्, गीताप्रेस गोरखपुर
१५. काम गायत्री व्याख्या, श्रीप्रबोधानन्द सरस्वती, बाबा कृष्णदास
१६. काव्य चन्द्रिका, श्रीमंगलीप्रसाद शर्मा, घरौना
१७. काव्यादर्श, दण्डाचार्य - व्या० रामचन्द्र मिश्र, चौखम्बा वाराणसी
१८. काव्य प्रकाश, आचार्य मम्मट, ज्ञानमण्डल वाराणसी
१९. काव्यालंकार, रुद्रट
२०. कृष्ण कर्णामृतम्, विल्व मंगलाचरण—सम्प्रदाय आश्रम वृन्दावन
२१. कृष्णोपनिषद्, महर्षि वेदव्यास काशी
२२. कृष्ण काव्यमें लीला वर्णन, डा० जगदीश भारद्वाज विमल कीर्ति प्रकाशन दिल्ली।
२३. कृष्ण चरितामृतम्, श्रीकृष्णप्रसाद शर्मा, काठमाण्डु
२४. कृष्ण भक्ति काव्यमें सखी भाव, डा० शरणविहारी गोस्वामी, चौखम्बा संस्कृत पुस्तकालय बाराणसी
२५. कृष्ण लीला विमर्श, डा० जगदीश भारद्वाज, निर्मल कीर्ति प्र. दिल्ली
२६. कृष्ण लीला स्तव - श्रीसनातन गोस्वामी, 'ढाका' पूर्व बंगाल बंग
२७. कृष्णस्तु भगवान् स्वयं, श्रीकण्ठ उपाध्याय, माधव पुस्त. संस्करण दिल्ली

२८. केनोपनिषत्, शांकर भाष्य
२९. गर्गसंहिता, गर्गाचार्य, वैंकटेश्वर प्रेस बम्बई
३०. ग्रन्थरत्नषटकम्, कृष्णदास बाबा, कुसुम सरोवर मथुरा
१) अग्नि पुराणान्तर्गत गायत्री व्याख्या विवृति
२) कामगायत्री व्याख्या
३) मंत्रार्थ दीपिका
४) सूर्य उपासना वैष्णव पूजा विधि
५) श्रीकृष्ण प्रेमामृत
६) श्रीयुगलाष्टक
३१. गोपाल चम्पू, पूर्व भाग, एवं उत्तर भाग-जीव गोस्वामी - नित्यस्वरूप ब्रह्मचारी
३२. गोपाल तापिनी, पूर्व भाग, एवं उत्तर भाग श्रीप्रबोधानन्द सरस्वती - बाबा कृष्णदास
३३. गोविन्द लीलामृतम्, कृष्णदास (संस्कृत), कविराज हरिदास शास्त्री (टीका) मानव चैतन्य शिक्षा समिति बृन्दावन
३४. गौड़ीय कंठहार, श्रीअतीन्द्रिय भक्ति गुणाकार, नवद्वीप वंग ३
३५. गौड़ीय दर्शन (वंग) श्रीसुन्दरानन्द विद्या विनोद, गौड़ीय मिशन कलकत्ता-३
३६. गौड़ीय वैष्णव दर्शन, श्रीराधा गोविन्दनाथ, कलकत्ता
३७. गौरी तन्त्र, श्रीप्रबोधानन्द सरस्वती, बाबा कृष्णदास
३८. चैतन्य चरितामृतम्, बाबा कृष्णदास, बृन्दावन
३९. चैतन्य भागवत, श्रीवृन्दावनदास ठाकुर, बाबा कृष्णदास
४०. चैतन्य मत, श्री ओ. बी. एल. कपूर परमार्थ प्रकाशन, वृन्दाबन
४१. चैतन्य शिक्षामृतम्, श्रीभक्ति विनोद ठाकुर, कलकत्ता
४२. चैतन्य सम्प्रदाय : सिद्धान्त और साहित्य, डा० नरेशचन्द्र बंसल, विनोद पुस्तक मन्दिर, आगरा
४३. छान्दोग्योपनिषद्, गीताप्रेस
४४. जैवधर्म, श्रीभक्ति विनोद ठाकुर : अनुवादक श्रीश्रीनारायण प्रभुपाद श्रीकेशव गौड़ीय मठ, मथुरा
४५. तत्व सन्दर्भ - श्रीजीव गोस्वामी, वाराणसी
४६. तैत्तिरीपारण्यक

४७. तैत्तिरीयोपनिषद् - गीता प्रेस,
४८. दशमूत, श्रीभक्ति विनोद ठाकुर, नवद्वीप
४९. दशरूपक, श्रीधनंजय, चौखम्भा वाराणसी
५०. दशश्लोकी, श्रीनिम्बार्काचार्य, गौड़ीय वंग संस्करण
५१. देवी भागवत, महर्षि वेदव्यास, कलकत्ता
५२. नवरत्न, महाप्रभु बल्लभाचार्य, श्री बल्लभ प्रकाशन अलीगढ़
५३. नाटक चन्द्रिका, भरत मुनि, साहित्यकार मेरठ
५४. नाट्य शास्त्र, भरत मुनि, मेरठ
५५. नारद भक्ति सूत्र, नारद मुनि, गीता प्रेस
५६. नैष्कर्म्य सिद्धि, श्रीसुरेश्वराचार्य - सच्चिदानन्देन्द्र सरस्वती (व्या०) नरसीपुरम्
५७. पंचपादिका विवरण, काशी संस्करण
५८. पद रत्नावली, श्रीविजयध्वज तीर्थ, वृन्दावन
५९. पद्म पुराण, महर्षि व्यास कलकत्ता
६०. परमात्मा सन्दर्भ, बाबा कृष्णदास (अनु०)
६१. पुराण दिग्दर्शन, श्रीमाधवाचार्य शास्त्री, दिल्ली
६२. पुराण पर्यालोचनम्, पं० श्रीकृष्णमणि त्रिपाठी, चौखम्बा वाराणसी
६३. पुराण विमर्श, आचार्य बल्देव उपाध्याय, चौखम्बा वाराणसी
६४. पुराण संहिता
६५. पुष्टिमार्गीय स्त्रोत रत्नाकर, वाराणसी
६६. प्रमेय रत्नावली, श्रीबल्देव विद्याभूषण वृन्दावन
६७. प्रेमेय रत्नानब, पुष्टिमार्गीय फल विवेक
६८. प्रीति सन्दर्भ, बाबा कृष्णदास (हस्तलिखित) श्रीकृष्ण-शोधपीठ, मथुरा
६९. वृहदारण्यकोपनिषद्, गीताप्रेस
७०. वृहत् क्रम सन्दर्भ - श्रीजीवन गोस्वामी, वृन्दावन
७१. वृहत् भागवतमृतम्, श्रीसनातन गोस्वामी, वृन्दावन
७२. ब्रह्मम् वैवर्त पुराण, कलकत्ता
७३. ब्रह्मम् संहिता, श्रीकृष्णानन्द ब्रह्मचारी (सम्पादक) सनातन ब्रह्मचारी वृन्दावन

७४. ब्रह्म सूत्र –

,, अणु भाष्य, श्रीवल्लभाचार्य

,, सूत्र भाष्य, श्रीमाध्वाचार्य कृत

,, राघवेन्द्रयति कृत टीका

,, माध्व भाष्य – श्रीमाध्वाचार्य

,, माडुक्य भाष्य – श्रीमाध्वाचार्य

,, श्रीकण्ठ भाष्य – श्रीकण्ठाचार्य

,, शांकर भाष्य – श्रीशंकराचार्य – भामती टीका

,, कल्पतरु टीका – वोपदेव कृत

,, गोविन्द भाष्य – बाबा कृष्णदास देव विद्याभूषण (व्याख्याकार)

,, निर्णय टीका –

,, वेदान्त परिजात सौरभ – निम्बार्काचार्य कृत

७५. भक्तिका विकास, डा० मुंशीराम शर्मा, वाराणसी

७६. भक्ति मीमांसा : पराभक्ति सूत्र, डा० विश्वनाथ शुक्ल, अलीगढ़

७७. भक्ति रहस्य, श्रीभक्ति विनोद ठाकुर नवद्वीप

७८. भक्ति रसामृत सिन्धु, श्रीरूप गोस्वामी, वृन्दावन

७९. भक्ति रसामृत सिन्धु बिन्दु, श्रीविश्वनाथ चक्रवर्ती, वृन्दावन

८०. भक्ति रसायन, श्रीमधुसूदन सरस्वती, वाराणसी

८१. भक्ति रसायन – व्याख्या – श्रीजनार्दन मिश्र

८२. भक्ति सन्दर्भ, श्रीजीव गोस्वामी, बाबाकृष्णदास

८३. भक्ति सुधा, प्रथम द्वितीय एवं तृतीय भाग श्रीहरिहरानन्द सरस्वती

८४. भगवन्नाम कौमुदी, श्रीलक्ष्मीधर काशी

८५. भगवतत्व, श्रीहरिहरानन्द सरस्वती, बनारस

८६. भगवत्सन्दर्भ श्रीजीव गोस्वामी, वृन्दावन

८७. भजन रहस्य, श्रीभक्ति विनोद ठाकुर, नवद्वीप

८८. भागवतार्थ प्रकरण, श्रीबल्लभाचार्य (संस्कृत) प्रकाश टीका, सूरत

८९. भागवतके टीकाकार, डा० वासुदेवकृष्ण चतुर्वेदी, मथुरा

९०. भागवत दर्शन, प्रथम एवं द्वितीय भाग, श्री अखण्डानन्द सरस्वती

९१. भागवत दर्शन, डा० हरवंशलाल शर्मा

९२. भागवत दर्शन प्रथम भाग, स्वामी प्रभुपाद, बम्बई

९३. भागवत परिचय–श्री सुदर्शनसिंह 'चक्र', श्रीकृष्ण-जन्मस्थान मथुरा

९४. भागवत रहस्य, श्रीअखण्डानन्द सरस्वती, बम्बई

९५. भागवत रहस्य, श्रीरामचन्द्र डोंगरे

९६. भागवत विचार दोहन, श्रीअखण्डानन्द सरस्वती
९७. भागवत सन्दर्भ, श्रीजीव गोस्वामी नवद्वीप वंग संस्करण
९८. भागवत स्तुति संग्रह पं. श्री नित्या नन्द पाडेण्य, गीताप्रेस
९९. भागवत सुधा सागर, गीता प्रेस
१००. भारतीय संस्कृति और साधना, पटना
१०१. भारद्वाज संहिता
१०२. मत्स्य पुराण, कलकत्ता
१०३. मनुस्मृति, मेधातिथि (भाष्यकार) कलकत्ता
१०४. मंत्रार्थ दीपिका, श्रीविश्वनाथ चक्रवर्ती, वंग संस्करण नवद्वीप
१०५. महाभारत, गीता प्रेस
१०६. माण्डुक्य कारिका, गौड़ पादाचार्य, गीताप्रेस
१०७. माण्डुक्योपनिषद्–गीताप्रेस
१०८. माधुर्य कादम्बिनी, श्रीविश्वनाथ चक्रवर्ती, वृन्दावन
१०९. मुक्ताफल, वोपदेव. गौड़ीय नवद्वीप
११०. रस गंगाधर, जगन्नाथ, मदनमोहनझा, वाराणसी
१११. रस सिद्धान्त, डा० नगेन्द्र, नेशनल पब्लिशिंग दिल्ली
११२. रावर्त्म चन्द्रिका, श्रीविश्वनाथ चक्रवर्ती, नवद्वीप
११३. राधाबल्लभ सम्प्रदाय : सिद्धान्त और साहित्य, डा० विजयेन्द्र स्नातक, नेशनल पब्लिशिंग हाउस दिल्ली
११४. राधामाधव चिन्तन, श्रीहनुमानप्रसाद पोद्दार, गीताप्रेस
११५. रास पंचाध्यायी, श्रीलक्ष्मणदत्त शास्त्री, मथुरा
११६. लघुभागवतामृत, श्रीरूप गोस्वामी, श्रीकृष्णदास बाबा
११७. वक्रोक्ति जीवितम्, श्रीराजालक कुन्तक, श्रीराधेश्याम मिश्र (व्याख्याकार) चौखम्भा वाराणसी
११८. विद्वन्मंडन निष्कर्ष सहित, आचार्य विट्ठलनाथ, बम्बई
११९. विवेक चूड़ामणि, आद्य शंकराचार्य, श्रीचन्द्रशेखर (अनु.) बम्बई
१२०. विष्णु तत्व विनिर्णय
१२१. विष्णु पुराण, गीताप्रेस
१२२. वृन्दावन महिमामृतम्, श्रीप्रबोधानन्द सरस्वती, वृन्दावन
१२३. वेदान्त परिभाषा, धर्मराज दीक्षित, बम्बई
१२४. वेदान्त परिभाषा, धर्मराजाध्वरीन्द्र गदानन्द झा लखनऊ
१२५. वेदान्त सार, श्रीरामानुज रामदुलारे शास्त्री, बनारस

१२६. वैष्णव आर्यधान कोष, गौड़ीय मठ नवद्वीप

१२७. शतपथ ब्राह्मण, श्रीसायणाचार्य (व्या०), कलकत्ता

१२८. शब्द कल्पद्रुम, स्याराराज। श्रीराधाकान्तदेव बहादुर, चौखम्भा संस्कृत सीरीज वाराणसी

१२९. शाण्डिल्यभक्ति सूत्र गीता-प्रेस

१३०. शास्त्रार्थ प्रकरण, वल्लभाचार्य, मिश्र (व्या०) वाराणसी

१३१. श्वेताश्वतरोपनिषत्–गीताप्रेस

१३२. संकल्पकल्प द्रुम, श्रीविश्वनाथ चक्रवर्ती, बाबा कृष्णदास (अनु०)

१३३. संकल्प द्रुम, श्रीजीवपाद

१३४. संस्कृत साहित्यका इतिहास, श्रीबलदेव उपाध्याय, काशी

१३५. सर्वतत्त्वार्थ पदार्थलक्षण संग्रह, भिक्षु गौरीशकर, काशी

१३६. सर्व निर्णय प्रकरण, श्रीवल्लभाचार्य

१३७. सर्व सम्वादिनी, श्रीजीव गोस्वामी, बाबा कृष्णदास

१३८. सर्व सिद्धान्त संग्रह

१३९. सार संग्रह अवतरणिका, श्रीकृष्णगोपाल स्वामी, कलकत्ता

१४०. साहित्य दर्पण, श्रीविश्वनाथ चक्रवर्ती, वाराणसी

१४१. सिद्धान्त दर्पण, श्रीवलदेव विद्याभूषण, नवद्वीप

१४२. सिद्धान्त प्रदीप, श्रीबलदेव " "

१४३. सिद्धान्त रत्नम्, श्रीबलदेव " "

१४४. सिद्धान्त रहस्यम्, महाप्रभु वल्लभाचार्य, व्याख्याकार-गोवर्धननाथ शुक्ल, वल्लभ शोध–संस्थान अलीगढ़

१४५. सिद्धान्त लेश संग्रह, मूलशंकर व्यास, काशी

१४६. स्कन्द पुराण, कलकत्ता

१४७. स्वकीयात्वानिरास विचार परकीयात्व निरूपण, श्रीविश्वनाथ चक्रवर्ती, वृन्दावन

१४८. स्त्रवावलि, श्री रत्न रघुनाथदास गोस्वामी ढाका बंग

१४९. हरिवंश पुराण, श्रीकृष्ण द्वैपायन वेदव्यास, गीताप्रेस

१५०. श्रीहरि भक्ति मंजरी सुधोदय, रघुनन्द गोस्वामी (हस्तलिखित), श्रीकृष्ण शोधपीठ, जन्मभूमि, मथुरा

१५१. हरि भक्ति रसामृत सिन्धु, श्रीरूप गोस्वामी, काशी

१५२. हरि भक्ति विलास, श्रीगोपाल भट्ट, गोवर्धन

१५३. हलायुध कोश, सूचना विभाग, उ०प्र० लखनऊ

१५४. हित हरिवंश, : सम्प्रदाय और साहित्य, श्रीललितचरण गो०, वृन्दावन

१५५. श्रीकृष्ण चरित्र 'चार भाग', श्रीसुदर्शनसिंह 'चक्र' मथुरा
१५६. श्रीकृष्ण प्रसंग, श्रीगोपीनाथ 'कविराज', वाराणसी
१५७. श्रीकृष्ण प्रेमामृतम्, श्रीपाद गोपाल भट्ट, 'हस्तलिखित' मथुरा
१५८. श्रीकृष्ण लीला चिन्तन, गीताप्रेस
१५९. श्रीकृष्ण लीलाओं पर शास्त्रीय प्रकाश, श्रीरमानाथ शास्त्रीय, नाथद्वारा
१६०. श्रीकृष्ण सन्दर्भ, श्रीजीव गोस्वामी, वृन्दावन
१६१. श्रीकृष्ण संहिता, श्रीभक्ति विनोद ठाकुर, नवद्वीप
१६२. श्रीचैतन्यमहाप्रभुका शिक्षामृत, श्रीप्रभुपाद, बम्बई
१६३. श्रीमद्वल्लभ : दशन एवं भक्ति सिद्धान्त, अलीगढ़
१६४. श्रीमद्वल्लभाचार्य—व्यक्तित्व, सिद्धान्त और सन्देश, इन्दौर
१६५, श्रीमद्भागवतका परवर्ती प्रभाव, डा०विश्वनाथ शुक्ल
१६६. श्रीमद्भागवत तत्व समीक्षा (संस्कृत) श्रीकृष्णमणि त्रिपाठी, चौखम्भा वाराणसी
१६७. श्रीमद्भागवत पुराण : मूल-महर्षि वेदव्यास, गीताप्रेस
१६८. श्रीमद्भागवत पुराण : टीका संस्करण—कृष्णशंकर शास्त्री
१. सुवोधिनी : गो० वल्लभाचार्य
२. शुकपक्षीया—श्रीसुदर्शन सूरि
३. वैष्णव तोषिनी—श्रीजीव गोस्वामी
४. सारार्थ दर्शिनी, श्रीविश्वनाथ चक्रवर्ती
५. भावार्थ दीपिका, श्रीधर स्वामी
६. भावार्थ दीपिनी—श्रीराधारमणदास गोस्वामी
७. क्रम-सन्दर्भ-श्रीजीव गोस्वामी
८. भागवत चन्द्र चन्द्रिका—श्रीवीर राधवाचार्य
९. वृहत् वैष्णव तोषिणी—श्रीसनातन गोस्वामी
१०. तत्व दीपिका—श्रीनिवास सूरि
११. बाल प्रबोधिनी—श्रीमत् गिरधर, प्रकाशन—बम्बई वेंकटेश्वर प्रेस
१६९. श्रीमद्भगवद्गीता, गीताप्रेस
१७०. श्रीमद्भगवद्गीता, वल्देव विद्याभूषण, श्रीधर टीका
१७१. श्रीहरिलीला—वोपदेव, श्रीसुदर्शनसिंह 'चक्र' मथुरा

अंग्रेजी पुस्तकें

172. Gopis Love, Ghanshyamdas Jalan Gita Press,

173. The Synthetic Philosophy of the Bhagwatam, Ram Narayan Vyas, Delhi.

174. Viraha Bhakti, The early history of Krishna devotion in South India, New York

पत्रिकाएँ

१. कल्याण 'कृष्णांक' गीताप्रेस गोरखपुर अगस्त १९३१
२. कल्याण 'भागवतांक' गीताप्रेस गोरखपुर संवत् १९९८
३. कल्याण 'शक्ति अंक' गीताप्रेस गोरखपुर संवत् १९८१
४. कल्याण 'उपनिषद् अंक' वर्ष २३ अंक १ संवत् १९४९ गीताप्रेस गोरखपुर
५. कल्याण 'अंक २' वर्ष ५५ गीताप्रेस गोरखपुर
६. कल्याण 'अंक ४' वर्ष ५५ गीताप्रेस गोरखपुर
७. अनन्त सन्देश 'भागवतांक' नवम्बर १९७६ वर्ष ५ अंक ५-६, श्रीवेंकटेश देवस्थान बम्बई रामानुजाब्द ९६०
८. 'श्रेय' 'भागवतांक' श्रीवृन्दावन भजनाश्रम, वृन्दावन फाल्गुन संवत् १९९२
९. श्रीसर्वेश्वरका 'रसोपासना अंक' श्रीधाम वृन्दावन वर्ष २५ अंक १-३
१०. रस वृन्दावन 'व्रज रासलीला विशेषांक' नवम्बर १९८० श्रीराधामाधव संकीर्तन, मण्डल दिल्ली
११. Souvenier B.H. Bon Maharaj, Bhajan Ashram Calcutta Oct. 1983.

अर्पण

श्री राधामाधव !
प्रेरक तुम, प्रेरणा तुम्हारी, रस-रति-भाव तुम्हारे रूप।
करके तुम्हीं दिखाते, स्वयं लिखाते लीला तुम्हीं अनूप।।
देते खोल भाव अनुपम, शब्दोंका शुचितम तुम भण्डार।
रचना तुम करवाते, सुनते तुम्ही उसे फिर कर मनुहार।।
विमल भाव मुख निज दर्शनका यह अपना ही कृति-दर्पण।
ज्योति बढ़ाता सहज परस्पर, तुम्हें हो रहा है अर्पण।।
भली बुरी यह वस्तु तुम्हारी तुम्हीं सर्वथा स्वामि अनन्य।
तुच्छ अबोध मलिन इस जनको बना निमित्त कर दिया धन्य।।

प्रकाशकीय वक्तव्य

मेरी पुत्रबधु डॉ० सौ० मधु आर. खण्डेलवाल साहित्याचार्या कृत प्रस्तुत "भागवत में श्रीकृष्ण लीला की प्रबन्ध योजना" शोध-प्रबन्ध का प्रकाशन कार्य करवाते हुए मुझे आत्मिक प्रसन्नता का अनुभव हो रहा है। जहाँ यह ग्रंथ विद्वत्-समूह के समक्ष एक सराहनीय कार्य हैं, वहीं महान भागवत रसिकों के लिए रसपूर्ण ग्रन्थ बन पड़ा है। इस ग्रन्थ का उपयोग यों और भी बढ़ जाता है कि इसमें भारत विख्यात महान सन्त श्री स्वामी अखण्डानन्दजी महाराज, प्रसिद्ध गौड़ीय सन्त श्रीनारायण प्रभुपाद, श्री अतुलकृष्ण गोस्वामी, परम संत रामचन्द्रजी डोंगरे महाराज, श्री रासबिहारी गोस्वामी, श्री महात्मा सुदर्शन चक्र, विद्वान डॉ० विद्यानिवास मिश्र आदि भारत के जाज्वल्यमान नक्षत्रों के विचार समाहित हैं। आध्यात्मिक भक्त-वृन्द के लिए यह ग्रन्थ आह्लादात्मक शास्त्र है।

इस ग्रन्थ के प्रकाशन का विचार आते ही प्रभु की कृपा से एक धार्मिक ट्रस्ट स्थापित करने का निश्चय हुआ, जिसके माध्यम से भागवत सम्बन्धी अनेक कार्य होते रहें। यह ग्रन्थ घर, विद्यालय - पुस्कालय की शोभा बनेगा।

सभी विद्वान, भागवत रसिक और भक्त-जनों को मेरा साष्टांग दण्डवत।

भवदीय :

बद्रीप्रसाद एन. खण्डेलवाल
रामकृष्ण खण्डेलवाल भवन,
७३-७५, कीका स्ट्रीट, बम्बई-४

आवरण मुद्रक—अजन्ता फाइन आर्ट प्रिन्टर्स, हनुमान गली, मथुरा.